श्री विजयदेवजी के साहित्य का विहंगावलोकन

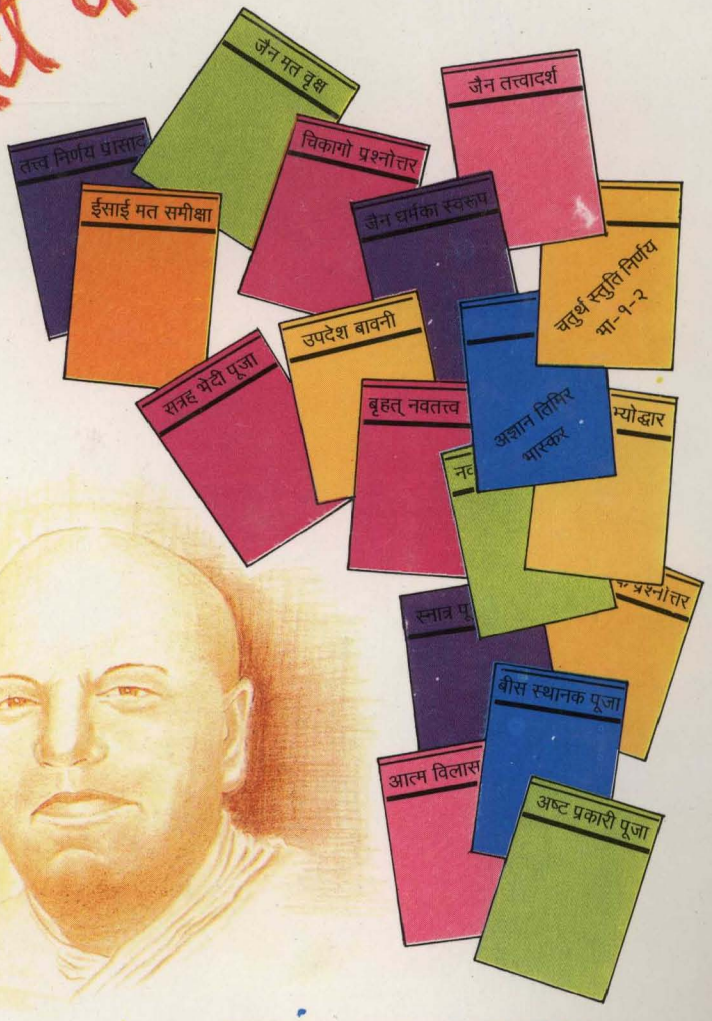

लेखिका
डॉ. किरणयशाश्री जी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विजयानंदजी के साहित्य का विहंगावलोकन

लेखिका
डॉ. किरणयशाश्री जी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री आत्म वल्लभ समुद्र इन्द्र सद्गुरुभ्यो नमः

श्री विजयानंदजी के वाङ्मय का विहंगावलोकन

ले. डॉ. किरणयशाश्रीजी म.

संस्करण
प्रथम
प्रति-१०००

वीर सं. - २५२५
विक्रम सं. - २०५५
इ.स. - १९९९
जनवरी

सर्वाधिकार स्वाधीन

टाईप सेटींग्स : **श्री कोपी सेन्टर**
बडौदा.

मुद्रण : **श्री मधु प्रिन्टरी**
भद्रकाळी माताकी पोल,
रावपुरा, बडौदा.

प्रकाशक

दान दाता

१. **श्री आत्मानंद जैन उपाश्रय,**
जानी शेरी, बडौदा.
२. **श्री महिला जैन उपाश्रय**
जानी शेरी,
बडौदा

प्राप्ति स्थान

१. **श्री आत्मानंद जैन उपाश्रय,**
२. **श्री महिला जैन उपाश्रय**
जानी शेरी, बडौदा.
३. **श्री गौतमकुमार मोहनलाल शाह** (एस्ट्रोलोजर)
बावामढी लेन, देसाई शेरी, बडौदा.

लेखिका परिचय : प.पू. पंजाब केसरी, कलिकाल कल्पतरु, युगदृष्टा, युगवीर आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म.सा. के पट्ट परम्परक वर्तमान गच्छाधिपति, प.पू. परमार क्षत्रियोद्धारक, जैन दिवाकर आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्नसूरीश्वर जी म.सा. की आज्ञानु वर्तिनी साध्वीरत्न प्रातःस्मरणीय, वात्सल्य निधि. प.पू. प्रवर्तिनी (स्व.) कर्पूरश्रीजी म.सा. की अंतेवासी, ज्ञान-पिपासु, मधुरभाषिणी प.पू. (स्व.) विनोद म.सा. की सुशिष्या, परमोपकारी, सरल हृदयी, प.पू. यशकीर्तिश्रीजी म.सा.की चरणरेणु डॉ. किरणयशाश्रीजीने यह शोध प्रबन्ध परम श्रद्धेय, कृपावर्षी, शांत तपोमूर्ति प.पू. प्रवर्तिनी श्री विनिताश्रीजी म.सा. की पावन निश्रामें सम्पन्न किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ अर्हंनमः॥ एकसादिबअंगरेजने विलायतकों लिखाथाकि एकऋग्वेदसंहितासनाथ्काप्रुस्त क साफजैनमुनिआत्मारामजीकों सरकारनेनेटदा खलनेनाचाहिये सोप्रुस्कतोलमें ३५सेरपक्का दै सोसरकारने गवरनरजनरलकी ओ अंजटसा दिबकीमारफत मुझकों जोधपुरमेंमिलादै यहबात सत्यहै

२ नवीनसाफयोंकोषडीदीक्षादीनीदै सोकिसशा स्त्रानुसारे गुजरातमेंतोनगवतीनायोगवहनहोवे सोदीक्षादेवेदै इतिप्रश्न॥

उत्तर मैंपामरजीवनगवंतकीसमूर्लआज्ञाआरा धनहीसक्ताहूं दिक्षातोमैंनेसमाचारीकीरीतीसें दीनीदै परंतुनगवतीकायोगतोमैंनेनदीवदाहै यहमेरेमेंन्यूनताहै और विनायोगवहयामैंनग वतीप्रमुखशास्त्रयथारमानमेंवाचताहूं शिष्योंको वाचनादेताहूं यहइसरीन्यूनताहै २ और योग तोवहापरंशास्त्रनहीपढादेरीतीपूर्वक तिसकोमै गणिमानतारहताहूं यहतीसरीन्यूनताहै ३ और किसिनीगछकीसमाचारीमैंमैंनेनदीदेखीदै कि गणिगणिकों गणिपददेवे परंतु आचार्यगणिप ददेवे ऐसालेखसर्वपूर्वाचार्योंकीसमाचारीयोमेंहै १२मैंतापूर्वोक्तरीतीवाजेकोगणिमानतारदाहूं य हयन्यूनताहै।

संवोधप्रकरणमेंश्रीहरिभद्रसूरिजीनें लिखाहैकिजो परियहधारीअणाचारीपासत्थे आदिकेपास जोको इ योगतथाउपधानादिकिया गुरुबुद्धि सेवेदै तिस कीसर्वकियानिफलहै उलटा वोहयोगोपधानादि कीकियाकरणेवालेकों प्रायश्चित्तके योग्यहै अर्था त्उसकोप्रायश्चित्तलेनाचाहियै गाथा। वंदणनमंस णाईजोगुवहणाइतप्पुरोविहियं गुरुबुद्धिएवि हलं सव्वपइत्तनुगंवा।९३॥ मैंनेतो ऐसेयोकेआ गेयोगवहनेवालोंकीकियासफलमानीथी यहप न्यूनताहै। आचार्यउपाध्यायप्रवर्त्तिस्थविरप्रवर्त्ति धगणिप एपांचोंपुरुषजिसगछमेंनहोवे सोगछको रपत्नीसमानहै सम्यक्तरूपरत्नकाहरनेवालासो गछहै औरतेनगजीवोंकोसंसारचक्रमणकाहेतु है ऐसेगछमें स्थविरितसाफकों एकमऊर्त्तमात्रभी वसनानचाहिये। जेकरसामान्यसाफहोवे परंतु वोक्तपांचोंगुणिजननहोवेतो यहस्वमेरहनाअछा है। गाथा जछनपंचइमेविनछिगणेसोऊपत्ति सारिछो समन्तरयणहरणे नच्चाणनवत्तमणु सीलो९५तछनमुऊत्तमित्तं वसियवंस्कविहि एहिंसाक्खहिं जइसामाल्यमुणिणो नगुणिणो तनवरंगेहं।९६॥ इनगाथार्थानुसारमेंनदीव तसक्ताहूं औरतपगछादिगछोंकेसाफयोंको चोरपत्नीसमानगछऔरसाफयोंको चोरसमा ननदीमानताहूं यहन्यूनताहै

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचिंत्य प्रभावशाली

श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ भगवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

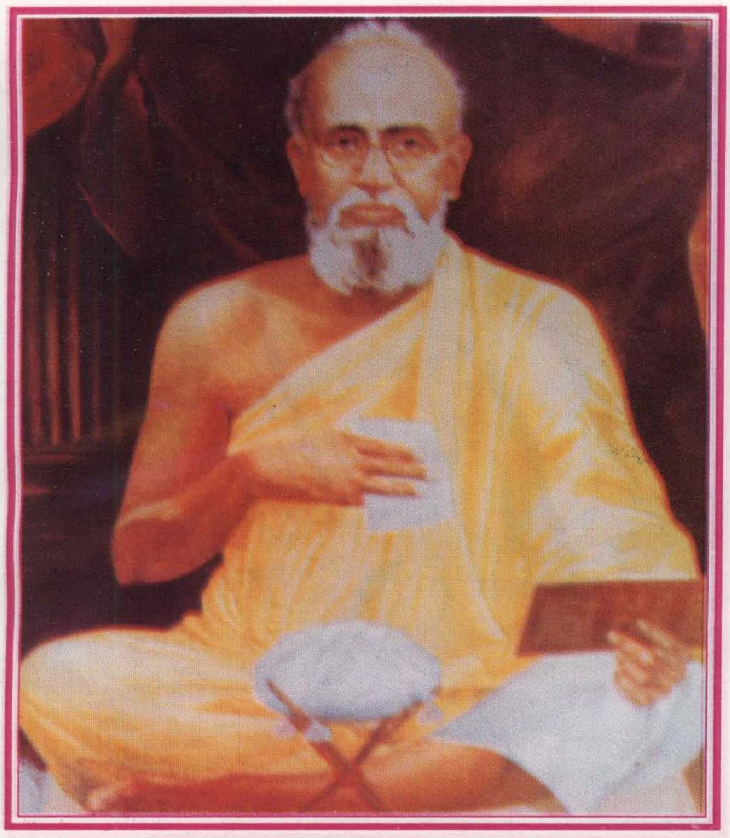

पंजाब केसरी, युगवीर आचार्य
प.पू. श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म.सा.

शांतिमूर्ति, राष्ट्रसंत
प.पू. श्रीमद्विजय समुद्र सूरीश्वरजी म.सा.

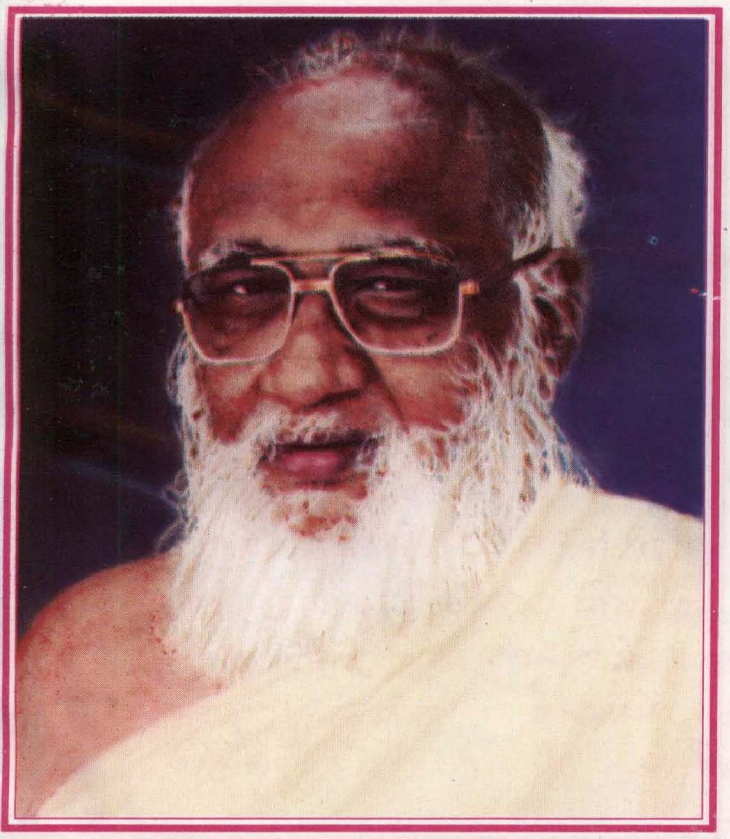

जैन दिवाकर, परमार क्षत्रियोद्धारक
प.पू. श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म.सा.

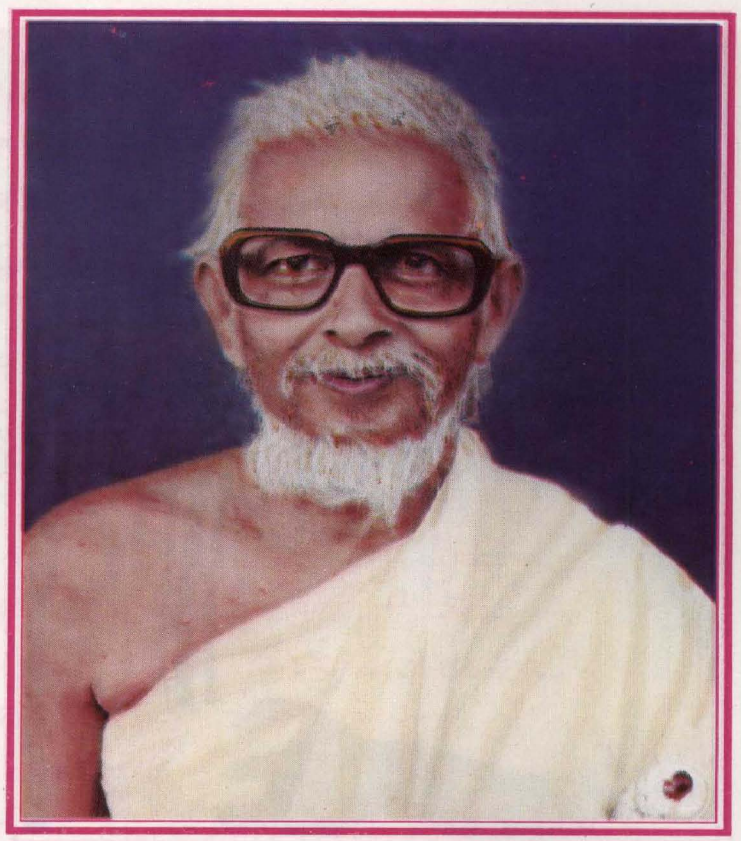

सर्वधर्म समन्वयी, परमध्यान योगीराज
प.पू. श्रीमद्विजय जनकचंद्र सूरीश्वरजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वात्सल्य मूर्ति रत्नत्रयीके प्रखर आराधिका
प.पू.प्र. कर्पूर श्रीजी म.सा.

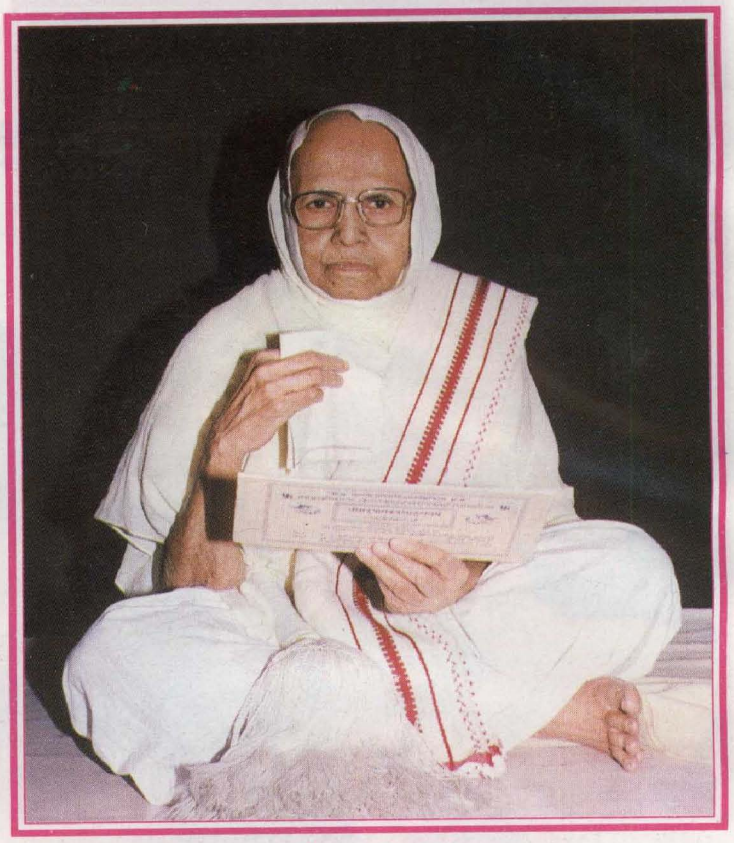

शांत तपोमूर्ति.
प.पू.प्र. विनीता श्रीजी म.सा.

ज्ञानयज्ञके साथी मधुर भाषी
प.पू. विनोद श्रीजी म.सा.

जीवन नैयाके सुकानी, परमोपकारी
प.पू. यशकीर्ति श्रीजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयन्तु वितरागाः
श्री आत्म-वल्लभ-समुद्र सद्गुरुभ्यो नमः

विजय इन्द्रदिन्न सूरि
शेठ मोतिशा रिलिजियस अॅन्ड चॅरिटीबल ट्रस्ट
शेठ मोतिशा आदेशरजी जैन मंदिर
२७, लव लेन (मोतिशा लेन)
भायखला, मुंबई ४०० ०२७
फोन नं.: ३७२०४६१, ३७१०७९२

ता. २३ ३ ८७

आशिर्वचन

ज्ञानम् विधादाय धनम् मदाय शक्ति परेषाम् परपीडनाय।
खलस्यसाधोः विपरितम् एतत् ज्ञानायदानाय च रक्षणाय ।।१।।

ज्ञान शक्ति, धन शक्ति शारीरिक शक्ति ये तीन शक्तियाँ प्रत्येक मनुष्योंको मिली है। उसमें तीनों शक्तिओंसज्जनो सत् उपयोगमें लगाते है और दुर्जन पुरुषो दुर्पयोगमें लगाते हैं। ज्ञानसे वाद विवादमें पडकर सबके साथ लडना झगडना जैसें कामोंमें अपनी शक्ति लगानेसे ज्ञान लानेवालेका काम बिगाडता है परन्तु सद्रचना करे वे ज्ञान लाने वालाहै दुर्पयोग करे तो ज्ञान डुबाने वालाभी बनता है।

धनसे हिंसा विधियोंका उद्धार का काम कर सकते है जैसे तिर्थंकरोंने वार्षिदान देकर सारे जगत् मात्रका उद्धार किया दुःखोंसे रक्षिया ३ अरब ८८ क्रोड ८० लाख सोना महोरका दान दिया और तो भाग वे प्रभुने हिंसाकी इच्छासे अथवा धर्म है हिंसा धर्मकी इच्छासे अथवा धर्मको कितनी सोना महोरें है ऐसे आत्मधर्म उत्तलादिक धन दान, शील और चारित्र उनको स्वर्गमोक्षको देनेवाली है साथ आत्मिक धन भी लाने वाला बनता है।

शारिरिक धन साधने शरीरकी शक्तिसे दूसरा मारना पीटना लिखना दूसरा कामोंमें बन्धन होता है परन्तु ज्ञान ध्यान तपस्यादूसरा शारिरिक शक्तियोंका उपयोग होता है वैसे ही स्वर्गवासी किरणप्रभाश्रीजी संयम लेकर गुरुदेवोंको चमत्कारीमहान गुरुदेवोंका जिवनपर किताब लिखने अपनी शक्ति ज्ञान ध्यान, तप साधनामें लगाकर जिवन उन्नतमय बनाया है और पुस्तककी रचनामें अपना समय लगाकर गुरुगुणोंगाकर चिरंजीवी की है मैं सार्थक मानता हूँ

आचार्य विजय इन्द्रदिन्नसूरिका अनुवंदना
सुखशाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* जयन्तु वीतरागाः *

* श्री आत्म-वल्लभ-समुद्र-इन्द्रदिन्न सद्गुरूभ्यो नमः *

विजय जनकचन्द्र सूरि

तिथि ५-१२-९५

જનકચંદ્ર-સૂરિના

વિદુષી સુ સંયમિના સા. કિરણયશા શ્રીને

અનુવંદના - સુખશાતા

તમોએ નિષ્ઠા અને પરિશ્રમ કરીને પ્ર-સંસ-ડા
નો ક્રમ પૂર્ણ કર્યું તે બદલ ને આનંદ થયો
આપણા સમુદાયમાં તમોએ મારા ભાવના
પૂર્ણ કરી તેનો અનેરો ધન્યવાદ
તમારા સંશોધન ક્રમનો સમાજોપયોગી
બનવું રહ્યું
તમારા આ કાર્યનો વિજયવલ્લભસૂરિ જ્ઞ.
મ-ના સમુદાયના શોભામાં અભિવૃદ્ધિકર
વિજયાનંદસૂરિ સ્વર્ગારોહણશતાબ્દિ વર્ષના પ્રસંગે
આ ક્રમ પૂર્ણ થયું તેનો વિશેષ આનંદ થયો

चतुर्मास 1995 - लुधियाना (पंजाब)
महावीर-भवन, पुराना बाजार, दरेसी, शाही दवाखाना के समीप, लुधियाना-141008
दूरभाष-0161-35707

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ નમોનમ: શ્રી ગુરુનેમિસૂરયે ॥

જ્ઞાન વ્યાસંગી પ.પૂ. શ્રીમદ્વિજય શીલચંદ્ર સૂરીશ્વરજી મ.સા. તરફથી

તા. ૨-૧૨-૯૮

શી.

વિનયવંત વિદુષી સાધ્વીજીશ્રી કિરણયશાશ્રીજી યોગ
અનુવંદના સુખશાતા.

પૂજ્યપાદ આત્મારામજી મહારાજ આપણા મહાન પ્રવચનપ્રભાવક યુગ પુરુષ હતા. તેઓશ્રીની શતાબ્દીના ઉપલક્ષ્યમાં તમોએ દીર્ઘ અને દૃષ્ટિ સંપન્ન પ્રયત્ન કરી તેઓના જીવન-કથન ઉપર ઊંડો અભ્યાસ કર્યો અને શોધ નિબંધ પૂર્ણ કર્યો, તે એક તરફ ગુરુભકિતનું પુણ્યકાર્ય કર્યું છે, તો બીજી તરફ વિદ્યાભ્યાસનું મહત્ કાર્ય પણ તે ગણાય. તમારા આ અધ્યયનની ખૂબ ખૂબ અનુમોદના છે.

હવે પછી તમે આ પ્રકારે વિવિધ વિષયો પરત્વે શોધક દૃષ્ટિ રાખીને સંશોધન લેખો લખતાં રહેશો, તેવી અપેક્ષા રાખું તો તે અસ્થાને નહિ લાગે. Ph.D. નું કાર્ય એ તો પ્રારંભ જ છે. આમાં બુદ્ધિ તથા દૃષ્ટિનું માર્જન જ માત્ર થાય. તેનાથી થતું વાસ્તવિક જ્ઞાનાર્જન. તો હવે પછીના તમારા કાર્યોમાં પ્રગટ થવાનું. તો તેમાં કચાશ કે આળસ ન કરશો.

આવતીકાલે પાલીતાણા. ૨-૩ દિન બાદ નીકળીને હું ડેમ થઇ કદંબગીરી તીર્થે ૧ માસ માટે સ્થિરતા કરીશ.

સૌને શાતા પૂછશો. કામકાજ જણાવશો.

પરમ વાત્સલ્યમયી પ.પૂ. પ્રવર્તિની શ્રી વિનીતાશ્રીજી મ.સા. તરફથી

જ્ઞાન પિપાસુ કિરણયશાશ્રીજી,

તા. ૨૪-૯-૯૭

અનુવંદના સુખશાતાપૂર્વક,

મારી નિશ્રામાં રહીને લગાતાર ચાર વર્ષ સુધી રાત-દિવસ; તનતોડ મહેનત કરીને તેમજ ક્ષુધા-તરસ, ઊંઘ-આરામ ગૌણ કરીને; સાથે સાથે અનેક નાની મોટી તપશ્ચર્યા નિરંતર કરતા રહીને જ્ઞાન મેળવ્યું અને પી.એચ.ડી.ની ડીગ્રી મેળવી તેનો મને આનંદ છે.

આ જ્ઞાનની, ઉપાસનાની હું ખૂબ ખૂબ અનુમોદના કરું છું શાસનના કામ કરીને ગુરૂ મહારાજના નામને રોશન બનાવજો. એ જ મારી એકની એક હાર્દિક - અંત:કરણની આશિષ.

-પ્રવર્તિની વિનિતાશ્રીજી મ.સા.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हार्दिक समर्पण

अपनी रैलि के अरमानों का अर्घ्य धरना चाहती हूँ

श्रद्धा-भक्ति से सजी बीसवीं इक्कीसवीं शताब्दी की बेलाएँ

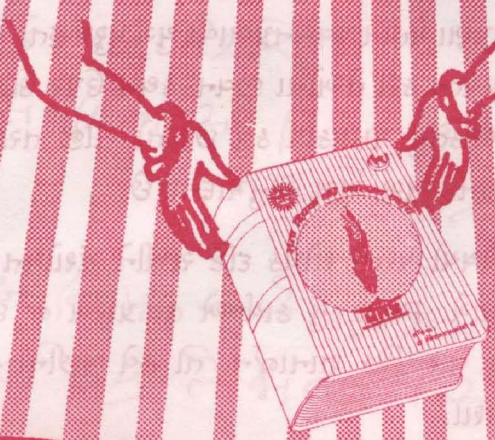

विश्व
विरल विभूति
युगप्रधान
संविज्ञ आद्याचार्य
प.पू. दादा गुरुदेवके
वाङ्मय-विषयक
संशोधन लक्षित
महानिबन्ध के
हार्दिक प्रेरणादाता
इन
सूरि पुंगव
द्वय
के

* श्री आत्म-वल्लभ - समुद्र सूरीश्वरजी म.सा. की पट्ट परम्परा के समर्थ एवं विशिष्ट संवाहक
* सामाजिक गगनांचल के तेजस्वी तारक
* जन-जन के श्रद्धा केन्द्र
* धार्मिक क्षितिजांचलों के सक्षम सुयोग्य नेता
* परमार क्षत्रियोद्धारक चारित्र चूडामणि
* जैन दिवाकर, शिशुसम सरल
* वात्सल्य वारिधे परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर

श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म.सा.

* ज्ञानार्जनके संजोये हुए मेरे अनेक स्वप्नों के उजागर कर्ता;
* संशोधन क्षेत्रमें पर्दापण हेतु अपूर्व एवं अमूल्य परामर्शदाता
* अध्यात्म ज्ञान-कंवल को विकस्वर करनेवाले उदयाचल के रक्तिम रविराज
* सर्व धर्म समन्वयी
* अध्यात्म योगीराज एवं
* आत्मानंदी अनुभवसे अलौकिक अध्यात्म किरणों के जनक परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर

श्रीमद् विजय जनक चन्द्र सूरीश्वरजी म.सा.

कर कमलों में

डॉ. किरण यशाश्री जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

श्री आत्मानन्द द्वासप्तति में मालाबन्ध काव्य के टीकाकार ने एक अर्थ में लिखा है -

'दिग्जेता योगाभोगानुगामी जीयात् ।'

-'दिशाओं और विदिशाओं में मुक्ति के आनन्द को देने वाले, जैनधर्मकी शिक्षा को फैलाने वाले, पर्वतों की तरह अटल निश्चय रखने वाले, अतएव धर्मशास्त्रों के बताए हुए मार्ग से पदमात्र भी न टलने वाले, मोक्षमार्ग की विद्या के रंग में अच्छी तरह रंगे हुए तथा मोक्षमार्ग में आने वाली बाधाओं पर विजय पाने वाले, अपने जीवन सुधारकों से भी स्तुति किए हुए.....मुक्तिक्षेत्र की चिन्ता को मिटाने वाले ब्रह्मवर्चस्वी श्री विजयानन्द सूरीजी विजय प्राप्त करें ।'

मानव एक चिन्तनशील प्राणी है अत: विविध राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तकों, लेखकों, कवियों तथा विद्वान आचार्यों ने अपने चिन्तन-मनन व विवेक से आचार्य प्रवर श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराजके विराट् व्यक्तित्व व कृतित्व का मूल्यांकन अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है तथापि ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्यप्रवर का तथा उनके कार्योंका वर्णन सरल व सहज नहीं है । वास्तविकता यह है पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का चिन्तन अत्यन्त व्यापक था तथा उनके विवेचन की दृष्टि अत्यन्त पैनी और सूक्ष्म थी । उन्होंने विश्व के विभिन्न धर्म, दर्शन विचारधाराओं एवं महापुरुषों के जीवन को अनाग्रहवृत्ति से बौद्धिक कसौटी पर कसा और ''जैन तत्वादर्श'' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के मंगलाचरण में लिखा-

स्यात्कार मुद्रितानेक सदसद्भाववेदिनम् ।
प्रमाणरूपमव्यक्तं भगवंतमुपास्महे ।।

तत्कालीन भारत की राजनैतिक बागडोर अंग्रेजों के हाथ में थी । अज्ञानता के कारण जैन धर्म और संस्कृति का मौलिक स्वरूप सामान्यजन के समक्ष पूर्णत: स्पष्ट न था ऐसे में पूज्य आचार्य श्री जी ने निर्भय होकर अपना पक्ष प्रस्तुत किया । महर्षि दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्दजी उसी समय के विचारक चिन्तक व मनीषी थे । दोनों ने एक स्वर से श्री आत्माराम जी महाराज के प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा ओजस्विता को स्वीकारा था । स्वामी विवेकानन्दजी ने शिकागो से अपने मित्रों को लिखे एक पत्र में लिखा है..... जैनधर्म के प्रतिनिधि के रूप में श्री वीरचन्द राघवजी गांधी ने सभामें अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से दिए गए प्रवचन से मुझे व उपस्थित सभी धार्मिक प्रतिनिधियों को प्रभावित किया: सभी उनकी शान्त-शीतल वाणी से चमत्कृत है । मैं तो बार-बार उस गुरु की प्रशंसा कर मस्तक झुकाता हूँ जिन्होंने ऐसा विद्वान् शिष्य तैयार कर यहाँ भेजा तथा जैनधर्मको विश्वमंच पर प्रतिष्ठित किया.....।''

ऐसे पूज्य आचार्यप्रवर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विदुषी साध्वी श्री किरणयशा श्रीजी महाराज ने म.स. विश्वविद्यालय बड़ौदा से पी. एच. डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है । सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध नौ पर्वो मे विभक्त किया गया है । साध्वीजीने बड़े ही विनम्र भाव से इस ग्रन्थ के विषयमें अपना अभिप्राय स्पष्ट किया है -

''--- अक्षुण्ण और उज्ज्वल कीर्तिकलेवरधारी, वीर शासन के अभिन्न अंग आचार्यप्रवर श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी म. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनुसन्धान के माध्यम से जैनधर्म के विभिन्न अंगो को प्रदर्शित करके सूरीश्वर जी के उत्कृष्ट योगदानरूप उनके उपकारों का स्मरण करते-करवाते आपके ऋण से उऋण होने का क्षुल्लक प्रयत्न मात्र किया है ।''

लेखिका साध्वीजी का उपरोक्त आत्मकथा उनके विनयभाव को प्रकट करता है । विनय विद्या की प्रथम सीढी है । विनयपूर्वक ग्रहण की गई विद्या के विषय में बृहत्कल्पभाष्य में कहा है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विणयाहीया विज्जा देंति फलं इह परे य लोगम्मि ।
(बृह. भा. ५२०३)

- विनयपूर्वक ग्रहण की गई विद्या लोक-परलोक सर्वत्र फलवती होती है ।

साध्वी जी ने विशाल शोध प्रबन्ध की रचना में चारित्रचूड़ामणि, परमारक्षत्रियोद्धारक परम पूज्य गच्छाधिपति जैनाचार्य श्रीमद् विजयइन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी महाराज तथा सर्वधर्मसमन्वयी अध्यात्मयोगी प.पू. आचार्यप्रवर श्रीमद् विजय जनकचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज के आशीर्वाद को सम्बल माना है, यह साध्वी जी की विनम्रता का प्रतीक है । शोध प्रबन्ध का अर्थ ही है कि विषय का सर्वतोभावेन मूल्यांकन कर मौलिक व नवीन अनुसन्धान प्रस्तुत किया जाएँ । इस ग्रन्थ में पदे-पदे मौलिकता, विषय की गम्भीरता तथा नूतन निरूपण प्रकट होता है । द्वितीय पर्व में श्री आत्मारामजी महाराज का जीवन तथ्य प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने लिखा है -

''सत्य के गवेषक, सत्य के प्ररूपक, सत्य के प्रचारक, सत्य के विचारी - आचारी - प्रचारी एवं सत्य के संगी-साथी, अमर-आत्मा-जिनका अन्तरंग सत्य से लबालब भरा था तो बहिरंग व्यक्तित्व के परिवेश में सत्य के ही सुर प्रवाहित थे; सत्य की सुरीली लय पर सत्य का नर्तन था । ऐसे सत्य की ज्वलंत जयोतिर्मय विभूति-जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द---- ।''

प्रस्तुत ग्रन्थ में न केवल भाषा सौष्ठव स्पृहणीय है अपितु प्रसंगानुरूप भावाभिव्यक्ति भी सहज तथा शिष्ट है । अनुसन्धानकर्त्री के भावों पर भक्ति की नैसर्गिक छाप है, स्पष्ट है कि साध्वी जी महाराज अपने पूज्य पूर्वज गुरुदेव का गुणानुवाद कर रही हैं । यदि श्री आत्मारामजी महाराज को मूल्यांकन की दृष्टि से देखें तो आप श्रीने तो साहित्य सष्टा के रूप में भी पर्याप्त ख्याति व सम्मान पाया है और व्यक्तित्व का यह पक्ष भी स्वयं में वन्दनीय व अनुकरणीय है । साहित्य सृजन का वर्णन करते हुए लेखिका ने लिखा है- ''उन दिनों ज्ञान-शून्य-भ्रान्त जनता के मनोमालिन्य की शुद्धि के लिए अपनी लेखिनी को मुखरित करते हुए मौखिक उपदेश की अपेक्षा बहुव्यापक एवं चिरस्थायी बनाने योग्य उपदेश को अक्षरदेहरूप ''नवतत्व संग्रह'' जैन तत्वादर्श'' (आदि) जैसे ग्रन्थों की रचना को प्रकाशित कराया ।''

जैनों के साधर्मिक वात्सल्य का विश्लेषण करते हुए ''जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'' ग्रन्थ में मार्गदर्शन करते हुए गुरुदेव लिखते हैं कि श्रावक का बेटा धनहीन या बेरोजगार हो तो उसे रोजगारी में लगाना या उसे जिस कार्य में सिद्दत हो - आवश्यकता हो - उसमें मदद करना सच्चा साधार्मिक वात्सल्य है ।'' इस स्थल पर लेखिका की बेबाक टिप्पणी अनुमोदनीय है -

''युगनिर्माण की महत्वपूर्ण कुंजी घुमाते हुए आपने सामाजिक एकता का ताला खोल दिया । ऐक्य में छिपी प्रचण्ड ताकत से पूरे समाज को अभिज्ञ किया ।'' कहना न होगा कि पूज्य गुरु वल्लभ को समाज सुधार, सामाजिक एकता तथा साधर्मिक वात्सल्य जैसे गुण अपने गुरुदेव से धरोहर के रूप में प्राप्त हुए थे ।

श्री आत्माराम जी महाराज के पद्य साहित्य का विवेचन करते हुए लेखिका साध्वीजी ने आचार्य मम्मट, भामह, पं. विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि भाषाविदों के साथ अन्य हिन्दी तथा आंग्ल भाषाविदों का उनकी मत्यनुसार काव्य की परिभाषा का जिक्र किया है किन्तु अन्त में निष्कर्ष के रूप में लेखिका द्वारा दी गई परिभाषा अत्यन्त सारगर्भित तथा सटीक है -

''मनुष्य की जिज्ञासा एवं आत्माभिव्यंजना की अदम्य इच्छा से मानव जीवन की विशद व्याख्यान्तर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य का रसात्मक-नैसर्गिक-हार्दिक निरूपण - जिसमें पाठक सांसारिक सर्व परिस्थितियों से ऊपर उठकर काव्य घटनाओं को आत्मसात् करके आत्मानुभूति पाता है; जब उसकी मनोदशा ब्रह्मसाक्षात्कार किए हुए योगी सदृश हो जाती है - वही काव्य है ।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेव के कविरूप का वर्णन करते हुए लिखा गया है - ''महाकवीश्वर श्री आत्मानन्दजी के काव्य भक्तिरस से लबालब भरे हैं क्योंकि वे भक्त पहले थे कवि बाद में। निर्मलभावजल भरपूर मानससर में ''आतम हंस'' मुक्ति-मौक्तिक का चारा चुगते हुए विहार कर रहा है।''

यहाँ पूज्य गुरुदेव द्वारा रची गई पंक्तियाँ उल्लेखनीय है -

अनहद नाद बजे घट अन्दर, तुंही तुंही तान उच्चारे रे
तेरो ही नाम रटत हुं निशदिन आलंबन छारे रे
शरण पड्ये को पार उतारो ऐसो विरुद तिहारे रे.. । श्री शंखेश्वर... ।

गुरुदेव श्री का समस्त काव्य साहित्य गेय है। उसमें संगीतात्मकता है, लयात्मकता है, रागात्मकता है तथा भावप्रवणता भी है। आपका समग्र साहित्य गद्य, पद्य; गीत-पद-मुक्तक स्तवन आदि सब जैन साहित्य की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण साहित्य जगत् की बहुमूल्य धरोहर है।

विदुषी साध्वीजी ने गुरुदेव की प्रतिभा को साहित्यिक जगत् में स्थापित करते हुए अद्भुत उपमाएँ दे डाली है -

''दिग्गज विद्वद्वर्य और अनुपम फनकार श्री आत्मानन्दजी म.सा. के संगीत में श्री हरिभद्र सूरीश्वर जी म.सा.का सत्याभियान, महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी म. सदृश दार्शनिकता एवं अनवरत पुरुषार्थ, श्री आनन्दघनजी म.का. अवधूत एवं परमात्म भक्तिकी मस्ती..... सन्त तुलसीदास जीका सम्पूर्ण समर्पण भाव श्री भारतेन्दुजी की तरह ध्येय के प्रति एकनिष्ठ लगन के सप्तसुरों का सन्धान अनुभूत होता है ... ।''

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नवयुगनिर्माता, पंजाबदेशोद्धारक, न्यायाम्भोनिधि आचार्यदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर जी महाराज के विराट् व्यक्तित्व का सांगोपांग वर्णन विवेचन अध्ययन तथा अवगाहन का प्रयास किया गया है एवं पदे-पदे अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोण रखा गया है। अपने जिस लक्ष्य को लेकर लेखिका - चली हैं उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। गुरुवल्लभ समुदाय के साधु-साध्वी ही नहीं अपितु सम्पूर्ण श्रमण श्रमणीवृन्द के लिए यह एक गर्व का विषय है। शोध प्रबन्ध के नायक तो अज्ञान तिमिर में भटकते हुए मानव समाज के भास्कर सम तेजस्वी है। सत्य की साधना करने वाले वे महान साधक यद्यपि स्वयं सिद्ध थे तदपि इस ऐतिहासिक प्रामाणिक पुराण से आगत पीढ़ियाँ पूज्य आचार्यप्रवर विषयक ज्ञान को सांगोपांग रूपेण प्राप्त कर सकेगी इसका मुझे विश्वास व हर्ष है।

- विजय नित्यानंद सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

(अंतर दर्पण दर्शन)

महा**'समुद्र'** सलीलकी थाह प्राप्त करना-**'रत्नाकर'**की गहनताका ताग लेना, शायद मानवके लिए साधारण-सी बात है, बनिस्बत दुष्करातिदुष्कर **ज्ञानांभोनिधि**के महार्घ रत्नांबारकी संपूर्ण रूपेण उपलब्धिः जिसे अर्जित किया जा सकता है, एकमात्र **'इन्द्र'** तुल्य महामहिमके कृपावंत सहयोग युक्त अथक परिश्रम और अनवरत प्रयास से । अतः **'विनीत' 'जगत'को 'नित्यानंद'का** आस्वाद करवानेवाली उस **'वल्लभ'** वस्तुकी प्राप्त्यानंतर होनेवाला **'आत्मानंद'**का अनुभव ही अलौकिक अध्यात्म **'किरणों'**का **'जनक'** माना जा सकता है।

संयम जीवन पूर्व ज्ञानार्जनके संजोये हुए स्वप्नोंको उजागरकर्ता–साधुजीवनमें संशोधन कार्यक्षेत्रमें पदार्पण करके आत्मज्ञान कंवलको विकस्वर करवानेवाला, अमूल्य परामर्श प्राप्त हुआ–सर्वधर्म समन्वयी, प्रेरणामूर्ति प.पू.**श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.**से; और न्यायांभोनिधि, संविज्ञ मार्गीय आद्याचार्य **श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराजजीकी** स्वर्गारोहण शताब्दी निमित्त उन्हींके व्यक्तित्व एवं कृतित्व विषयक संशोधनकी दिशा प्रदान करके इस कार्यक्षेत्रमें अग्रसर होनेमें प्रोत्साहित किया, परमार श्रत्रियोद्धारक, चारित्र चूडामणि **श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.ने.** ।

परिचय :---

उदयाचल पर अपनी आशालताकी लालिमा बिखेरकर जन-मनको प्रोत्साहित करनेवाली प्रत्येक उषा और उम्मीदोंका थाल भरने हेतु अस्ताचलकी गोदमें समा जानेवाली प्रत्येक संध्या समयकी निरंतर रफ्तारमें गतिशील है । ऐसे अनवरत काल प्रवाहकी बहती धारामें न बहनेवाले, चलती गाड़ी पर न चढ़नेवाले, हवाई पंखोंकी उड़ान न भरनेवाले–अपने अनूठे व्यक्तित्व, महत् प्रभाव–प्रतिभा और प्रतापके बल पर सदियों पर्यंत जन-मानसको प्रेरित करनेवाले अपूर्व–अनुपम, आचार-विचार-वाणीसे असाधारण स्थायी मान–स्तंभ स्थापित करनेवाले युगप्रधान-महापुरुष न्यायाम्भोनिधि-संविज्ञ आद्याचार्य **श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.की स्वर्गारोहण शताब्दी समारोहके** त्रिवर्षीय विविध आयोजनोंमें उन महा–प्राज्ञ, दिग्गज विद्वानके साहित्यकी परिमार्जना रूप शुद्ध हिन्दीमें उसका अनुवाद-समालोचना-संशोधनादिको समाविष्ट किया गया था । वर्तमान गच्छाधिपति गुरुदेव **श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.ने** संशोधन कार्य (शोध-प्रबन्ध)के लिए मुझे अनुप्राणित करके प्रोत्साहित किया । परिणामतः दस वर्ष पूर्व **श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.** द्वारा वपन की गई मेरी अंतरंग भावनाको अंकुरित होनेका अवसर अनायास प्राप्त होनेसे मनमयूर भावविभोर बन कर नर्तन करने लगा और कार्यारम्भ हुआ हम सबकी छत्रछाया–**प्रवर्तिनी साध्वीश्री विनीता श्रीजी म.सा.**की पुनित निश्रामें ।

व्यक्तित्व परिवेश :---विशिष्ट वाङ्मयसे प्रस्फुटित वैचारिक वलयोंसे मुखरित होनेवाला मननीय-मीमांसक-समलोचक-दार्शनिक-सैद्धान्तिक-विधेयात्मक-अकाट्य तर्क पंक्तियोंसे वादी मुखभंजक-समस्त मानव समाज हितकांक्षी स्वरूपः काव्यसे प्रवाहित परमात्मा प्रति सम्पूर्ण समर्पित एवं मुक्ति प्राप्तिकी तड़पसे छटपटाता भक्त हृदय-अमोघ काव्य कौशल युक्त सूत्रात्मक समर्थ उपदेष्टा रूप और आत्मानंदकी अनुभूतिके द्योतक, सर्वोत्कृष्ट सत्य गवेषक, सत्य प्ररूपक, सत्य प्रसारक जीवनशैलीके निर्मल निर्झर सदृश प्रवाहित असाधारण-अद्वितीय-उदारचरित महानुभावके व्यक्तित्व एवं कृतित्वको आन्वेक्षिकी दृष्टिसे टटोलनेका प्रसंग प्राप्त होनेसे मैं अपने आपको सौभाग्यशालीनी मानती हूँ ।

आपके उत्तुंग शिखर सदृश साहित्यका अवगाहन करते हुए, मैंने अपने आपको वामन अनुभूत किया । कहाँ सागर समान विशाल श्रुताभ्यासी, सिंधु सदृश गंभीर चिंतक, रत्नाकर तुल्य ओजस्वी-बहुमुखी प्रतिभाके प्रतिमान और कहाँ मैं ? फिरभी आत्माको आनंद प्रदाता–सदाबहार विकस्वर पुष्प सदृश मंद-मंद मुस्कराते और दिव्याशिष बरसाते हुए गुरुदेव श्री आत्मानंदजी म.की प्रेरक प्रतिमाने मानो मेरे अंतस्तलको नवपल्लवित किया । मैंने हौसला पाया और उनकी तरह दृढ़चित्त बनकर कार्यको सम्पन्न किया। जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके साहित्य पर्यालोचनके इस महत्वपूर्ण कार्यको उनकी ही बदौलत परिपूर्णता प्राप्त हुई ।

कृतित्व परिवेश :--- साम्प्रतकालमें विशेषतः शिक्षित, बौद्धिक, गंभीरताशून्य, सतही विचारधाराधारक वर्गमें **जैन दर्शनके सिद्धान्त**–उत्तमोत्तम तत्त्वत्रयी और सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रयी स्वरूप–**जैनधर्मके क्रियानुष्ठान**-जिनभक्ति-दर्शन-पूजा, श्रावक-साधुचर्यादि-**जैन समाजके इतिवृत्त**–आर्हत् धर्मकी शाश्वतता/प्रारम्भ-प्रचलन; संसारकी अविच्छित्त/सृष्टि सर्जन; अतीत-अनागत-वर्तमान तीर्थंकरोंका स्वरूप–**जैन साधु-साध्वी** या संत महापुरुषों एवं सती नारियोंकी उत्तम जीवन गाथायें–**जैन आचार, विचार, विधियाँ**–(अंधेर नगरीके गंडू राजा सदृश) सर्वधर्म एक समानताकी मान्यता, धर्म-कर्मबंध-निर्जरा, पाप-पुण्य, संसार-सिद्धत्व-प्राप्ति आदि अनेकानेक विषयक भ्रामक खयालात, गलत फहमियाँ और आधुनिक फैशन परस्तीको अपनी प्रवाहित जिंदगानीमें देखते-सुनते और अनुभव करते हुए अंतरमें एक कसक उठती थी, उन महानुभावोंके अज्ञानसे हृदयमें उनके प्रति एक करुणाकी लहर फैल जाती थी, अतः इन सभीके स्पष्ट, स्वस्थ, सत्य-यथास्थित स्वरूपको उद्घाटित करके सद्धर्म अंगीकरणके इच्छुक अधिकारी और धर्मतत्व जिज्ञासुओंको सद्बोध प्रदान हेतु मन मचल रहा था ।

इन अभिलाषाओंको साकार करनेका अवसर, मानव जन्मके उच्चतम लक्ष्य संपादन हेतु योगाधिकारी योद्धा बनकर शास्त्र प्राविण्य शस्त्र द्वारा, समाज समरांगणमें कर्म-शत्रु विजेता और धार्मिक हार्दकी विजय वैजयन्ती फहरानेवाले शुभात्मा, जिन शासन रक्षक, आर्हत् शासन शृंगार आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.की स्वर्गारोहण शताब्दी समारोह निमित्त इस शोध-प्रबन्धने प्रदान किया । इन सर्वका शब्द देह रूप अवतरण करना, हाथमें धरतीको धारण करने या केवल निज बाहुबलसे ही स्वयंभू-रमण समुद्र तैरने सदृश अत्यधिक दुष्कर कार्य है, क्योंकि महापुरुषके अभिमतसे सद्भूत गुण वर्णनमें कभी भी किसी व्यक्ति द्वारा अतिशयोक्ति हो ही नहीं सकती है, सर्वदा अल्पोक्ति ही प्रदर्शित हो सकती है–अथवा अगाध-अनंत ज्ञान राशिको वीतराग–सर्वज्ञ परमात्मा भी देह (वचन) योग और आयु मर्यादाके कारण पूर्णरूपेण उद्घाटित करनेके लिए असहाय है, जैसे गागरसे सागर-सलीलका प्रमाण निश्चित करना असम्भव-सा है । अतः यहाँ बालचेष्टा रूप उन सर्वकी एक सामान्य झलक ही आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यके पर्यालोचन रूप और उनके ही साहित्यके सहयोगसे दर्शित करवायी जा सकी है ।

मेरे नम्र मंतव्यानुसार किसी भी विवेच्य विषय वस्तुके संबंधमें तद्विषयक निष्णातका मंतव्य सर्वोपरि-श्रेष्ठतम और अंतिम, ग्राह्य योग्य माना जा सकता है; ठीक उसी प्रकार धर्म विषयक किसी भी विवेचनाका निर्णायक ग्राह्यत्व उस धर्मके तटस्थ-निष्पक्ष धर्माधिकारीके गवेषणापूर्ण सत्यासत्य और तथ्यातथ्य निरूपणमें ही समाहित होता है; जो हमें रोचक-सार्थक एवं ज्ञानगम्य विचार-वाणी-वर्तनकी संतुलन जीवनधाराके स्वामी, भव्य जीवोंके प्रतिबोधक श्री आत्मानंदजी म.के तत्कालीन एवं वर्तमानकालीन अनेक उलझी गुत्थियोंको सुलझानेवाले अनूठे परामर्श-युक्त विशद वाङ्मयसे संप्राप्त होता है । अतः गुरुदेव श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.की प्रेरणा झेलकर श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यके आकलनके साथ ही साथ अपने अंतरकी आरजूको इस शोध प्रबन्धमें प्रतिपादित करनेका अवसर उपलब्ध होनेसे मुझे धन्यताका अनुभव हो रहा है ।

शोध प्रबन्धका प्रारूप :--- इस शोध प्रबन्धको अखंड़ अंक–नव–पर्वोमें संकलित करनेका आयास किया गया है, जिसका अभिप्रेत भी अक्षुण्ण और उज्ज्वल कीर्तिकलेवरधारी, वीर-शासनके अभिन्न अंग आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.के व्यक्तित्व एवं कृतित्वके अनुसंधानके माध्यमसे जैनधर्मके विभिन्न अंगोंको प्रदर्शित करके सुरीश्वरजीके उत्कृष्ट योगदान रूप उनके उपकारोंका स्मरण करते-करवाते आपके ऋण से उऋण होनेका क्षुल्लक प्रयत्न मात्र किया है ।

प्रथम पर्वमें जैनधर्मकी परिभाषा, जैनधर्मकी गुणलक्षित विविध पर्यायवाची संज्ञायें और आगमादिके प्रमाणादिसे उनकी सार्थकता एवं पुष्टि–साम्प्रतकालीन शंका-कुशंकायें या भ्रान्ति-विभ्रान्तियोंका नीरसन और सात्त्विक सत्य सिद्धान्तोंका प्रणयन–अनादिकालीन अनंत चौबीसीयोंको निर्दिष्ट करते हुए वर्तमान चौबीसीके तीर्थंकरोंके संक्षिप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन परिचय एवं भ.महावीरकी पट्ट परंपराके श्रीसुधर्मास्वामी आदि अनेकानेक गुणाढ्य सूरिपुंगवोंके क्रमिक परिचय देते हुए उस परंपरामें तिहत्तरवें स्थान पर अपने आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.का स्थान निश्चित किया गया है ।

द्वितीय पर्वमें सत्यकी ज्वलंत ज्योत या सत्यनिष्ठाकी प्रतिमूर्तिरूप उन महामहिम विलक्षण व्यक्तित्वके संकायोंको–जन्मजात और अर्जित किये गुण-स्वभाव-लक्षण और विश्वस्तरीय, स्वपर कल्याणकारी, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, विभिन्न कलात्मक व्यक्तित्व एवं प्रवचन प्रभावक, अजेय वादीत्व, अप्रतीम लोकप्रियता तथा अनेक आत्मिक, आध्यात्मिक गुण-लब्धि-सिद्धियाँ प्रापकादि गुणोंकी गागरको अंतर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्याधारित संचित करके उन अक्षुण्ण-अमूल्य जीवन मूल्योंको संक्षेपतः अवतारित किया है । तो तृतीय पर्वमें आचार्यश्रीके जीवनतथ्योंका सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्रके अवलम्बनसे, पूर्व-जन्मोपार्जित कर्मसे स्थापित करनेका प्रयत्न किया गया है । अर्थात् पूर्व जन्मकृत कर्माधारित घटनाओंका जीवनमें निश्चित क्रमसे, निश्चित कालमें, निश्चित प्रमाणमें, निश्चित रूपसे अवतरण होता है जिसे ज्योतिष शास्त्रके सहयोगसे ज्ञात करके पूर्व प्रबन्धित योजनाओंके बल पर, उन अनिच्छनीय घटनाओंका प्रतिषेध करते हुए जीवनको कल्याणकारी व सौंदर्यशाली बना सकते हैं ।

ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिकादिके परिप्रेक्ष्यमें 'लाखोमें एक' के अभिव्यंजक, उदारचरित, उन्नीसवीं शतीके अखंड़ तेजस्वी ज्योतिर्धर-श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीके इस पार्थिव प्रकाश पुंजके निरीक्षणान्तर प्ररूपणाका स्रोत उस अतीव महत्त्वपूर्ण फलककी ओर मोड़ पाता है, जहाँ आपकी प्रौढ़ साहित्यिक रचनाओंका सरसरी दृष्टिसे सिंहावलोकन करते-करते आपके विशाल साहित्य अध्येता, गहन चिंतक, मौलिक मीमांसक, शिष्ट संस्कृतिके अभिभावक, सामान्य जीवन प्रसंगोंमें भी आध्यात्मिक परामर्शके अनुसंधाता, अजस्र एवं अकाट्य तर्कशक्ति सम्पन्न अजेयवादी, न्यायाम्भोनिधि, धुरंधर विद्वान, तत्कालीन धीमान् सुज्ञजनोंके पृष्टव्य-साहित्य मनीषी, भगवद् भक्त हृदयी, जन्मजात, नैसर्गिक कवि-कौशल एवं कलाप्राविण्य आदि रूपोंका विश्लेषणात्मक दिग्दर्शन करवाया गया है ।

सर्व दर्शनों एवं सर्व प्रचलित धर्मोंके बाह्याभ्यंतर स्वरूपके एक एक विषयको विविध दृष्टिबिंदुओंसे स्याद्वाद और अनेकान्तवादकी निष्पक्ष तुला पर, पैनी दृष्टिसे, दुर्द्धर्ष परिश्रम साध्य, तटस्थ परिक्षण करनेमें ही अपने स्व और सर्वको समर्पितकर्ता और उस शुद्ध स्वर्णिम साहित्यको सरल फिर भी प्रभावोत्पादक, सुगठित एवं साहित्यिक सजावटसे सुशोभित, अनूठी शैलीमें प्रस्तुतकर्ता, श्रेष्ठ समालोचक व प्रमाणिक प्रतिपादक, जैनधर्मके विश्वस्तरीय प्रसारक साहित्यविद् आचार्य प्रवरश्रीके इस असाधारण-विलक्षण साहित्यके पर्यालोचनको पर्व चतुर्थसे अष्टममें समाहित किया है । जिनमें चतुर्थमें गद्य-पद्य कृतियोंके विषय वस्तुका परिचय, पंचममें गद्य साहित्य एवं षष्ठममें पद्य साहित्यकी समालोचना, सप्तममें उसका विश्वस्तरीय प्रभाव और अष्टममें पूर्वाचार्यों एवं समकालीन साहित्यविदोंके प्रभाव और तल्यातुल्यता समाविष्ट की गई है । अंतिम पर्वमें इन सभीका संकलन-उपसंहार रूपमें प्रणीत किया गया है ।

ऋण स्वीकार एवं धन्यवाद :---

इस महत्त्वपूर्ण-महान कार्यकी सिद्धिमें अनेक कार्यकर्ताओंकी कार्यशक्तियाँ एवं हार्दिक निष्ठापूर्ण सहयोग उल्लेखनीय है, जिनकी बिना सहायता इसकी परिसमाप्ति होना शायद ही संभव बन पाता । जिनके कृपावंत ऋणकी बोझिलता भी जीवनके परम आह्लाद रूप अनुभूत होती है,–ऐसे परमोपकारी आचार्यद्वय–संशोधन क्षेत्रमें पदार्पणके लिए सर्वप्रथम प्रेरणास्रोत, सरलाश्रयी श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा. और श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.की स्वर्गारोहण शताब्दी निमित्त शोधकार्यकी अग्रीमताको लक्ष्य करके शोध प्रबन्धके 'विषय'को सूचितकर्ता श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.–के अंतःकरणके प्रेरणा-पियूषवर्षी आशीर्वाद एवं बारबार प्रोत्साहन देकर किये गये परमोपकार, आजीवन मेरी स्मृतिके सीमा प्रतीक–स्मारक रूप बने रहेंगें। साथ ही साथ अन्य जिन आचार्य भगवंतों एवं मुनि भगवंतोंकी अमीदृष्टि भी इसे अभिसिंचित करती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रही हैं–प्रमुख रूपसे न्याय विषयक मार्गदर्शन प्रदाता श्रीमद्विजय राजयश सूरि म.सा., आगमादिके संदर्भ विषयक मार्गदर्शक श्रीमद्विजय शीलचंद्र सूरि म.सा., काव्य विषयक मार्गदर्शक उपा.श्री यशोभद्र विजयजी म.सा.योगीराज श्री चंद्रोदय विजयजी म.सा. आदिके ऋणको कैसे चूका सकती हूँ ? इस शोधकार्यमें जिनकी पावन उष्मापूर्ण निश्रा प्राप्त हुई वे परम श्रद्धेय प्रवर्तिनी श्री विनिताश्रीजी म.सा., एवं इस शोध प्रबन्धके लिए अनुज्ञा प्रदात्री परमोपकारी गुरुणी श्री यशकीर्तिश्रीजीम.सा., और अन्य सभी बड़े-छोटे सहवर्तिनी साध्वीजी महाराजोंके असीम वात्सल्य और स्नेहपूर्ण सर्वांगीण सहयोगको कभी भी भूलाया नहीं जा सकता; तो अपने अक्षर देहसे-परोक्ष प्रोत्साहन प्रदात्री श्रीसुवर्ण प्रभाश्रीजीम. श्रीभद्रयशाश्रीजी म., श्री राजयशाश्रीजी म., श्री सौम्य प्रभाश्रीजी म., श्री तीर्थरत्ना श्रीजीम. आदिको भी कैसे भूला सकती हूँ ? गुरुकुलके इन सर्व हितैषी जनोंके निःस्वार्थभावी, उदारदिल, अनुग्रहको मूकतासे अंतःकरण पूर्वक अंगीकृत करते हुए उनके पुनित पादारविंदमें नतमस्तक होती हूँ ।

इस शोध प्रबन्धमें प्राण भरनेवाली-सरलाश्रयी, प्रमुख सहायिका-सर्वदा, सर्व प्रकारके सहयोगमें तत्पर, उदारचित्त राहबर, प्रबुद्ध प्रेरणादात्री डॉ.कु.प्रेमलताजी बाफना (रीड़र, हिन्दी विभाग, कलासंकाय, म.स.विश्वविद्यालय-बड़ौदा)के कुशल दिग्दर्शन एवं सूक्ष्मैक्षिक निर्देशनान्तर्गत यह शोधकार्य अभियान अति सुचारुपूर्ण एवं सुव्यवस्थित रूपसे गंतव्यको प्राप्त कर सका है । अतः उनके मुखरित ऋणको भी हार्दिक धन्यवादके साथ स्वीकार करती हूँ; तो गौण रूपसे सहयोगी बननेवाले डॉ.अरुणोदय जानी (जिन्होंने तर्क संग्रहादि न्याय विषयक अध्यापनके साथ आचार्य प्रवरश्रीके ग्रन्थोंमें उनके प्रयोगोंको स्पष्ट करनेमें उदात्त योगदान दिया); मेरे भूतपूर्व सहाध्यायी डॉ. रजनीकान्त शाह (जिन्होंने अनेक बार साहित्यिक परामर्श दिये); (मेरे गृहस्थ जीवनके)भाईश्री दिनेश-नयनाबेन, गौतम एवं बहन जयदेवीके योगदानको भी याद कर लेना अनुचित न होगा। इस शोध प्रबन्धके चित्रकला कार्यमें योग प्रदात्री कु.जयदेवी एवं ज्योतिष विषयक परिपूर्ण मार्गदर्शक-दिग्दर्शक-निर्देशक तथा कॉम्प्युटर टाइपिंग और प्रुफशोधनादि अनेक प्रकारसे हार्दिक लागणी युक्त एकनिष्ठ सहायक श्री गौतमकुमारकी सहायतासे इस शोध प्रबन्धमें वैविध्यता एवं निखार लाया जा सका है, अतः उनका अंतःकरणसे हार्दिक धन्यवाद करती हूँ ।

इस शोध प्रबन्धमें उपयुक्त बहुविध-बहुमूल्य-विशद वाङ्मय-समसामायिक पत्रिकायें, शताब्दी ग्रन्थ, अन्य शोध प्रबन्ध-ग्रन्थ, विभिन्न विषयक भिन्नभिन्न भाषाभाषी साहित्यिक रचनाओंके प्रणेता महामनीषियों, प्राज्ञपुरुषों एवं विलक्षण व्यक्तित्वधारियोंके परमोपकारको दृष्टिसमक्ष रखते हुए उनके पावन चरण सरोजोमें श्रद्धावनत होती हूँ तो पूर्वाचार्योंके विलक्षण वाङ्मय एवं आगमिक साहित्यके अवलंबनके लिए उन सभी उदात्त चरित्र प्रातिभ पुरुषोंके ऋणको कैसे चूका सकती हूँ ? केवल नतमस्तक होकर अभिवादन ही करती हूँ और उस अमूल्य निधिको संचितकर्ता-संग्राहक श्री वल्लभ स्मारक शिक्षण निधि, दिल्ही; श्री आत्मानंद जैन सभा-भावननगर; श्री आत्मानंद जैन सभा-अंबाला; जंबूसर ज्ञान भंड़ार; श्री हंस विजयजी ज्ञानमंदिर-बड़ौदा; श्री महावीर जैन विद्यालय बड़ौदा, श्री हंसा महेता लायब्रेरी, ओरिएन्टल लायब्रेरी; अहमदाबाद-बॉम्बे-खंभातादि अनेक ज्ञानभंडार एवं पुस्तकालयोंसे संदर्भ ग्रन्थ-सहायक पुस्तकें प्राप्त करवानेवाले उनके सभी व्यवस्थापक महानुभावोंके उपकारको भी याद करना अपना कर्तव्य समझती हूँ । इसके अतिरिक्त जिन्होंने इस शोध प्रबन्धके टाइपिंग हेतु आर्थिक सहयोग दिया–श्री महिला जैन उपाश्रय, जानीशेरी, बड़ौदाके प्रमुख कार्यकर्त्री श्रीमति चंपाबेन, श्रीमति सुशीलाबेन, श्रीमति सुधाबेन आदि; टाईपराइटर, 'श्री कॉपी सेन्टर' वाले श्री विपुलभाई और अन्य सहयोगी बिपिनभाई आदि सभीके प्रति भी धन्यवाद प्रेषित करती हूँ ।

अंततः इस शोध प्रबन्धके नामी-अनामी, प्रत्यक्ष-परोक्ष, जाने-अनजाने सभी सहकारी-सहयोगी,–जिन्होंने सबल संबल बनकर मेरी भावनैयाको किनारा प्राप्त करवाया है उन सभीके मुखरित ऋणको मूकपने ग्रहण करते हुए आभार प्रकट करती हूँ ।

मेरी अंतराभिलाषा :–जनजनके हृदयसिंहासन स्थित सम्राट, व्यक्ति केन्द्रित फिर भी समष्टि व्याप्त,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोमरोमसे रत्नत्रयीमें सराबोर, दीपक या दिवाकरातीत प्रभावान, चंदन या चंद्रातीत शीतल; नरेन्द्रों और देवेन्द्रोंकी सर्व सिद्धि-समृद्धिको निस्तेज बनानेवाले मंगलमय-श्रेष्ठतम-शुद्धाचरणके स्वामी, युगानुरूप चिंतन चिरागका प्रकाश वाणीसे विस्तीर्णकर्ता, जनसमाजके प्रेरक-जैन समाजकी चेतनाको संचरित करनेवाले उस युगपुरुषकी जीवन किताब (व्यक्तित्व)के प्रत्येक पृष्ठ पर प्रगतिके प्रतीक अंकित है । उन प्रत्येक अंकनको उजागर करनेका यथामति-यथशक्य प्रयास करनेके हेतु है मात्र **(१)** स्वर्गारोहण शताब्दी वर्ष निमित्त उनके प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करके स्वको धन्य एवं सर्वको धीमंत बनाना; **(२)** धीमानोंके पृष्टव्य उन प्रातिभ प्राज्ञकी प्रज्ञाके पुष्पोंकी अछूती सुवासको वितरित करके विश्वको वासित करना; **(३)** शैक्षणिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, आचरणादि विभिन्न घटकोंके अनुरूप उनके साहित्यालोचन द्वारा अध्येताओंको परितोष प्रदान करना; **(४)** अद्यतन शिक्षाप्राप्त अज्ञानियोंके सर्वांगीण सद्बोध संप्रेषण द्वारा उन्हें संबुद्ध बनाना; **(५)** महदंशसे साम्प्रत साधु समाजके तकरीबन दो तिहाई भागके साधु समुदायके सम्माननीय गुरुपद बिराजित उन गीतार्थ-गीर्वाण गुरु-राजकी शनैःशनैः लुप्त होती जा रही अक्षुण्ण स्मृतिको आधुनिक समाजके-साम्प्रत श्रीजैनसंघके अंतःस्तलकी गहराईसे उजागर करते हुए अवनि अंबरके तेजस्वी तारककी ज्योतिको दीप्र बनाना; **(६)** उनके समान चारित्र निर्माणमें प्रयत्न-शीलोंको पथ प्रदर्शित करना; **(७)** उनके प्राचीन फिर भी नित्य नूतन प्रतिमानोंसे प्रेरणा ग्रहण करके अधुना उनकी सर्व विध सेवाओंको कुसुमांजलि अर्पित करना ।

इसमें कहाँ तक कामियाबी हांसिल हुई है उसका परिमाण तो समय ही निश्चित करेगा । उनके विशद वाङ्मयके प्रत्येक संघटकका-प्रत्येक कृतिका विश्लेषण एक-एक स्वतंत्र ग्रन्थकी अपेक्षा रखता है; फिर भी केवल तीन वर्षके अहर्निश-अनवरत-उल्लासमय अध्यवसाय और एकनिष्ठ लगनसे, सर्वग्राही दृष्टिबिंदुके ध्येयको यथोचित रूपमें मूल्यांकित करके शोधप्रबन्धकी सम्पन्नताका परितोष अनुभव कर रही हूँ । अंततोगत्वा इस शोध प्रबन्धके प्रमाणित सत्य निरूपणमें श्रमसाध्य-यथामति यत्न करते हुए प्राप्तव्य सर्व सौंदर्य-सुरभि देव-गुरुकी कृपाके ही सुफल हैं; और छोटी-मोटी क्षतियोंके लिए मेरी अल्पज्ञ छद्मस्थता ही जिम्मेदार है । सुज्ञ परिखोंकी पर्यवेक्षिका दृष्टिके अनुरूप इसके निरीक्षणमें, अपनी छाद्मस्थिक अल्पज्ञता-ईषत्क्षमता-रंचमात्र दक्षताके सबब इस भगीरथ कार्यकी सम्पन्नतामें उन सर्वज्ञ-वीतरागके निर्मलवाणी निर्झरोंको यथायोग्य दिशा प्रदान करनेमें अन्यथा प्ररूपणा हुई हों; या केवलीभाषित आगम विरुद्ध अल्पांश प्रारूपका भी दर्शन हों; अथवा उन सद्धर्म संरक्षकके मंतव्यको यथातथ्य रूपमें निरूपित करनेमें असफलता झलकती हों उन सर्वके लिए सुज्ञानीसे त्रिविध त्रिविध क्षमा प्रार्थना–**"मिच्छामि दुक्कडं"** हैं। उदारमना इसे क्षमस्व मानकर क्षमा प्रदान करें। **इति शुभम्** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रासंगिक

इस शोध प्रबन्धके प्रकाशनार्थ चल रहे विचार विमर्श में यह अभिप्राय उभर आया कि इसे दो विभागमें प्रकाशित करवाया जाय। स्वयं मैंने भी महसूस किया कि, विषय निरूपण को लक्षित करते हुए, पठन सुविधा निमित्तइसे दो विभागमें प्रकाशित करना अधिक समीचीन होगा । अत: प्रथम चार पर्व - व्यक्तित्वका आलेखन व समस्त गद्य साहित्यान्तर्गत प्ररूपित विषयवस्तुका संक्षेपन -को प्रथम विभाग ''सत्य द्विपककी ज्वलन्त ज्योत'' द्वारा एवं अंतिम चार पर्व - कृतित्व अर्थात् श्रद्धेय आचार्य प्रवरश्रीके गद्य-पद्य वाङ्मयका विहंगावलोकन एवं अन्य विद्वद्वर्यो से तुलनात्मक समीक्षाको द्वितीय विभाग ''श्री विजयानंदजीके वाङ्मयका विहंगावलोकन'' द्वारा और अंतिम पर्व 'उपसंहार' को दोनों विभागमें समाविष्ट करके इस शोध प्रबन्धको दो विभागमें प्रकाशित करवाया जा रहा है।

किरणयशाश्रीजीम.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
	श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी के हस्ताक्षर श्रद्धेय गुरुवर्योंके आशीर्वचन प्रस्तावना - शांतिदूत श्रीमद्विजय नित्यानंद सूरीश्वरजी म.सा. प्राक्कथन (अंतर दर्पण दर्शन) डॉ. किरणयशाश्रीजी म. प्रासंगिक हार्दिक समर्पण	
पर्व-१.	**श्री आत्मानंदजी महाराजजीका गद्य साहित्य ——** मंगलाचरण - प्रस्ताविक - तत्कालीन परिस्थितियाँ विविध परिस्थिति अवलम्बित विविध रचना शैलीका परिचय - पूर्वाचार्योंके प्रति दृढ़ आस्था और एकनिष्ठ भक्ति - कृतियोंमें ऐतिहासिकता एवं निर्भीक सत्य प्ररूपणायें - भाषा शैली - भाषा प्रकाराधारित व्याकरणिक परिमार्जन - भाषा संरचना प्रविधि - भाषाकी सरलता - माधुर्य - प्रथम जैन हिन्दी लेखक -	१ से ३५
पर्व-२	**श्री आत्मानंदजी महाराजजीका पद्य साहित्य ——** मंगलाचरण- काव्यशैलियाँ - जैन काव्यशैली स्वरूप - कोमल, ऋजु, नम्र हृदय तंत्री के त्रिताल - कलात्मकता, भावात्मकता और दार्शनिकता के पुट निदर्शन - काव्यमें अभिव्यंजना शिल्प - अलंकार, प्रतीक विधान, बिम्बविधान, ध्वन्यात्मकता, छंद विधान, शब्द चयन, रसोपलब्धि राग-रागिनियोंसे नवाजित अमर काव्य देहका वैभविक वर्णन - निष्कर्ष	३६ से ८९
पर्व-३	**श्री आत्मानंदजी महाराजजी के साहित्यका विश्वस्तरीय प्रभाव ——** मंगलाचरण - प्रस्ताविक - आचार्यश्री का मिशन - जैन समाज एवं जगत पर ऋण - ऐतिहासिकता पर सर्चलाइट - निष्कर्ष.	९० से ११८
पर्व-४.	**श्री आत्मानंदजी महाराजजीकी महान विभूतियों से तुलना ——** मंगलाचरण - प्रस्ताविक - सूरि पुरंदर श्री हरिभद्रजी म.सा., महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.सा., अध्यात्म योगीश्री आनंदघानजी म.सा., श्री चिदानंदजी म.सा., श्री रामभक्त संत तुलसीदासजी, आर्यसमाज संस्थापक महर्षि दयानंदजी, अर्वाचीन साहित्यिक युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी से तुलना - पर्वकी परिसमाप्ति.	११९ से १५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्व–५. उपसंहार १५१ से १६६

परिशिष्ट

१. आधार ग्रन्थोंकी सूची
२. सहायक (संदर्भ) ग्रन्थों एवं लेख सूचि
३. पाद टिप्पण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं एँ नमः

पर्व प्रथम

श्री आत्मानंदजी महाराजजीका गद्य साहित्य

"षट्खंड़ भारतधरा वदनेऽच्युतस्य,
वर्षे यथा षड़ृतवश्च रसाः षडुर्व्याम्;
षड्दर्शनस्य मुनिराज ! तथा ह्यशेषं,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकास हेतु !"[1]

प्रास्ताविक–सहस्त्रों वर्षोंके भारतीय जनजीवनके नैतिक-धार्मिक-आर्थिक-सामाजिक-साहित्यिक-राजनैतिक और ऐतिहासिक–प्रत्येक क्षेत्रके इतिवृत्त रूप उदित और अस्त होनेवाली अनेक क्रान्तियोंके जिज्ञासु अध्येताका अनुसंधान सिद्ध हो सकता है, केवल महापुरुषोंके जीवन-चरित्रके अध्ययन-सामाजिक परिवेशमें, महान नेता-युगवीर पुरुषोंकी जीवनगाथाओंके अनुशीलन-ऐतिहासिक एवं राजकीय पृष्ठभूमिमें; महान संत-साधु पुरुषोंके जीवनोद्यानका अनूठा आस्वादन-धार्मिक प्रावधानमें और महान साक्षर-विद्वद्वर्योंके जीवन-शृंगारका प्रासादिक आह्लाद साहित्यिक परिप्रेक्ष्यमें । उन विरल विभूतियों द्वारा जन-समाज और देशकी परिस्थितिका परिशीलन करके उनकी योग्यता और सामर्थ्यानुसार तत्कालीन सामाजिक-राजकीय-धार्मिक विकृतियोंका सुधार-परिष्कार और परिमार्जन करते हुए उन्हें अपने चरमलक्ष्य-परमसुख और आत्मिक समृद्धिकी ओर निर्बाध रूपसे अग्रेसर करनेवाली अनुपम सेवा प्रदान की गई है ।

ऐसे ही पुनरुत्थानके अद्यतन युगके साम्प्रत युगीन जनजीवनकी बसंतका आगमन सूचित करनेवाले उन्नीसवीं शतीके आंदोलनोंमें भी इन्हीं प्रेरक शक्ति स्वरूप महात्माओंने अपना योगदान दिया है, जिनमें धार्मिक और राष्ट्रीय (देशभक्तिके) भावोंको उल्लेखनीय स्थान दिया जा सकता है; जिनको समृद्ध, सोत्साहित और संचारित करनेका श्रेय उन प्राज्ञों द्वारा निर्मित प्रेरणात्मक और उपदेशात्मक साहित्य निर्माणको दिया जाना चाहिए । इस परिप्रेक्ष्यमें हमारी चक्षुपटलको आकर्षित करते हैं, उस क्रान्तिकारी आंदोलनोंकी सलवटको स्वस्थ रूप प्रदाता-युगनिर्माता-बहुआयामी-प्रतिभा सम्पन्न विद्वद्वर्य श्री आत्मानंदजी म.सा.का तेजस्वी व्यक्तित्व, ओजस्वी वक्तव्य और धीमयीत्व वाङ्मयकी विशदता । अतः हम उनके साहित्य-सृजनके अधिकांशको सुशोभित करनेवाली गद्य-विधाका परिचय यहाँ प्रस्तुत करते हैं ।

वाङ्मयकी दो विधायें–पद्य और गद्य–एक है मर्यादित स्वरूपाकारमें संक्षिप्त या खुर्द, फिर भी तीव्र वेगसे कूदता-फांदता, दिलकी चट्टानोंको हिला देनेवाला–मतवाला निर्झर, और एक है शांत, गंभीर, विशद प्रवाहको समेटे हुए महानद या महासमुद्रका अवतार; एकमें भावोंकी समर्थ सूक्ष्मता, प्रबल संप्रेषणीयताके साथ अल्पातिअल्प शब्दादि सामग्री द्वारा सुनिश्चित एवं मार्मिक अभिव्यक्तिके दृश्य दृग्गोचर होते हैं, बल्कि दूसरेमें अनेक विषय वैविध्यतानुरूप भावनासे आनुषंगिक वैचारिक भरमारोंको प्रवाहित होनेके लिए अनेक प्रवाह मार्गोंका विस्तीर्ण पट फैला हुआ है; एकमें कवि-कौशलका परिपाक अलंकार-प्रतीक-बिम्ब-छंद-रस-रागादि रूपमें लहलहाता है, जबकि दूसरेमें कृतिकारकी कसौटीके दर्शन होते हैं – क्योंकि गद्यके विस्तृत साहित्य फलक पर फैले संतुलित तत्त्वोंके, बुद्धिबलसे निश्चित विचारधाराको सुनिश्चित प्रवाहमें, सुगठित शैली और मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओंके साथ प्राभाविक रूपमें उद्भावित करना दुरूह कार्य अवश्य है । एक कुशाग्र लेखक बुद्धि-कल्पना और संवेदनाओंसे अपनी रचनाको प्रांजल बनाते हुए, पाषाणसे प्रतिमा-रचना रूप हस्तसिद्ध कला द्वारा पाठककी अदम्य अभिलाषाओंको-वेदना-संवेदनाओंको झकझोरकर स्वयंके अभीष्ट लक्ष्यको सिद्ध कर सकता है । गद्य लेखकके मस्तिष्ककी उद्भावना अभिभावकके हृदयगत भावोंको संवेदित करनेवाले सार्थक आलेखनसे साधना और शिवत्वके सामंजस्य रूप-भीतरसे सुंदर और बाह्य परिवेशमें सम्माननीय साहित्य सृजन निष्पन्न करती हैं । लेखकका स्वाभाविक-सरल-मधुर और लाघवयुक्त, निपुण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्धिक कल्पना वैभव, सूक्ष्म भावोंको वायु लहरियाँ सदृश स्पंदित कर सकता है; वाङ्मयको जीवंतता-मार्मिकता एवं तर्क संगततासे समृद्ध बनाता है और विवक्षित कृतिको चमक-दमक, रमणियता और रुचिरता, कोमल स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता और ध्वन्यात्मकता अर्पित करता है । ऐसे सक्षम साहित्य मनीषीकी सर्जन-सृष्टिमें विहार करने पूर्व तत्कालीन वातावरणका परिचय अस्थानीय न होगा ।

तत्कालीन परिस्थितियाँ :- तत्कालीन जनजीवन रूपी क्षेत्रमें नूतन विचारधाराओंके बीज वपन होनेके पश्चात् नवीन भावधाराओंकी वृष्टि, आंतरिक क्रान्तिकी सकपकाहट और आंदोलनोंकी गरमीके कारण नूतन साहित्यिक अंकूर प्रस्फुटित हुए, जिसके सायेमें साम्प्रतकालीन परिवर्तनशीलता-प्रगतिशीलता और प्रच्छन्न प्रवृत्तियोंने साहित्यिक-सामाजिक-सांस्कृतिक (धार्मिक) व राजनैतिक क्रान्ति एवं नवचेतनाके उद्भावको प्रसूत किया । उन तत्कालीन परिस्थितियोंका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है ।

राजकीय परिस्थितियाँ–यद्यपि भारतके नैतिक-राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक आदि प्रत्येक क्षेत्रमें पतनकी श्रेणियोंके मंड़ाण योरपियोंके पदार्पण पूर्व ही हो चूका था, फिर भी अठारहवीं शतीके उत्तरार्धमें उसका स्पष्ट रूप उदीयमान आदित्यकी तरह झलकने लगा । ब्रिटिशरोंकी नकली नम्रता-खुशामदखोरी-कपट और रिश्वतखोरी; साथ ही हिन्दुस्तानियोंका मिथ्या स्वाभिमान, पारस्परिक फूट और आंतर्संघर्षके परिणाम स्वरूप मुगल-मराठा-सिक्ख-राजपूतादि सभीको येन-केन-प्रकारेण परास्त करनेवाले ब्रिटिशरोंका प्रभाव समस्त भारतवर्ष पर–कश्मीरसे कन्याकुमारी और बर्मासे पश्चिमोत्तरी सीमा प्रांत पर्यंत विस्तीर्ण हुआ । अतः अंग्रेजशासक मदोन्मत्त बने । फलतः उनकी मनस्वी और उच्छृंखल नीतियोंसे वाज़ आये हुए, असंतुष्ट-अनेक देशी रजवाड़ोंने परस्पर एकत्रित होकर ई.स.१८५७में व्यापक रूपमें विद्रोह किया । लेकिन ईस्ट इन्डिया कंपनीके चुंगालसे अपना पल्ला छुड़ाकर भारतीय जनजीवन ब्रिटिश साम्राज्यके जालमें बूरी तरह उलझ गया, जिसने भारतीयोंके आर्थिक-शैक्षणिक-सामाजिक-धार्मिक-व्यावहारिक-प्रत्येक क्षेत्रके मूलको ही परिवर्तित करनेमें अक्सीर इलाजकी भूमिका अदा की ।

भारतीय उद्योगधंधोंको अमानुषिक रूपसे नष्ट-भ्रष्ट करके प्रजाका आर्थिक शोषण प्रारंभ हुआ, परिणामतः उनके देशमें भारतीय स्वर्णकी वर्षा होने लगी और इंग्लैंड़की औद्योगिक क्रान्ति सफल हरियालीको प्राप्त हुई; जबकि भारतीय औद्यगिक हालातमें दारिद्रता-बेकारी-विवश निराशा और हताशाके पंजोंका प्रसार हुआ । ब्रिटिश उपनिवेश बने भारतके लिए अंग्रेजोंने अपनी नूतन प्रशासकीय नीतियों द्वारा आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रणालिकाओमें आमूल परिवर्तन किये, जिसका असर समाज जीवन और धार्मिक क्षेत्रान्तर्गत भी होने लगा । भारतवासी भी इन नूतन परिस्थितियोंमें जीवनका नया अंदाज़ सोच समझकर पेश करने पर विवश हुए । इन सभी परिस्थितियोंका नतीजा यह हुआ कि, तंग आर्थिकता-विक्षुब्ध सामाजिकता-विद्रोही एवं उच्छृंखल अधार्मिकता-शैक्षणिक स्वच्छंदताकी जन जीवनको झुलसानेवाली चिनगारियाँ चमकने लगीं, जिसने अधिकतर मानवीय सुख-दुःखको साहित्यके माध्यमसे जन जीवनमें उजागर करनेवाली एक नयी चेतना प्रदान की । सामान्य लोकजीवनसे जुड़नेवाली नये युगकी भावाभिव्यक्तिके लिए आधुनिक जागृत चेतनासे सक्षम बननेवाली, जन साधारणमें व्याप्त खड़ी बोलीमें गद्यमय प्ररूपणाओंने आकार लिया। यह साहित्यिक उत्थान आधुनिक कालके प्रमुख साहित्यकार भारतेन्दुजीके नामसे प्रसिद्धिमें आया ।

सामाजिक परिस्थितियाँ–आधुनिक भारतमें उन्नीसवीं शताब्दीमें बहुमुखी पुनरुत्थानका प्रारंभ हुआ, जिनके अंग स्वरूप सामाजिक उत्थानको भी प्रश्रय मिला । परापूर्वसे अनेक जाति-उपजातियोंमें विभक्त भारतमें पारस्परिक एकताका सर्वदा अभाव था । परिणाम यह आया कि, स्थानीय भारतीय, बाह्य आक्रामकों–मुस्लिम, ईसाई आदिके सामने पराजित होते गये । इन सबका गहरा प्रभाव भारतीय समाज व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था पर पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक था । लेकिन, सोलहवीं शती पर्यंतके विजेता सभ्यता और संस्कृतिके क्षेत्रमें अविकसित या अर्धविकसित थे, अतः उन्होंने उत्कृष्ट भारतीय संस्कृतिके साथ समन्वय करके उसे अपनाया और भारतीय समाजमें घुलमिल गये । मुस्लिमोंने धार्मिक आक्रामकताके बल पर हावी होनेका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयास किया, लेकिन कुछ धर्मान्ध शासकोंके अतिरिक्त अन्य सभी समदर्शी शासकोंको सामाजिक आदान-प्रदानकी स्वस्थ परिपाटी आज़माकर समन्वयका ही स्वीकार कर लेना पड़ा । इस प्रकार सामाजिक स्वरूपमें अविकसित मुगल शासकोंके विजयमें भी भारतीय सभ्यता-संस्कृतिसे पराजित होनेके भाव चिह्नित होते हैं । उनके आक्रामक-धार्मिक ज़नूनके कारण भारतीय रूढि परम्परामें और सामाजिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रोंमें भय और आतंककी लहरसे निराशा और हताशा छा गयी । उन क्षेत्रोंमें विकासशील प्रगति पर तो विराम-चिह्न ही लग गया, साथ ही कुंठित भावनाओंको सहन करने पर उन्हें विवश बनना पड़ा। मुस्लिम शासनके कारण बाल-विवाह, पर्दाप्रथा, सती-प्रथा और स्त्री-पुरुषकी असमानतादि नारीदमनके विरूप दृश्य दृष्टिगोचर होने लगे ।

तदनन्तर मुगल शासनके स्वर्णिम युगमें ही स्वार्थी योरपीय प्रजाओंका आगमन-आक्रमण और आपात स्थितिका निर्माण आकार ले रहा था । परिणामतः शनैः शनैः पूंजीवादी अंग्रेजोंके शासनकालमें-उन्नीसवीं शतीमें सभ्यता और संस्कृति, सामाजिक और शैक्षणिक, आर्थिक और राजकीय, कृषिक और औद्योगिक आदि अनेक परंपरित एवं व्यावहारिक क्षेत्रोमें आमूल परिवर्तन हुए । अंग्रेजोंने निजी स्वार्थके लिए भारतीय समाज और देशको लूंटा, व्यापार नष्ट किये, गृह-उद्योगादि हुन्नर और अन्य जातीय व्यवस्था-ग्रामीण व्यवस्था तूट गई, एवं जमींदारी प्रथा लागू होनेसे जमीनका क्रय-विक्रय और कृषिका व्यावसायिक रूप एवं महाजनी सभ्यतादिमें ग्राम्यजीवन उलझ गया । यातायातकी सुविधा और औद्योगिक क्रान्तिके पोषण रूप क्रय-विक्रयके लिए बाज़ारोंका अस्तित्व सामने आया । ग्रामीण उद्योग-धंधे तूटनेसे अधिकांश समाजका जीवनाधार केवल कृषिकर्म रह गया । इन सभीके शिरमौर रूप तत्कालीन प्राकृतिक प्रकोप-अकाल-महामारी आदिके नागपाशमें बंधा भारतीय समाज राजकीय प्रभावों-पंचायती सरल ग्राम्य-व्यवस्थाके स्थान पर जटिल कोर्ट-कचहरियोंके जालसे भी त्रस्त हो उठा था ।

शहरी समाजकी परिस्थितियाँ भी ग्रामीणोंसे अच्छी नहीं थीं । शहरी जनजीवनमें भी पुनरुत्थानकी एक नयी लहर--शायद जिसे 'राष्ट्रीय जीवनकी बसंत' उपनाम दिया गया था--और प्रगतिशीलताकी चकाचौंध अपना रंग जमा रही थीं; जिनके कर्णधारके रूपमें अनेक राष्ट्रीय और धार्मिक, सामाजिक और शैक्षणिक या साहित्यिक नेता-प्रणेताओंके दर्शन हमें होते हैं-यथा--*ब्रह्मसमाज संस्थापक-तार्किक और बौद्धिक राजा राममोहनराय; प्रार्थना-समाजके सूत्रधार-मेधावी-विधिवेत्ता, वैज्ञानिक विचार शैलीयुक्त--पूर्वग्रहोंसे मुक्त, पुनरुत्थान वादियोंके विरोधी, समान मानवाधिकारवादी और आंतर्जातीय विवाहके पक्षकार श्री महादेव गोविंद रानाड़े; आर्यसमाजके प्रवर्तक--मूर्तिपूजा उत्थापक और एक वेदमत एवं एकेश्वरवादके संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती; थियोसोफिस्ट श्रीमति एनी बेसेंट; साधारण ब्रह्म समाज और नववेदांत संचालक श्री केशवचंद्र सेन; गरीब-गंवार (आत्मिक समृद्धि और सामर्थ्यसे ऋद्धिवान्) अनपढ़, रोगी-मित्रहीन, मूर्तिपूजक-हिन्दुभक्त, श्री विवेकानंदजीके गुरु और समस्त बंगालको झकझोरनेवाले स्वामी रामकृष्ण परमहंस; विश्वधर्म परिषद, चिकागोमे हिन्दु संस्कृतिकी शान और आनको पुनः स्थापित करनेवाले-तन, मन, आत्मिक शक्तिवान् और आत्म सम्मान एवं राष्ट्रीय गौरव प्रदाता-धर्मके हिमायती और जाति-सम्प्रदाय-अस्पृश्यतादिके विरोधी, गरीबोंके बेली-'रामकृष्ण मिशन'के प्रस्थापक श्री विवेकानंदजी; स्वामी रामतीर्थ, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, श्री प्रेमचंद राय, लाला लाजपतराय, स्वातंत्र्य सेनानी बाल गंगाधर तिलक, गोपालराव, पं. मदनमोहन मालविया आदि ।*

साहसिक, सेवाभावी, देशभक्त और आत्म बलिदानके लिए तत्पर सभी महापुरुषोंके भगीरथ पुरुषार्थके परिणाम रूप भारतमें नवजीवनका संचार हुआ । उनका लक्ष्य था पश्चिमीकरण किये बिना ही प्राचीन वैभव-समृद्धि और पवित्रता युक्त भारतकी स्वतंत्रता । परस्पर विरोधी दर्शित होनेवाले भारतीय जनजीवनके उन हितस्वियोंकी प्रवृत्तिके प्रवाहोंकी तेज़ी-मंदीके कारण कभी सामाजिक सुधारको प्राधान्य मिलता था, तो कभी शैक्षणिक क्षेत्रको, कभी राजकीय चहल-पहलको अग्रीमता प्राप्त होती थी, तो कभी धार्मिक प्रवाहोंका गान गूंजीत होता था । अंततोगत्वा उन नेताओंकी मूल रूपसे दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ हमें उपलब्ध होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं-राष्ट्रीयतावादी और स्वच्छंदतावादी । **"दोनोंके मूलमें वैयक्तिकता, अतीतके गौरवका भाव, विदेशी सत्ताके विरुद्ध आक्रोश, गाँवोंकी बढ़ती गरीबीके प्रति सहानुभूति-स्वतंत्रता और समानताके प्रति आग्रह आदि प्रवृत्तियाँ क्रियाशील थीं विस्मृतिके गर्भमें विलीन भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, वास्तु, स्थापत्य कलादिके पुनरुद्धारक-पुरातत्त्ववेत्ता और पुरालेखविदोंने अतीतके गौरवके प्रति जागृति फैलानेमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे समस्त संसारमें भारतीय संस्कृतिका गौरव और आत्मसम्मान, पाश्चात्य संस्कृतिके सामने उन्नत मस्तक हो सका ।"**[२]

इसके साथ ही शिक्षण संस्थाओंके स्वरूपोंमें भी आमूल परिवर्तन हुए, जो आधुनिकीकरणके उस कालमें पाश्चात्य शिक्षा प्रणालीको अंगीकार करके पश्चिमी ज्ञान-विज्ञानसे परिचय करनेके लिए लक्ष्य करके किये गये । पाश्चात्य शिक्षण प्रणालिकासे रीति-नीति, आचार-व्यवहार, वेशभूषादिमें सीमातीत परिवर्तन, स्वार्थी वैयक्तिकता और उद्दंड उच्छृंखलतादिका साम्राज्य स्थापित हुआ; तो अस्पृश्यता और जातिप्रथाका विरोध-नरनारीकी समानता-स्वतंत्रता-स्वच्छंदतादिका समर्थक एक नया ही मानवतावाद अस्तित्वमें आया । इन सबके मूलमें परिवर्तीत अनेक परिस्थितियाँ ही हेतुभूत हुईं थीं । अंग्रेजोंके ही स्वार्थवश स्थापित की गई आधुनिक अर्थ व्यवस्था यंत्रयुगीन औद्योगिकरण-संचार सुविधा-प्रेस(मुद्रण) सुविधा-नयी शिक्षाप्रथा आदिसे भारतीय समाजका कुछ हित भी अवश्य हुआ । भारतीय समाज प्राचीन परिपाटीकी स्थिर व्यवस्थाओंसे मुक्त होकर स्वतंत्र गत्यात्मकताका अनुभव करने लगा और नूतन परिवेशमें ढलने लगा । मुगलोंकी धार्मिक असहिष्णुता और आक्रामक अत्याचारोंके कारण हिन्दुओंका जो धार्मिक शोषण हुआ था, ब्रिटिशरोंके शासनकालमें अधिकांशतः उनसे मुक्ति प्राप्त हुई । श्री आत्मानंदजी म.के उद्‌गारोंमें उनकी प्रशंसा देखें–**"हम धन्यवाद देते हैं अंग्रेजी राजको, जिनके राजतेज़से सिंह-बकरी एक घाट पानी पीते हैं । किसी मतवालेकी शक्ति नहीं, जो दूसरे धर्मवालेको गरम आंखोंसे देख सकें ।"**[३]

उस सुधारणा रूप संक्रान्ति कालमें अधिकांश समाज-सुधारक नेतागणने, समाज सुधारके अति आवश्यक अंग 'धर्म' पर ही बल देते हुए क्रान्तिकी मशाल प्रज्ज्वलित की । राजा राममोहनराय जैसे शुद्ध बुद्धिवादीको भी 'सतीप्रथा'के उन्मूलनमें धर्मशास्त्रोंकी गवाही देनी पड़ी; तो ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा सिद्ध किया गया कि, वैधव्यका कोई विधान धर्मशास्त्रोंने नहीं किया है । श्री दयानंदजी द्वारा समाज सुधारको वैधता देनेके लिए वेदोंके मनघड़ंत-विपरितार्थ भी किये गए । इस तरह सामाजिक कुरूढ़ियोंको उच्छिन्न करनेमें अतीतकी गौरवान्वित विरासतका ही किसी न किसी रूपमें उपयोग किया गया, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय जन-समाजका आत्म सम्मान जागृत होकर पाश्चात्य रूखसे बराबरीका सामना करने और अंग्रेजी शासनकी परतंत्रतासे स्वतंत्र बननेके स्वप्न देखने लगा।

इतना होने पर भी हम कहेंगें कि इन सभी नवनिर्माण-सुधार-उत्थान और उत्क्रान्तिका श्रेय स्वयं भारतीय संस्कृतिकी मज़बूत नींव-पारंपरिक गौरव गाथाओंका संबल और निजी विशिष्टतायें ही हैं, क्योंकि जातीय पुनरुत्थानके लिए समाजको अन्यके अनुभवसे लाभ मिल सकता है, लेकिन सर्वथा नवीन सांचेमें उसे नहीं ढ़ाला जा सकता । यह तो स्पष्ट ही है कि, कोई भी जाति पूर्ण रूपेण निजी विशिष्टताओंका न त्याग कर सकती हैं, न अन्यमें पूर्ण रूपेण विलीन हो सकती है । इसी तथ्यके अनुरूप भारतीय जातीके अनुपम आध्यात्मिक और नैतिक तत्त्व, आधुनिक-भौतिक जड़वादके तरंगी तूफानों या तो विप्लवकी आंधियोंमें भी नष्ट नहीं हुए; क्योंकि उनमें स्थिरता बक्षनेवाली अत्यंत गहरी-सशक्त धार्मिक और सांस्कृतिक जड़ें विद्यमान थीं, जो उन्हें विस्फोटक प्रभाव रूप मृत्यु संकटको भी चकमा देकर स्वयंके गौरवको अमरता बक्षनेका सामर्थ्य रखतीं थीं । अतः सामाजिक और सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक-पुनरुद्धारसे भारतीय जनजीवनमें नये संचार प्रसारित हुए । उन समाज सुधारकों, आंदोलनकारों अथवा विप्लवकारियों और नेता-प्रणेतादिके द्वारा कुरूढ़ि, अंधविश्वास, विपरित आचरणाओं, सामाजिक कुरीति-रिवाजों, असमानताओं आदिके विध्वंस करते हुए, धार्मिकता, सांस्कृतिकता और सामाजिकताकी सामर्थ्यशाली नींव पर आधुनिक पुनरुत्थानके

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधनोंसे नूतन प्रासादका निर्माण करनेका साहस किया गया । अतः जनजीवनका व्याप संकीर्णतासे सुविशालताकी ओर, प्रमादसे पुरुषार्थकी ओर, अंधविश्वाससे वैज्ञानिकताकी ओर विस्तारको प्राप्त हुआ। *साहित्यिक*–धार्मिक-राजकीय एवं सांस्कृतिक साहित्यकी गद्य और पद्य रचनाओंके लिए तत्कालीन विभिन्न साहित्यकारोंने हिन्दी भाषाका उपयोग किया । सभी क्षेत्रोंकी भाँति युग परिवर्तनके साथ साहित्य परंपराओंने भी मोड़ बदला हिन्दी साहित्यमें नयी चेतना और नवजागृति–राष्ट्रीयता, सामाजिकता, सांस्कृतिक सभ्यताके नये आयामों-नूतन प्रयोगों और नवीन विशेषताओंके रूपमें प्रकाशित हुईं । भाषा और भावनाकी दृष्टिसे यह संक्रमण काल होनेसे धर्म और साहित्यको ठोस भूमिगत स्थिरता प्राप्त हो रही थी । उसी समय देशवासियोंको स्वदेशकी अतीत गौरवगाथाकी ओर सावधान करनेवाले और नव जागरणका शंख फूंकनेवाले भारतेन्दुजी और उनके सहयोगी राष्ट्रीय चेतनाके उदीयमान नक्षत्रके रूपमें दृश्यमान हुए और तत्काल साहित्यने मानो करवट बदली । भारतेन्दुजी आधुनिक साहित्यके जन्मदाता या अग्रदूत माने गये ।

स्वयंके यात्रानुभवोंसे चेतनवंत बने देशप्रेमके कारण पत्रिकाओंके प्रवर्तन और *'कवि समाज'*, *'कवितावर्द्धिनीसभा'* आदि संस्था स्थापित करके उस कला-प्रशंसक और उदार आश्रयदाताने हिन्दी साहित्यकी रचना करके और उसके प्रचार-प्रसारके लिए एक मंड़ल-सा जमघट निर्माण किया, जिससे हिन्दी भाषा और साहित्यको स्थिर और स्थापित होनेमें सामर्थ्य प्राप्त हुआ । वे अपने आपमें एक संस्था सदृश विशाल और बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी थे, जिनकी गद्य और पद्यमें समान और समांतर गति थी । **"उन्होंने विशाल पैमाने पर, बहुसंख्यक, विभिन्न विषयक और अनेक विधाओमें साहित्य सृजन करके इस बातको प्रमाणित कर दिया था कि, वे आधुनिक हिन्दी साहित्यके लिए मधुमास बनकर आयें, जिन्होंने सभी रसोंकी सृष्टि की ।"[४] "भारतेन्दु सहज प्रतिभा सम्पन्न थे, अतएव उनकी वाणीसे भाषा साहित्यकी समस्त परंपराओंका काव्य अपने प्रकृत रूपमें प्रस्फुटित होता था । उन्होंने खड़ी बोलीमें सुंदर रचनायें की, तो ब्रजमें भी मानो सूर-बिहारी या देव-पद्माकरकी विशेषता लेकर आये; लोक प्रचलित प्रगीतशैलीमें हास्य-विनोद या व्यंग्यपूर्ण काव्य रचा, तो होली-कजरी-लावणी-भजनादि रूपोमें भी स्वर भरे ।"[५]**

नवयुगीन संगठन और औद्योगिक उन्नतिसे निष्पन्न नयी चेतनाके स्वर शायद विद्रोही नहीं, फिर भी देशोन्नतिके लिए उद्‌बोधक और देशभक्तिको उकसाकर जन जागृति करवानेवाली जोशीली भावाभिव्यक्ति रूप थे । तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंके प्रारम्भ और प्रवर्तन एवं अंग्रेजी गद्य साहित्यके संपर्कसे नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, यात्रावर्णन, जीवन चरित्र, आलोचना-ऐतिहासिक, भौगोलिक, धर्मशास्त्रीय, वैज्ञानिक, वेदान्तादिके सिद्धान्त निरूपणवाला दार्शनिक आदि गद्यसाहित्यके रूपोंका संवर्धन होता रहा, जिनके स्फुट या अस्फुट, अग्रगण्य या नगण्य रूप भारतेन्दुजी और उनकी मंडलीके प्रतापनारायण मिश्र, 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहनसिंह, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्तादि साहित्यकारों एवं परवर्ती लेखकोंमें प्राप्त होते हैं। भारतेन्दु-पूर्व गद्य शैलीमें .(१) ब्रजभाषापन या पंडिताऊपन; (२) संस्कृत गर्भित; (३) अरबी, फारसी शब्दयुक्त-खड़ीबोलीके तीन रूप प्राप्त होते हैं, लेकिन भारतेंदुजीने गद्यकी नवीन शैलीकी नींव ड़ाली जो परिमार्जित-सर्वग्राह्य-चलती भाषाका रूप लिए उत्कृष्ट गद्य साहित्य-सृजन योग्य थीं ।

निबन्ध विधा–हिन्दी साहित्यकी निबन्ध विधाकी ओर दृष्टिपात करने पर हमें परिचय प्राप्त होता है बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्रके विचारात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मकादि अनेकविध निबन्धोंका गद्यमय साहित्य निर्माणमें महत् योगदानका; बालमुकुंद गुप्तजीकी मुहावरेदार, नैसर्गिक, व्याकरण शुद्ध, दृढ़ भावाभिव्यंजनाकी अभिव्यक्तिके सामर्थ्ययुक्त प्रौढ़ भाषा शैलीका; माधुर्य और कान्तिगुण युक्त, संस्कृत-अंग्रेजीकी विद्वत्तासे झलकती ठाकुर जगमोहनसिंहजीकी रचनाओंमें विलक्षण मनोहरताका; श्री निवासदासजीकी गद्यशैलीकी फारसीके तत्सम शब्द युक्त संयत-सुबोध परिपक्वताका । *नाटक विधा*–ठीक उसी प्रकार तूटी हुई संस्कृत नाट्य परंपरा और रंगमंच–जो नवनिर्माण योग्य थीं–उसके पुनर्जीवन प्रदाता भारतेंदु युगमें निजी मौलिकताको लेकर और अनुवादित रूपमें विविध नाट्य रूपोंकी उद्‌भावना की गईं, जिनके द्वारा हिन्दी गद्यका समुचित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवर्तन, देशभक्ति भावनाकी जागृति, हास्य या व्यंग्यात्मक रूपमें धार्मिक और सामाजिक कुरूढ़ियों एवं कुरिवाज़ो पर कुठाराघात, भगवद् भक्ति आदि भावोंकी प्ररूपणा पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक या काल्पनिक कथानकोंको लेकर की गई । *उपन्यास*--गद्य साहित्यकी महत्त्वपूर्ण शाखा-उपन्यासके क्षेत्रमें श्री निवासदास, जगमोहन सिंह, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, अंबिकादत्त व्यास, देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी आदि लेखकों द्वारा सामाजिक, तिलस्मी, अय्यारी, जासूसी, ऐतिहासिकादि अनेक प्रकारके काल्पनिक, भावप्रधान, उपदेशात्मक, हास्य-व्यंग्य प्रधान, प्रणय निरूपणात्मक, घटनात्मक, वर्णनात्मक, कौतुक प्रधान उपन्यासोंकी रचनायें संस्कृतनिष्ठ, अलंकृत भाषायुक्त चलती-मुहावरेदार-विविध भाषा शैलियोंमें की गई । इनके अतिरिक्त *कहानियाँ, आलोचना, जीवन चरित्र, यात्रा वर्णन आदि* विविध साहित्य विधाओंका भी उस युगमें किसी न किसी रूपमें सूत्रपात हुआ । इन्हें वेगवान बनानेवाले पत्रिका साहित्यका भी अत्यधिक महत्त्व है ।

उपर्युक्त साहित्य विधाओंके साथ साथ वाङ्मयकी अन्य उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण विधाओंका भी आलेखन हुआ, जिसमें *भौगोलिक, वैज्ञानिक, राजनीति एवं अर्थनीतिकी प्ररूपक रचनायें; अनेक ललित एवं उपयोगी कलाओंका निवेशक-कलात्मक साहित्य; व्याकरण, कोश, न्याय, तर्क, धर्म, दर्शनादि अनेकविध वाङ्मयका प्रादुर्भाव*--मुद्रणयंत्रके उपयोगके कारण और पत्र-पत्रिकाओंके प्रचलनके कारण हिन्दी साहित्यका विशद मात्रामें निर्माण-प्रचार और प्रसार इस युगमें हुआ ।

तत्कालीन-युगीन साहित्यके अध्ययनसे हमें अनुभव प्राप्त होता है कि भारतेंदु युग प्राचीन और अर्वाचीनके संधिकाल पर स्थित है, अतः उस युगकी चिन्तनधारा दो प्रवाहोंमें बहती हैं - (१) अतीतके गुणगान और (२) पाश्चात्य वाङ्मयकी प्रेरणा ग्रहण करके सामाजिक कुप्रथाओंके प्रति गहरा असंतोष । फिर भी दोनोंका स्वर विद्रोहात्मक नहीं, समन्वयात्मक ही रहा है । कहीं पर तो विक्टोरियाकी सुधारवादी शासन-नीतिका गुणगान हैं, तो कहीं समाज विकासकी आवश्यकता और जातीय गौरवयुक्त देशभक्तिकी बुलंदी है । **"इस युगकी कविताका बहुल अंश वस्तु निष्ठता, बुद्धिवादिता, वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकतासे युक्त है; किन्तु कुछ कवियोंके काव्यमें सौंदर्यवादी जीवनदृष्टिका उन्मेष भी मिलता है । अपने कृतित्वको मानवताके बृहत्तर आयामोंके साथ जोड़नेकी दिशामें कवियोंकी अपेक्षा गद्यकार ही अधिक सक्रिय रहे हैं ।"**[६]

ब्रिटिश शासनके प्रति विरोधका भाव प्रायः प्रत्येक साहित्यकारके मनमें विद्यमान था । देश और समाजके हितकी भावनासे सभी भावित थे । साहित्य सर्जनकी दृष्टिसे हिन्दी गद्यकी प्रायः सभी विधाओंका सूत्रपात इसी युगमें हुआ, विशेषतः नाटक एवं निबन्ध-इन दो विधाओमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। व्यापक जागरणका संदेशवाहक इस कालका साहित्य जीवनकी गतिके साथ जुड़ा और साहित्यकारोंके अदम्य उत्साह, हिन्दी भाषाके प्रति अतूट निष्ठाके साथ पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनके कारण उसकी परंपरा वेगवान हो सकी, **"उन्होंने हंसते-हंसते अपनेको उत्सर्ग करके हिन्दीके विशाल भवनका निर्माण किया, जिसे सजाने-संवारने और मूल्यवान उपकरणोंसे अलंकृत करनेका कार्य द्विवेदी युगके साहित्यकारोंने किया ।"**[७]

धार्मिक--साहित्यके संदर्भमें 'आधुनिक काल' शब्दसे दो दृष्टिकोण फलित होते हैं-(१)मध्यकालका परवर्तीकाल-जिसमें रूढ़िवादी जड़ता और धार्मिक स्थिरता या एक रसता रूप अवरोधोंसे मुक्त नूतन गत्यात्मक चेतना प्रदर्शक साहित्य रचनायें और (२) अध्यात्मसे आधिभौतिक विचार सरणी व्याप्तकाल, जिसमें स्वयंकी सुध-बुध *विसर्जित करा देनेवाली पारलौकिक आस्थासे अत्यधिक आच्छन्न पर्यावरणको नयी चिंतनधाराके दार्शनिक* एवं धार्मिक चिंतकों, प्रसारकों एवं प्रचारकों द्वारा सुधार-परिष्कार और पुनराख्यायित करके नूतन-आधिभौतिक दृष्टिकोणसे प्रस्तुतीकरण प्राप्त होता है । केवल धार्मिक एकतामें आबद्ध भारतीय समाज उस युगमें राष्ट्रीय एकताके प्रति झुक रहा था, तो प्राचीन जाती प्रथायें नये ही आर्थिक वर्गों--उच्च(अमीर)वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न(श्रमिक)वर्ग--में विभाजित या परिवर्तित होने लगी थीं, जिनका उन पुनरुत्थानके संक्रान्तिकालमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है । उन आर्थिक परिवर्तनोंने अनेक उलझनों और समस्याओंको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म दिया, जिन्हें सुलझानेके लिए नयीनयी विचारधारा और विविध दृष्टि बिन्दुओंका सहारा लेनेके लिए विवश होना पड़ा । भारतीय ज्ञान-विज्ञान या आचार-विचारका केन्द्रबिंदु पारलौकिक-आध्यात्मिक-शाश्वत या चरम लक्ष्य (मुक्ति)को स्पर्शता है और आधुनिकताके प्रवाहने भौतिक-इहलौकिक-या स्वकेन्द्रित, साम्प्रतकालीन लक्ष्यको साध्य बनाया था । फलतः विद्या, सुयोग्य वैशिष्ट्यवान् वर्ग या जनसमुदायके लिए ही नहीं, प्रत्युत सर्व सुलभ बनी, जिसे पुनरुत्थानवादियोंने प्रगतिका चिह्न मान लिया।

इन सभी गतिविधियोंके परिणाम स्वरूप सर्वसुलभ विद्याधारी अद्यतन या अफलातून प्रगतिशील समाजने अज्ञानमय जड़ता और भौतिक गत्यात्मकता एवं इहलौकिक नयी उद्भावनाओंके मार्गके अवरोधक-अनन्य और अद्वितीय भारतीय दर्शन-ज्योतिष-विज्ञान-गणित-उत्तम काव्यशास्त्र और उत्कृष्टतम (सर्वोपरि) धर्मशास्त्रोंको बिनउपयोगी, गतानुगतिक, अपरिवर्तनशील-निरर्थक मानकर उनकी तरफ प्रश्नार्थ धर दिया और 'आधुनिकता' नामधारी उच्छृंखल, वैयक्तिक, बंधन मुक्तिकी विधाता और सामाजिक बिखरावका प्रणेता, व्यक्ति स्वातंत्र्यताका आदर-सम्मान किया । **'नीत्शेकी 'ईश्वर मर गया'-की उद्घोषणासे बौद्धिक जगतमें क्रान्तिकारी परिवर्तन आया।** धर्मग्रन्थोंकी निर्धारित पाप-पुण्य, धर्माधर्म, अच्छे-बुरेकी प्रामाणिक कसौटियाँ समाप्त हो गईं, और प्राचीन मूल्योंका विघटन हो गया । धार्मिकता और 'धार्मिक'को रूढ़िवादी-जड़-हीन या हास्यास्पद मानकर तिरस्कृत किया गया और परमार्थ-पारस्परिक सम्मान, विवेक-विनयशीलता-अनुशासनादिकी जड़ोंको जलाकर खाक करनेवाला स्वार्थी, स्वकेन्द्रिय, वैयक्तिक, विवेक-विनयशून्य, उच्छृंखल एवं उद्दंड--नये पूंजीवादी समाजको श्राप रूप, भारतीय जनजीवनके मस्तिष्कके कलंकको सादर-सोल्लास स्वीकृत किया गया, जिसके प्रमुख कारण रूप माना जा सकता है, वैज्ञानिक नये आविष्कारोंके और नित्य नूतन अवधारणाओंके जालको--जिसने व्यक्तिकी किसी भी प्रकारकी निश्चयात्मकता, दृढ़ता और विश्वासको उलझा दिया । साथ ही साथ अस्तित्ववादी दर्शनने व्यक्तिकी व्यग्रता, दुःख, निराशा और अकेलापन या असहाय स्थिति, मानसिक त्रास, आत्म निर्वासन आदिको अभिव्यक्ति दी ।

हाँलाकि सभी दोषदायी और नुकशानकर्ता वृत्ति-प्रवृत्तियोंके संपूर्ण जिम्मेवार उन नूतन लहरोंको नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि नये युग और नये परिवेशमें नूतन प्रकारसे सामंजस्यकी आवश्यकता निश्चित थी, जो नूतन तर्क-बुद्धि पर आधारित और विवेकशील एवं भावनामूलक हों । इस दुष्कर कार्यके लिए और अंग्रेज शासन एवं ईसाई मिशनरियोंके आक्रामक रूखका प्रतिवाद करनेके लिए धर्म सुधारकोंको भी नये परिवेशसे गुज़रना पड़ा । देशके विभिन्य भागोंमें भिन्न भिन्न महापुरुषों द्वारा अलग अलग धर्म सिद्धान्तोंके सहारे उन्नयन हुआ । राजा राममोहनरायने ब्रह्म समाज स्थापित करके कर्मकांड़ और अंध विश्वासके विरोधमें उपनिषदके सहारे एकेश्वरवादका मंड़न और मूर्तिपूजाका खंड़न किया, साथ ही कुरूढ़ियोंके विरुद्ध नारा बुलंद किया । जातीप्रथा और सतीप्रथाका विरोध एवं विधवा विवाह और स्त्री-पुरुष समानाधिकारका अनुरोध; अंग्रेजी शिक्षा प्रणालीकी हिमायत और ब्रिटीश राज्यकी प्रशंसा करनेवाले सर्वप्रथम व्यक्ति वे ही थे । एकेश्वरवाद और वेदोंकी अपौरुषेयताको लेकर दयानंदजीने आर्यसमाज रचा और सामाजिक सुधार एवं शिक्षाका प्रचार किया । भागवत और वैष्णवधर्मके हार्द--भजन कीर्तनके स्वरूपानुरूप श्री केशवचन्द्र सेनने प्रार्थना समाजकी रचना की, जिसके प्रमुख उन्नायक पाश्चात्य विचारधारासे प्रभावित महादेव-गोविंद रानाड़े थे । अस्पृश्यताके विरोधी और मानवीय समानताके प्रचारक, आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरवके हिमायती एवं विदेशोमें भी श्री वीरचंदजी गांधी सदृश श्रेष्ठतम भारतीय संस्कृतिके प्रचारक श्री विवेकानंदजी 'श्री रामकृष्ण परमहंस'के उपदेशोंके प्रचारक बने । भारतीय धर्म सिद्धान्ताश्रयी श्रीमति एनी बेसेंटकी थियोसोफिकल सोसायटीका भी प्रचार हुआ । इस प्रकार एक ऐसा आभास मूर्त रूप ले रहा था कि नवयुग और नवचेतनाका प्रकाश पश्चिमसे पूर्वकी ओर आ रहा है; लेकिन, याद रहें, प्रकाशपूंज आदित्यका उदय पूर्वांचलमें ही होता है जिससे विश्व आलोकित होता है । अतः उन धार्मिक महात्माओंके प्रयत्नसे भारत, यूरोप बननेसे बच गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त भारतकी इस दयनीय दशाका प्रभाव जैन समाज पर पड़ना भी अत्यन्त ही स्वाभाविक था । मुगल शासनकालसे ही जैन समाज और संघमें, विशेष रूपसे रीढ़की हड्डी तुल्य साधु संघमें आचार शैथिल्य-श्रमणोंके प्राणाधार कठोर संयम और कठिन आचारोंका परित्याग एवं साधु जीवनमें ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र-तंत्रादि आश्रयी गृहस्थोचित धंधे, जागीर-रसालादिका स्वामीत्वादि सांसारिक कार्यकलाप; प्रमादवश ज्ञान-ध्यान और आराधना-साधनाके प्रति उपेक्षा भाव; मिथ्याभिमान और अक्खड़पनके कारण साधु समाजमें परस्पर पदप्राप्ति-नेतृत्वादिके धार्मिक झगड़े, कुसंप और बिखराव आनेके परिणाम स्वरूप प्राचीन वैभविक विरासतकी विस्मृति होना निश्चित है । साधु समाजके इस डाँवाडौल हालातका असर श्रावक समाज पर भी विपरित हुआ । गृहस्थ जीवनमें भी अज्ञान जन्य निराशा-हताशा, दिशा शून्यता और दिग्मूढ़ता, संगठन शैथिल्य, धार्मिक आचार-विचार सिद्धान्त सभ्यता और संस्कृति विषयक अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित हुईं । अज्ञानताकी बाँहें यहाँ तक फैली थीं कि जैनधर्मका उद्भव-प्रचलन अथवा देव-गुरु-धर्म रूप तत्त्वत्रयी और दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रयी विषयक धारणायें-आदि मूलभूत और सर्वसामान्य बातोंसे भी शिक्षितवर्ग अनभिज्ञ था ।

इस प्रकार निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि शिक्षा, संगठन और सामर्थ्यके शैथिल्य एवं सामाजिक कुरूढ़ि रिवाजोंके चहुंकन अंधकारसे घिरे जैन समाजकी रक्षाका प्रबन्ध दुश्वार होता जा रहा था । जिन शासनके हार्द–आन-प्राण–प्रतिमा पूजन, कठोर संयमयुक्त साधु जीवन और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञानकी जड़ें ही करारी चोटें खा-खाकर बेहोश प्रायः होने लगी थीं । ऐसे माहोलमें स्वकर्तव्यसे परिचित करवाके सुषुप्त समाजकी जागृति और तत्कालीन पर्यावरणकी परिशुद्धिके लिए किसी तेजस्वी तारककी आवश्यकताको संविज्ञ शाखीय जैनाद्याचार्य श्रीमद् आत्मानंदजी म.सा.ने पूर्ण किया ।

विभिन्न परिस्थिति अवलम्बित विविध रचना शैलीका परिचय :---

दार्शनिकता और धार्मिकता-उभयमें पर्याप्त भिन्नता होने परभी दोनोंमें अत्यंत नैकट्य प्राप्त होता है । यथा–दार्शनिकता, यह विचारशैली है और धार्मिकता उसी पर आधारित आचरणा । अतः जब विचारानुसार आचरण और यथा आचरण तथा विचार रूप एकत्वका प्रकटीकरण होता है, तब आत्मिक कल्याणकारी, मोक्ष-मार्गकी निःश्रेणीका उद्घाटन होता है और जीवन व्यवहारोंमें भी शम-दम-सुधारसका सिंचन होता है । दर्शन और धर्मके प्रचार और प्रसारका माध्यम है साहित्य, जिसका अचिंत्य एवं असरकारक प्रभाव बना ही रहता है । और जीवंत साहित्यके सहारे सामाजिक चैतन्यके चक्र गतिमान हो सकते हैं ।

प्रत्येक धर्मकी अपनी दार्शनिक आधारशिला, अपने धर्मशास्त्र (साहित्य) एवं धार्मिक परिपाटी या परंपरायें (आचरणा) होती हैं । प्राचीनकालसे जैनधर्मकी प्रत्येक प्रवृत्ति अनेकान्तवाद और स्याद्वादके बहुमूल्य दार्शनिक सिद्धान्ताश्रयी देखी जा सकती है । परंतु दुर्भाग्यवश साम्प्रतकालीन जैनधर्मके आचार-विचार-व्यवहारमें तत्कालीन राजकीय, सामाजिक और धार्मिक पर्यावरणके कारण अज्ञानता, शंका-कुशंका और भयके जाल एवं अनेक प्रकारकी जड़ता-गतानुगतिकता और परापूर्वके रूढ़ि-रिवाज-परंपराओंकी दुहाई वाली कूपमंडूकताके दर्शन होते हैं । इस पर हार्दिक खेद प्रकट करते हुए पं.श्री दरबारीलाल 'सत्यभक्त' अपने *"जैनधर्म और अनेकान्तवाद"* लेखमें जो चित्र अंकित करते हैं, वाकइ सोचनीय है । **"हमको अपने आचार-विचार-व्यवहारादि पर अनेकान्त दृष्टिसे विचार करना चाहिए कि, उसमें क्या क्या आजके लिए 'अस्ति' रूप है और क्या क्या 'नास्ति' रूप है । ..... परंतु दुर्भाग्यवश जैन समाज यह नहीं चाहता कि उसका कोई लाल अनेकान्तका व्यावहारिक उपयोग करें, उसको कुछ ऐसा रूप दें जिससे जड़ समाजमें कुछ चैतन्यकी उद्भूति हों-दुनियाका कुछ आकर्षण हों-उसे कुछ मिले भी । जैन समाजको आज तो सिर्फ 'अनेकान्त या स्याद्वाद' के नामकी पूजा करनी है, उनके फलितार्थकी नहीं ।"**[८]

बहुमुखी प्रतिभावान् श्री आत्मानंदजी म.सा.ने इन सारी परिस्थितियोंका परिशीलन किया था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी पर्यवेक्षक तेज़ नजरसे एक भी बात अछूती न थी । अतः उन्होंने शुष्क क्रियाकी जड़ता और शुष्क ज्ञानकी जड़ताको फूंक देनेवाली और आत्मिक प्रसन्नताको अंतरमें भर देनेवाली शुद्ध ज्ञानमय क्रियाशीलताको प्राधान्य दिया; साथ ही उस क्रान्तिकारी सुधारकने विशाल अध्ययन-अकाट्य युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणोंकी नींव पर आधारित आस्थायुक्त बनकर समाजमें व्याप्त त्रुटियोंको निर्भीकतासे स्पष्टतया प्रकट करके उसके लिए प्रशस्त मार्गदर्शन देते हुए जैन समाजको अधःपतनसे बचानेके लिए भरसक कोशिश की । जैन धर्मियोंकी न्यूनता प्रदर्शित करते हुए *'चिकागो प्रश्नोत्तर'* ग्रन्थमें आपने फरमाया -**"जैन धर्ममें तो दोष किंचित् मात्र भी नहीं है, किन्तु शारीरिक और मानसिक, ऐसा सामर्थ्य इस कालमें इस भारतवर्षके जैनियोंमें नहीं है कि, मोक्षमार्गका जैसा कथन किया गया है, वैसा पूर्णतः पाल सकें । दूसरा, यह दोष है कि, जैनियोंमें विद्याका उद्यम जैसा चाहिए वैसा नहीं है । तीसरे, एकता नहीं है, साधुओमें भी प्रायः परस्पर ईर्ष्या बहुत है । ये दोष साम्प्रतकालीन जैनधर्मीके हैं, जैनधर्ममें तो कोई भी दोष नहीं है ।"**[९]

इस प्रकार अपने विशिष्ट अंदाजसे सामाजिक और धार्मिक कुरूढ़ियोंका निर्भीक उद्घाटन करके यथार्थ मार्गदर्शन देकर उसके युगानुरूप नूतन परिष्कृत आयामोंको पेश किया है । उन्होंने शिथिलाचारी मूर्तिपूजक हों या जिनाज्ञाभंजक मूर्ति अपूजक; रूढ़िवादी-मूढ़ या अज्ञानी हों अथवा नूतन (अंग्रेजी) शिक्षा प्राप्त–सभीको अपनी विशिष्ट एवं स्वतंत्र शैलीसे प्रभावित किया है–जिसके कुछ उदाहरण उनके व्यक्तित्वालेखनमें दर्शाये गये हैं । जैन अनेकान्तवादके व्यावहारिक और यथोचित उपयोग उनके समाज सुधार और साहित्य सृजनके कार्योंमें प्रत्यक्ष होते हैं ।

(१) आपने ज्ञानभंडारोंमें कैद अमूल्य ज्ञानवारिधिका अमृतपान, उनके अधिकारियोंसे परामर्श करके, ज्ञानपिपासुओंको करवाया-स्वयंने भी किया । (२) जैन परंपरानुसार निश्चित आगमाध्ययन हेतु योगोद्वहनको स्वीकृत करते हुए भी, अज्ञानांधकारके गोलेमें प्रवेश सदृश योगोद्वाहक साधु द्वारा शिथिलाचार स्वरूप उन आगमाध्ययनकी उपेक्षाको निभानेकी वृत्तिको उद्घाटित करके सांप्रत द्रव्य-क्षेत्र-कालादिको ध्यानमें रखकर, ज्ञानालोकसे आलोकित बननेमें उद्यमवंत जिज्ञासुओंको बिना योगोद्वहन ही आगमाध्ययनकी सुविधा प्रदान करनेकी हिमायत की । अपने इस तत्कालीन, यथोचित स्वतंत्र मंतव्यानुसार आपने डॉ. हॉर्नलेको 'उपासक दशांग'के अनुवाद और विवेचनके लिए पर्याप्त सहयोग भी दिया । (३) इसके अतिरिक्त धार्मिक और सामाजिक सुधारके लिए स्व-रचित ग्रन्थ द्वारा मार्गदर्शन दिया । जैसे बाल-विवाह-पर्दाप्रथादिके लिए उनका मंतव्य है–**"ये प्रथायें मुस्लिम शासनकालसे ही प्रारम्भ हुईं थीं, इसके पूर्व उसे कोई जानता भी न था, अब वह समय व्यतीत हो चूका है, अतः अब उसे विदा कर देना ही उचित है । बालविवाह सर्वनाशका कारण है । इससे तन-मनका विकास रुक जाता है और व्याधियाँ कब्जा जमाती हैं । वीर्यकी परिपक्वता और पढ़ाईकी समाप्ति पूर्व विवाह न करें ।"** (४) जैनधर्मके उद्भव और विकासादिके संबंधमें विभिन्न मतों एवं व्यक्तियोंके विपरित विधानों या तार्किक दलीलोंके नीरसनके लिए अनेक पूर्वाचार्योंके शास्त्रीय संदर्भोंको उद्धृत करके सत्य प्ररूपणाको प्रकट करनेमें जरा-सी भी हिचकिचाहटका अनुभव नहीं किया ।(५) अन्य दर्शनकारों एवं इतर धर्मियोंके जैनधर्म पर किये गये झूठे प्रचार और गलत फहमियोंका भी पूर्णरूपेण प्रतिवाद किया ।

इस प्रकार उनके सामने जैसी जैसी विभिन्न परिस्थितियाँ आयीं, उनके अनुसार उन्होंने भिन्नभिन्न शैलियों में गद्य-पद्य साहित्य सृजन किया । जैसे–समाजको जागृत करके उनकी धार्मिक अज्ञानताको दूर करने हेतु **कथनात्मक शैलीमें** सृजन किया; तो सैद्धान्तिक प्ररूपणाओंके लिए **मंडनात्मक शैलीका** एवं जैनधर्म पर किये गये निराधार आक्षेपोंके प्रत्युत्तर हेतु प्रतिवाद रूपमें **खंडनात्मक शैलीका** प्रयोग किया गया है । जैन या अजैन–जन साधारणकी अनभिज्ञाताके विदारक **प्रश्नोत्तर (संवादात्मक) शैलीमें 'चिकागो प्रश्नोत्तर' (सर्वधर्म परिषद-चिकागो), के लिए तैयार किया गया निबन्ध** और **'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'** आदि ग्रंथों की रचना की । संस्कृतादि प्राचीन भाषाके अनभ्यस्तों लेकिन धर्म-सिद्धान्त और तत्त्व जिज्ञासुओंके लिए सरल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दीमें **पृथक्करण शैलीमें 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह'** ग्रन्थरत्नकी अनमोल भेंट दी हैं । तत्त्वत्रयीके अपरिचितोंकी जानकारीके लिए **वर्णनात्मक शैलीमें 'जैन तत्त्वादर्श' अर्थात् 'जैन गीता तुल्य' पवित्र और** जीवनोपयोगी महान ग्रन्थ प्रस्तुत किया; तो ग्रन्थराज **'तत्त्व निर्णय प्रासाद'** में यथार्थ वीतराग देवकी कसौटी और सिद्धिको पूर्वाचार्योंके ग्रन्थाधारित दर्शाकर सृष्टि क्रम-गायत्री मंत्रार्थ, श्वेताम्बर-दिगम्बर जैन और बौद्धधर्म विषयक प्ररूपणा, भ.महावीरकी पट्ट परंपरा और गृहस्थके सोलह संस्कारादि विविध विषयोंका विशिष्ट **विश्लेषणात्मक शैलीमें** आलेखन किया गया है । श्री दयानंद सरस्वतीजी, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद'-आदि तत्कालीन इतर दर्शनीय और माने हुए विद्वान साहित्यकारोंकी भ्रामक और विपरित प्ररूपणायें एवं यति श्री रत्नविजयजी और श्री धनविजयजीकी श्री अरिहंतभ.द्वारा की गई प्ररूपणाके उत्थापन स्वरूप की गई उत्सूत्र प्ररूपणाओंके प्रत्युत्तरके लिए एक महान संशोधककी अदासे अनेक आगम ग्रन्थों एवं पूर्वाचार्योंके शास्त्रोंकी अनेक शहादतोंको प्रस्तुत करनेवाले **'अज्ञान तिमिर भास्कर' और 'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२'** की ग्रन्थ रचना; किसी ईसाईके **"जैन मत परीक्षा"** ग्रन्थमें किये गये आक्षेपोंके प्रत्युत्तरमें **'ईसाई मत समीक्षा'**-आदि ग्रन्थोंमें अपने विशाल अध्ययन और अकाट्य तर्कशक्तिका परिचय करवानेवाली **तार्किक और समीक्षात्मक** शैलीका प्रयोग दृग्गोचर होता है ।

इनके अतिरिक्त **इतिवृत्तात्मक शैलीमें ऐतिहासिक कृति-"जैन मतवृक्ष"** चित्राकृति रचना–पटालेखन और बादमें पुस्तकाकारमें प्रस्तुतिकरण करके ऐतिहासिक साहित्यमें नूतन अभिगम पेश किया; तो **"सम्मति तर्क"** आदि जैसे श्रमसाध्य-दुर्बोध ग्रन्थके अध्ययन-चिंतन-मनन पश्चात् उसमें जो-जो संशोधन किये हैं, उन साक्षिपाठोंको वर्तमानमें अनेक विद्वानोंने अपने विवेचनमें उद्धृत किये हैं । इन सब गद्य विधासे परे पद्य रचनाओमें अनेक कथानकोंके जिक्रके साथ विभिन्न प्रकारसे परमात्माकी भक्ति, अनेकविध परमात्म-पूजाओंकी **विधानात्मक शैलीमें** प्ररूपणा, श्री अरिहंत देवोंके जन्मादि कल्याणक महोत्सवोंका **वर्णनात्मक शैलीमें** आलेखन, 'वीसस्थानक' या 'नवपदादि'की उत्तम आराधनाकी विधियोंके निर्देशन आदिमें आत्म समर्पण भाव; भाविकोंको जीवन कर्तव्योंका और आत्म-कल्याणकारी उपदेश प्रदान हेतु **उपदेशात्मक, वर्णनात्मक, विधानात्मक, शैलियोंका** प्रयोग किया गया है ।

इस प्रकार उनके साहित्यमें विविधतापूर्ण अनेक शैलियोंका समन्वय (कहीं कहीं एक ही ग्रन्थमें दो-तीन शैलियोंका संगुंफन) प्राप्त होता है । अत्र विस्तार भयसे सर्व शैलियोंके नामोल्लेखनसे ही संतुष्टि करके दो-एक शैलीके उदाहरण ही प्रस्तुत करना यथोचित होगा । अकाट्य तार्किकताके उदाहरण स्वरूप **"जैन तत्त्वादर्श"-परि. द्वितीय की वाद-चर्चा उल्लेखनीय है–"हम एक ही ब्रह्म मानते हैं, और सर्व माया जन्य है । ब्रह्म तो सच्चिदानंद एक ही शुद्ध स्वरूप है।"-वादिकी इस स्थापनाका प्रतिवाद करनेवाले उनके शब्द हैं- "हे अद्वैतवादी ! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत ही असमीचीन है, यथा-माया जो है सो ब्रह्मसे भेद रूप है वा अभेद रूप ? जेकर भेद रूप हैं तो जड़ हैं वा चेतन ? जेकर जड़ है तो फिर नित्य है वा अनित्य ? जेकर कहोगे अनित्य है तो अद्वैतमतके मूलकूं ही दाह करती है, क्युंकि जब ब्रह्मसे भेद रूप हुई-जड़ रूप हुई-नित्य हुई, फेरतो तुमने द्वैतपंथ आपही अपने कहनेसे सिद्ध कर लिया, और अद्वैत पंथ जड़-मूलसे कट गया । जेकर कहोगे कि अनित्य है, तो भी द्वैतता कभी दूर नहीं होगी । क्युंकि, जो नाश होनेवाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य रूप है, सो कारण जन्य है ..... अतः अद्वैत तीनोंकालमें भी कदापि सिद्ध नहीं होगा ।"**[१०] इसी प्रकारकी अनेक तर्क पुरःसर दलीलों एवं पूर्वपक्ष-उत्तरपक्षके विवादसे "जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके परिच्छेद द्वितीय, चतुर्थादि भरे पड़े हैं । अंततोगत्वा सुदेव–वीतराग, सर्वज्ञ, अरिहंत–सुगुरु एवं सुधर्मके स्वरूपको निर्णित किया है । अब, पद्यमें श्री अरिहंत भगवंतके जन्म बाद छप्पन दिक् कुमारिकाओं द्वारा भगवंतका जन्मोत्सव मनाया जाता है, पश्चात् चौसठ इन्द्रों द्वारा सुमेरु गिरि पर जन्मोत्सव किया जाता है, उसकी प्ररूपणा **वर्णात्मक शैलीमें 'स्नात्र पूजा' ग्रन्थमें** इस प्रकार की गई है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग भैरवीमें - "सुरपति सगरे जिनपति केरा, करे महोच्छव रंगे रे .....
थापी प्रतिबिम्ब जिनवर लेइ, पंच रूप करी संगे रे;
पांडुक वनमें शिला सिंहासने, जिनवर लेइ उछंगे रे .....
शक्र बिराजे त्रेसठ सुरपति, सुरगिरि मिले मन रंगे रे;
सामग्री सकल मिलावो सुरवर, खीरनिधि लावो गंगे रे..
मागध आदि तीर्थ उदकवर, औषधि मृत्तिका सुरंगे रे;
इंद्र इशान लेइ खोले प्रभुने, सोहमपति मनरंगे रे .....
वृषभ रूप करी, शृंगे जल भरी, न्हवण करे प्रभु अंगे रे ....."
राग खमाजमें - "कलश इंद्र भर ढारे जिणंद पर, कलश इंद्र भर ढ़ारे .....
सुर वनिता मिल मंगल गावे, आनंद हास्य अपार रे,
गंधर्व किन्नर गण सब करते, गीत-नृत्य-स्वर तार रे;
देवदुंदुभि मनहर वाजे, बोले जय-जयकार रे ..... जिणंद"[११] .....

पूर्वाचार्योंके प्रति दृढ़ आस्था और एकनिष्ठ भक्तिः--- भारत एवं भारतीयोंके लिए संक्रान्तिकालका प्रारम्भ, अशान्ति-अव्यवस्था और अविश्वासके वातावरणमें, धार्मिक ज़नून ही मानो जनताका जीवनमंत्र-सा बन चूका था । लेकिन, परम और चरम प्रकारकी अहिंसाको हार्दमें छिपानेवाले जैनधर्म द्वारा उस ज़नूनमें भी सात्त्विकताका अमृत घोलकर भारतीय संस्कृति और संस्कारकी चेतनाको उजागर करनेकी कोशिश की गई है । यद्यपि जिनशासन यतिवर्ग, स्थानकवासी, तेरापंथी, बीसपंथी, अजीवपंथी, श्वेताम्बर-दिगम्बर, मूर्तिपूजक आदि अनेक भागोंमें विभाजित हो चूका था, क्योंकि, आगम ग्रन्थ एवं पूर्वाचार्यकृत शास्त्रोंके स्वच्छंदतापूर्वक किये जानेवाले विपरित अर्थोंसे कुसंप, शिथिलाचार, अहंकारादि भंवरोंके मध्य शुद्ध आचारकी किश्ती भी डाँवाडोल हो गई थी ।

इन सभी परिस्थितियोंको माध्यस्थ दृष्टिबिंदुसे पर्यवेक्षण करनेवाले श्री आत्मानंदजी म.सा.की आत्मा पर करारी चोट पहुँची और उन परिस्थितियोंसे जिनशासनके उद्धार हेतु उन्होंने जीवन समर्पित कर दिया। सत्यवीर उस महापुरुषका जीवनमंत्र था—*सत्यका स्वीकार और असत्यका तिरस्कार या अस्वीकार* । स्थानकवासी संप्रदायके पोलके पर्देको आगमाध्ययनके झकोरने हटा दिया, सत्य प्रत्यक्ष हुआ, जिसका स्वीकार उन्होंने अपने साथियोंके साथ किया, और उस सत्यके प्रचार-प्रसारके बल पर जिनशासनके उद्धारके सफल आयोजन किये । उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि, **"मैं अपनी शक्ति अनुसार भव्य जीवोंके आगे सत्य सत्य बात प्रकट करूंगा, सत्यकी खातिर मैं किसीकी भी परवाह न करूंगा,"** और कदम आगे बढ़ाया। नये नये मतोंके उद्‌भव और खंड़न-मंड़नके उस युगमें उन्होंने जो कार्य किये, उनकी नींवमें पूर्वाचार्योंके यथेष्ट मार्गदर्शन, उनकी विचारधारा एवं प्ररूपणाका आधार दृश्यमान होता है ।

सत्यकी प्रतिमूर्ति, सर्वथा निरहंकारी, सामर्थ्यवान, दिग्गज विद्वान, तत्कालीन जैनसंघ और जैन समाजके नायक, विनयादि अनेक गुणोपेत सुरीश्वरजीको सदैव यह खयाल रहता था कि उनका प्रत्येक विचार, वाणी, वर्तन निरंतर जिनाज्ञानुसार ही हों । कहीं भी, जाने-अनजानेमें भी, उन्हें कोई त्रुटि या गलतिका एहसास होने पर वे तत्काल उस दोषका इकरार और क्षमा याचना करनेको तत्पर रहते थे, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी रचनाओंमें उल्लिखित वचन ही हैं । जैसे, *"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर"*में उस ग्रन्थको पूर्ण करते हुए लिखा है कि -**"इन सर्व प्रश्नोत्तरोंमें जो वचन जिनागमोंसे विरुद्ध-भूलसे लिखा गया हों, उसके लिए क्षमा प्रार्थी हुँ ।"** इसी तरह *"तत्त्व निर्णय प्रासाद"* ग्रन्थमें महत्तरा याकिनी सूनु श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.और कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.की उत्तम रचनाओंका अविकल-विवरणयुक्त भावार्थ लिखकर श्रद्धापूर्ण अगाध विद्वत्ताका, विश्वको परिचय दिया है । फिर भी लिखते हैं -**"महादेव स्तोत्र, अयोग व्यवच्छेद और लोक तत्त्व निर्णय-नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमें मिली नहीं, केवल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलमात्र पुस्तकें मिली हैं, वे भी प्रायः अशुद्ध हैं । परंतु कितनेक मुनियोंकी प्रार्थनासे यह बालावबोध किंचिन्मात्र भाषा लिखी है । इनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसे कुछ अन्यथा, या जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हों, तो हमें मिथ्या दुष्कृत हों, और अगर हमारी इस बालक्रीडामें भूल हो गई हों तो सुज्ञ जनों द्वारा उसका सुधार कर लेना चाहिए ।"-पृष्ठ १७७. इसी ग्रन्थमें आपने *'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित 'सोलह संस्कार विधि वर्णन'*-की प्ररूपणा की है । उसकी समाप्ति पर भी पृ.५०३में ऐसा ही इकरार और क्षमायाचना प्रकट की है ।

श्री आत्मानंदजी म.सा.की पूर्वाचार्योंके प्रति कैसी सम्मानयुक्त दृष्टि थी उसका प्रमाण *"अज्ञान तिमिर भास्कर"ग्रन्थमें भावसाधुके अधिकारमें* हमें मिलता है । उनकी प्ररूपणानुसार भावसाधु किसे कहना चाहिए? उसकी परीभाषा रूप विधान करते हैं–**"आगमानुसारी अर्थात् आगमके जानकार की आज्ञासे या उनकी निश्रामें और गीतार्थकी पारतंत्र्तामें अर्थात् गीतार्थ वृद्धोंकी आचरणानुसार आचरण करनेवालोंको भावसाधु कहना उचित है । पृ.२८७, २८८.** इन गीतार्थोंकी योग्यता विषयक विचारणाको प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं – **"जिन अनुष्ठानोंका सूत्रोमें कथन नहीं किया गया हैं, फिरभी करने योग्य हैं–चैत्यवंदना, आवश्यकादिवत्- और जिन कार्योंके लिए सूत्रमें निषेध न किया हों, फिर भी चिरकालमें रूढि रूप चला आता है–उन सभीके लिए गीतार्थोंके चित्तमें यथोचित चिंतन-प्रकाश विद्यमान होता ही है। संविज्ञ गीतार्थ, मोक्षाभिलाषी, तत्कालीन बहुत आगमोंके जानकार और विधिमार्गके रसिक, विधिको बहुमान देनेवाले, संविज्ञ होनेसे पूर्वसूरी-चिरंतन मुनियोंके नायकोंके निषेध किये आचरण अथवा जिन्हें सर्व धर्मी लोक मानते हैं उन्हें - जाज्वल्यमान अग्नि प्रवेशसे भी अधिक साहस सदृश-बिना विशिष्ट श्रुत या अवधि ज्ञानके सहारे उत्सूत्र प्ररूपणा अर्थात् सूत्र निरपेक्ष देशना स्वरूपमें प्ररूपणा करनेके लिए कोई भी समर्थ नहीं है ।"** पृ.२९४, २९५.

यही कारण है कि अमृतसरमें दिये गये आपके व्याख्यानमें आपने फरमाया था कि, **"जो लोग पूर्वाचार्योंके किये हुए यथार्थ अर्थको त्याग कर सूत्रोंके मनमाने अर्थ कर रहें हैं, एवं उन्हीं मनःकल्पित अर्थोंको सत्य समझानेका आग्रह कर रहे हैं, उन भद्र पुरुषोंका परभवमें क्या हाल होगा यह तो ज्ञानी महाराज ही बतला सकते हैं, परंतु इतना तो सुनिश्चित है कि उनके लिए जघन्य गतिके सिवा और कोई स्थान नहीं।"**[१२]

अहमदाबादमें श्री शांतिसागरजीम.से वादमें, केवल दो-चार प्रश्नोत्तरमें ही विजयश्री वरनेके मूलमें यही-गुरु परंपरासे ज्ञान प्राप्तिका माहात्म्य दर्शाते हुए उन्होंने श्री शांतिसागरजी म.को अनुलक्षित करते हुए स्पष्ट किया -**"यदि आप गुरुजनोंके पास रहकर इन सबका विनयपूर्वक अध्ययन करते तो आजकी यह स्थिति कभी पैदा न होती और नाहि श्रद्धाभावमें इस तरह खोट आती। स्थानांगादि सूत्रादिका तत्त्वज्ञान महज़ अक्षरार्थोंसे समझमें नहीं आता, बल्कि, गुरु महाराज जब उत्सर्ग-अपवाद समझाते हैं, सप्तभंगी, नय-निक्षेपादिसे विधिसूत्र, विवरण सूत्रादि शैलियोंका गहन अध्ययन-मनन करवाते हैं, तब जाकर कोई गीतार्थ होता है, केवल वैतनिक शास्त्री या पंडितोंसे अध्ययन करनेसे कोई गीतार्थ नहीं बनता ।"** कितनी विशद एवं गहन-गंभीर-गुर्वादिके प्रति श्रद्धा और सम्मान उनके हृदयमें था, यह इस प्रसंगसे अभिव्यक्त होता है । इसके अतिरिक्त तपस्वी महात्मन् प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजीम.की हस्तलिखित डायरीमें उन्होंने अपने गुरुदेव श्री आत्मानंदजी म.सा.की पुण्य स्मृतियाँ आलेखित की हैं, जिससे आचार्यदेवकी गुरुभक्ति और विनयादि गुण प्रकाशित होते हैं । तदनुसार जैन साधुवेशकी महत्ता, ज्येष्ठ दीक्षापर्यायीके साथ व्यवहार-वर्तन, लघु या वडीनीतिके लिए और आहारपानीके ग्रहणादिमें गुर्वाज्ञा प्राप्तिका महत्व, आहार-पानीकी विधि, ध्येयादि और गुर्वादिके प्रति विनय-व्यवहार-वर्तनकी रीति-नीतियोंका सुंदर मार्गदर्शन प्राप्त होता है ।

पूर्वाचार्योंके प्रति इस अखंड आस्था और भरपूर भक्तिका सिलसिला उनके जीवनके प्रत्येक पलके साथ क्षीर-नीरवत् हो गया था, अतएव जिन पूज्यजी अमरसिंहजीकी ताती नजरसे, त्रिलोचनके तृतीयनेत्र सदृश-विरोध, क्रोध,घृणादिके कारण तिरस्कार युक्त चिनगारियाँ श्री आत्मानंदजी म.सा. पर बरसती थीं, उन्हींके लिए अत्यंत स्नेहासिक्त श्रद्धासे, पूज्यजीके दिलको जरा-सी भी ठेस न पहुँचानेके लिए श्री आत्मानंदजी म.सा.ने अपने साथियोंको चेतावनी दी थी- **"खबरदार, पूज्यजी जब तक जीवित हैं, तब तक हमें ऐसा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई कार्य नहीं करना है, जिससे उनका मन, मारे दुःखके कराह उठें। जरा सोचो, हमारे यों ही संप्रदाय त्यागसे उनके दिल पर क्या गुजरेगी ?..... और फिर, फिरकेमें रहकर हमें कोई काम करना है तो क्या कम काम हैं ?"[९३] लेकिन जब उनको उन्हींके द्वारा ऐसे कार्य करनेके लिए प्रेरित किया जाता हैं कि जो पूर्वाचार्योंके कथनोंसे या प्ररूपणा-परंपराओंसे तो विपरित है, और जिससे पूज्यजी आदि उत्सूत्र प्ररूपकोंके साथ मेलजोल बढें एवं वैमनस्य उत्पन्न न हों, तब उनकी पूर्वाचार्योंके प्रति श्रद्धेय भक्ति फूट पड़ती है -**"पूज्यजी साहब ! आप जो कुछ फरमा रहे हैं वह ठीक है, परंतु क्या किया जाय ! आगमवेत्ता पूर्वाचार्योंके लेखोंके विपरित अब मुझसे प्ररूपणा होनी अशक्य है । मैं तो वही कहुँगा जो शास्त्र विहित होगा। शास्त्र विरुद्ध मनःकल्पित आचार-विचारोंके लिए अब मेरे हृदयमें कोई स्थान नहीं है ।"**[९४] *"तत्व निर्णय प्रासाद" के तैंतीसवें स्तंभ-पृ.५४०,५४१ में* आपने अन्य विदेशी विद्वानोंको- पाश्चात्य पंडितोंको भी स्वकल्पनासे नहीं, लेकिन पूर्वाचार्योंके रचित टीकादिकी सहायतासे ही जैनमतके शास्त्रोंके अनुवाद या विवरण करनेकी प्रेरणा दी है । *इसी प्रकार जैन-तत्वादर्श, अज्ञान-तिमिर-भास्कर, सम्यक्त्व शल्योद्धार, चतुर्थ स्तुति निर्णय भा.१.२, चिकागो प्रश्नोत्तर आदि* उनके प्रायः सभी ग्रन्थोंमें ऐसी ही पूर्वाचार्योंके प्रति आस्था और भक्ति प्रदर्शित हुई है ।

ग्रन्थोंमें पूर्वाचार्योंके प्रभावः--- व्यक्तिकी बुद्धि प्रतिभाकी आभा और चारित्रिक तेजप्रभा उसके नयनोंसे ही छलकती है, वैसे ही श्री आत्मानंदजी म.के पुरुषार्थी अध्ययनकी प्रतिभाका आलोक उनकी साहित्यिक कृतियोंसे छलकता है; जो उनकी अमर, मौनवाणी रूप वाङ्मयमें होनेवाली उनके हृदयस्थ भावोंकी मुखरित अभिव्यक्तियाँ हैं । श्री सुशीलजीके शब्दोमें -**"श्री आत्मारामजी म.के यथार्थ दर्शनकी तीव्र लालसाकी तृप्ति उनके विराट ग्रन्थ सर्जन - अक्षर देहमें ही हो सकती है..... उनके जाज्वल्यमान ज्ञान-वैभवका पयपान किये बिना उनका जो चित्र अंकित किया जाय वह सर्वथा अपूर्ण होगा..... उनके द्वारा निर्मित वाङ्मयके वास्तविक विवेचन हेतु एक स्वतंत्र ग्रंथ भी रचा जाये, तो भी, कदाचित् उनके प्रति पूर्णन्याय न हो सकेगा ।"**[९५] **"यह तो सिद्ध ही है की, किसी भी साहित्य रचनामें उस साहित्यकारकी अंतरात्माका यथार्थ चित्र पाठकके सम्मुख उपस्थित होता है ।"**[९६]

श्री आत्मानंदजी म.सा.के असाधारण साहित्यका महत्तम वैशिष्ट्य यह है कि, उनकी प्रत्येक रचना "नामूलं लिख्यते किंचित्"के सिद्धान्तको दृष्टि समक्ष रखकर की गई है । उनका अतिशय, विशद, वैविध्यपूर्ण, विषयगत समीक्षात्मक शैलीसे किया गया अध्ययन और उससे प्रतिफलित विशिष्ट वाङ्मयमें हमें स्थान स्थान पर अनेक अंगोपांग–गणधर रचित आगम–और पूर्वाचार्योंके पंचांगी रूप शास्त्रीय ग्रन्थों, वेद-पुराण-श्रुति-स्मृति-उपनिषद,न्यायशास्त्र-तर्कशास्त्र, बाइबल-कुरान, तौरेतादि अनेकानेक विविध वाङ्मयके यथोचित उद्धरण यथावसर प्राप्त होते हैं । उनकी कृतियाँ कोरी कल्पनाके पंखों पर स्वप्नील सवारी नहीं होती हैं, लेकिन, उसकी आधारशिला किसी न किसी धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होती है ।

यही कारण है कि उनकी साहित्यिक रचनाओमें अनेक पूर्वाचार्योंके संस्कारोंका असर प्राप्त होता है । (१) आचार्य प्रवरश्रीके समयमें राजकीय और सामाजिक अव्यवस्थाके सबब प्राचीन भाषाओंका स्थान नयी भाषाओंने लेना प्रारम्भ कर दिया था, अतःसामान्य जनोंका व्यवहार संस्कृत-प्राकृत भाषाओंसे छूट गया था, जिससे स्वधर्मका सच्चा स्वरूप और यथार्थ बोध पर अनभिज्ञताका अंधकार छा गया था । आपने इसका पर्यवेक्षण किया और एक नयी उदीयमान भाषा-हिन्दीकी ओर साहित्य प्रवाहको मोडा । जैसे श्री सिद्धसेन दिवाकरजीने तत्कालीन परिस्थितियोंको परखकर संस्कृतमें शास्त्र सृजनकी परंपराकी नींव रखीं; वैसे ही श्री आत्मानंदजी म.ने भी तत्कालीन जनभाषा-हिन्दीमें रचना करनेका प्रारम्भ करके, संस्कृत-प्राकृतादि विद्वद्भोग्य भाषाओंसे अज्ञात, अथवा अल्पज्ञात जिज्ञासुओं पर महदुपकार किया,जो वाङ्मयके लिए, उसको उपयोगी रूपमें विस्तरित करनेके लिए अत्यावश्यक सिद्ध हुआ । (२) बालजीवोंके उपकारार्थ जैसे ज्ञानांभोनिधि आचार्य श्री ज्ञानविमल सुरीश्वरजी म.सा.ने लोकभाषा गुजरातीमें *नवतत्व, दिवालीकल्प, अध्यात्म*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पद्रुम, ध्यानमाला आदिका बालावबोध किया, वैसे ही न्यायांभोनिधि श्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी अपने ग्रन्थराज *'तत्व निर्णय प्रासाद'में महादेव स्तोत्र, अयोग व्यवच्छेद, लोकतत्व निर्णयादि ग्रन्थोंका बालावबोध तथा 'ध्यानशतक' ग्रन्थका पद्यबद्ध विवेचन या 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित* गृहस्थ जीवनके सोलह संस्कारोंका वर्णन दिया है । (३) १४४० ग्रन्थोंके रचयिता, महान दार्शनिक श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीम.सा.के गुणानुराग प्रदर्शित करनेवाले उदात्त निर्घोष–**"पक्षपातो न मे वीरो, न द्वेषः कपिलादिषु; युक्तिमद्वचनं यस्य कार्यः परिग्रहः"**[१७] का प्रतिसाद हमें उनकी रचनाओंमें प्राप्त होता है । अपने *'ईसाई मत समीक्षा'ग्रन्थमें आपने फरमाया है,* **"कोई पुरुष या स्त्री किसीभी जातिवाला क्यों न हों, जो इच्छा निरोधपूर्वक शीलका पालन करता है वही श्रेष्ठ पुरुष गिना जाता है । ऐसे व्यक्ति बहुत मतोंमें और बहुत जातियोंमें अब भी मिल सकते हैं - क्या विरोध है ?"**[१८] (४) *'द्वादशार नयचक्र'* नामक अद्वितीय न्यायग्रन्थ कर्ता श्री मल्लवादी सुरीश्वरजी म. (विक्रमकी पांचवी शती), *प्रमाणनयतत्व लोकालंकार*नामक प्रसिद्ध न्यायग्रन्थ रचयिता श्री वादिदेव सुरीश्वरजी म.(वि.स.११४३ से १२२६), *न्याय विषयक शताधिक कृतिकर्ता* महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.सा.आदि प्राज्ञ पुरुषों सदृश न्यायशास्त्राधारित अकाट्य-युक्तियुक्त तार्किक शैली अर्थात् खंडनात्मक प्रतिपादनात्मक और समन्वयात्मक शैलीमें *"तत्व निर्णय प्रासाद", "अज्ञान तिमिर भास्कर", "जैन तत्वादर्श", "सम्यक्त्व शल्योद्धार" आदि* साहित्य कृतियाँ निर्माण करके अनेक प्रकारसे जैनधर्म-दर्शन एवं साहित्यकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध की है । (५) *"हीरप्रश्न (प्रश्नोत्तर समुच्चय)"-संक.-उपा.श्री कीर्ति विजयजी गणी,"सेनप्रश्न",श्री सकलचंद्रजी म.कृत "गौतम पृच्छा"*आदि अनेक ग्रन्थोंसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए आपने भी ऐसी ही प्रश्नोत्तर शैलीमें,-सामाजिक, भौगोलिक, खगोलिक ऐतिहासिक एवं जीवन व्यवहारके समसामायिक प्रश्नोंको दृष्टिपथ पर रखते हुए जैन सिद्धान्तों, रहस्यों, आगमिक प्ररूपणाओंको समाहित करनेवाली*"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर", "चिकागो प्रश्नोत्तर"*आदि ग्रंथरचना करके सुंदर मार्गदर्शन प्रस्तुत किया है । (६) पं.श्री जिनविजयजी गणि, अध्यात्म योगी श्री आनंदघनजी म.सा., कविवर श्री चिदानंदजी म.सा.आदिकी परमात्म भक्तिमें झूमती-लहराती, सर्वस्व समर्पण भाव भरपूर, भगवद् भक्ति युक्त वर्तमान चौबीसीके जिनेश्वरोंके गुणगान, कीर्तन, तीर्थंकरोंके आत्मिक वैभवके साथ याचक, दास्य या सेवक भाव रूप संपूर्ण समर्पित आस्थायुक्त धार्मिकता एवं दार्शनिकताको संगुंफित करनेवाली*"स्तवन चौबीसी"* रचनाकी छायातुल्य, वैराग्य और शांतरसमें पगी, विविध राग-रागिणिमें प्रवाहित विभिन्न भावधारा युक्त *"जिन स्तवन चौबीसी"* की रचना की । (७) विक्रमकी उन्नीसवीं शतीसे जैनकाव्य साहित्यमें *"पूजाकाव्य"*भी अपना अनूठा प्रभाव फैला रहा था, जिनको भाविक भक्तगण समुदायमें या वैयक्तिक रूपमें विविध राग और ढाल या चालोमें गाते गाते जिनभक्तिमें तदाकार हो जाते हैं । श्री वीरविजयजीम., श्री सकलचंद्रजीम., श्री पद्मविजयजीम., श्री रूपविजयजीम., श्री गंभीरविजयजीम. आदिने विविध विषयोंको और तीर्थों-चरित्रों आदिको आलेखित करनेवाली पूजाकाव्य कृतियाँ गुजरातीमें की थीं । हिन्दी भाषामें उसकी शून्यता निवारण हेतु उन्हीं रचनाओंसे प्रेरणा ग्रहण करके पूजा-काव्योंकी–*स्नात्रपूजा, अष्टप्रकारीपूजा, नवपद पूजा, बीसस्थानक पूजादिकी* रचना विविध छंद-ढाल-देशी और राग-रागिणियोंमें की । (८) श्री चिदानंदजीम. आदि अनेक जैन जैनेतर कविरत्नोंकी *"बावनी काव्य"* प्रकारकी रचनाओंके समकक्ष आपने भी *"उपदेश बावनी"* काव्य रचना करके तत्वत्रयी-देव, गुरु, धर्मतत्व-के स्वरूपालेखन एवं चेतन-आत्माके लिए उपदेशात्मक प्रबोध वचनोंकी प्ररूपणाकी हैं । (९) महान तपस्वी और महाकवीश्वर श्री उदयरत्नवि.म.सा.आदिकी *"बारहमासा"* प्रकारकी रचनाओंसे प्रेरित होकर श्री आत्मानंदजी म.सा.ने *श्री नेमिनाथ जिनस्तवन रूप "बारहमासा"* काव्यकी रचना की;तो उपाध्याय श्री विनय विजयजीम.सा.की *"सोलह भावना" वर्णित "शांतसुधारस"-भावना प्रबन्ध* सदृश आचार्य देवने सरल हिन्दीमें सुंदर काव्य शैलीमें *"बारह भावना"ओंका सज्झाय-काव्य रूपमें* आलेखन किया है ।

अखिल वाङ्मयके अवलोकनसे हमारे दृष्टिपथ पर उभरनेवाले दृश्यानुसार सकल जैन साहित्य सृजनके प्रायः परम्परित तथ्यालेखन द्वारा फनकार सिद्धान्तों एवं रहस्योंको अपनी मौलिक प्रतिभाके बल पर विविध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैली रूप रंगोंसे सजाता है । उत्कृष्ट साहित्य सर्जक श्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी इसी परम्पराका यथोचित-यथाशक्य परिपालनका यथास्थित-यथावसर निर्वाह किया है ।

कृतियोंमे ऐतिहासिकताः--- उन्नीसवीं शताब्दीका इतिहास राजनैतिक पराधीनताके स्वीकार और लुप्तप्रायः हो रहीं शुद्ध-सात्त्विक-सांसारिक, सामाजिक एवं धार्मिक परंपराओंके कारण घोर पतनकी करुण कहानी मात्र बन गया था । विश्व विख्यात भारतीय सभ्यताको वहशियाना, साहित्यको पागलोंका प्रलाप एवं सर्वविध निपुण पूर्वजोंकों **old fools** 'मूर्ख'के नामसे पुकारा जाने लगा था । पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य धार्मिक विचारधाराके निरंतर आक्रमण, भारतीय संस्कृतिकी जड़ोंको प्रतिक्षण खोखला कर रहे थे। नूतन शिक्षण प्रणालिके परिणाम स्वरूप युवावर्ग स्वत्वको विस्मृत करके विचार-वाणी-वर्तन-वेश और खान-पानमें पाश्चात्योंकी नकल करनेमें गौरव समझ रहे थे । यदि ऐसे वातावरणमें–उस समय श्री आत्मानंदजी म.सदृश महापुरुष जन्म न लेतें तो आज इस भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी कैसी दुर्दशा होती ! शायद हमारे लिए यह जानना असंभव हो जाता, कि, किसी एक समयमें भारत आध्यात्मिकादि अनेक श्रेष्ठ विद्याओंमें विश्वका गुरु (सर्वोपरि) रहा है ।

"अतीतका इतिहास वर्तमान प्रगतिका मुख्य साधन बन सकता है ।" इस वास्तविकता पर गौर करते हुए, आज इस आसन्न अतीतके इतिवृत्तों-ऐतिहासिक तथ्योंसे हमें बोध ग्रहण करना है, प्रेरणाके पीयूषपान करने हैं और साम्प्रतिक-कालमें तरोताज़ा स्फूर्ति प्राप्त करनी है; जिससे, तत्कालीन जो सर्वनाशका बीज, अपना घटाटोप-वृक्ष स्वरूप बनाकर वर्तमानमें भारतीय संस्कृतिको नष्ट-भ्रष्ट करनेमें अपनी समस्त शक्ति आज़मा रहा है, उसका मुकाबला करके भारतीय सभ्यताका और संस्कृतिका मस्तिष्क पुनः गौरवान्वित बनाकर उन्नत कर सकें ।

अतः यह बात निश्चित ही है कि अतीतका-इतिहासका अध्ययन वर्तमानका पथ प्रदर्शक बन सकता है, जिसका निर्माण महापुरुषों, महाननेताओं, महान धर्मगुरुओं एवं अन्य विशिष्ट व्यक्तियोंके चरित्र पर आधारित होता है ।

श्री आत्मानंदजी म.का जीवन भी इतिहासका एक स्वर्णिम पृष्ठ बन चूका है । उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिसे जो योगदान दिया है, वह निःशंक अपना अनूठा महत्व स्थापित करता है जिससे दो महत्वपूर्ण दृष्टिकोण दृश्यमान होते हैं ।*(१) अतीतके एतिह्य इतिवृत्तोंका उद्घाटन और (२) स्वयंके व्यवहार तथा उनके पारिवेशिक वृत्तांतोंसे निष्पन्न तत्कालिन इतिहास सर्जन* । यहाँ हम, उन्होंने अपनी कृतियोंमें जिन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विषयों, वर्णनों एवं वृत्तातोंका निरूपण किया है, उस पर दृष्टिक्षेप करेंगें, जिससे शैक्षणिक, साहित्यिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजकियादि सभी क्षेत्रोंके अंतर्गत ऐतिहासिक प्ररूपणाओंका परिचय प्राप्त हो सके ।

शैक्षणिक और साहित्यिक–यदि साहित्य शिक्षणका अंग है, तो शिक्षण, समाजका हृदय कहा जा सकता है । बिना शिक्षाके तो किसी भी समाजका अपना चैतन्यमय अस्तित्व बनाये रखना नामुमकिन है । उन्होंने पूर्वाचार्योंके रचित उन शिक्षा-प्रदाता ग्रन्थोंको हिन्दीमें अवतरित किया । आत्माके अहितकारी आर्त-रौद्र एवं उपकारी-हितकारी धर्म-शुक्ल–इस ध्यान चतुष्कका परिचय श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित *'ध्यान शतक* नामक संस्कृत ग्रन्थ आधारित दिया है, जिससे पाठक वर्गको इनके लक्षण-स्वरूप-परिणामादिका अभिज्ञान हो सके और आत्मिक अहितकारी कुध्यान-द्वयसे निवारण करके आत्मरक्षापूर्वक हितकारी सुध्यान-शुभध्यान-द्वयका आराधन करके आत्म कल्याण कर सकें । इसी *'बृहत् नवतत्त्व संग्रह'* ग्रन्थमें आगमोंके साक्षिपाठ देते हुए आपने अनेक जीवनोपयोगी सैद्धान्तिक तत्त्वोंको वर्गीकृत करके अपनी अनूठी 'कोष्टक' (तालिका) शैलीमें (Table type) इस प्रकार निरूपित किया है, कि अध्येताको उन्हें हृदयगत करनेमें सरलता बनी रहें

'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थमें आपने श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा., श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा., श्री वर्धमान सूरि म.आदिकी रचनाओं पर सरल हिन्दी भाषामें बालावबोध एवं विवेचन प्रस्तुत किये हैं; तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने *"जैन तत्त्वादर्श" "जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर" एवं "चिकागो प्रश्नोत्तर" आदि* ग्रन्थोंमें अनेक सैद्धान्तिक शंका-समस्यादिका निराकरण एवं प्राचीन वाङ्मयाधारित सामान्य विषयोंकी प्ररूपणा की हैं । *"सम्मति तर्क"* जैसे अत्यन्त कठिन-न्याय विषयक ग्रन्थोंमें संशोधन करके अनुसंधान क्षेत्रकी एक नयी क्षितिजको उद्घाटित किया है ।

दार्शनिक और धार्मिक–सामान्यतः दर्शन और धर्म–दोनों एक दूसरेसे भिन्न होने पर भी परस्पर पूरक-सहयोगी दृष्टिगोचर होते हैं; और साहित्य है इन दोनोंको जोड़नेवाली विधा । जिनशासनके पूर्वाचार्यों द्वारा प्राकृत, संस्कृत, मागधी, अपभ्रंशादि विविध भाषाओमें अमूल्य, तात्त्विक साहित्य-उन भाषाओंसे अनजान, तत्त्वगवेषकोंके लिए लाभ हेतु श्री आत्मानंदजी म.सा.ने सरल हिन्दी भाषामें ग्रथित करके पेश किया। वेदांतके अध्येता, इतिहास-पुराणादिके पाठक, उपनिषद या श्रुतियोंके पर्यवेक्षक, सर्व दर्शनोंके ज्ञाता और चिंतन-मननकर्ता समर्थ दार्शनिक, निहायत धार्मिक एवं मूर्तिपूजाके समर्थक आचार्य प्रवरश्रीने अपनी रचनाओमें सप्रमाण-युक्तियुक्त-जैनदर्शनके श्वास-प्राण तुल्य स्याद्वाद-अनेकान्तवाद जैसे गहन विषयको भी अपनी विशिष्ट शैलीसे अत्यन्त सरल बना करके प्रस्तुत किया है, जो सभीको उपयोगी और लाभकर्ता बना है एवं पाठकोंको जैन दर्शनका प्रायः संपूर्ण ज्ञाता बनाता है, यथा–वेदान्तमें जिस प्रकारसे मुक्तिकी मान्यता है, उन्हें श्रुतियाँ, उपनिषदादिके संदर्भयुक्त विवरित करके, मुक्ति विषयक प्राचीन मंतव्योंको विश्लेषित करते हुए *'अज्ञान तिमिर भास्कर'-खंड-१ में* अपने विचार पेश किये हैं - **"प्रथम तो वेदांतकी मुक्तिमें ही झगड़ा पड़ रहा है । व्यासजीके पिता बादरी-कितनीक वस्तुओंके अभावमें मुक्ति मानते हैं; उनका शिष्य जैमिनी, उनसे विपरित मोक्ष स्वरूप मानते हैं और व्यासजी उन दोनोंसे भिन्न तीसरे तरहकी मुक्ति मानते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि वेदोमें मुक्ति स्वरूप अच्छी तरहसे कथन नहीं किया है, अगर किया होता तो पूर्वोक्त तीनों आचार्योंका मुक्ति विषयक अलग-अलग मत न होता । अगर ऐसा कहो कि, वेदोमें ही तीन प्रकारकी मुक्ति कही हैं, तब तो वेद, एक ईश्वरके बनाये हुए नहीं किंतु तीन जनोंके बनाये हुए हैं और उनकी जैसी समझ थी वैसा उन्होंने लिख दिया । अतः मुक्तिके स्वरूपमें संशय होनेसे-ऐसी तीन प्रकारकी मुक्ति प्रेक्षावानोंको उपादेय नहीं । क्योंकि, तीनोंमें परस्पर विरोध आता है ।"**[१९]

इस प्रकार जो मानवभवका प्रमुख-सारतत्त्व **'मुक्ति'**में ही समरसता नहीं है, तब अन्य जीवन तथ्य निरूपणमें कैसे रगड़े-झगड़े होंगें, यह विचारणीय है । अब *ग्रन्थराज जैन तत्त्वादर्शमें ईश्वरकी सर्वशक्तिमानताको* ललकारते हुए, जो तर्क पेश किये हैं, वे वाकयी सरल, मनोरंजक, एवं अकाट्य तार्किकताके उदाहरण स्वरूप है - **"जब तुमने ईश्वरको सर्वशक्तिमान माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियाँ सफल होनी चाहिए । तब तो ईश्वर सुंदर पुरुष बन कर सुंदर स्त्रियोंसे कामक्रीड़ा करें, चोरी, विश्वासघात, जीवहत्या, अन्याय करें, झूठ बोलें, अवतार बनकर गोपियोंसे कल्लोल करें, शिर पर जटा रखें, तीन आंख बनायें, बैल पर चढ़ें, स्त्रीको वामार्द्धांगमें रखें, किसीको वरदान दें और किसीको श्राप दें ..... अपने आपको अज्ञानी समझें, सब कुछ खायें, पीयें, नाचे, कूदे, रोये-पीटे और साथ ही साथ निर्मल, निरहंकारी, ज्योति स्वरूप, सर्व व्यापक बनें–इत्यादि सर्व शक्तियाँ ईश्वरमें हैं कि नहीं ? अगर हैं, तब तो उनकी सफलताके लिए उसे उन सभी कार्योंको करना पड़ेगा, क्योंकि वे कार्य न करनेसे वे सर्व शक्तियाँ सफल न होंगीं और ईश्वर दुःखी होगा । अगर उपरोक्त सर्व शक्तियाँ उनमें नहीं तो वह सर्वशक्तिमान न होगा । अगर यह कहोगे कि योग्य शक्तियोंकी अपेक्षा सर्वशक्तिमान है, तब जगत् रचनेकी शक्ति भी अयोग्य ही है (इससे पूर्व जगत्कर्ताकी अयोग्यता सिद्ध की गई है) अतः वह भी परमात्मामें नहीं है ।"**[२०]

इस तरह ईश्वर जगत्कर्तृत्व, ईश्वर स्वरूप-लक्षण और गुण, अद्वैतवाद, कर्मवाद, वैदिकी हिंसा आदिके स्याद्वादाधारित स्वरूपोंको विश्लेषणात्मक खंड़न-मंड़नका निरूपण भी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे किया है; तो एकान्त और अनेकान्तको नदी और समुद्रके रूपक स्वरूपमें *"अज्ञान-तिमिर-भास्कर"* में प्रस्तुत किया है । जैसे श्री सिद्धसेन दिवाकरजीम.की द्वात्रिंशिका-४.१५ में दर्शाया है - **"सर्व नदियाँ समुद्रमें तो एक साथ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेश कर सकती हैं, परंतु समुद्र किसी भी एक नदीमें पूर्ण रूपेण नहीं समा सकता; वैसे ही स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) स्वरूप जैन दर्शन-समुद्र है जो किसीभी एक नदी रूप (एकान्त नय रूप) अन्य दर्शनोंमें पूर्ण रूपेण समुच्चयसे नहीं समा सकता । उन सर्व दर्शनोंके (नयवादोंके) समन्वय, समुद्र रूप जैन दर्शनमें तो प्राप्त हो जाते हैं ।"[२१]

ऐसे ही अनेक दार्शनिक और धार्मिक एवं सैद्धान्तिक तथ्योंके निरूपण उनके प्रायः प्रत्येक ग्रन्थमें कदम कदम पर बिखरे पड़े हैं, जो जैन दर्शन और धर्मकी श्रेष्ठता प्रमाणित करनेवाला सिद्ध हो सकता है, जिससे परवर्तीकालमें भी भव्यजनोंको आत्म कल्याणका मार्गदर्शन करते हुए उपकारक बन सकता है ।

सामाजिक–भारतीय समाजकी प्रतिमा पूजनकी परंपरा विश्वविख्यात है, जो मनोवैज्ञानिक तौर पर सफल प्रक्रियाके रूपमें मानसिक शांति-शक्ति और स्थिरताके लिए आवश्यक भी है । उसे केवल 'बूत परस्ती' कहकर उसका परिहास करना यह अकलका अजीर्ण है । सामाजिक श्रद्धाका यह अभिन्न अंग है । उस प्रतिमा पूजनके विरोधका विरोध करके, प्रतिमा पूजनको प्रमाणित करनेके लिए *'सम्यक्त्व शल्योद्धार'* ग्रन्थकी रचना की गई है; तो जैन समाजके श्री रत्नविजयजी म.द्वारा प्रतिक्रमण (जैनधर्मकी एक दैनिक आवश्यक क्रिया) में 'तीनथुई'के व्यवहारको प्रचलित करवानेवाले विधानरूप उत्सूत्र प्ररूपणाको अनेक आगमिक शास्त्रों एवं गीतार्थ पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंके संदर्भोंको उद्धृत करके *'चतुर्थ स्तुति निर्णय-भाग-१-पृ.१२१ और* १४० की रचना करके जैन समाजको सच्चे राह पर स्थिर होनेके लिए प्रेरणा दी है - **"हे भोले श्रावकों, तुम जो अपनी आत्माके कल्याणके इच्छुक हों, अरु परभवमें उत्तमगति, उत्तमकुल पाकर बोधिबीजकी सामग्री प्राप्त करनेके अभिलाषी हों तो तरन-तारन श्री जिनमत सम्मत हज़ारों पूर्वाचार्योंके चार थुइयोंके मतको छोड़कर दृष्टि-राग से श्री जिनमत विरुद्धमतको कदापि काले अंगीकार न करों न इसका विचार करो । ..... अपने जैनमतमें बहुत पंथ प्रचलित हो गये हैं ..... कोई विकारी जनोंके कथनसे पूर्वाचार्योंके कथनको कुयुक्तिसे तोड़-फोड़ करनेका झूठा हठ न करों ।"[२२]**

इसके अतिरिक्त *"तत्त्व निर्णय प्रासाद"* में मथुराके कंकाली टीलेके और अन्य शिलालेखोंके संदर्भोंको प्रस्तुत करके उनकी प्रतिलिपि और उनका अर्थघटन करके इतिहासालेखनमें अत्यावश्यक और अत्युपयोगी सामग्रीकी पूर्ति की है । ऐतिहासिकताका विशिष्ट महत्त्व उनके अंतरस्थ हो गया था, यही कारण है कि, उन्होंने विश्स्तरीय जैनधर्म यशध्वजा-कीर्तिपताकाको लहरानेमें श्री वीरचंदजी गांधीको चिकागो-विश्वधर्म परिषदमें भेजकर और योरपीय विद्वानोंको अत्युपयोगी-यथार्थ मार्गदर्शन देकर एवं विदेशीय भाषाभाषी पत्रपत्रिकाओंमें जैन धार्मिक सिद्धान्तादिका मुद्रण करवाकर सार्वभौम जैनधर्मकी शिराओंको समस्त संसारमें प्रचारित करनेके भगीरथ पुरुषार्थ करके अपनी विशिष्ट दुरंदेशीयता और धर्म प्रभावनाकी उत्कट उत्कंठाका परिचय दिया है।

इस तरह इनके गद्य-पद्य साहित्य और पत्र-पत्रिका-लेखादि अनेकविध साहित्यिक कृतियोंमें तो ऐतिहासिकताकी केवल झलकें मिलती हैं; लेकिन उनकी *"जैन-मत-वृक्ष"* रचना तो पूर्णरूपेण ऐतिहासिक कृति ही हैं; जिनमें साम्प्रत अवसर्पिणीकालकी वर्तमान चौबीसीके श्रीऋषभदेवसे श्री महावीर स्वामी पर्यंत और श्री सुधर्मा स्वामीसे श्री आत्मानंदजीम.सा.पर्यंतकी भ.महावीरकी समस्त पट्ट परंपरा, इतर धार्मिक मतोंकी परंपराका प्रारम्भ, और प्रारम्भके कारणोंका वृत्तान्त-समय-स्थानादि आलेखन; त्रेसठ शलाका पुरुषोंका इतिवृत्त और चरम तीर्थपतिके शासनके राजाओंकी तवारिखादि अनेक अत्युपयोगी एतिह्य सामग्रीका चित्रण करके तो आश्चर्यकी अवधि प्रसारित की है । इन सभीका सुविस्तृत परिचय पर्व चतुर्थमें करवाया गया है ।

जिस प्रकार पूर्वाचार्योंकी कृतियोंसे तत्कालीन तथ्यों और इतिवृत्तोंकी प्रामाणिक, शृंखलाबद्ध ऐतिहासिक सत्यताकी प्रतीति होती है, वैसे ही श्री आत्मानंदजी म.सा.के साहित्यमें भी उनके द्वारा की गई धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षणिक, साहित्यिक प्ररूपणाओंके आधार पर तत्कालीन परिस्थितियोंकी सिलसिलेवार तवारिख प्राप्त होती है । यद्यपि जैनेतर साहित्यमें आचार्य प्रवरश्रीकी उल्लेखनीय साहित्यादि अनेकविध सेवाओंका जिक्र नगण्य हैं, फिर भी वह अविस्मरणीय महत्व बनाये रखता है । उनके साहित्यके अध्ययनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष रूपमें हम यही कह सकते हैं कि तत्कालीन श्री दयानंदजीके वेदादि ग्रन्थोंके स्वच्छंद मतिपूर्वक, मनघड़ंत और भ्रामक अर्थघटनका उद्‌घाटन; राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद'के *इतिहास तिमिर नाशक'* ग्रन्थकी भ्रमजन्य गैर-समजुतीसे व्युत्पन्न धर्म संबंधी झूठी प्ररूपणाओंकी स्पष्टतायें; शंकर स्वामी आदि अनेकों द्वारा किये गये भ्रांतिजन्य खंड़नात्मक आक्षेपोंका प्रत्युत्तर; जैनधर्मकी ऐतिहासिक परापूर्वताका और शाश्वतताका-जैनोंकी जीवसेवा, जनसेवा और समाजसेवाका मानों प्रत्यक्ष चित्रण; तत्कालीन नूतन शिक्षा प्रचारके किंपाक फल सदृश परिणामोंका तत्कालीन समाजके धार्मिक, सामजिक, शैक्षणिक, साहित्यिकादि अनेकविध क्षेत्रोंमें प्रसारित गहरी निंदका जो चित्रण मिलता है वह वास्तवमें अपने आपमें तत्कालीन इतिहास स्वरूप ही है ।

निर्भीक सत्य प्ररूपणा :- लोक कल्याण और सत्यमार्गके पथिकोंकी सफलताका राज़ उनके ठोस ज्ञान, सत्य प्ररूपणा और किसी भी उपस्थित परिस्थितिका मरदानगीके साथ सामना करनेमें हैं । केवल सत्य और शिस्तके पूजारी नीड़र-वीर श्री आत्मानंदजी म.सा.का ढूंढक संतसे संविज्ञ साधुजीवनमें प्रवेश, उनकी उत्कृष्ट मनोदशा, निंदा-सामाजिक परिताप और विरोधके बवंड़रको सहते हुए भी, सत्य स्वीकारकी तमन्ना एवं नैतिक हिंमतका ही परिणाम माना जा सकता है, जो उनके जीवनके सच्चे माहात्म्यको स्पष्ट करता है । वैसे भी सच्ची साधनाके साधकका एकमेव लक्ष्य सत्य सिद्धान्तका अन्वेषण–पालन और प्रचार ही है, जिससे मिथ्या रूढ़ि, कुरिवाज और अंध परंपराओंकी शृंखलाको तोड़कर पूर्वाग्रह रहित नवनिर्माणकी प्रतिष्ठा हों । उन्हीं निर्भीक सत्य प्ररूपणाओंका उनके समग्र साहित्य पर भी जो साधारण प्रभाव बना रहा है, यहाँ उन्हें ही स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है ।

सत्यका साक्षात्कार होने पर उसके प्रचार हेतु सन्नद्ध उस निर्भीक वीरको गुरु जीवनरामजीने सर्व प्रथम यह समझाया था - **"वत्स ! अपने क्रान्तिकारी विचारोंको अपने मनमें रखो, क्योंकि, उन्हें प्रकट करनेका मार्ग कंटकाकीर्ण हैं । पढ़े लिखे साधु भी झूठी और शास्त्र विरुद्ध रूढ़ियोंके जालको तोड़नेमें असमर्थ हैं । वर्षोंकी आदत, चाहे वह नियम विरुद्ध भी हों, उन्हें छोड़नेका साहस किसी विरलेमें ही होता है । पंजाबमें पूज्यजी साहबका बहुत जोर है । सब लोग उनके पीछे हैं, और तुम अकेले हो ।" उसी समय आपने प्रत्युत्तर दिया था, -"मैं अकेला नहीं हुं गुरुदेव ! मेरे पीछे सत्यका बल है । लोगोंके लाख विरोध करने पर भी वे सफल नहीं हो सकेंगें । ..... आप किसी भी प्रकार की चिंता न करें, सत्यके पूजारीके सामने भयको कभी कोई स्थान नहीं मिलता ..... सत्यान्वेषीकी वाणी या लेखिनीको आज तक न कोई कुचल सका है, न कोई कुचल सकेगा ।"**[२३]

इस निर्भिकताका निर्घोष प्रायः उनकी सभी रचनाओमें प्राप्त होता है । जिस समय सारे भारत वर्षमें श्री दयानंदजीके एकेश्वरवाद और प्रतिमा-पूजन-विरोधका तूफान गर्जित हो रहा था, विदेशी शिक्षण नीतिने युवावर्गके दिलो दिमागको चकरा दिया था-ऐसे प्रतिकूल माहौलमें उन्होंने मूर्तिपूजाका मंड़न करके *'अज्ञान तिमिर भास्कर,'-प्रथम* खंड़में अनेक प्रमाणों और युक्तियुक्त तर्कादिके सहारे उसका सक्षम प्रतिपादन करते हुए ललकारा हैं–**"सत्यार्थ प्रकाशमें वेदीकी स्थापना, प्रोक्षणपात्र, प्रणिता पात्री, आज्य स्थाली और चमसा (चम्मच) के चित्र पृष्ठ ४१.४२ में दिये हैं । इस सम्बन्धमें मेरा कहनेका आशय यह है कि दयानंदजी अपने शिष्योंको समझाने वास्ते ऐसा चित्र दिखलाते हैं, अर्थात् आकृति (मूर्ति) का स्वीकार करते हैं और बाह्य रूपमें मूर्तिका विरोध करते हैं, यह कैसा न्याय है ! भला, यह तुच्छ मात्र आहुतिके पात्रोंको बिना स्थापनाके नहीं समझा सकते हैं, तो जो महात्मा-अवतार-सत्य शास्त्रके उपदेशक हो गए, ऐसे परमात्माकी प्रतिमाके बिना उनके स्वरूपका कैसे ज्ञान हो सके ? अतः उनकी मूर्ति माननी-पूजनी चाहिए ।"**[२४]

इस ग्रन्थके द्वितीय खंड़में भाव श्रावकके भावगत सत्रह लक्षणोंमें नवम् लक्षण है–*'गाडुरिका प्रवाहका त्याग'* । उसका विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है, **"इस अवसर्पिणी कालमें जब कोई भी धर्म प्रचलित नहीं था, तब श्री ऋषभदेव भगवंतने, सर्वप्रथम केवलज्ञान प्राप्त होने पर सर्वप्रथम 'आर्हतधर्मका' प्रवर्तन किया। तत्पश्चात् मरिचिके शिष्य कपिल द्वारा कापिलिय (सांख्य) मत, पतंजलिसे पातंजल मत, वेदान्त मत, (पूर्व-उत्तर) मीमांसक,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशेषिक, नैयायिक, बौद्धादि प्राचीन मतोंका और विक्रमकी द्वितीय सहस्त्राब्दि में अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत, वैष्णव-शैव-स्वामीनारायण-कबीर-नानक-दादू-भक्ति-गरीब-गोरख-रामसनेही-कूका आदि अनेक हिन्दु पंथ; आर्यसमाज-ब्रह्मसमाज-प्रार्थनासमाजादि अनेक मतांतर्गत विभिन्न संस्थायें; मुस्लिमोंका मुस्लिम और क्रिश्चनोंका ईसाई धर्म एवं जैनोंके दिगम्बर-जिनमें मूलसंघ, काष्ठासंघ, माथुरसंघ, गोप्यसंघादि तथा श्वेताम्बर-जिनमें मूर्तिपूजा समर्थक तपागच्छ, खरतरगच्छ, अंचलगच्छ, पूनमिया, नागपुरीय, पार्श्वचंद्र, पल्लिवाल आदि अनेक गच्छ और मूर्तिपूजा विरोधक तेरापंथी, बीसपंथी, गुमानपंथी, तोतापंथी, लूंपक (ढूंढक), कडुआ, बीजा, आठकोटि, अजीव, कालवादी, आदि अनेक पंथ या मत-मतांतरोंका प्रचलन विविध महात्माओं द्वारा किया गया हैं । इन पूर्वोक्त मतोंका विरोध है। ये सर्व मतवाले भेड़तुल्य-जैसे एक भेड़ भां भां करती है, तब सभी भेडें भां भां करने लगती हैं--नवीन मतोंको मानने लग गये हैं । गडुरिया प्रवाह समान एकके पीछे सर्व चलते हैं और हल्लो हल्लो करते फिरते हैं । कोई कसाई बन गया है, कोई महम्मदका कलमा पढ़ने लगा है । इन सर्वमेंसे किसी भी मतवाले शास्त्र पढ़कर तत्त्व तो निकालते नहीं और आत्माकी बरबादी करते हैं । बुद्धिमान् ऐसे गडुरिक प्रवाहको परिहरें।"[२५]

'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' में भी साधर्मिक वात्सल्य, रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयीकी भक्तिपूर्वक आराधना, सप्तक्षेत्र व्यवस्था, जैन-बौद्ध मतोंकी तुलना, कर्म-स्वरूप, मुक्ति-स्वरूप, विश्वधर्म स्वरूप-भेदादि विषयोंको विवेचित करते हुए आगमग्रन्थ-*'उत्तराध्ययन सूत्र'* जो श्रीमहावीर स्वामीजीकी अंतिम देशना संकलनके स्वरूपमें माना जाता है--उसे कल्पसूत्रकी मूलटीका *'संदेह विषौषधि'* और श्री भद्रबाहु स्वामीजीकी उत्तराध्ययन निर्युक्ति आदिके संदर्भ देकरके *उत्तराध्ययनके २-८-१०-२३ आदि अध्ययनोंकी* रचना या प्ररूपणाके संयोग-समय-स्थानादि दर्शाते हुए वर्तमानमें उत्तराध्ययन सूत्रको जो अंतिमदेशना संकलन स्वरूप माना जाता है, उसे *प्रश्नोत्तर-९४ में* अयुक्त सिद्ध किया है । एक परापूर्वकी श्रद्धेय मान्यताको इस तरह शास्त्रीय शहादतोंके आधार पर निराधार सिद्ध करके अपने स्वतंत्र, फिर भी प्रामाणिक और ठोस मंतव्यको धर्म श्रद्धालु समाजके समक्ष प्रस्तुत करना--किसी विरल व्यक्तित्वका प्रभाव प्रकट करता है ।

इस तरह *'तत्त्व निर्णय प्रासाद'* ग्रन्थमें विशेष रूपसे *गायत्रीमंत्रके अर्थ, मनुस्मृति, ऋग्वेदादिके* आधार पर विश्व सृष्टिक्रम, वेदोंकी अपौरुषेय रचनामें संदेह और परस्पर कथन भेद अर्थात् विरोधाभासके संदर्भ, आर्य-अनार्य (पूर्ववर्ती-परवर्ती) वेदके मूलपाठों और अर्थ विचारणामें विपरितता; जैनधर्मकी शाश्वतता सिद्ध करनेवाले उनके उद्‌गार दृष्टव्य हैं-**"हे भव्य ! जो अनंत तीर्थंकर अतीतकालमें हो गये हैं और आगामी कालमें होंगें उन सर्वकी द्वादशांगीमें तत्त्व विषयक रचनामें किंचित् मात्र भी अंतर नहीं । तत्त्व स्वरूप एक समान होनेसे जो शास्त्र भ.महावीरके शासनमें रचे गये हैं, वैसे ही श्री ऋषभदेव भगवंतके समयमें रचे गये थे । इसलिए जैनधर्मके पुस्तकारूढ़ सिद्धान्त सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध होते हैं । स्वयंकी--'तीर्थंकर नामकर्म'की पुण्य प्रकृतिके भुगतान हेतु (क्षय-निमित्त) देशना देनेका उन तीर्थंकरोंका कर्तव्य बन जाता है । उस पुण्य प्रकृतिके बिना क्षय, उनकी मुक्ति संभव नहीं है । अतः सभी नूतन तीर्थंकर भी वे ही प्राचीन सिद्धान्तोंकी ही व्याख्या करते हैं । इस प्रकार सैद्धान्तिक प्रवाहापेक्षया नवीन प्रतीत होनेवाला जैन दर्शनका साहित्य प्राचीन है-शाश्वत है ।"**[२६]

इस प्रकार हम अनुभूत कर सकते हैं कि, श्री आत्मानंदजी म.सा.ने अपनी रचनाओमें जो जिनेश्वर भगवंतकी एवं अपने पूर्वाचार्योंकी जो प्ररूपणायें सत्यकी कसौटी पर प्रमाणित हुईं, उन्हें स्वीकार करके किसीके भी अन्यायी दबाव या वर्चस्वके वशीभूत हुए बिना ही सत्यकी प्ररूपणा की । इसके अतिरिक्त भी उनके *'जैन तत्त्वादर्श,' चतुर्थ स्तुति निर्णय', 'ईसाई मत समीक्षा', 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' 'चिकागो प्रश्नोत्तर' आदि अन्य ग्रंथोंमें* भी ऐसे अनेक उदाहरण कदम कदम पर प्राप्त होते हैं, जो विस्तार भयसे अनुद्धृत ही छोड़ दिये गये हैं ।

धार्मिक निरपेक्षताः--विश्वकी विषैली समस्याओंके समाधानका प्रस्तुतकर्ता--विश्वैक्य भावनाका उद्‌घाटक; धर्म कट्टरता, धर्मोन्माद, और धर्मांधतासे मुक्ति प्रदाता एवं मनुष्य जीवनके शुद्ध और सत्य स्वरूपको स्पष्टतया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदर्शितकर्ता स्वच्छ दर्पण-तुल्य; तटस्थ, स्वतंत्र, निष्पक्ष अनेकान्तवाद और उसकी विचारधारा ही विश्वशांतिकी एकमात्र आधारशिला बननेमें सक्षम है । ऐसे सामर्थ्यवान-उदार हृदयी अनेकान्तवादकी जड़ें जिस धर्मरूपी वटवृक्षको जीवंत और हरा-भरा रखती हैं, वह धर्म और उसके श्रद्धावान् धर्मीका भी वैसे ही महामना-विशाल हृदयी होना विस्मयकारी नहीं । जिन्होंने पूर्वावस्थामें जैनधर्म प्रति द्वेषभाव रखा था, ऐसे जैनधर्मके पूर्वाचार्यों--श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी, श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी आदि अनेक विद्वानोंने भी जैन सिद्धान्त-स्याद्वाद और अनेकान्तवाद--के हार्दको पाकर और जैनधर्मको आत्मसात् करते हुए प्रमुदित होकर उद्घोषणा की--

"त्यक्तः स्वार्थः परहितरतः सर्वदा सर्व रूपं,
सर्वाकारं विविधमसमं, यो विजानाति विश्वम् ।
"ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरदः शंकरो वा हरो वा;
यस्याचिन्त्यं चरितमसमं भावतस्तं प्रपद्ये ॥"[२७]

ठीक उसी प्रकार उनके ही चरणारविंद पर चलनेवाले श्री हेमचंद्राचार्यजी म.भी ऐसी ही उदारताका परिचय करवाते हैं -

"न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो, न द्वेषमात्रादरूचिः परेषु ।
यशावदाप्तत्वपरिक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥"

इसी भावनाका प्रतिघोष आचार्य प्रवरश्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी अपनी रचनाओमें दिया है । *"जैनधर्मी द्वेष बुद्धिसे वेदोंकी निंदा करते हैं ।"*-इसके प्रत्युत्तरमें वे लिखते हैं, **"हे प्रियवर ! वेदोमें जो जो वैराग्योत्पादक-निवृत्तिमार्गके वचन(प्ररूपणायें) वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराणादिमें लिखे हैं, वे सर्व जैनमतवालोंको सम्मत हैं ..... परंतु जो हिंसक और अप्रमाणिक (प्रमाण बाधित) वचन हैं, वे जैनोंको सम्मत नहीं-असर्वज्ञ मूलक होनेंसे.....हे प्रियवर ! इस कालमें वैदिक मतवाले जैनोंको द्वेष बुद्धिसे नास्तिक कहते हैं, लेकिन जैनाचार्योंने जो जो वेदबाबत लेख लिखे हैं, वे सर्व यथार्थ तत्त्वके बोधवास्ते लिखे हैं, न तु द्वेष बुद्धिसें ।"**[२८]

आत्माका शुद्ध स्वरूप होता है, एकमात्र परमात्म स्वरूप, लेकिन अनादिकालीन आवरणोंकी मलिनताके कारण उद्भूत होती हैं, विश्वमें दृश्यमान उसकी विभिन्न दशायें-जिससे आत्माका बहिरात्म स्वरूप स्पष्टतया प्रकट होता है । जितने प्रमाणमें ये कर्मावरण घने होतेहैं, आत्माकी उज्ज्वलताको उतने ही प्रमाणमें कलुषित बनाते हैं, जिससे आत्माकी विभिन्न चित्र-विचित्र परिस्थितियाँ निर्माण होती हैं; और उन कर्मावरणोंकी जितनी अल्पता या मंदता होती हैं, आत्माको उतनी ही उत्तमता, महानता और श्रेष्ठता प्राप्त होती है, जिसे आत्माकी अंतरात्म दशाके नामसे पहचाना जाता है । उस अंतरात्म दशामें उसका व्यक्तित्व धार्मिक उदारता, व्यापकता, समन्वयवादिता एवं सहिष्णुतासे छलछलाता है, क्योंकि वीतराग-सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-परमात्माका चरणसेवक संकीर्ण, राग-द्वेष वर्धक, अनुदार या एकान्तिक दृष्टि रख ही नहीं सकता । उसके अंतरमें 'सच्चा सो अपना'की तरंगें निरंतर अठखेलियाँ करती रहती हैं । वह षड्दर्शनका आराधक बन जाता है । सर्व दर्शनोंके प्रति उसके दिलमें सहिष्णुता होती हैं । यही कारण है कि श्री आत्मानंदजी म.सा.ने *'चिकागो प्रश्नोत्तर' में, "सच्चे व्यापक और कल्याणकारी सिद्धान्त किसी व्यक्ति या समाजकी निजी पैतृक संपत्ति नहीं होते, बल्कि, जीवमात्रके लिए व्यवहार्य होते हैं"*-इस भावनाको प्रदर्शित किया है। उनकी ऐसी ही आंतर्दशाको अभिव्यक्ति प्राप्त है *'अज्ञान तिमिर भास्कर' की प्रस्तावना-पृ.७ में* -**"कोई पण निष्पक्षपाती तत्त्व जिज्ञासु पुरुष आ ग्रन्थनुं स्वरूप आद्यंत अवलोकशे तेने जणाशे के एक जैनना समर्थ विद्वाने भारतवर्षनी जैन प्रजानो भारे उपकार कीधो छे ।"**

ऐसी उत्तमता प्राप्त अंतरात्माके प्रबल धर्म पुरुषार्थके परिणाम रूप अंततोगत्वा एक समय ऐसा आता है कि कलुषित आत्मपात्र-स्थित सर्व अशुद्धियाँ खत्म हो जाने पर उसका शुद्ध-स्फटिक सदृश स्वरूप-परमात्म दशा-उसे प्राप्त होता है । इन्हीं बातोंको श्री आत्मानंदजी म.ने अपने *'अज्ञान तिमिर भास्कर'* ग्रन्थको समापन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए मुक्ति विषयक प्ररूपणा अनंतर **"चैतन्य स्वरूपः परिणामी कर्ता साक्षात् भोक्ता स्वदेह परिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकं दृष्टाश्चर्यमिति"**-*'तत्त्वालोकालंकार' सूत्रानुसार* आत्म स्वरूपोंकी प्ररूपणा की है।

संसारी आत्माकी एकमात्र ख्वाहिश सुख प्राप्ति, जिसे परिपूर्ण करनेके लिए वह विपरित विचार-वाणी-वर्तनका आश्रय लेते हुए, मोल लेते हैं-अनेक प्रकारके कर्मबंधनोंकों; लेकिन जब उन्हें उस भ्रमजन्य, दुःख-मूलक, भव-भ्रमणमें हेतुभूत बहिरात्म दशा या विभाव दशाका एहसास हो जाता है, उसके नुकशान जब नयनोंमें नर्तन करते हैं, तब तत्क्षण अपने आप ही उन्हें त्याज्य मानकर उनसे मुंह मोड़ लेता है और शाश्वत आत्मिक सुखको प्राप्त करवानेमें सहायभूत शुद्ध धर्म वृत्तिकी ओर मूड़ जाता है । इस प्रकार जागृत आत्मा समस्त मानव समाज और उससे भी एक कदम आगे सकल विश्व–जीवसृष्टिको एक सूत्रमें पिरोनेवाले *'वसुधैव कुटुम्बकम'की* भावनाको आत्मसात करके जैनधर्मानुसार अहिंसा, अमृषा, अस्तेय, अब्रह्म-त्याग, और अपरिग्रहके पंचामृत रूप सिद्धान्तोंके आश्रयमें रहकर हिंसा, झूठ, चोरी, चारित्र-हीनता, जातीय या वर्गीय असमानता और एकान्तिक स्वार्थांधता, स्वमत दुराग्रह आदि विषैले कुभावोंसे ऊपर उठकर सहनशीलता, सहिष्णुता, सत्यप्रेम, उदारता, चारित्रिक उदात्तता, निष्पक्षतादि सद्भावोंको प्राप्त उत्तम मानवीय कक्षाको (अंतरात्म दशाको) प्राप्त कर लेता है । मानव मात्रकी (जीव-मात्रकी) उस उत्कृष्ट आत्मिक, मानसिक और शारीरिक परिस्थितियोंकी कार्यान्वित शक्तिको ही 'धर्म' संज्ञा प्राप्त होती है । ऐसे धर्मका कोई भी नाम हों या कोई भी धाम हों-आठों याम वही आदरणीय, आचरणीय, आराधनीय, साधनीय हैं । इसीको अनेक प्रसिद्ध और महान विद्वान जैनाचार्योंने विविध रूपोमें प्रस्तुत करके जैनधर्मकी स्वतंत्रता, सहिष्णुता और तटस्थताके आदर्श उपस्थित किये हैं । उसी विचारधाराको आचार्य प्रवरश्रीने प्रवाहित किया है ।

अन्य देवोंके गुणावगुणोंका वर्णन करते हुए अरिहंत भगवंतोंकी श्रेष्ठता विषयक विचार प्रस्तुत किये हैं - **"अर्हंत परमेश्वर ही सर्वज्ञ और सच्चे धर्मके उपदेशक हैं, अन्य नहीं । जेकर कोई ऐसा कहें कि जैनोंने अर्हंतोंके वास्ते अच्छी अच्छी बातें अपने पुस्तकोंमें लिख दी हैं तो हम कहते हैं कि, अन्य मतवालोंको किसने रोका है, जो तुम अपने अवतारों वास्ते अच्छी बातें मत लिखो । परंतु जैसा जिसका चाल-चलन था, वैसा ही लिखनेवालोंने लिखा है । जैसे भतृहरिजीने अपने 'शृंगार शतक'में लिखा है -**

"शंभु स्वयंभु हरयो हरिणेक्षणानां, येनाक्रियंत सततं गृहकर्म दासाः ।
वाचामगोचर चरित्र विचित्रताय, तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ।।"[२९].

अतः श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी म., श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म., श्रीहेमचंद्राचार्यजी म. आदिकी धार्मिक निरपेक्षताको–धार्मिक गुणाश्रयी निष्पक्ष, तटस्थ, स्वतंत्र और स्पष्ट धारणाओंको–श्री आत्मानंदजी म.सा.ने मुक्तमनसे प्रशंसित किया है । वे गुणके पूजारी हैं–वेशके नहीं; उनकी श्रद्धा शुद्ध एवं सात्त्विक आचारोंके प्रति है, रूढ़ि या अनाचारोंके प्रति नहीं है । यही कारण है कि **"सच्चरित्र ही सच्ची मनुष्यताका मापदंड है ।"**–की उद्घोषणा करते हुए उन्होंने इतर धर्मके देवोंकी हीन चारित्रके कारण ही भर्त्सना की है और सत्प्रेरणा दी है - **"हम बहुत नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि कदाग्रह छोड़कर प्रेक्षावानोंको यथार्थतत्त्वका निर्णय करना चाहिए ।..... वेद, स्मृति, पुराण तथा जैन, बौद्ध, सांख्य, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, पातंजल, मीमांसकादि सर्वशास्त्रोंके कहे तत्त्वोंकी प्रथम श्रवण, पठन, मनन, निदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्ति प्रमाणसे बाधित हों, उसका त्याग कर देना चाहिए और युक्तिप्रमाणाबाधित हों, उसको स्वीकार कर लेना चाहिए । परंतु मतोंका खंड़न - मंड़न देखकर किसी भी मत पर द्वेष बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिए ।"**[३०] क्योंकि ज्ञानी महापुरुषोंने तो ऐसी राग-द्वेषयुक्त, स्व-परके गुणदोषोंके परीक्षणमें मोहांधता, स्वमताग्रहता, कूप-मंडूकता 'और दृष्टिरागयुक्त मुग्धताको स्वशक्तिके निरंतर दुर्व्यय रूप ही माना हैं । यथा -

"अहो विचित्रं मोहान्ध्यं, तदन्धैरिह यज्जनैः; दोषा असन्तो पीक्ष्यन्ते, परे सन्तोऽपि नात्मनि ।।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि, उनकी धार्मिक निरपेक्षता साम्प्रतकालीन धर्म निरपेक्षता सदृश–कथिर-कंचन, या उत्तम-अधम, साक्षर-निरक्षर या प्रधान-प्यून-सभीको तुल्य माननेवाली, सभीको एक इंड़ेसे भगानेवाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्यवादी नहीं है, न 'सर्वधर्म एकसमान'के मूर्खतापूर्ण प्रलापकी उद्घोषक, लेकिन विचक्षण-विलक्षण परिखोंकी गुण सापेक्ष-निरपेक्षताको लेकर प्ररूपित हुई हैं । अतः वे जिन अव्यवहार्य एवं परिहार्य योग्य, धार्मिक सिद्धान्तोंका कड़ीसे कड़ी आलोचनाके साथ खंड़न करते हैं, उन्हीं धर्मोंके सुंदर परिणाम युक्त वैश्विक सामाजिक और व्यावहारिक सेवाओंको साधुवाद देनेमें भी नहीं हिचकिचाये-यथा - **"अन्य धर्मोंने अपने धर्मग्रन्थमें ईश्वर भक्ति, दया, दान, सत्य, शील, संतोष, क्षमा, आर्जव, मार्दव, विनय, परोपकार, कृतज्ञतादि शुभ प्रवृत्तियोंका जो उपदेश दिया है, उससे मनुष्य जातिका इहलौकिक और पारलौकिक उपकार ही हुआ है, किंतु देव-गुरु-धर्मका विपर्यय बोध करवाया है, उससे मनुष्य जातिका बहुत नुकशान होगा"**[३१]

उनका खयाल था कि सर्व धर्मोंको अपने प्रचारमें **'शिवमस्तु सर्व जगतः'**के शाश्वत सत्य और प्रमाणिकता, सहिष्णुता, उदार दृष्टिबिंदु आदि अख्तियार करने चाहिए । अतः उन्होंने प्रेरणा दी है कि -**"बहुत मतवाले अन्योंको अपने मतमें मिलानेके लिए जो जबरदस्ती करते हैं, ड़र दिखाते हैं, अनेक प्रकारके नुकशान करते हैं या लालच देते हैं, यह तो अनुपयुक्त, असमीचीन और अवांछनीय हैं..... परंतु हम सभी मतवालोंको नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, अपनी जाति या मतमें कहे हुए बूरे कार्योंको (जो विश्व जीव सृष्टिके लिए हानिकारक हों) उसे छोड़कर अपने आपको योग्य धर्माधिकारी बनायें, सर्व पशु-पक्षी और मनुष्यों पर मैत्रीभाव धरें और देव-गुरु-धर्मकी परीक्षा करके यथार्थ शुद्ध-सच्चे धर्मकी प्राप्ति करें ।"**

उनकी इस सत्य-पक्षपाती धर्म निरपेक्षताके विषयमें श्री नागकुमार मकातीके विचार दृष्टव्य हैं - **"उन्होंने ढूंढक मतका त्याग करके संविज्ञ दीक्षा ग्रहण की, उसमें ढूंढकोंको उदासीन या संविज्ञोंको आनंदित होने जैसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि उसमें न ढूंढकोंकी हार है न संविज्ञोंकी जीत; लेकिन यह जय-पराजय सत्यासत्यका है, जो उस महापुरुषकी उत्कृष्ट मनोदशा, सत्य स्वीकारकी तमन्ना और नैतिक हिंमतका परिणाम माना जा सकता है ।"**[३२] यहाँ हमें उनकी स्वतंत्र-निष्पक्ष धर्मनिरपेक्षताके मूलाधार 'सत्यप्रियता' के दर्शन होते हैं ।

निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि, जन्मजात क्षत्रिय, परवरिश स्थानकवासी-फलतः ढूंढकमतकी दीक्षा स्वीकारनेवाले; लेकिन, सत्य दीपककी ज्योतकी ज्योतिसे आकर्षित होकर, बाईस वर्षका दीक्षापर्याय एवं साम्प्रदायिक मान-सम्मानयुक्त आकर्षक-लुभावनी जिंदगीको भी पतंगे सदृश उसमें स्वाहा करके, संविज्ञ शाखीय दीक्षा अंगीकृत करनेवाले उस सत्यधर्म-प्रिय महारथीने अपने साहित्य सुमनोंसे जैनधर्मके अनेकान्त-सापेक्षतायुक्त निरपेक्षताकी सुवासको वितरित करते करते सभीको सन्मार्गदर्शन देकर विश्व कल्याणकी उदात्त भावनाको प्रसारित किया है ।

सामाजिक सुधारः--- जैनसंघ समेत भारतीय समाज पूंजीवाद और सामन्तवाद, साम्यवाद और मार्क्सवाद, समाजवाद और साम्राज्यवाद, प्रगतिवाद और रूढ़िवाद, भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद आदि तत्कालीन अनेक वादोंकी चक्कीमें पीसा जा रहा था । बुद्धिवादिता, संकीर्णता और असहिष्णुताके प्राधान्यसे वर्गसंघर्ष प्रतिदिन फलने-फूलने लगा था । राजकीय-प्रशासकीय, सामाजिक एवं आर्थिक शोषणोंके निरंतर होनेवाले प्रहारोंसे सामाजिक शक्तियाँ तितर-बितर हो गयीं थीं । पाश्चात्य शासकोंकी पूंजीवादी-शोषक रीति-नीतियोंके कारण जातीय समानताके बिगुलों और भेरीनादोंके शोर बीच भारतीय समाज एक नयी ही आर्थिक वर्ग विग्रहतामें बूरी तरह उलझ गया था । परिणामतः धनवान अधिक धनवान होते जा रहे थे और निर्धन अधिक निर्धन बनते गये थे । ऐसी विषम उलझनोंमें फंसे समाजके राहबरके रूपमें भीष्म ब्रह्मचारी श्रीआत्मानंदजी म.सा.की सामर्थ्यवान् आंतरिक जीवन शक्तिका स्रोत जीवमात्रके, जन-जनके और सर्व जैनोंके मंगलमय जीवन और आत्मिक कल्याण हेतु सम्पूर्ण समर्पण भावसे प्रवाहित हुआ । उन असमानताओंको तिरोहित करने हेतु उन्होंने अपनी वेधक और दूरदर्शी दृष्टि एवं विलक्षण प्रतिभासे शोषणहीन-सभ्य और संस्कृत समाजके लिए कुछ क्रान्तिकारी और सुधारक विचार प्रस्तुत किये; जिसके अंतर्गत कोई भी धार्मिक महोत्सव (पूजन-प्रतिष्ठा-दीक्षादि) या शादी-ब्याह आदि जीवन व्यवहारमें होनेवाले लेन-देन रूप दहेज़ादिके विषचक्र, भोजन समारंभ या अन्य फिज़ूल खर्च पर नियमन; धनिकोंको सम्पत्ति प्रदर्शन अथवा इज्जत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामदारीकी झूठी प्रशंसाके चक्करोंसे बचनेका आदेश; अज्ञानता निवारण हेतु ज्ञान(शिक्षा) प्रचारादि यथार्थ पुरुषार्थकी प्रेरणा-आदिके प्ररूपक आचार्य प्रवरश्रीने अपने विचारोंको वाङ्मय द्वारा और वाणीको प्रवचनों द्वारा प्रकाशित करते हुए दोहरे उद्यम किये ।

स्वस्थ समाजकी ख्वाहिशको परिपूर्ण करने हेतु अपनी पैनी दृष्टिसे दृष्ट समाजकी ह्रास होती जा रही नैतिकताका मूल्य पुनः स्थापित करने हेतु पुरुषार्थी अभिगम आज़माना प्रारम्भ किया । उनकी विचारधारानुसार स्वस्थ और सुखी समाजके लिए श्रेष्ठ मार्ग है ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, धनवान-निर्धन आदिकी अंधकारमय भेदरेखाओंको धार्मिक एवं व्यावहारिक शिक्षा निःसृत अभेद दृष्टिके उज्ज्वल आलोककी अत्यधिक आवश्यकता है । किसी भी शिक्षित व्यक्तिका ज्ञानालोक उसे अन्योंके साथ प्यार-चाहतकी डगर पर कदम रखनेके लिए प्रेरणा देता है; विश्वके जीवोंको स्नेहासिक्त सरोवरमें स्नान करवाकर स्वच्छ और निर्मल आत्मीयताका निर्माण करनेमें सहयोगी बनता है, जिससे एक अखंडित समाजको स्वस्थ रूपसे खड़ा किया जा सकता है । क्योंकि *"सामाजिक संगठनमें वह सामर्थ्य है जो अन्योंके सामने स्वयंके मस्तिष्कको गौरवान्वित करके उन्नतता बक्षता है"*-इस नीतियुक्त सहजोक्तिको उन्होंने आत्मसात किया था । दूसरी ओर शिक्षाकी प्राप्तिसे दहेज़-वरविक्रय और कन्याविक्रयकी विकृतियाँ-बालविवाह, अयुक्त विवाहादि अनेक कुरूढियों-रिवाजों और अंधविश्वासका निराकरण होनेकी संभावना प्रस्तुत की ।

समाजकी संगठितताके लिए उन्होंने एक नया ही अभिगम अपनाया था । विचरते विचरते जहाँ कहीं गये, और कहीं फूट देखी, कहीं मन-मुटावका अनुभव हुआ या कहीं संघर्ष पाया, तुरन्त ही दोनों पक्षोंके दिलको तसल्ली प्रदान करनेवाली युक्तयुक्तियोंसे समझाकर संगठित होनेके लिए उत्साहित किया-यथा-**"तत्पश्चात् आपश्रीका आगमन लुधियानामें हुआ । यहाँके संघमें रही फूट और मतभेदकी दरारको पाटकर महाराजश्रीने श्री कलिकुंड़ पार्श्वनाथजीके मंदिर निर्माणकी योजना कार्यान्वित करवायी ।"**[३४] इसके अतिरिक्त वे मानते थे कि सामाजिक संगठनका निर्वाह अनुशासन बद्ध-शिस्तपालनसे ही हो सकता है, क्योंकि, अनुशासन-विहिन, विघटित या तितर-बितर, उच्छृंखल, बहुत बड़े समुदायका भी कोई महत्त्व नहीं । वह केवल जनसमूहकी भीड़से अधिक कुछ नहीं होता । शिस्तबद्ध, संगठित, व्यवस्थित समाज ही सामर्थ्यवान बन सकता है और विकासशीलता या प्रगतिशीलता प्राप्त कर सकता है-जैसे शिस्तबद्ध, अनुशास्ता-एक ही योद्धा विशाल जन समूहको नियंत्रित कर सकता है । उन्होंने जिस अनुशासनका आग्रह अपने समाजसे रखा है, स्वयंको भी अनुशासनकी डोरसे बाँधा है । इसी अनुशासनके पालनके आग्रहवश उन्होंने ढूंढ़क पंथ त्याग करनेके पश्चात्, अपने आप ही, स्वतंत्र रूपसे संविज्ञ सामाचारी नहीं अपनायी, लेकिन श्री बुद्धि विजयजी म.सदृश महात्माके चरणोमें स्वयंको समर्पित किया, उनका शिष्यत्व अंगीकृत किया । ज्ञानाध्ययनसे आगमाधारित पर्यवेक्षण करते हुए ढूंढ़क पंथकी भ.श्री महावीरके मार्गसे विपरितता ज्ञात होने पर भी जब तक श्री रत्नचंद्रजी म.सा.से परामर्श करके उसकी संमूर्च्छितताका निश्चय नहीं किया तब तक मूर्तिपूजादिकी उद्घोषणा, प्ररूपणा और उपदेशसे परे रहें । अनुशासन, उनके स्वयंके जीवनमें तो कदम कदम पर अपनी सत्ता प्रदर्शित करता है; उनके शिष्य समुदाय और भक्तगणसे भी उनकी यही अपेक्षा रहती थी । इसलिए अपने एक प्रशिष्यके अनुचित और शंकास्पद आचरणको सुधारनेके लिए चेतावनी देने पर भी और उसका असर न होनेपर, उसके गुरु (स्वयंके शिष्य) को जो पत्र लिखा उसका सारांश था-**"याद रखिये, अपने शिष्यको, सुधारिये, समझाइये और शुद्ध कीजिए, अन्यथा कल्याण नहीं है । 'मैं अमरसिंह नहीं' । यदि यह दशा रहती है तो मैं इसे निकालकर समुदायसे बाहर करता हूँ ।"**[३५]

समाजोन्नतिके लिए उनकी समीक्षक दृष्टि द्वारा पर्यवेक्षित जिनेश्वर भगवंत द्वारा प्ररूपित श्री जैनसंघके श्रावक-श्राविका (गृहस्थ) के योग्य बारह व्रतको उन्होंने अधिक उपयुक्त समझा था; जिनका ज़िक्र उन्होंने अपनी *जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व-निर्णय-प्रासाद, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर आदि* रचनाओमें विस्तृत रूपसे, विभिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे विश्लेषित करके किया है ।-यथा-विशेष रूपमें समाजमें भय और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंतकके वातावरण और विषय-कषायके निर्मूलन हेतु *प्राणातिपात विरमण (अहिंसा) व्रत*को सक्षम बताया तो द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ व्रत–*अमृषा, अस्तेय और अब्रह्म-त्यागव्रत*--के पालनसे व्यक्ति चारित्रनिष्ठ बनता है और अंततः समाजके नैतिक मूल्योंका ऊर्ध्वीकरण होते हुए समाजमें स्नेह, स्वार्थत्याग, और विश्वासका सुंदर और स्वस्थ पर्यावरण उपस्थित हो सकता है । साम्यवाद, साम्राज्यवाद, समाजवादादिके पचड़ोंसे पल्ला छूडानेके लिए और निर्धन-धनवानोंके मध्यकी गहरी खाईको समतल करनेके लिए केवल *अपरिग्रह या परिग्रह परिमाणव्रत*–सिद्धान्तका आचरण ही उपयुकत है ।

इसके अतिरिक्त गृहस्थका बारहवाँ व्रत *'अतिथि संविभाग'*की प्ररूपणा करते हुए साधर्मिक वात्सल्य और सुपात्र दानरूप 'अतिथि संविभाग'की महत्ताको दर्शाया है । साधर्मिक वात्सल्यकी भाव-ज्योत प्रज्ज्वलित करनेवाला 'अतिथि संविभाग'व्रत श्रावकके लिए आवश्यक फर्ज़ बन जाता है । प्रतिदिन कर्तव्य-'षड़ावश्यक' (प्रतिक्रमण विधि)के समय समग्र दिनमें या रात्रिमें लगनेवाले पापोंके प्रायश्चित्त (आलोचना) करते वक्त श्रावक अपने इस कर्तव्यमें उदासीनता या बेपरवाहीको आत्मसाक्षीसे निंदता है–यथा–

"साहुसु संविभागो, न कओ तव चरण करण जुत्तेसु ।
संते फासुअदाणे, तं निंदे तं च गरिहामि"[३६]

शेष छ व्रतोंके पालनसे उपरोक्त व्रतोंकी पुष्टि होते हुए आत्माका कल्याणकारी-निरामयपंथ पर प्रस्थान संभवित होता है । इन सभीका निरूपण करते समय आचार्य प्रवरश्रीके नयनपथमें, समाजमें दया, करुणा, संतोष-शील, संयम, परोपकार, आराधना-साधनादि उत्तम गुणोंके आविर्भाव-सद्भाव और स्थिरीकरणकी अपेक्षा ही झाँक रही थी । उनके अभिप्रायसे शिक्षा ग्रहणसे ही अज्ञानताको और स्वतंत्र एवं स्वस्थतापूर्ण विचारधारासे परंपरित कुरूढ़ियों-रिवाजों एवं प्रथाओंका निवारण हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त इस मानवभवके साफल्यको संभवित बनानेवाले धर्म पुरुषार्थको निरूपित करते हुए आत्म-कल्याणकारी मोक्षमार्गके प्रमुख साधन रूप स.दर्शन, स-ज्ञान और स.चरित्रकी आराधनाको प्रचलित करके समाज पर जो उपकार किया है, वह अवर्णनीय है । श्री सुशीलजीके शब्दोमें, **"जैनसंघके हित एवं श्रेयार्थ अपने व्यक्तित्वको तिलांजलि देनेवाले–उससे तादात्म्य साधनेवाले आत्मारामजीम.सदृश विरला महापुरुष वर्तमान जैन समाजने संभवतः प्रथम और अंतिम बार ही देखा था । जैन समाजके प्रबल पुण्यने ही उन्हें आकर्षित किया था । मानो कोई देवदूत, दीन-हीन प्राणियोंका त्राता-जीवन विधाता-संत संघका जाज्वल्यमान नक्षत्र-जैन संघके गगनमें अचानक उदित हुआ हों, और अपना जीवनकार्य पूरा करके कर्तव्यके मैदानसे चूपचाप अस्ताचलकी ओटमें चला न गया हों ।"**[३७] उनके साहित्यसे मानो स्वर उठते हैं-*'साहित्य जनताके सामाजिक और धार्मिक जीवनकी सेवाके लिए ही होता है ।'*-जो उन्होंने बड़ी तटस्थतासे अपनी वाणी और वर्तनसे प्रमाणित कर दिखाया था ।

श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यकी भाषाशैलीः–भाषा परिचय--मनुष्य ज्ञानी है, बुद्धिमान है, चिंतनशील है; जिसके ज्ञान-बुद्धि एवं चिंतनका ठोस आधार है प्रथम इन्द्रिय बोध, तदनंतर होता है चिंतन और पश्चात् मनन; जिसे प्रस्तुत करती है भाषा । भाषाके माध्यमसे ही जैन दर्शनके 'अनेकान्तवाद और स्याद्वाद' जैसे द्वन्द्वात्मक संघर्ष विदारक चिंतनके तात्त्विक समन्वयी रूपको प्रस्तुत किया जा सका है । तदनुसार 'संसार स्थिर भी है और परिवर्तनशील भी । सांसारिक प्रक्रियाओंके समान भाषा भी कभी सापेक्ष स्थिरत्वके साथ संश्लिष्ट प्रवाहोंके रूपमें प्रवहमान होती रहती है । अतः भाषा, जो समाजके विकासका साधन है, सामाजिक विकासके साथ स्वयं भी विकासशील है, क्योंकि **"भाषा ही विचारों और भावनाओंके आदान प्रदानका माध्यम होती है"** ।[३८] यथा-किसी एक समयमें उच्चवर्गीय संस्कृतिकी निधि तुल्य संस्कृत भाषा विचार-वहनका प्रबल माध्यम थीं, लेकिन भारतमें जब नये सांस्कृतिक और सामाजिक प्रवाहोंके आलंबनरूप नवीन भाषाओंका प्रचलन हुआ, तब वे आविर्भूत भाषायें पहलेसे भी अधिक विशाल मानव समुदायको प्रभावित कर सकीं, जिनमें शनैःशनैः चिंतनकी बारीकियोंको अभिव्यक्त करनेकी क्षमता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी सम्पन्न होने लगीं । मानते हैं कि अंग्रेजी विश्व भाषा है, फिरभी, किसी एक देशीय-एक भाषीय जातिकी अपेक्षा विश्वकी सर्व भाषाओमें संख्याकी अपेक्षा हिन्दीका स्थान अग्रीम ही माना जा सकता है- **"इस विशाल हिन्दी भाषी जनसमूहका जातीय गठन, उसकी जातीय भाषाका विकास, उसका सांस्कृतिक अभ्युत्थानादि उसकी साहित्यिक प्रगति सारे देशकी प्रगतिकी महत्वपूर्ण कड़ी है । समूची मानवताके संदर्भमें भी हिन्दी भाषा और साहित्यने जैसी प्रगति की है, वैसी संसारकी बहुत कम भाषा और उनके साहित्यने की होगी"।** [३९]

साहित्यमें भाषागत परिवेश–साहित्य पर सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशका जैसा प्रभाव और महत्त्व स्वीकार किया जाता है, भाषागत परिवेश भी उतना ही प्रभावक और महत्त्वपूर्ण होता है, जिनकी अपनी निजी विशिष्टतायें शैली निर्माणमें भी यथेष्ट योगदान प्रदान करती है । **(१) विविध बोलियोंका प्रभाव-** विशाल हिन्दी भाषी प्रदेशमें बोली जानेवाली अनेक बोलियोंमें बहुत श्रेष्ठ और लोकप्रिय साहित्य रचा गया है । इनके अतिरिक्त सभी बोलियोंका अपना लोकसाहित्य निधि भी अवश्य है, जो विविध जनपदोंकी वैविध्यता और समृद्धता समन्वित किये हुए हैं । उन समृद्ध बोलियोंके शब्द-संग्रह, संरचना और परस्पर अत्यधिक समानता हिन्दी भाषाको प्रभावित करती है । **(२) उर्दूसे समानता**-- नाम, सर्वनाम, क्रियापदादि मूल शब्द, कारक, वाक्य संरचनादि व्याकरणीक रूपादिमें अत्यधिक समानता हिन्दी और उर्दूके शिष्ट साहित्यिक रूपोमें भी प्राप्त होती है । **(३) प्रादेशिक भाषाओंका प्रभाव**-- भिन्न भिन्न प्रदेशोमें विभिन्न भाषासे प्रभावित हिन्दीके अनेक रूप विकसित हुए, यथा-कलकत्तिया, बम्बइया, पटनिया, बनारसी, पंजाबी, राजस्थानी, मालवी, मेवाडी आदि ।**(४) संस्कृत भाषा प्रभाव**– स्वयंकी विकासशील और सृजनात्मक क्षमता होनेसे हिन्दी भाषा द्वारा बोलचालकी भाषाके अधिक नैकट्यवान-स्वीकृत साहित्य महत्त्वधारी संस्कृत भाषा रूपोंके आधार भी स्वजाति प्रकृत्यानुसार ग्रहण किया गया है ।**(५) अंग्रेजी भाषा प्रभाव-** इन सबके अतिरिक्त हिन्दी भाषा पर अंग्रेजीका प्रभाव-जिसे तत्कालीन भाषा प्रवृत्ति पर प्रायः नगण्य ही माना गया है-यथा-कुछ ऐसे शब्द ही प्रयुक्त हुए जिनके लिए हिन्दीमें शब्द ही न हों, जैसे-कॉलेज, कलक्टर, नोट, रेल, स्टेशन, मोटर, फूट-इंच इत्यादि इनके अतिरिक्त अन्य प्रयोगोमें अंग्रेजीकी बदौलत संस्कृत-प्राकृत तत्त्वों पर ही आधार रखा गया था। कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्वान अवश्य विद्वत्ता प्रदर्शन-हेतु अंग्रेजी प्रयोग कर लेते थे; (प्रायः यही प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन वृद्धिगत होते होते वर्तमानमें सीमातीत हो रही हैं ।) लेकिन, तत्कालीन समाजमें उसे प्रशंसनीय नहीं माना जाता था।

तत्कालीन हिन्दी भाषा-खडीबोलीकी प्रधानता--हिन्दी भाषाका प्रारम्भ वैसे तो चौदहवीं शतीसे माना जाता है, लेकिन उसका अपभ्रंश मुक्त-शुद्ध स्वरूप ई.स.१८००के आसपास ही विशेष रूपसे दृग्गोचर होता है; जिनमें लल्लुलालजीके 'प्रेमसागर' और 'राजनीति'; सदल मिश्रके 'चन्द्रावती'; मुंशी सदासुखलालजी 'नियाज़'के 'सुखसागर' और सैयद इन्शां अल्लाखांकी 'राजा केतकीकी कहानी' आदिका योगदान आधुनिक गद्य साहित्यके प्रारम्भक या जनक रूपमें माना जा सकता है । हिन्दी साहित्यके आधुनिक कालके आविर्भाव रूप, भारतेन्दु युगके पूर्व उन हिन्दी लेखकों और उनके साहित्यके संबंधमें आ.श्री रामचन्द्र शुक्लजीका अभिप्राय है- **"मुंशी सदासुखलालजीकी भाषा साधु होते हुए भी पंड़िताऊपन लिए थी, लल्लूलालमें ब्रजभाषापन और सदल मिश्रमें पूरबीपन था । राजा शिवप्रसादजीका उर्दूपन शब्दोंसे लेकर वाक्य विन्यास तकमें घूसा था। राजा लक्ष्मणसिंहकी भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, पर आगरेकी बोलचालका पुट उसमें कम न था। भाषाका निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेंदुकी कलाके साथ ही प्रगट हुआ ।"**[४०] यह भी कहा जा सकता है, कि हिन्दी साहित्यके विकासमें इन सभी साहित्यकारोंके साथ ईसाई मिशनरीयोंका योगदान भी नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता, यद्यपि उनका एकमात्र उद्देश्य 'ईसाई धर्म-प्रचार'ही था । फोर्ट विलियम कॉलेजकी स्थापनासे भी हिन्दीकी उन्नतिमें यथासंभव सहायता मिली ।

भारतीय धर्म और दर्शन, सभ्यता और संस्कृति, आचार-विचार और व्यवहारादिके रक्षणार्थ एवं विदेशीय कुसंस्कारके प्रभावसे बचाव रूप होनेवाले धार्मिक और सामाजिक आंदोलनोंके उपक्रमके कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके सूत्रधार नेतागण या धर्म गुरुओं द्वारा जो विचारधारायें या चिन्तन प्रवाह बहाया गया, उससे हिन्दी भाषाके गद्यको वैविध्यतापूर्ण, सुचारु रूपसे सिंचन मिला, जिनमें विशेष रूपसे उल्लेखनीय इस युगके प्रवर्तक श्री भारतेंदु हरिश्चंद्रजीके साथसाथ 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, श्री दयानंदजी, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद', नवीनचंद्र रोय 'पंजाबी', श्रद्धानंद फिल्लोरी आदि माने जाते हैं । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दीके विकासमें भौगोलिक (क्षेत्रिय), राजनैतिक और सामाजिक एवं धार्मिक परिबलोंके प्रभाव महत्त्वपूर्ण बने हुए हैं । इन्हीं प्रभावोंके अंतर्गत साहित्यिक भाषाकी शैलियाँ निश्चित हो सकतीं हैं । यहाँ शैलीका अभीष्टार्थ है- विचारों एवं भावनाओंकी साहित्यिक विन्यास प्रविधि, जिसे निम्नांकित प्रकारोंमें वर्गीकृत किया जा सकता है (१) भाषा प्रकाराधारित (२) संरचना प्रविधि (३) गुणगत ।

आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमें भाषा शैली वैविध्य--- *(अन्य भाषाओंकी झलक)*- श्री आत्मानंदजी म.सा.साहित्यकारसे पूर्व धार्मिक नेता थे और उससे भी पूर्व वे आत्मार्थी साधु थे-भगवद् भक्त थे । अतः उनके साहित्यमें विविध शैलियोंके वैचित्र्यका संगुंफन सुंदर बेलबूटों सदृश दृष्टिगत होता है । जिनमें प्रमुख रूपसे भाषा प्रकाराधारित सधुक्कड़ी; संस्कृतनिष्ठ एवं अन्य बोलियोंसे प्रभावित तथा गुणगत-उपदेशात्मक, विवरणात्मक, प्रतिपादनात्मक, विश्लेषणात्मक, अनुवादात्मक, खंड़नात्मक, सरल-मधुर-रमणीयता लिए प्रसादात्मकादि शैलियोंके प्रयोगोंका विहंगावलोकन करवाया जा रहा है।

भाषा प्रकाराधारित- श्री आत्मानंदजी म.सा. जैन साधु होनेके नाते जैन साध्वाचारानुसार परिभ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे, परिणामतः आपकी वाणीमें खड़ी बोलीकी प्रधानता होने पर भी अनेक बोलियोंका प्रभाव झलकना सहज ही है । अतः उनकी भाषा अनेक बोलियोंसे मिश्र सधुक्कड़ी भाषा सदृश एवं तत्कालीन धर्म प्रचारकों और सामाजिक नेताओंके समरूप शैलीयुक्त, परिमार्जित होती जा रही, साहित्यके स्वरूपके स्थिरत्व हेतु प्रयत्नशील खड़ीबोली थी । **"पूरानी हिन्दीमें बहुतसे रूप, बहुतसे प्रयोग, आपसमें टकरा रहे हैं और भाषा भागीरथीमें बहते-टकराते अपना रूप संवारते जाते हैं ।"**[४१] जिस पर ब्रज-अवधि, राजस्थानी-गुजराती-पंजाबी आदि भाषाओंके प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होते हैं । श्री आत्मानंदजी म.सा. संस्कृतके प्रखर विद्वान होनेसे भाषाके साहित्यिक रूप गठनमें बोलचालकी भाषाके समीपस्थ एवं साहित्यिक स्तर योग्य संस्कृत भाषा रूपोंके खुलकर प्रयोग प्राप्त होते हैं । इनके अतिरिक्त वे स्वयं पंजाबी होनेसे उनके साहित्यमें पंजाबी प्रयोगोंकी बहुलता और कभी कभी उर्दूपनका प्रभाव भी अवश्य प्राप्त होता है। निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि उनकी रचनाओमें पंजाबीपन लिए हुए, ब्रज-अवधि-राजस्थानी-गुजरातीके प्रभावयुक्त प्राचीन हिन्दीके सभी लक्षण दृश्यमान होते हैं, जो तत्कालीन संवरती, सजती, परिमार्जित होती खड़ी बोलीमें हमें प्राप्त होते हैं । यथा-

किया रूप- **(१) भया, भये, भयी के साथ हुआ, हुई आदि अर्वाचीन प्रयोगोंकी बहुलता (२) 'न'के स्थानमें 'ण'कार प्रयोग (३) सुनाय, बहाय, पिलाय, धराय, वसाय, जिमायके साथमें सुनाकर, बहाकर, पिलाकर, बसाकर आदिके प्रयोग (४) गावत, आवत, जावत, सोवतके साथ गाता, आता, जाता, सोता आदिके प्रयोग, (५) देवें, होवें आदिके साथ दें, हों आदिके प्रयोग (६) आवें, जावें, गावें, खावें के साथ नूतन आयें, जायें, गायें, खायें आदिके प्रयोग, (७) कर, धर, देख आदिके साथ नूतन प्रयोग करके, धरके, देखके, (८) दीजो, लीजो, कीजो आदिके साथ नूतन प्रयोग दीजिए, लीजिए, कीजिए, (९) धायें के साथ दौड़के-शब्द प्रयोग, (१०) 'आनके'-के साथ 'आकर' के शब्द प्रयोग, (११) धसें-धसके के साथ घुसें, घुसके आदि रूप, (१२) संज्ञा रूपोंसे बननेवाले क्रिया रूपोंका प्रयोग-बखानना, स्नपन करना, कबूलना, निस्तारना, निषेधना, संकल्पना आदि, (१३) पद्यमें ब्रजभाषाके विशिष्ट प्रयोग निरखत, खेलावत, चितवत, बरनत, उपजत आदि;**

अव्यय रूप- **कित, कहु, कछुक, कितेक, केतई, कबहु, टुक, सेती, तईं, ताईं, एता, सोंही (सम्मुख), बिन, एता, जौं लौं..... तौं लौं, जद-तद, जहाँ-तहाँ, जिन-तिन, जैसे-तैसे, अरू-औ (और), नाल आदि....**

सर्वनाम रूप- **उस्के, उस्से, उन्होंसे, उन्होंके, उनोंने, जिस्को, जिस्से, तिनसे, तिसके, तितने, तिन्होंने, तिनमें,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिसका, तिसकाल, मैंनुं, मैंने, तैने, मुझे, तुझे, आदि;

बहुवचनमें पंजाबीके आ'कारान्त क्रियापद एवं संज्ञाओंके रूप- **करतियां, करनवालियां, जनातियां, होतियां,** जातियां, लड़ीयां, किताबां, गुरां, बातां, गल्लां, लोकां, वाणीयां, बत्तीसीयां, धर्मां आदि;

अब उपरोक्त प्रयोगोंके श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यमें-वाक्यप्रयोग रूपके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

"तद पीछे गुरु वासां (वासक्षेप)को सूरिमंत्रसे अभिमंत्रके;" "चरम जिनकी स्तुतिवालियां होवें तिनको वर्द्धमान स्तुति कहते हैं।"; "शुभ प्रकृतियाँ भी अस्मदादिकोंमें मोह सहकृत ही अपने कार्यको करती देखनेमें आती हैं"; "आद्य पक्ष तो है नहीं,"; "अथ गुण लिखते हैं ।"; "स्वभावमें अन्यथा जो होवें सो विभाव", "तिन तिन पर्यायोंको प्राप्त होता है वा छोड़ता है, अथवा अपने पर्यायों करके ही प्राप्त होवें वा छूटे अथवा द्रुसत्ता, तिसका ही अवयव वा विकार सो द्रव्य ।"; "जब बंध मोक्षका अभाव होवेगा ।"; "समय-समयप्रति पर-अपर पर्यायोंमें गमन करना"; "अब हमको जो कछुक कहना है ।"; "श्री परमगुरु कहते हैं, भो जैन ! तूने अतिमूढ़ने यह क्या कहा ?"; "तद पीछे कुमारिल भट्टके पास वार्तिक करवानेकी इच्छा उत्पन्न भई ।"; "कालमें भी यह वक्ष्यमाण हानी होवेगी सो ही बतावे हैं । समय समयमें अनंते अनंते द्रव्य पर्यायोंके वर्णादि शब्दसे वर्ण, रस, गंध, स्पर्श जे जे शुभ-शुभतर हैं उनोंकी हानी होवेगी, परंतु अहोरात्र तावन्मात्र ही रहेगा..... इसवास्ते असंख्य काल पहिले बड़ी अवगाहनाका होना संभवे है ।"; "उन्होंने जो अर्थ करा है सो अपनी बुद्धिसे करा है, न तु स्वबुद्धि उत्प्रेक्षित । जेकर स्वबुद्धि कल्पनासे अर्थ करें जावें तब तो असली सर्व सच्चे अर्थ व्यवच्छेद हो जावेंगें"; "जिस प्रतिमाका, स्थान-स्थित, ही का स्नपन कराया जाये तिसके वास्ते सर्व कुछ तहां ही करना"; "इस वृत्तके सर्व पुष्पांजलियोंके बिचाले धूपोत्क्षेप करना"; "मारणे योग्य नहीं हैं तिनको नहीं मारणा"; "गृह्य गुरुके पगोंमें पड़े"; "एकदा प्रस्तावे कृष्णजी तलाबके कांठे ऊपर तप तपते थे । तहाँ कोई तापसनी स्नान करती थी.....तापसनीने तैसा जानकर शाप दे के लोचन सरोग करा"; "जिस तिस मतके शास्त्रमें, जिसतिस प्रकार करके, जिस तिस नाम करके, जो तूं है सो ही तूं है परं यदि जेकर दूर हो गये हैं द्वेष, राग, मोह, मलिनतादि दूषण तो, सर्व शास्त्रोंमें तूं जिस नामसे प्रसिद्ध है, सो सर्व जगे तूं एक ही है, इस वास्ते हे भगवन ! तेरे तांई नमस्कार होवे ।"; "जो आपही कामाग्निके कुंड़में प्रज्वलित हो रहा है, तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सकती, इस हेतुसे, जो राग रूप(स्त्री) चिह्न करके संयुक्त है सो देव नहीं हो सक्ता है । पुनः जो द्वेष चिह्न(शस्त्र) करके संयुक्त है, वो भी देव नहीं हो सक्ता है ।" "और वेदोंकी उत्पत्ति जैनमतवाले जैसे मानते हैं तैसे 'जैन तत्त्वादर्श' नामक पुस्तकसे,.....ब्राह्मण लोक जिस तरें वेदकी संहिता उत्पन्न भई मानते हैं, तैसे महीधर कृत यजुर्वेद भाष्य और अज्ञान तिमिर भास्कर ग्रंथसे जान लेनी.....यह किंचित्मात्र ग्रंथ समीक्षा विषयक लिखा ।"; "दुष्यंतका लड़का भरते गंगाका तीरपर पंचावन अश्वमेघ किया है । ए भरतका महाकर्म दूसरा किने बी नहीं किया ।"; "ऐसी ऐसी कथा लिख छोड़ी है, तिससे कर्मका प्रयोजन बांधा है ।"; "तिनको लोगोंने बहुत धिक्कार दिया । तिससे वेदोंकी पुस्तक ढांक छोड़नेकी जरूरत हो गई, और कितनीक वेदोक्त विधियाँ त्याग दीनी ।"; "अनेक तरेंकी कथा, प्रशंसारूप लिखी है ।"; "कहां तक लिखें, बुद्धि जुवाब नहीं देती-यह दयानंदजीकी वेदोक्त मुक्तिका हाल है। और गौतमोक्त मुक्तिमें पूर्वोक्त दूषण नहीं, क्योंकि गौतमजी तो आत्माको सर्व व्यापी मानते हैं, इसवास्ते 'आणा' और 'जाणा' किते भी नहीं ।", "तिस प्रकृति सेंती बुद्धि उत्पन्न होती हैं ।"; "यह सत्त्वादिक, परस्परोपकारी तीन गुणों करके सर्व जगत व्याप्त है ।"; "उसकूं परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुलभ है, औ जो सुकृत करेंगें उनको भवांतरमें सुख यौवनादि पावणां सुलभ है।"; "अयोगी अंत समयमें जौनसी प्रकृति क्षय करके जो कुछ करता है,"; "आत्माके संयोगसे प्रगट भया है, अंग रागादिकोंको प्रकाश परिणाम शरीरस्थ होनेसे, खद्योत देह परिणामवत् तथा आत्मा संयोगपूर्वक शरीरस्थ होनेसे ज्वरोष्मवत्, अंगारादिकोंमें भी उष्णता है ।"

संरचना प्रविधि – उनकी भाषामें वर्तमानमें प्रयुक्त की जानेवाली परिष्कृत हिन्दीसे थोड़ीसी विषमता होने परभी विशिष्ट रूपमें समानता भी परिलक्षित होती है । अतः यह स्पष्ट है कि उनके साहित्यमें कुछ उदाहरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य प्राचीन हिन्दीके प्राप्त होते हैं फिरभी, उनकी भाषा तत्कालीन साहित्यकी समकक्ष भाषागत परिनिष्ठित सभी साहित्यिक वृत्ति-प्रवृत्तियाँ लिए हुए हैं । *तत्सम्बन्धी 'जैन तत्त्वादर्श' पूर्वार्धके 'प्रासंगिक वक्तव्य' में डॉ. बनारसीदासजीने* आचार्य प्रवरश्रीकी भाषा परत्वे अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि-**"प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषाके साथ यदि निश्चलदासजीके 'विचार सागर', और 'वृत्ति प्रभाकर' की भाषाको मिलान करें तो बहुत समानता नज़र आयेगी.....भाषा सौष्ठवमें भी कोई क्षतिनज़र नहीं आती.....श्री चिद्घनानंदजी कृत 'भगवद्गीता' और 'आत्मपुराण'की रचना शैली देखें । इनमें वाक्य रचना और विषय निरूपणमें एक ही प्रकारकी पद्धतिका अनुसरण किया गया है।"**

गुणगतः- उपदेशात्मक शैली - श्री आत्मानंदजी म.साधु थे-धार्मिक नेता थे, अतः जीवनोत्थान (आत्मकल्याण), धर्मोन्नति और समाजोत्कर्षके लिए उनके दिलमें असीम तमन्नायें हिलोरें ले रहीं थीं, जिसके लिए उन्होंने माध्यम बनाया था अपनी लेखिनीको और वाणी-विलास रूप प्रवचनोंको । यही कारण है कि उनके साहित्यमें हमें स्थान-स्थान पर उपदेश प्रसाद प्राप्त होता रहता है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं- श्री अरिहंत-देवाधिदेवकी अंगपूजानंतर अग्रपूजा-भक्ति-भावसे और द्रव्यसे श्रावकको; एवं भावसे साधुको करनेका विधान करते हुए उपदेश देते हैं- **"गीत-नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो भावपूजामें भी बन सकते हैं । सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करें, जैसे निशीथचूर्णिमें उदायन राजाकी राणी प्रभावतीका कथन है । पूजा करणेके अवसरमें श्री अर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करें-स्नान करती बखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करें, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोभा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करें, तथा पर्यंकासन-कायोत्सर्ग देखके सिद्धावस्थाकी कल्पना करें । इसमें छद्मस्थावस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था तीसरी साधुपणेकी अवस्थ। तहां स्नानकी बखत जन्म अवस्था कल्पें, माला, फूल, आभरण पहिराने वखत राज्यावस्था कल्पें, तथा दाढ़ी-मूंछ-शिरके बालोंके न होनेसे साधु अवस्था विचारें-इनमें साधु, केवली-मोक्षावस्थाको वंदन करें ।"**

व्यापार शुद्धि आदिकी प्ररूपणा करते हुए लिखतें हैं, कि, जो अर्थ चिंताका स्वरूप निर्दिष्ट किया है, वह अनुवाद रूप है क्योंकि धनोपार्जनकी चिंता इस संसारमें स्वतः सिद्ध है । वहाँ शास्त्रकारका उपदेश अनावश्यक है, फिर भी जो निरूपंण किया है वह विधेयात्मक है, क्योंकि शास्त्रोपदेश केवल अप्राप्त अर्थ (मोक्ष)की प्राप्तिके लिए होता है, शेष सर्व अनुवाद रूप है । अतः आजिविकाके सात प्रकारोंकी चर्चा करनेके पश्चात् श्रावकोंकी मुख्यवृत्तिका विवेचन करते हुए प्रेरणा करते हैं- **"जहाँ धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमें व्यापार करें.....कदाचित् अपने पास धन हानि हो जाये-धनकी अप्राप्ति हो जाये तो भी खेद न करें, क्योंकि खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूलकारण है । बहुत धन जाता रहें, तो भी धर्म करणेमें आलस न करें, क्योंकि संपदा अरु आपत् बड़े आदमीओंको ही होती है, सदा एकसरिखे दिन किसीके नहीं जाते हैं । पूर्व जन्म-जन्मांतरके पुण्यपापोदयसे संपदा विपदा होती हैं, इस वास्ते धैर्यका आलंबन श्रेष्ठ है। यदा अनेक उपाय करनेसे भी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी भाग्यवान्का आधार लेवें । जेकर बहुता धन हो जावे तदा अभिमान न करें, क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं- निर्दयत्व, अहंकार, तृष्णा, कठोरवाणी और वेश्या. नट-विटादि नीच पात्रोंकी वल्लभता-इस वास्ते बहुत धन हो जावे तो इन पांचोको अवकाश न देवें।"**[४३]

विवरणात्मक शैली- चौदह गुणस्थानकके विवरणानन्तर निःकर्मा (सर्व कर्मरहित) आत्मा उसी समय (जिस समय सर्वकर्म क्षय हुए उसी एक ही समयमें) किस तरह लोकांतमें पहुँच जाता है, इस आशंकाका प्रत्युत्तर देते हुए दृष्टान्तपूर्वक आत्माका ऊर्ध्वगमन विवरित करते हैं-**"सिद्ध-कर्मरहित-की ऊर्ध्वगति होती है,'कस्मात्' किस हेतुसे ?....जैसे कुंभकारका चक्र पूर्वप्रयोगसे फिरता है, तैसे आत्माकी पूर्व प्रयोगसे ऊर्ध्वगति होती है । जैसे माटीके लेपसे रहित होने करके तूंबेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसे ही आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है । जैसे एरंड फल बीजादि बंधनोंसे छूटा हुआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसे ही कर्मबंधके विच्छेद होनेसे सिद्धकी भी ऊर्ध्वगति होती है । तथा जैसे अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है तैसे ही आत्माका भी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है "**[४४]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपादनात्मक शैली– इस संसारकी सर्वश्रेष्ठ सारभूत, निःसीम और आत्यंतिक सुखमय, स्वरूपावस्थान रूप मोक्ष प्राप्तिके मार्ग, स्थानोंके लिए प्रयत्न करने हेतु मनुष्य उस समय आकर्षित होता है । जब उसे मोक्षका स्वरूप समझ लेनेके कारण उसकी उपादेयता सुहाती है, उसके लिए उसके दिलमें एक ललक पैदा होती है । अतः सर्वज्ञ प्ररूपित मोक्षकी उपादेयताका प्रतिपादन करते हुए आचार्य भगवंत लिखते हैं- **"सर्व वादियोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं, कारण कि (१) जब अत्यन्त अभावरूप मोक्ष होवे तब तो आत्मा ही का अभाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसको होवेगा ? ऐसा कौन है, जो आत्माके अत्यंताभाव होनेमें यत्न करें ? (२) जो ज्ञानाभावको मोक्ष मानते हैं, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि जब ज्ञान ही न रहा, तब तो पाषण भी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान है, जो अपणी आत्माको जड़-पाषाण तुल्य बनाना चाहे ? (३) जो सर्वव्यापी आत्माको मोक्ष मानते हैं-अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा सर्वव्यापी मोक्षरूप हो जाती है । यह भी कहना प्रमाणानभिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि आत्मा किसी प्रमाणसें भी सर्व लोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सकती है । इसकी विशेष चर्चा देखनी होवे तदा 'स्याद्वाद रत्नाकरावतारिका' देख लेनी (४) जो मोक्ष होकर फेर संसारमें जन्म लेनां, फेर मोक्ष होनां-यह तो मोक्ष भी काहेकी ? यह तो भांड़ोंका सांग हुआ । इस वास्ते यह भी ठीक नहीं । (५) जो मोक्षमें स्त्रियोंके भोग मानते हैं, सो विषयके लोलूपी है । तथा जो खरड़ ज्ञानीने मोक्ष कही है सो अप्रमाणिक है, किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है । इस वास्ते अर्हंत सर्वज्ञने मोक्ष कही है सो निर्दोष है और उपादेय है जो सत्‌रूप, ज्ञान-दर्शनरूप, असार संसारमें सारभूत, निस्सीम-आत्यंतिक सुख रूप, अनंत अतींद्रियानंद अनुभव स्थान, अप्रतिपाति, स्वस्वरूपावस्थानरूप है।"**[४५]

अनुवादात्मक शैली– अनुवादका शब्दार्थ या लक्षणार्थ है- तरजूमा, भाषांतर और उसका ध्वन्यार्थ होगा- अनुसरण (अन्यके अनुसार वाणी-वर्तन) । आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमें दोनों अर्थ सार्थकता प्राप्त करते हैं। आपश्रीने अपने *'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थमें तृतीय, चतुर्थ, पंचम स्तंभमें श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.तथा श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.के 'अयोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका', 'महादेव स्तोत्र', और 'लोक तत्त्व निर्णय'के अनुवाद* प्रस्तुत किये हैं । इनके अतिरिक्त उनकी विचारधाराओं और प्ररूपणाओंके अनुरूप ही अनेक सैद्धान्तिक विषयोंको अपने साहित्यमें स्थान दिया है, जो जैन साहित्यके गौरवको अलंकृत करने योग्य बन पड़ा है ।

विश्लेषणात्मक शैली– विश्लेषण अर्थात् वियोजन- किसी भी पदार्थ या घटक अथवा विचारधाराको विघटित-पृथक् पृथक् करके उसके विभिन्न रूपोंको समझाना । आचार्य प्रवरश्रीने कुछ आगमिक तथ्यों एवं प्ररूपणाओंको समझनेमें सरल बनाने हेतु और याद करनेमें तथा याद रखनेमें सहज बनाने हेतु इस शैलीका उपयोग अपने ग्रन्थोंमें किया है । यथा-*'बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थमें कर्मविज्ञान, चौदह गुणस्थानक, लेश्यादि* अनेक कठिन, संश्लिष्ट एवं संक्लिष्ट विषयोंको पृथक्करण करके तालिका स्वरूप बनाकर सरल रूपमें प्रस्तुत किया है । उसी प्रकार *'जैन तत्त्वादर्श' ग्रन्थमें वर्तमान चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरोंके जीवन-तथ्योंको* संक्षिप्तमें तालिका बनाकर इस तरह पेश किया है कि, याद रखनेके लिए तो आसान बन ही गया है, लेकिन उनके परस्पर तुलनात्मक अध्ययनके लिए भी सुविधाजनक और सुगम हो गया है । इस तालिकाधारित संस्कारित तालिका पर्व प्रथममें प्रस्तुत की गई है । *'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' ग्रन्थमें* **प्रश्न-७४ के प्रत्युत्तर रूप पैंतालीस आगमके पंचांगी स्वरूप-नाम, श्लोक प्रमाण, विषय निरूपणादि; प्रश्न-१५३ के प्रत्युत्तर रूप चौदह पूर्वकी पद संख्या, विशालता एवं विषय निरूपणके स्वरूपको; एवं प्रश्न-१५४ के प्रत्युत्तरमें 'पंच परमेष्ठि'का इतर दर्शनोंमें स्वरूप, प्रश्न-१५९ के प्रत्युत्तरमें गुरुका स्वरूप और उनकी योग्यायोग्यता एवं प्रश्न-१६० के प्रत्युत्तरमें विश्वके समस्त धर्मोंका पांच वर्गोंमें वर्गीकरण करके उसके स्वरूपको विभिन्न** तालिकाओंके माध्यमसे निरूपित करके, बालजीवों पर इतना महान उपकार किया है कि उन विषयोंको समझना, याद रखना, तुलनात्मक अध्ययन करना-एक ही दृष्टिमें एक ही समयमें संपूर्ण विषयको खोलकर रखनेमें अत्यन्त अनुकूलता हो गई है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषाकी सरलता– स्वभावतः भावाभिव्यंजनाके प्रमुख माध्यम-तत्कालीन भाषा द्वारा ही श्री आत्मानंदजी म.ने भी अपने अंतरके भावोंको प्रकट किया है । आपका लक्ष्य अपने अभिमतसे, धर्मभावनाओंसे, सामाजिक सुधारके स्वरूप आदिसे जन-जनको परिचित करना था, जिससे 'स्व'के साथ 'पर'के भी उपकारकी अभिलाषा सिद्ध हों । समाजोन्नतिमें सहयोग देनेमें समर्थ धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तोंकी गूढ़ता या दुरूहताको पाठकोंके मस्तिष्कका शृंगार बनाने हेतु, उन्होंने उस दुरूहताको सरल भाषामें संस्कारित करके अपने ग्रन्थोंमें निरूपित किया । उन ग्रंथोंके अवगाहक प्रत्येक स्तरके पाठकको प्रमुदित करनेकी क्षमता उनके ग्रन्थोंकी हैं । विशेषतः जो ग्रन्थ सामान्य जन एवं जैन समाजकी अभिज्ञता हेतु रचे गये हैं- *जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व निर्णय प्रासाद, अज्ञान तिमिर भास्कर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तरादिमें* उनकी भाषाकी सरलताका परिचय प्राप्त होता है । कहीं कहीं दार्शनिक विषयोंकी गूढ़ताके विश्लेषणमें, तद् विषयक पारिभाषिक शब्दोंके कारण श्लिष्ट प्रयोग हुए हैं जो विषयानुरूप होनेसे यथोचित ही भासित होते हैं, जिससे भाषाकी सौम्यता और संप्रेषणीयतामें किसी भी प्रकारका अवरोध नज़र नहीं आता है । परमात्माने 'अहिंसा धर्म'की प्ररूपणा किस प्रकार की है, उसे स्पष्ट करते हुए आप फर्माते हैं- **"वेद हिंसक शास्त्र हैं । (यज्ञमें) बिचारे बेगुनाह, अनाथ, अशरण, कंगाल, गरीब, कल्याणास्पद, ऐसे जीवोंको मारणा और मांसभक्षण करणा और उसे धर्म समझना यह मंद बुद्धियोंका काम है.....करुणारस भरे, सत्यशील करके संयुक्त, निर्हिंसक, तत्त्वबोधक, सर्व जीवांके हितकारक, पूर्वापर विरोध रहित, प्रमाण युक्ति सम्पन्न, अनेकान्त स्वरूप, 'स्यात्' पद करी लांछित, परमार्थ और लौकिक व्यवहारसे अविरुद्ध--इत्यादि अनेक गुणालंकृत भगवान् अर्हंत परमेश्वरके वचन जो हैं, ये पूर्वोक्त लक्षण वेदोंमें नहीं हैं.....जो कोई ब्राह्मणादि दयाधर्म मानते हैं, और प्ररूपते हैं, वे वेदोंके विरोधी है, क्योंकि वेदोंमें दयाधर्मकी मुशक भी नहीं है । जेकर वेदोंमें अहिंसक धर्मकी महिमा होती तो (शंकरस्वामी) सौगतको काहेको कहते, 'अहिंसा कथं धर्मो भवितुमर्हति ?' अर्थात् अहिंसा कैसे धर्म हो सकता है, अपितु हिंसा ही धर्म हो सकता है ।"**[४६]

मोक्षमार्ग और संसारका स्वरूप वर्णन करते हुए आपने किया हुआ जिनाधीशके वचनोंका स्वरूप निरूपण इस प्रकार है- नवतत्त्वोंके अति संक्षिप्त वर्णनके पश्चात् आप लिखते हैं– **"इन पूर्वोक्त नव ही तत्त्वोंका स्याद्वाद शैलीसे शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यक् दर्शन है; इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसे जानना तिसका नाम सम्यक् ज्ञान है और सत्तरें भेदें संयमका पालना तिसका नाम सम्यक् चारित्र है- इन तीनोंका एकत्र समावेश होना, तिसका नाम मोक्षमार्ग है । जड़ और चैतन्यका जो प्रवाहसे मिलाप है सो संसार है । यह संसार प्रवाहसे अनादि अनंत है और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षणविनश्वर है, इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था तैसा ही हे जिनाधीश ! तैंने कथन करा है।"**[४७]

भाषा माधुर्यः– भाषाकी कर्णकटुता या कठोरता स्वभावतः श्रोताको वाङ्मयसे विमुख बनानेका सामर्थ्य रखती है, जबकि भाषाका माधुर्य कृतिकारको लोकप्रियताका ताज़ उपलब्ध करवाता है । श्री आत्मानंदजी म.सा.की प्रायः सर्व कृतियोंकी एकसे अधिक आवृत्तिका होना और इतर भाषाओंमें अनुवादित होना ही उनकी लोकचाहनाको अभिव्यक्त करता है, जो उनके विनोदप्रिय मधुरतायुक्त व्यक्तित्वका परिणाम हैं । **"यद्यपि आपने गूढ़, विवादग्रस्त, धार्मिक और दार्शनिक विषयोंका अपने ग्रन्थोंमें प्रतिपादन किया है, तथापि भाषा पद्यके समान रमणीय है । आपकी हिन्दी भाषामें सरलता, मधुरता और प्रसादादि गुण स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं ।"**[४८] *इसको प्रतिपादित करता है श्री दयानंदजी के किये गये आक्षेप–'जैनियोंमें विद्या नही है, न कोई ज्ञानी है'- का यथोचित प्रत्युत्तर । आप लिखते हैं-*"**यह लिखना ऐसा है जैसा मारवाड़में पद्मिनी स्त्रीका होना । जैसे मारवाड़में एक काली, कुदर्शनी, दंतूरा, चिपटी नासिका बिभत्स रूपवाली किसी स्त्रीको कोई पूछे कि तुम्हारे देशमें पद्मिनी स्त्रीके बारेमें सुना है, तिसको तुम जानती हो ? तब वो दीर्घ उच्छ्वास लेकर कहती है, मेरे सिवाय अन्य पद्मिनी स्त्री कोई नहीं । मुझको बहुत शोक (खेद) है कि मेरे समान कोई पद्मिनी न हुई है, न होगी। मेरे पीछे पद्मिनी स्त्री व्यवच्छेद हो जावेगी । भला, यह बात कोई सुज्ञ जन मान लेवेगा कि, जैनमतमें वा अन्य मतमें कोई भी विद्वान नहीं हुआ है ?"**[४९] किस प्रकार हलके व्यंग्यको कसते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रामक-मिथ्या प्ररूपणाका मधुरतासे प्रतिकार रूप खंड़न किया है, जो कुछ रमूजके साथ पाठकको सत्यकी प्रतीति करवाता है ।

भ.श्रीमहावीरजीकी प्ररूपणासे विपरित सिद्धान्ताधारित जैनधर्मकी अनेक शाखा-प्रशाखाओंका विवेचन करते हुए भव्य प्राणियोंको मनुष्य जन्मकी दुर्लभता चिह्नित करते हुए उसकी उपयुक्तताको मधुर भाषामें व्यक्त करके प्रेरणा करते हैं– **"ऐसे कुमतियोंके मतोंके आग्रहसे दूर होकर हेयोपादेयादि पदार्थ समूहके परिज्ञानमें जीवको प्रविण होना चाहिए, और जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकादिकों करके पीड़ितको स्वर्ग-मोक्षादि सुख संपदके संपादन करणेमें अबंध कारण ऐसा धर्मरत्न अंगीकार करना उचित है, क्योंकि इस अनादि अनंत संसार समुद्रमें अतिशय करके भ्रमण करनेवाले जीवांको प्रथम तो मनुष्य जन्म, आर्यदेश, उत्तम कुल, जाति-स्वरूप, आयु पंचेन्द्रियादि सामग्री संयुक्त पावणा दुर्लभ है । तहां भी मनुष्यपणेमें अनर्थका हरणहार-सत्-धर्म पावणा अति दुर्लभ है, जैसे पुण्यहीन पुरुषको चिंतामणी रत्न मिलना दुर्लभ है ।"**[५०].

इस प्रकारके मधु-रस-सिकरोंकी वर्षा उनकी कृतियोंमें स्थान-स्थान पर प्राप्त होती है । विशेषतः गंभीर और कठिन विषयोंको सरल और सहज-लोकभोग्य बनाने हेतु उन्होंने इस मधुर भाषाका प्रयोग किया है जो उनकी औपपातिक बुद्धि, संप्रेषणीय कौशल और विनोदप्रिय प्रकृतिके अनुरूप ही है ।

प्रथम जैन हिन्दी लेखकः-- हिन्दी भाषा साहित्यके आदिकालसेजैन साहित्यकी श्री वृद्धि पर्याप्त प्रमाणमें उपलब्ध होती है, लेकिन आदिकालीन और उसके परवर्तीकालीन अन्य साहित्यकार सदृश जैन कृतिकारोंकी प्रवृत्ति भी पद्यकी ओर ही विशेष थी–जो साहित्यको कंठस्थ रखनेकी जैन संस्कृतिकी प्रणालिकाके लिए अधिक उपयुक्त और सरल थी । मध्यकाल तक आते आते हिन्दी परिवारकी भाषाओंमें गद्य साहित्यका उन्मेष सर्व प्रथम राजस्थानीमें–तेरहवीं शताब्दीमें; ब्रज या दक्खिनीमें-चौदहवीं या सोलहवीं शताब्दीमें; खड़ी बोलीमें-सत्रहवीं शताब्दीमें; अवधि और बनारसीमें-अठारवी शताब्दीमें दृष्टिगोचर होता है–जिनमें साहित्यिक सौष्ठवकी न्यूनता और गंभीरार्थवाले-चमत्कार रहित शब्द योजनाकी बहुलता युक्त, तुकबंदी और काव्यात्मक शैली प्रधान ललित या अललित, मौलिक या अमौलिक, धार्मिक या व्यावहारिक गद्य रचा गया, जो विशेषतः जैनधर्म शिक्षा प्रदानके महदुद्देश्यको समाहित किये हुए था ।

तत्कालीन साहित्य रूपोंमें ऐतिहासिक इतिवृत्तोंको उजागर करनेवाली वंशावली, गुर्वावली, पट्टावली, पीढ़ीयावली, प्रश्नोत्तर, वचनामृत, पत्रादि अललित-मौलिक-गद्य साहित्य रूप; एवं कथा, बात (वार्ता) वर्णन, चरित्र, वचनिकादि ललित-मौलिक-गद्य साहित्य रूप; तथा अमौलिक गद्य रूपोमें व्याख्यात्मक या अनूदित गद्य–जैसे बालावबोध, वृत्ति, अवचूरि, टबा, तिलक, वार्तिक, टिप्पण, टीका, तर्जुमा, तफ़सीर आदि शीर्षकान्तर्गत साहित्य प्राप्त होता है । जिनके प्रतिपादित विषय होते थे–धर्म, दर्शन, अध्यात्म, चिकित्सा, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, शकुनशास्त्र, व्याकरण, गणित आदि । यह स्पष्ट ही है कि मध्यकालीन अमौलिक वाङ्मयकी बनिस्बत मौलिक साहित्यकी विशालता सिमित ही है; जिसकी परवरिश प्रधानतः धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंचलमें हुई । इसके अतिरिक्त भक्तिकालीन, धार्मिक साहित्यकी अनेक संस्कृत-प्राकृत रचनाओंका गुजराती-मारवाड़ी आदि भाषा रूपोंमें बालावबोध, टबा, वृत्ति, अवचूरि आदि अमौलिक व्याख्या साहित्य उपलब्ध होता है ।

इस प्रकार मध्यकालीन पारलौकिकतासे अत्यन्त आच्छन्न और मानवजीवनके इहलौकिक परिवेशसे किनारा करनेवाले आध्यात्मिक या भक्त साहित्यकारोंके प्रत्युत अर्वाचीनकालीन साहित्यकारोंने परिवर्तित युगचेतनाके नूतन इहलौकिक पर्यावरणमें अधिक सतर्क बनकर सुधार-परिष्कार युक्त नूतन विचार प्रवाहके बल पर धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक चिंतनधाराओंको पुनराख्यायित करके आधुनिक कालमें धर्म-दर्शन-साहित्य-कलादिके प्रति नये अभिगमका आविर्भाव किया । परिणामतः उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्धमें उस नूतन आविर्भावके साथ आधुनिक साहित्य चेतना बृहत्तर रूपमें मानवीय-भौतिक-सुखदुःखके साथ विशेष रूपसे जुड़ी । इस अर्वाचीन-विकासशील ऐतिहासिक प्रक्रियासे प्रभावित साहित्यिक विधा एवं भाषा भी परिवर्तित होते होते परिष्कृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खडीबोलीमें गद्य रूपमें निखार धारण करने लगी थी । सोलहवीं शतीके श्रीहीरसूरि म.सा.; सत्रहवीं शतीके श्रीसकलचंद्रजी म., श्रीसमयसुंदरजी म., श्रीजिनराज सूरिजी, श्रीप्रीति विमलादि एवं अठारहवीं शतीके महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म., श्रीचिदानंदजी म., अध्यात्म योगी श्रीआनंदघनजी म., श्रीज्ञानविमल सूरिजी आदि द्वारा अध्यात्म रससे लबालब, आत्म कल्याणकारी, धार्मिक क्रियानुष्ठान और दार्शनिक-सैद्धान्तिक प्ररूपणाकी वाहक, गुजराती भाषासे प्रभावित, ब्रजभाषा मिश्रित भाषामें निहित पद्य साहित्यका स्थान आधुनिक कालमें संविज्ञ शाखीय आद्याचार्य श्री आत्मानंदजी म.सा.के समाजोत्थानसे युक्त आध्यात्मिक सिद्धान्तादि प्ररूपक खड़ीबोलीका गद्य साहित्य ग्रहण करने लगा ।

जैनधर्म-सद्धर्म-प्रभावक, प्रचारक, प्रसारक, जिनशासनके ज्योतिर्धर, महान युगप्रधान श्री आत्मानंदजी म.सा.की अंतर-वीणाकी झंकृत तारोंने एक ही सात्त्विक राग–समस्त जैन समाजोपकारी, जन-जनके लिए कल्याणकारी एवं जीवमात्रके मंगलमय उत्थान हेतु एक मात्र जांगुलीमंत्र या सर्वौषधिके सिद्ध उपचार स्वरूप, श्री जिनेश्वरकी वाणी, जैन दार्शनिक सिद्धान्त और श्री अरिहंत द्वारा प्रकाशित सत्-शुद्ध एवं शाश्वत धर्मकी प्ररूपणाका राग ही बजाया था; जिसके लय और ताल पर थिरकते हुए शुद्ध श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान एवं उत्तम चारित्रके अनेक गुणोंकी प्रतिमूर्ति रूप उनके आदर्श जीवन व्यवहार द्वारा विश्वके सकल जीवोंका शाश्वत धर्मसे कल्याणकारी परिचय करवानेकी अत्यन्त तीव्र ललकका लास्य नर्तन हो रहा था। परिणामतः लोकभाषाको सदैव सम्माननीय और आदरणीय स्थान प्रदान करनेवाली जैन सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपराके अनुसरण स्वरूप आपने भी तत्कालीन जनभाषामें अपने जैन-धर्माश्रयी सैद्धान्तिक विचारोंका प्रवाह प्रवाहित किया । कहा जाता है कि उनकी मधुप्रश्रवा वाणीके अमृत-पानानंतर कोई भी धर्मी-भ्रमर, धर्म श्रवण रूप मधुसंचय हेतु और कहीं पर भी नहीं जा सकता । *"जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थके 'प्रासंगिक वक्तव्य'में श्री बनारसीदास जैनने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि–*"**मेरा अनुमान है कि, जिस भाषामें वे अपना उपदेश देते होंगे, उसीमें उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना भी की है ।**"[५१]

उस समय जब विदेशी भाषाओंके विषैले प्रचार-प्रसार रूप विकट विपत्तियों और हिन्दी विरोधी बवंडरोंके बीच हिन्दी भाषाकी किश्ती स्थिरत्व प्राप्ति हेतु पुरुषार्थशील बन चूकी थी, तब उस प्रचंड़ तेजस्वी, बुद्धि वैभवके स्वामी, विश्वके प्रधान विद्वानोंकी श्रेणिके सुधारक महात्माने भी तत्कालीन लोकभाषा-हिन्दी-को ही प्राथमिकता एवं प्रमुखता प्रदान करके अपने प्रभावी-प्रतिभा सम्पन्न विचार और वाणीको वाङ्मयकी विभिन्न शैलियोंमें आबद्ध करते हुए आत्म कल्याणके मार्गको प्रशस्त करनेमें यथासंभव उत्कृष्ट योगदान दिया, जो उन्हें हिन्दी साहित्यके प्रथम गद्य लेखक बननेका सौभाग्य बक्षता है । "**आपने (श्री आत्मानंदजी म.सा.ने) हिन्दी भाषामें ग्रन्थ लिखकर न केवल धर्मका उद्धार किया और हमारी आत्माको प्रकाश दिखाया, किंतु उन्होंने हिन्दी भाषाके विकास और उन्नतिमें अनायास ही महान सहयोग दिया है । जैन संप्रदायमें हिन्दी (खड़ीबोली)के सबसे पहले ग्रन्थ लिखनेका श्रेय उन्हीं महात्माको ही है ।**"[५२]

राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रारम्भिक गद्य विकासमें आचार्य प्रवरश्रीका योगदानः---

बौद्धिकताका व्यावहारिक जीवनापेक्षया कम विकास, तत्कालीन जन मानसकी अत्यधिक भावुकता, धर्मनिष्ठता और काव्यप्रियता; संस्कृत-प्राकृतादिकी पद्य-प्रश्रय प्रवृत्ति; साहित्यको कंठस्थ रखनेकी परंपरा और विभाषाओंमें व्याख्यानुवादकी प्रबल प्रवृत्तिके अभावके कारण भक्तिकालमें साहित्यिक गद्यका विकास पर्याप्त परिमाणमें न हो सका । आधुनिक गद्यके विधा और विषय वैविध्यकी तुलनामें भक्तिकालीन गद्य नगण्य प्रतीत होता है । प्राप्त गद्य भी अधिकतर ब्रज-पंजाबी या राजस्थानीसे प्रभावित और अरबी-फारसी या संस्कृतकी तत्सम-अर्धतत्सम शब्दावली युक्त तीन रूपोंमें– (१) तुकमय पद्याभास युक्त; (२) गद्य प्रधान (जिसमें पद्यकी क्षुल्लकता) या पद्य प्रधान (जिसमें पद्यकी बहुलता)-हों; (३) शुद्ध (पूर्ण) गद्य रूपमें–दृष्टिगोचर होता है । रीतिकालमें भी गद्य विषयक परिस्थिति इससे अधिक प्रगतिशील नहीं है । *'हिन्दी साहित्यका इतिहास'-संपा.डॉ.नागेन्द्र-पृ.४१९ से ४२१ पर किये गये "खड़ीबोली गद्य" के विकासकी चर्चासे फलित होता है कि-*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"रीतिकालीन खड़ीवोली गद्य अधिकांशतः टीकानुवादोंके रूपमें प्राप्त होता है; जिनमें जैन गद्य साहित्यकारोंका विशिष्ट योगदान रहा है । मध्यकालीन खड़ीबोलीके विशिष्ट जैन गद्यकार टोड़रमलजी, दीपचंदजी, दौलतरामजी (बसवावाले), इन्दौरवासी दौलतरामजी, टेकचंदजी, अभयचंदजी आदिके साहित्यमें विविध महापुरुषोंकी जीवनी पर वचनिकाओंकी रचनायें और अखयराज, श्री जिन-समुद्र सूरिजी आदिकी टीकायें-टिप्पणियाँ आदि स्वरूपोंमें दार्शनिक-सैद्धान्तिक, भूगोल-खगोल, ज्योतिष-गणितादि मौलिक-अमौलिक रचनायें समाहित होती हैं, जिनकी भाषा ब्रज या पंजाबी-राजस्थानी मिश्रित खड़ीबोली है ।"

आधुनिककालमें–उन्नीसवीं शताब्दीमें–सामाजिक, राजकीय, आर्थिक क्षेत्रोंमें अंग्रेजोंकी नूतन व्यवस्थाके कारण आर्थिक वर्ग विभाजन और जातीय प्रथादिके संघर्षोंके बीच होनेवाले अर्वाचीन आविर्भावोंका उद्‌भव हुआ, जिसका असर साहित्य और भाषा पर होना अनिवार्य था । एक ओर राष्ट्रीय एकताके आंदोलनके परिणाम स्वरूप जागरणकी नयी लहरकी भावाभिव्यक्ति सक्षम भाषाका संबल ढूंढ रही थी; दूसरी ओर उन्नीसवीं शती पर्यंत हिन्दी खड़ीबोली अपना स्वस्थ परिष्कृत एवं परिनिष्ठित स्वरूप निर्माण नहीं कर सकी थी, फिर भी स्थिरत्वकी ओर पुरुषार्थी एवं प्रगतिशील अवश्य थी । इन दोनों परिस्थितियोंने हिन्दी भाषाकी नवीन उद्‌भावना पर महत्त्वपूर्ण असर किया । भारतकी स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दीको राजभाषा बनाया गया और उसके क्षेत्रको विस्तृत करते हुए, उसकी लिपिमें परिष्कार करते हुए, एवं उसके शब्द समूहको वृद्धिगत करते हुए हिन्दीको राष्ट्रभाषाका प्रतिष्ठित स्थान देकर सम्मानित किया गया । वर्तमानमें उसके विकसित रूपकी तेजोमय भास्वरतामें उसके परिमार्जन युगके दिदारका खयाल तक आना दुभर है-जब न गद्यका प्रचार था, न भाषाका विकास या समृद्धि, न शैलीकी स्थिरता । भाषाको कोमल, मनोहर, प्रभावशाली, रोचक ओर स्फूर्तिलापन प्रदान हेतु अन्य भाषाओंके शब्द, क्रिया रूपों, कारक रूपों, वर्ण विन्यास, उच्चारण प्रयोग आदिका उदारता पूर्वक हिन्दीमें स्वप्रकृत्यानुसार अन्वय किया जा रहा था; जिनमें प्रचलित संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू, अरबी-फारसी आदि भाषाओंकी प्रधानता स्पष्ट रूपसे दर्शित होती है ।

श्री आत्मानंदजी म.सा.का हिन्दी साहित्य क्षेत्रमें पदार्पण उसी, क्रिया-कारकादिके रूप स्वनिक परिवर्तन, अन्य भाषाभाषी शब्द ग्रहण आदिके कशमकशकालमें हुआ था । अतः आपने तत्कालीन परिस्थितियाँनुसार अपनी साहित्यिक भाषा-(खड़ीबोली)में निजी मातृभाषा-पंजाबी एवं विचरण क्षेत्रोंकी अन्य भाषायें-गुजराती, राजस्थानी, ब्रज, अवधि, उर्दू आदिका और तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्यानुसार संस्कृत-प्राकृतके तत्सम प्रयोगोंका मिश्रण किया है । क्योंकि उनके साहित्यकी भाषा विषयक लेखमें श्री बनारसीदासजीने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है -**"जिस भाषामें वे अपना उपदेश देते थे, उसी में ही उन्होंने साहित्य सृजन भी किया।"** "जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके प्रथम संस्करणसे प्राप्त कई विशिष्टतायें इस विचारकी पुष्टि करती है । उपदेशकोंकी प्रायः ऐसी भाषा प्रवृत्ति वर्तमानमें भी प्राप्त होती है । विशेषतः जैन ललित वाङ्मयके मूल स्रोत रूप श्री अरिहंत परमात्माकी भक्ति-गुणानुवाद-चरितानुवाद एवं अन्य क्रियानुष्ठानादिके उपदेश और अललित अथवा दार्शनिक-सैद्धान्तिक, ज्योतिष-गणित व्याख्यादि साहित्य सरिताके मूलोद्‌गम रूप श्री वीतराग-सर्वज्ञ देव द्वारा प्रवाहित वाणी निर्झर अपने असामान्य गुणोंसे आप्लावित, अर्थात् प्रमुख रूपसे अर्थगंभीरता, औदार्यता, मधुरता, सरलता, सात्त्विक शिष्टता, हृदयंगमता, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें प्रस्तावौचित्यता, तत्त्वनिष्ठादि प्रशस्य गुणालंकृत होते हैं ।

भगवंतके चरण-चिह्नों पर ही चलनेवाले और उनकी वाणीको वाङ्मय या प्रवचन द्वारा जन-जनमें प्रसारित करके चिलकाल पर्यंत प्राणवान बनाये रखनेमें पुरुषार्थी, उनके अंतेवासी (प्रभावक साधु) भी अपनी विहार स्थलीमें प्रयुक्त भाषा व बोलियोंसे सुपरिचित होते हैं; क्योंकि जिनाज्ञाश्रित उन आचार्य-साधु प्रवरोंकी हार्दिक तमन्ना होती है, श्रोतागण (पर्षदा)के अनुकूल वाणी द्वारा समाज कल्याणका ध्येय साधनेकी। श्री आत्मानंदजी म.ने भी अपने साहित्यमें इसी परंपराका पालन करके राष्ट्र-भाषाके प्रारम्भिक विकासमें अपना योगदान दिया है । इनकी परिमार्जित शैलीके अंतर्गत शब्द (संज्ञा) प्रयोग, क्रियादिके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–यथा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"ए सब मिलकर तीन सौ त्रेसठ मत हुए, ए सर्व मतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणेवाले सर्व कुगुरु हैं क्योंकि, ये सर्व मत मिथ्या दृष्टियोंके हैं । ये सब एकान्तवादी हैं और स्याद्वाद-अमृत स्वादसे रहित हैं ।"[५३] कर्मबंधके कारणोंकी विवक्षा करते हुए लिखते हैं -"तीसरा कषाय बंध हेतु है । उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय मिलकर पचीस भेद हैं–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ–ऐसे ही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, और संज्वलन क्रोधादि चार–एवं सोलह कषाय; इनके सहचारी नव नोकषाय हैं–उनका नाम कहते हैं-हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद । इन सर्वका व्याख्यान पीछे लिख आये हैं । इनसे कर्मका बंध होता है, यही संसार स्थितिका मूल कारण है।"[५४]

विश्व सृजनके लिए आपने "जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर" में लिखा है–जगत तो प्रवाहसे अनादि चला आता है, किसीका मूलमें रचा हुआ नहीं है । काल, स्वभाव, नियति, कर्म, चेतनका पुरुषार्थ-आत्मा और जड़ पदार्थ-इनके सर्व अनादि नियमोंसे यह जगत विचित्र रूप प्रवाहसे चला हुआ उत्पाद-व्यय-ध्रुव रूपसे इसी तरे चला जायेगा ।"[५५] जैन धर्मकी प्राचीनताके विवेचनमें आप लिखते हैं –"मेरे मत मूजब जैसे प्राचीन बौद्ध, निर्ग्रंथोंको एक अगत्यकी और पुरानी कोम तरीके जानते थे तैसे ही गोशालेने भी निर्ग्रंथोंको बहुत अगत्यकी और पुरानी कोम तरीके जानी हुई होनी चाहिए । इस मेरे मतकी तरफेणमें आखिर दलील है, जो बौद्धोंके मज्झिम निकायके पैंतीसवें प्रकरणमें बुद्ध और निर्ग्रंथके पुत्र सच्चकके साथ हुई चर्चाकी बात लिखी हुई है । जब वह-नामांकित वादी, जिसका पिता निर्ग्रंथ था, सो बुद्धके बखतमें हुआ, तब निर्ग्रंथोंकी कोम बुद्धकी जिंदगीकी अंदर स्थापनेमें आई होवे, यह बन नहीं सकता ।"[५६]

उपरोक्त विभिन्न ग्रन्थोंके उद्धरणोंसे प्रतीत होता है कि आचार्य प्रवरश्रीकी भाषा बोलचालकी भाषा सदृश कहीं-कभी लड़खड़ाती, फिर भी निश्चित रूपसे अपने विकासपथ पर अग्रसर होती हुई परिनिष्ठ हिन्दीके रूपसे समीपस्थ स्थान प्राप्त करनेके लिए उपयुक्तता रखती है । साहित्यिक रचना शैलीके दृष्टिकोणसे विकासशील भाषामें गूढ़-विवादग्रस्त-दुरूह-पेचीदा धार्मिक और दार्शनिक-सैद्धान्तिक विषयोंको, अत्यन्त धार्मिक लागणीशील जनसमूहके सम्मुख, उसके यथार्थ एवं सत्य रूपमें पेश करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, जो विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्नताकी अपेक्षा रखता है । "इन सब बातोंके होने पर भी डॉक्टर साहबका मत है, कि उनकी भाषामें साहित्यिक भाषाके सब गुण विद्यमान हैं । इसमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म और गूढ़से गूढ़ शास्त्रीय अर्थ प्रकट करनेकी पूर्ण क्षमता है । महाराजजीकी गद्य शैली अति गंभीर और परिवक्व है, जो शिथिलता, विषमतादि दोषोंसे रहित है ।"[५७] *आचार्य प्रवरश्रीकी हार्दिक अभिलाषा–राष्ट्रभाषा 'हिन्दी'को 'सम्यक् गिरा' बनाना–को उन्होंने स्वयं अभिव्यक्त करते हुए लिखा है–*

"यद्यापि बहुभिः पूर्वाचार्यैः रचितानि विविध शास्त्राणि,
प्राकृत-संस्कृत भाषामयानि नयतर्कयुक्तानि;
तदपि मयेदं शास्त्रं पूर्व मुनेः पद्धतिं समाश्रित्य,
भव्यजन बोधनार्थं रचितं 'सम्यक् स्वदेश गिरा; ।"[५८]

इस प्रकार राष्ट्रभाषाके विकासमें पुरुषार्थशील श्री आत्मानंदजी म.सा.के श्लाघनीय प्रयत्नों के किये गये निरूपणकी पुष्टिकर्ता श्री रघुनंदन शास्त्रीका अभिमत भी प्रस्तुत हैं ।

"पंजाबमें हिन्दीके प्रसारमें जैनधर्मका कार्यभी विशेष रूपसे श्लाघनीय है । आचार्योंने जैनधर्मका प्रचार विशेषतः हिन्दी द्वारा ही किया है । जैनधर्मके पचासों जीवनचरित्र, धार्मिक उपदेश, गीत, कविता, भजनादि हिन्दीमें प्रकाशित हुए हैं । इनके आचार्य श्री विजयानंद सूरि अथवा श्री आत्मानंदजीने बीसियों ग्रन्थ हिन्दीमें लिखे हैं।"[५९]

ग्रन्थ रचनाओंका उद्देश्य (तत्कालीन समाजकी तकाजापूर्ति):– सकलशास्त्र-पारगामी प्राज्ञके अभावयुक्त तत्कालीन भ्रान्तिजन्य अज्ञान और संभाव्य विकट-विषम एवं विषैली यथार्थ सामाजिक परिस्थितियोंके पर्यवेक्षक, प्राचीन-अर्वाचीन युगके सेतुबंध, जवांमर्दजंगम आगमिक जनरेटर तुल्य, युगप्रभावक श्री आत्मानंदजी म.के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयुक्त डॉ.रुड़ोल्फ की पंक्तियाँ दर्पण स्वरूप हैं; जिनमें जैन-जैनेतर दर्शनियों द्वारा जैन दर्शनके प्रति मनमाने भ्रमात्मक, असत्य और अनुचित आक्षेपोंके बवंड़रको बेतरतिब करके जिनशासनके उज्ज्वल और महान सत्यादर्शोंकी रक्षा हेतु प्रामाणिक-सत्य और भ्रमशून्य ज्ञानालोकका आश्रय लेकर किये गये भगीरथ पुरुषार्थका प्रतिविम्ब झलकता है–

"दुराग्रह ध्वान्त विभेदमानो, हितोपदेशामृत सिन्धु चित्त ।
संदेह संदोह निरासकारिन्, जिनोक्त धर्मस्य धुरंधरोऽसि ।।"

तत्कालीन समाजमें व्याप्त सामाजिक कुरिवाज़ों, कुरूढियों और कुसंस्कारोंके परिहार हेतु अपने विशाल अध्ययन और ठोस ज्ञानका लाभ वितरित करके समाजमें संस्कार, सुधार, परिष्कारके बीज वपन किये । इसके साथ ही अज्ञानतिमिर निवारण-इलाज रूप ज्ञानालोकका प्रसार किया । सोलह संस्कार स्वरूप, आत्मा-परमात्मा विषयक निरूपणान्तर्गत परमात्म भक्ति और आत्म समर्पण एवं आत्मिक विकासश्रेणि सूचक चौदह गुणस्थानक स्वरूप; गृहस्थ (श्रावक) और साधु (श्रमण)की जीवनचर्याकी चर्चा, षट्द्रव्य, कर्म विज्ञान, धार्मिक अनुष्ठानों एवं ध्यानादि अनेक विषयक विशिष्ट निरूपणोंके विवरणादि अनेकविविध विषयक अत्यन्त विशद साहित्यकी रचना की, जिससे हिन्दी जगतको जैन वाङ्मयके विभिन्न आश्चर्यजनक, अभूतपूर्व विषय वैविध्यका परिचय प्राप्त हुआ ।

आगम प्रभाकर श्री पुज्यविजयजी म.सा.ने ज्ञानभंड़ार विषयक अपनी अनुभवी दृष्टिसे किये निरीक्षणों को वर्णित करते हुए लिखा है –**"मेरे देखे हुए ग्रंथोंमें ताड़पत्रीय ग्रन्थोंकी संख्या लगभग तीन हज़ार जितनी और कागज़ो परी ग्रन्थोंकी संख्या तो दो लाखसे कहीं अधिक है । यह कहनेकी जरुरत नहीं कि, इसमें सभी जैन फिरकोंके सब भांड़ारोंके ग्रन्थोंकी संख्या अभिप्रेत नहीं है । वह संख्या तो दस पंदह लाखसे भी कहीं बढ़ जायेगी ।"**[६०] इतने विशाल-विविध विषयक अनेक-विध ग्रन्थ-रूप साहित्यमें कितनी अगाधता औरप्रचुरता निहित होगी यह वाकयी कल्पनाका विषय है । उस अपार ज्ञानराशिके रत्नाकरक आकंठ पान करके मस्तिष्कमें कैद करना ही विशिष्ट प्रतिभाका परिचय करवाता है, जिसे जैन साधु (या श्रावक भी) पुनरावर्तन रूपमें-स्वाध्याय परंपरासे-ज्ञानारणीय कर्म निर्जराका हेतु मानकर, विद्यमान रखनेमें सफल होते हैं।

'चिकागो प्रश्नोत्तर', 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तरादि', ग्रन्थोंकी रचना हुई देशकालानुसार-तत्कालीन समाजकी तकाज़ापूर्ति हेतु (आवश्यकताके महद्उद्देश्यसे) और 'सम्यक्त्व शल्योद्धार', 'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२', 'ईसाई मत समीक्षा', 'अज्ञानतिमिर भास्कर' आदि प्रतिकारात्मक प्रवृत्तिरूप; 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह', 'जैन तत्त्वादर्श', 'जैनधर्मका स्वरूप', 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' आदि संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोंके हिन्दीमें आगमिक ज्ञानोद्धार और तत्त्व जिज्ञासुओंकी तृप्ति हेतु; 'जैन मत वृक्ष' जैसी आन्वेक्षिकी कृति निजात्मानंद या आत्म परितोष हेतुकी गई है ।

निष्कर्ष :--- इस प्रकार हिन्दी भाषाके विकासकी परंपरामें अपना महद् योगदान प्रदान करके राष्ट्रभाषा हिन्दीकी महान सेवा करनेवाले सूरि सम्राट द्वारा विरचित वाङ्मयके आलंबनसे विविध उद्देश्यपूर्तिमें सफलता प्राप्तिके कारण उनके साहित्यको उत्तमताके साथ नितान्त समाजोपयोगिता एवं अत्यन्त लोक प्रियता प्राप्त हुई है । अतः यह प्रतीत होता है कि स्व-पर कल्याण साधकने शासन सेवाके साथ जिनेश्वरोंके प्रति अपनी अथाग आस्थाको प्रस्फुटित करके विश्व कल्याणमें आत्म समर्पण किया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं नमो नाणस्स

पर्व द्वितीय

--श्री आत्मानंदजी महाराजजीका पद्य साहित्य--

"न स शब्दो न तद्वाच्यं, न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगं, अहो भारः महान कवेः।।"-आचार्य भामह

काव्य परिचय-परिभाषा-

डॉ. भगीरथ मिश्रजी काव्यको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-"काव्य, जीवन और सत्यको संवेद्य बनानेवाली शब्द-रचना है।"[१] अर्थात् 'जीवन', जो परिवर्तनशील सत् और 'परमात्मा'-जो शाश्वत सत्य-इन दोनोंको अनुभवगम्य और संवेद्य बनानेवाली या प्रत्यक्षीकरण करानेवाली सहज स्वाभाविक रचना जो चित्र या अन्य स्थापत्यादि ललित कलाओंसे भिन्न, केवल ललित शब्द रचनाको-काव्य कहा जा सकता है; जिससे सृष्टिकी सुंदर एवं अद्‌भूत संवेदना उत्तेजित होकर कल्पनाके सहारे प्रभाविक रूपमें पाठकको आनंद आश्चर्य-करुणा-कृतज्ञता-आदर-मान-आदि भावोद्रेकमें बहा ले जाती है। कभी युगानुरूप-भावानुरूप उसके रूप परिवर्तन होते हैं, लेकिन मूल आत्मा वही बनी रहती है। **"इस दृष्टिसे साहित्य चिर नवीन भी है और चिरंतन भी"** [२] अतः सृष्टिके सदृश काव्य भी शाश्वत होते हुए भी नित्य नवीन होता है।

विश्वके सुखदुःख, राग-द्वेष, ईर्ष्या-प्रेम आदि भावानुभावों और नैसर्गिक सौंदर्यादिकी गतिविधियोंसे अवाप्त आत्मानंदानुभूतिकी अदम्य भावाभिव्यक्ति रूप काव्यको कई विद्वानोंने-मम्मट, भामह, पं.विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथादि संस्कृतादि प्राचीन भाषाविदों और संत तुलसी, देव, केशव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी, आ.रामचंद्र शुक्ल, आ.महावीरप्रसाद द्विवेदी, डॉ.भगीरथ मिश्र आदि अर्वाचीन हिन्दी आदि पौर्वात्य भाषा मनीषियोंने एवं कोलरिज, शेली, किट्स, डॉ. जोन्सन, ले. हण्ट, वर्ड्सवर्थ आदि पाश्चात्य विद्वद्वर्योंने-स्व मत्यानुसार परिभाषित करनेका आयास किया, लेकिन, प्रायः कोई भी गुणाढ्य व परिपूर्ण परिभाषा प्रदान नहीं कर पाया। क्योंकि, सामान्यतः जैसे गुणादि सौंदर्यालंकरणके बिना, अनलंकृत देहकी शोभा नहीं; बिना देह निरंजन आत्माकी पहचान अत्यन्त दुरूह बनती है और बिना आत्मा न चैतन्य है, न जीवितव्य वैसे ही सभी विद्वानों द्वारा विवरित काव्यकी परिभाषाओमें काव्यकी आत्मा, देह, लालित्य, गुण, दोष, अलंकरण, बाह्याभ्यन्तर सौंदर्यादि अनेकविध पहलूओंका पृथक् पृथक् विवरण पाया जाता है, लेकिन उसके सर्वांग संपूर्ण व्यक्तित्वको पेश कर सकता है एक मात्र उन सबका समवाय-कोई एकांग नहीं।

अतः निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि, **मनुष्यकी जिज्ञासा एवं आत्माभिव्यंजनाकी अदम्य इच्छासे मानव जीवनकी विशद व्याख्यान्तर्गत प्राकृतिक सौंदर्यका रसात्मक-नैसर्गिक-हार्दिक निरूपण-जिससे पाठक सांसारिक सर्व परिस्थितियोंसे ऊपर उठकर काव्य घटनाओंको आत्मसात् करके आनंदानुभूति पाता है; जब उसकी मनोदशा ब्रह्म साक्षात्कार किए हुए योगी सदृश हो जाती है-वही काव्य है।**

विभिन्न काव्य विधायें:- काव्यके ऐसे विशद लक्षणानुसार दर्शन-विज्ञान, इतिहास-पुराण, काव्यान्तर्गत गीत, कविता, प्रबन्ध, मुक्तक, नाटक, आख्यान, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, जीवनचरित्र, पत्रादि विभिन्न सभी साहित्यिक विधायें अपने अपने भावसुमन संजोये स्थितिबद्ध हैं। इन्हें लक्ष्य ग्रन्थ या उदाहरण ग्रन्थ कहा जा सकता है। जबकि साहित्यालोचना लक्षित काव्यलक्षण, काव्यभेद, गुण-दोष, रस-अलंकार-छंद, बिम्ब योजना या प्रतीक योजनादिको विश्लेषित एवं विवेचित करनेवाली रचनायें लक्षण ग्रन्थ मानी जाती हैं। पूर्वाचार्योंके मतानुसार लक्षण ग्रन्थको 'साहित्य' और लक्ष्य ग्रन्थोंको 'काव्य' कहा जाता है। लेकिन, साम्प्रत कालमें अब 'साहित्य'को 'literature' का पर्यायवाची माना जाने लगा है; और 'काव्य' शब्द-साहित्यके अंग 'कविता'के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजीने काव्य-वाङ्मय-साहित्यके भेद इस तरह किये हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

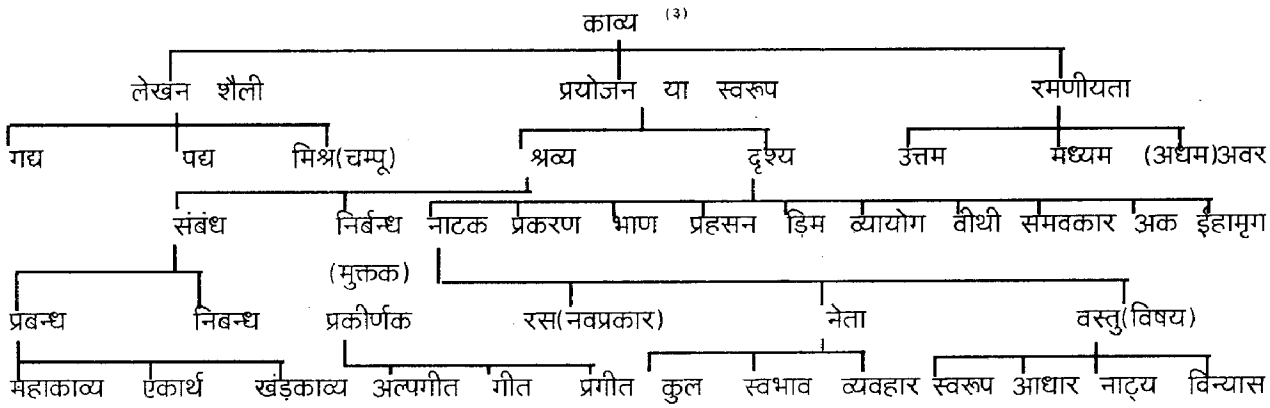

काव्यके इन भेदोपभेद-प्रभेदोंके अध्ययनोपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि पूर्वाचार्योंने 'काव्य' शब्द-जो वाङ्मयके लिए प्रयुक्त किया था या जिसका अभिप्रेत 'साहित्य' था-अधुना शैली आलेखनानुसार केवल पद्य रचनाको ही काव्य या कविता कहा जाता है। अब हम देखें कि काव्यके तत्त्व कितने और कैसे हैं?

काव्य रचना प्रक्रिया और काव्यके तत्त्व :- कवि, ब्रह्म सहोदर रसानन्द प्रदाता काव्यानुरूप भावोंको अनुभूत करते करते उसके उद्दाम रूपको प्राप्त करता है तब उसका अंतस्तल तरंगित होता है, अंतरमें भावोद्रेकता उमड़ती है, उसी स्थितिमें वे भाव शब्दोमें ढलने लगते हैं। कल्पना-भाव और शब्दार्थ, बुद्धिकी तुलासे कसे हुए अनायास ही अभिव्यक्ति पा जाते हैं। तब जो कुछ निष्पन्न होता है वह रचना-कृति ही बन जाती है एक 'काव्यरूप'।

अतः हम किसी भी काव्यमें दो तथ्य अवश्य पाते हैं-भावानुभाव और भावाभिव्यक्ति; जिन्हें साहित्यविदोंने भावपक्ष और कलापक्ष माना है। इन्हींको डॉ.भगीरथ मिश्रजीने पांच तत्त्वों-शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना और बुद्धि-के रूपमें[४]और पाश्चात्य विद्वानोंने चार तत्त्वों-राग, कल्पना, बुद्धि और शैली-में समन्वित करनेका प्रयास किया है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानोंके इन अभिमतोंका सामंजस्य हम कुछ इस तरह कर सकते है-'शब्द' और 'अर्थ'-इस युगलसे भावक द्वारा अनुभूत भावोंकी अभिव्यक्ति की जाती है। शब्दार्थके बिना अनेक भावोंका आलंकारिक, चमत्कार-निष्पन्न, निरूपण असंभव हैं। शब्दसे ही अर्थ या भावार्थका द्योतन होता है। शब्दोंके (वर्णोंके) लघु-गुरू रूपसे छंदोकी सृष्टि होती है, तो गति-प्रवाह-लय (नाद सौंदर्य) आदिकी कलात्मकता शब्दाधीन ही होती है। शब्दसे ही परूषा, कोमला और उपनागरी वृत्तियोंका निमार्ण होता है जबकि अभिधा, लक्षणा और व्यंजनादि शब्द-शक्तियोंका प्रकटीकरण 'अर्थ' पर ही निर्भर है। 'भाव' और 'कल्पना'की सक्षम अभिव्यक्तिको प्रस्फुटन करनेवाला शब्दार्थ ही तो होता है। अतः भारतीय विद्वानोंके 'शब्द' और 'अर्थ' तत्त्वोंका पाश्चात्य विद्वानोंके 'शैली' तत्त्वसे समवाय हो जाता है। **"अभिव्यक्तिकी कुशल शक्ति ही कला है।" -श्री मैथिली शरण गुप्तजी।**

इसी तरह 'भाव'तत्त्वको पाश्चात्योंके 'राग'तत्त्वमें समन्वित किया जा सकता है। 'राग' अर्थात् प्रीति-अनुराग- जिसके कारण जीवन सुख-दुःखकी अनुभूति युक्त बनता है। **"हमारे संस्कार रूपमें प्रतिष्ठित मनोवेग पुनःस्मृत और अनुभूत होकर जब प्रकट होते हैं तब वे 'भाव' बनते हैं। भावकी तीव्रता ही अभिव्यक्तिको उद्दीप्त करती है। भावोंमें प्रेरकता और संक्रामकता रहती है.... अतएव काव्यके क्षेत्रमें भावका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।"**[५]कविकी कल्पनाका प्रेरक और छंद-लयादिके स्वरूपका विधायक 'भाव'ही संवेदना जागृत करता है। **"भावही मूलतः शब्द-प्रवाहका उत्स है। ...अतः 'भाव'काव्यका व्यापक तत्त्व है।"**[६]

कविकी सौंदर्य-प्रियता और प्रकृतिचित्रणकी सूक्ष्मतम अभिव्यंजनाका परिचायक 'कल्पना' तत्त्व है; जिससे अनुभूतिकी जटिलता और सत्यके प्रत्यक्षीकरणमें उद्रेकका आविर्भाव शक्य बनता है। 'कल्पना'ही कविकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान-प्रतिभाका तादृश चितार है। 'कल्पना'से ही काव्यमें अनूठा लाघव, रमणीयता, रोचकता, चमत्कार, असाधारणत्वादि प्रदर्शित होता है।

'शब्दार्थ' रूप कलापक्ष और 'भाव-कल्पना' रूप भावपक्षका यथायोग्य सामंजस्यपूर्ण नियोजन 'बुद्धि'से होता है, जो काव्यको प्रभावशाली एवं औचित्यपूर्ण रूपमें स्थिर करता है। कविकी सूक्ष्म संवेदना और उर्वर कोमल कल्पनासे भावोंकी विलक्षणता संपादित होती है।

अतः 'भावपक्ष' काव्यकी आत्मा और 'कलापक्ष' उसका शरीर माना जा सकता है। दोनों अन्योन्याश्रय संबंधित होनेके कारण एक दूसरेको यथोचित-यथावसर प्रबल बनाते हैं। दोनोंकी समन्विति काव्यको श्रेष्ठता बक्षती है। भाव पक्षान्तर्गत वस्तु निरूपण, चरित्रचित्रण, प्रकृतिचित्रण, नाद-सौंदर्य, जीवन-दर्शन, युग-संदेश, रस-नियोजनादिका विश्लेषण और कलापक्षान्तर्गत अलंकार-विधान, छंद-विधान, संगीतात्मकता (गेयता) आदिकी मीमांसा की जाती है।

रमणीयताके संदर्भमें काव्यभेद—सत्यका अनुसंधान करके तात्त्विक नव्य भावोंकी संप्रेषणीयता तथा मानवमनको संस्कारित करके सांस्कृतिक प्रगति एवं वैचारिक क्रान्ति प्रदाता- काव्यका 'भावपक्ष' और काव्यके वास्तविक सत्यको सुंदर, आकर्षक और चमत्कारपूर्ण विलक्षण सूक्ष्म एवं प्रभावपूर्ण ढंगसे वैचित्र्य और वैविध्यताके साथ छंदोबद्ध या मुक्त रूपमें लयबद्ध-अप्रस्तुतादि योजनाओं द्वारा प्रस्तुतकर्ता काव्यका 'कलापक्ष'—दोनोंकी अभिव्यक्तिका एक मात्र साधन-प्रमुख अंग-होती है भाषा; जो कविकी संवेद्य मनोभावाभिव्यक्तिका पाठक या श्रोताको रसास्वादन कराती है। भाषा होती है सार्थक शब्द प्रयोगोंका यथोचित, यथावसर, यथेच्छ विधान या ग्रंथन।

इन शब्द प्रयोगों द्वारा अर्थाभिव्यक्तिके वैचित्र्यसे शब्दशक्तिके तीन भेद होते हैं—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना—जिसे काव्याभ्यासियोंने 'वाचक' शब्द प्रयोगसे वाच्यार्थकी ज्ञापक शक्ति 'अभिधा'; 'लक्षक' शब्द प्रयोगसे वाच्यार्थको छोड़कर उससे सम्बद्ध अर्थ-लक्ष्यार्थकी ग्राहक शक्ति 'लक्षणा'; और इन दोनोंके अतिरिक्त किसी विलक्षण अर्थकी अवबोधक शक्तिको 'व्यंजना'के रूपमें वर्गीकृत किया है। इनके कारण काव्यके-उत्तम, मध्यम, अवर-तीन भेद माने गये हैं। जिसमें व्यंग्यार्थ (ध्वनि)की प्रधानतायुक्त काव्य 'उत्तम'; वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ-दोनोंकी समानता या गुणीभूत व्यंग्य काव्य 'मध्यम' और केवल वाच्यार्थ निष्पन्न काव्यको 'अवर' (अधम या चित्रकाव्य) कहा जाता है।

काव्य शैलियाँ:— नैसर्गिक रूपमें प्राप्त भाव विचार और कल्पनाको सार्थक शब्द समूहोंके व्यवस्थित एवं उपयुक्त रीतिसे प्रभावोत्पादक ढंगसे प्रयुक्त करनेका कौशल ही शैली है। श्री श्यामसुंदरदासजीने 'शैली'को स्पष्ट करते हुए लिखा है- **"किसी कवि या लेखककी शब्द योजना, वाक्यांश प्रयोग, वाक्य बनावट और उनकी ध्वनि-आदिका नाम ही 'शैली' है।**[७]

प्राचीन संस्कृत साहित्यमें शैलीका विवेचन अलंकारवादियों द्वारा रीतिके रूपमें हुआ। इनमें प्रमुखतः आचार्य वामनने तो 'रीति' ही काव्यकी आत्मा मानी है। रीतिके विवेचनान्तर्गत हम देख सकते हैं कि शब्दके तीन गुण होते हैं, जिससे तीन वृत्तियाँ निष्पन्न होती हैं; इन्हीं तीन गुणाधारित वाक्य रचनाकी रीतियाँ भी तीन मानी गई हैं। साथ ही साथ काव्यमें रसकी प्रधानता होती है और गुण, काव्यका आभ्यन्तर धर्म माना जाता है, क्योंकि प्रायः बिना गुण रसका अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

अतः हम कह सकते हैं कि समास रहित या अल्प समासवाली सुकुमार शब्दावली युक्त माधुर्य गुण निष्पन्न मधुरा वृत्तिवाली शैली "वैदर्भी" होती है जिसमें शृंगार-करुण-शांत रस पलते हैं; तो दीर्घसमास, ओज और कान्ति गुणयुक्त, अक्षराडम्बरवाली परुषावृत्ति एवं संयुक्ताक्षरोंवाली "गौड़ीशैली"की रचनाओमें वीर-बिभत्स-रौद्रादि रसोंका अनुभव मिलता है; जबकि स्वल्प समास, सुकुमाल शब्दावली प्रधान, शिथिल पद संगठनवाली, प्रसाद गुण सिद्ध और प्रौढावृत्ति युक्त "पांचाली शैली" सर्व रसोंको परिपुष्ट करती है। कोमलपद, उचित समास युक्त विशेषण प्रधान वर्णनवाली जो शैली है उसे 'लाटी रीति' कहते हैं। विशेषतः वैदर्भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और गौड़ी शैली शब्द-वर्णोंसे सम्बन्धित है, तो पांचाली शैली अर्थाधारित रूपोमें प्रायः पायी जाती है।

लेकिन आधुनिक कालमें विशेष रूपसे अवलोकन करते हुए हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी भाषान्तर्गत उपरोक्त विवरणके अतिरिक्त शैलीका निश्चय वर्ण्यविषय, चरित्र चित्रण, परिस्थिति, भाव उद्देश्यादि द्वारा भी निश्चित किया जाता है। हिन्दी काव्यान्तर्गत हम शैलीको सरस, मधुर, ललित, विदग्ध, उदात्त तथा व्यंग्यादि-वर्गोमें वर्गीकृत कर सकते हैं।

सरस शैली–*सरल*, एवं सर्वजन सुगम, प्रसाद गुण सम्पन्न, भावानुसार शब्दावलिमें रसका निरूपण करनेवाली रमणीय शैली-'सरस शैली' कही जाती है।

मधुरशैली–मधुर संगीतमय शब्दों द्वारा उपनागरिका वृत्तिके प्रयोगसे सुकुमार कोमल भावोंका वर्णन किया गया हों और कर्कश एवं भयानक प्रसंग वर्णन न हों-वह 'मधुर शैली' कही जाती है।

ललित शैली–शब्दोंके कलात्मक प्रयोग द्वारा कल्पनाके रंगोसे चित्रात्मकता, वर्णनकी सूक्ष्म सजीवता, उक्ति चमत्कार, अलंकारितादिवाले काव्यमें 'ललित शैली' मानी जाती है।

क्लिष्ट या विदग्ध शैली–जिस शैलीमें शब्दोंका सांकेतिक, लाक्षणिक, प्रतीकात्मक प्रयोग हों, गूढ़ अर्थ या क्लिष्ट कल्पनाकी प्रचुरता हों और जिसका भाव बिना व्याख्या अथवा टीकाके स्पष्ट न हों वह विदग्ध शैली कही जाती है।

उदात्त शैली–ओज गुण सम्पन्न, वीरता-उत्साह-भयादि भावोंकी प्रेरक, दीर्घ समास एवं पदयुक्त संयुक्ताक्षर युक्त उत्तेजक शैलीको 'उदात्त शैली' नामसे पहचाना जाता है।

व्यंग्य शैली–वाक्यमें शब्द प्रयोग तीखे प्रभावको व्यक्त करते हैं और उक्तिकी वक्रतासे कविका कथन श्रोता या पाठकके हृदयमें चूभ जाता है। अतः इसमें वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यंग्यार्थ ही प्रधान होता है। इस तरह वक्रोक्ति रूपमें प्रस्तुत काव्य व्यंग्य शैलीका माना जाता है।

शब्द और अर्थसे सम्बन्धित स्थूल मानदंड़ाधारित इन शैलियोंके इस वर्गीकरण अन्तर्गत हम महाकवि श्री आत्मानंदजीम.के साहित्यको विश्लेषित करनेकी चेष्टा करते हैं। कविराज श्रीआत्मानंदजीके पद्य साहित्यमें हमें उपरोक्त सभी शैलियोंका स्वल्पाधिक रूपमें आनंद प्राप्त हो सकता हैं। यथा-**सरस शैली**---

"कारण निमित्त उजागर मेरो, सरण गहयो अब तेरो रे।
भगत वछल प्रभु जगत उजेरो, तिमिर मोह हरो मेरो रे.... मनमोहन स्वामी।
भगति तिहारी, मुज मन जागी, कुमति पंथ दियो त्यागी रे।
आतम ज्ञान भानमति जागी, मुझ तुझ अंतर भागी रे....मनमोहन स्वामी।" (८)

मोहकी मायाजालमें फंसे आत्माकी मलिनताका वर्णन सरल-सहज, सरस-शैलीमें करते हुए गाते हैं-

"मात तात तिरिया सुत भाई, तन धन तरुण नवीनो।
ए सब मोह जालकी माया, इन संग भयो है मलीनो।।" (९)

मधुर शैली–श्री सिद्धाचल तीर्थकी स्पर्शना करनेसे पुण्यांकुरका प्रकटीकरण-पाप समूहका पृथक्त्व एवं भवसमुद्र पार करके आत्मानंद प्राप्तिका सुंदर संगीतमयी सुकुमार शब्दावलिमें वर्णन, दृष्टव्य हैं

"अरे कांइ नाभिनंदन चंद, अरे कांइ छे'री पाल जिन चंद।
अरे कांइ दूर होवे अघवृंद, अरे कांइ प्रगटे नयनानंद।।
व्हाला भवि जइयो विमलगिरि भेटवा।
अरे कांइ मोटा पुण्य अंकुर, अरे कांइ चिंता गइ सब दूर।
अरे कांइ कुमत कदाग्रह चूर, अरे कांइ आव्या नाथ हजूर....व्हाला भवि-
अरे कांइ मुझने मती तुं विसार, अरे कांइ धरम भरम सब छार।
अरे कांइ आतम आनंदकार, अरे कांइ भवसागर पाया पार.....व्हाला भवि...."(१०)

कल्पतरु श्री शीतलनाथ जिनेश्वरसे मनवांछित-भवपार-(मोक्ष)-पानेकी-कामना करते हुए याचते हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"शीतल जिनवर तार हो, तोरी सरण गही है
वदन कमल सम जग मन मोहे, भांजत सकल विकार हो तोरी सरण गही है....
कल्पतरु तूं वंछित पूरे, चूरे करम करार....हो तोरी सरण गही है....
तुमरे चरणकी सरण लइ है, कर भवोदधि से पार....हो तोरी सरण गही है...
आतम आनंद चिद्घन मूरती, कामत फल दातार....हो तोरी सरण ग्रही है...."[११]

कवि-प्रवर श्रीआत्मानंदजीने कल्पनाके रंगोंके सहारे, सजीव चित्रमय सूक्ष्मतासे, उक्ति वैचित्र्य द्वारा, अनुप्रास अलंकारका ग्रंथन करते हुए आकाशमें बादल समान मदमाते यौवनका वर्णन **ललितशैली**में पेश किया है जो उपदेशात्मक होते हुए भी सानंदाश्चर्य प्रदाता है-

"अधिक रसीले झीले सुखमें उमंग कीले आतम सरूप ढीले राजत जीहानमें,
कमलवदन दीत सुंदर रदन सीत, कनकवरण नीत मोहे मद पानमें;
रंग बदरंग लाल मुगता कनक जाल, पाग धरी भाल लाल राचे ताल तानमें,
छीनक तमासा करी सुपने सी रीत धरी, ऐसे वीरलाय जैसे वादर विहानमें ।" [१२]

क्लिष्ट(विदग्ध)शैली–जैन दर्शनानुसार ध्यानके चार भेद माने गए हैं, आर्तध्यान-रौद्रध्यान (दोनों अशुभध्यान हैं); धर्मध्यान-शुक्लध्यान (दोनों शुभध्यान हैं)-इनमें से चतुर्थ शुक्लध्यानके चार प्रभेदोंमें स्थित आत्मा कौनसी लेश्या (अध्यवसाय या भाव)में वर्तती है उसे सांकेतिक रूपमें अत्यन्त संक्षेपमें निरूपित किया दोहा, 'विदग्धशैली'का उत्तम नमूना है-

"प्रथम भेद दो शुक्लमें, तीजा परम वखान।
लेखातीत चतुर्थ है, एही जिनमत वान।" [१३]

जबकि इन्हीं ध्यान स्वरूप वर्णनान्तर्गत साधक, संतके परिसर, परिवेश व परिणामका प्रतीकात्मक वर्णन-

"संत जन वणिग विरतमय महा पोत पत्तन अनूप तिहां मोख रूप जानीये,
अवधि तारणहार समक बंधन डार ग्यान है करणधार, छिदर मिटानीये;
तप वात वेग कर चलत विरागपंथ संकाकी तरंग न ते खोभ नहीं मानीये,
सील अंग रतन जतन करी सौदाभरी अवाबाध लाभ धरी मोख सौध ठानीये ।" [१४]

उदात्त शैली– देवाधिदेव श्री तीर्थंकर भगवंतकी उमड़ते भावोल्लाससे झूमते देवलोकके देवताओंकी उत्साहयुक्त भक्तिका ओजगुण युक्त उदात्तशैलीमें कविराज श्री आत्मानंदजी म.सा.ने राग-खमाजमें जो वर्णन किया है बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है-

"नाचत शक्र शक्री, हेरी माई नाचत शक्र शक्री
छंछंछंछं छननननन नाचत शक्र शक्री....हेरी माई.....
श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि बहु बनी ठनी, इंद्र इंद्राणी करे नाटक संगीत धुनी।
जय जय जिन जग-तिमिर भानु तूं, चरण घुंघरी छंछननननन ।।... नाचत...."[१५]

जबकि इसी-उदात-शैलीमें परमात्मा-सिद्धात्मा-के समासबद्ध स्वरूप वर्णनमें भी अनूठे चमकार दर्शित होते हैं-

"त्रिभागोन ही चरम देहसे, ज्ञानमय आतम केरा
निरावरण ही ज्योति, निराबाधावगाहन विभु तेरा।
सकल कर्म-मल दूर करीने, पूरण अड़-गुण ले संगी।
स्व द्रव्य ही क्षेत्र-काल-स्वभावें, स्व-पर सत्ता गिन ज्ञानी।
निज गुण ही अनंते-शक्ति-व्यक्ति कर मन मानी।।
निज आतम रूपे, अज-अमल-अखंड़ित सुख खानी।।....."[१६]

व्यंग्य शैली–चटकीली और चुभीती एवं प्रखर बानीमें, मोह-मायामें मदमस्त आत्माको चेतावनीके सूरमें उसके फल स्वरूपको प्रभावोत्पादक रूपसे वर्णित किया है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"नीले मधु पीके टीके शीखंड सुगंड लीके करत कलोल जीके नागबेर चाख रे,
अतर कपूर पूर अगर तगर भूर मृगमद घनसार भरे धरे खाख रे।
सेव आरू आंब दारु पीसता बदाम चारु आतम चंगेरा पेरा चखत सुदाख रे,
मृदु तन नार फास, सजाके जंजीर पास पकरी नरकवास अंत भई खाख रे।।[१७]

इस प्रकार महाकविराज श्री आत्मानंदजी म.के पद्य साहित्यके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि इन्होंने प्रायः परमात्माके प्रति सर्वस्व समर्पण एवं आत्माभिव्यक्तिके स्तवन, पद, सज्झाय, पूजादिमें विशेषतः सरस, मधुर, एवं ललित शैलीका प्रयोग किया है, तो मुक्तकादिमें मधुर, ललित, विदग्ध एवं उदात्त शैलीको अपनाया है। कहीं कहीं व्यंग्य शैलीका रसपान भी छलक जाता है।

जैन काव्य शैली स्वरूप--यद्यपि मानव हृदय एकसा होता है तथापि प्रत्येक जातिके साहित्यकी निजी-वैयक्तिक विशिष्टता होती है। जातिके विकस्वर भाव स्वरूप, उनके विकासके साथ ही साथ साहित्यमें झलकते रहते हैं, जो कभी कभी इतने प्रभाविक होते हैं कि उससे समाज जीवनमें एक स्थायी परिवर्तन लाया जा सकता है। जैन कवियोंके साहित्यकी रचना शैलीकी अपनी विशिष्टतायें हैं, जो अन्य धर्म-मतावलम्बियोंके भक्ति साहित्यसे निराली ही हैं। इनके विभिन्न शैली रूपोंको हम इस प्रकारसे वर्गीकृत कर सकते हैं-

आचार–जिनमें घटनाओंके स्थान पर उपदेशात्मकता प्रधान होती है। *रास*–आचार्य परशुराम चतुर्वेदीने अपने लेख 'भक्तिकालकी पूर्वपीठिका'के अंतर्गत लिखा है- **"जैन कवियोंने लोकप्रचलित शृंगार-परक आख्यानों तथा काम-कथाओंका उपयोग, शील-वैराग्य भावनाके प्रचारमें किया"** [१८] अतः वही पौराणिक पात्रोंके जीवनालेखनका प्रयास इस नव्य काव्यरूप 'रास'के अंतर्गत किया गया। *चरित काव्य*–इनमें शलाका पुरुषों, महापुरुषों, महासतियों आदिके जीवन चरित्रोंकी प्ररूपणा हुई है जिससे उत्तम एवं उदात्त जीवन शैली और संस्कृत-संस्कार-व्यवहारादिके सुधार तथा उर्ध्वीकरणकी प्रेरणायें-संदेश मिलते हैं। *फागुकाव्य*–ये 'होरी' काव्योंका रूप माना जाता है। इनमें होरीकी स्वच्छंद मस्तीको परिवर्तीत करके विविध आध्यात्मिक भावोंकी सृष्टि की जाती है। *चर्चरी*–विशिष्ट जीवन प्रसंगोंका आलेखन किया जाता है। *संवाद*–जिसमें प्रमुखतः गुरु शिष्यादि संवाद मिलते हैं, जो तत्त्वोपदेश रूप होता है। *प्रगीतान्तर्गत बारहमासा*–इनमें शृंगारिकताका स्थान नीति या अध्यात्मने लिया है। *मुक्तक*–जो प्रगीतकाव्यका ही एक रूप माना जाता है और जिसमें संगीतात्मकता विशेष रूपमें पायी जाती है। इनमें भगवद् भक्तिके लिए रचे गए स्तुति, चैत्यवंदन, स्तवन, सज्झाय, गहुंली, आरती, मंगलदीप, पर्व-त्यौहार गीत, तीर्थ वंदनावलि, विनती, पद, पूजादि अनेक विभिन्न रूप पाये जाते हैं। इनमें साकार रूप अरिहंत एवं निराकार रूप सिद्धकी त्रिविध, अष्टविध, सत्रह-इक्कीस प्रकारसे की जाती पूजाभक्ति-भावोंका स्वरूप, बीस स्थानकादि विविध तपादिका स्वरूप, श्री अरिहंतादि शलाका पुरुषादिके गुणगान, कल्याणक महोत्सवादि भक्ति स्वरूप, तीर्थोंके वर्णनादिका जो अत्यन्त चमत्कारिक, आलंकारिक, वैभवपूर्ण आलेखन विविध छंद, लय एवं राग-रागिनियोंमें हुआ है। महाकवि श्री आत्मानंदजीके पद्य साहित्यमें भी इन रूपोंके दर्शन होते हैं-यथा- 'उपदेश बावनी' 'ध्यान स्वरूप' आचार काव्यके रूपमें; 'चतुर्विंशति जिन स्तवन' एवं अन्य तीर्थंकरोंके स्तवन-'चरित काव्यके रूपमें; 'आत्मविलास स्तवनावलि'के कुछ पद फागुकाव्यके रूपमें; 'स्नात्रपूजा'-चर्चरी रूपमें; 'श्री नेमिनाथ जिन स्तवन'- बारहमासाके रूपमें एवं अन्य मुक्तक रूपोंके अन्य फूटकर रचनाओंमें रसास्वादन मिलता है।

उपरोक्त वाङ्मय विषयक विवरणके साथ साथ स्मरणीय है कि विवक्षित साहित्य रचनायें भी संसार विरक्त एवं आत्माभिमुख; परमतत्त्व-देवाधिदेवकी अचिन्त्य-अलौकिक-उत्कृष्ट भक्ति भाव-प्रणिधानमें तन्मय एवं तद्रुप; अनूठे आत्मानंदमें निरंतर अवगाहनकर्ता, जैनधर्मस्तंभ श्री आत्मानंदजी नामाभिधान जैनाचार्य द्वारा केवल 'स्वान्तः सुखाय-जगजन हिताय'की भावनायुक्त उमड़ते हुए भावोद्रेकके साथ स्वतः ही फूट पड़ी थी; जिसमें परमपद (मोक्ष) प्राप्तिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं विशद मार्ग प्रवाहोंका मार्गदर्शन विशेष रूपसे प्राप्त होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।

इनके काव्यमें भावात्मक एवं अनुभूतिकी प्रवणताके साथ साथ सहजता और सरलताकी ओर उन्मुख सत्यके प्रचार-प्रसारके लिए सत्यका विवेचन एवं निरूपण हुआ है। अतः इनका मूल लक्ष्य न काव्य-सौष्ठवकी ओर था न काव्य परिमार्जन या परिष्कारकी ओर, प्रत्युत इनके काव्यमें अंतर्भावोंके प्रकटीकरण एवं स्पष्टीकरण करते करते अलंकार निरूपण या प्रतीक योजनायें और बिम्ब विधान, कल्पना प्रचुर व्यंजक भाव (ध्वन्यात्मकता) और छंदोबद्धता एवं गेयता स्वतः ही आ गए हैं।

इनकी रचनाका प्रयोजन न आचार्य वामनकी भाँति- **"काव्य सद्दृष्टाऽदृष्टार्थ प्रीति-कीर्ति हेतुत्वात्"** है, न आचार्य मम्मट सदृश-**"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतर क्षतये, सद्यः परिनिवृत्तये कान्ता सम्मिततयोपदेश युजे।"** लेकिन प्रायः यह कह सकते हैं कि आचार्य भामहके समान-"धर्मार्थ काममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च" है। अर्थात इनकी रचनाओमें परमात्व तत्त्वकी स्वानुभूति और परमपद प्राप्तिके साथ साथ लोकमंगल भावनाकारी उपदेशोंकी प्रमुखता है।

इनके काव्योंकी अपनी विशेषतायें हैं-जो जैनधर्मके विशिष्ट आदर्श-स्याद्वाद और अनेकान्तवादकी अक्षुण्ण एवं अद्भूत रसधारमें उल्लास-विषाद, नीड़रता-भवभीरुता, रहस्यमय गूढ़ता एवं सरलता, नित्यानित्यता अथवा क्षणिकता और सनातनतादि विभिन्न विरोधाभासी भावोंको एक साथ अपनेमें समेटे हुए प्रवाहित होती रही है। अतः इन रचनाओंका विशेषाधिक मूल्य सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे प्रेक्षणीय है। डॉ. तारकनाथ बाली अपने 'निर्गुण भक्तिकाव्य' लेखान्तर्गत इसी विचारधाराको प्ररूपित करते हुए लिखते हैं- **"साहित्यकी जो लौकिक सीमायें तथा काव्यशास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक स्वीकृतियाँ हैं, उनमें इस काव्यधाराको नहीं बाँधा जा सकता, परंतु पारमार्थिक, अलौकिक एवं दार्शनिक जगतकी झाँकियोंको प्रस्तुत करनेवाले इस साहित्यका अपना महत्व है।"**[१९]

कोमल-ऋजु-नम्र हृदयतंत्रीके त्रिताल---

नैसर्गिक कवित्व शक्तिके स्वामी कविराज श्री आत्मानंदजीकी हृदयतंत्रीके त्रितालमें सुनाई देती है कोमलता, नाचती है ऋजुता, दिखाई दैती है नम्रता। लयबद्ध नादसौंदर्यकी झंकृतिसे झलकते हैं निजात्माको उद्बोधन और समाजको संबोधन (मार्गदर्शन)। परमात्माके कीर्तन, वंदन, स्मरणादि रूपोमें की गई भक्तिमें छलकती है कोमल-सरल-नम्र अंतरभावोंकी अभिव्यक्तियाँ।

'कुसुमादपि कोमलानि, व्रजादपि कठोराणि'-उक्ति साधुजीवनकी शोभा है। 'पर'(अन्य) एवं परमात्माके प्रति अत्यन्त कोमलता और 'स्व' एवं संसारके प्रति कठोरता यह अणगारके आभूषण हैं। परमात्माका जीवन स्वयं वीतरागताको संजोये हुए जीवमात्रके प्रति कल्याणकारी होता है। यही कारण है कि जिनेश्वर प्ररूपित जैनदर्शनमें 'पर'-अन्य सर्व जीवोंके प्रति कोमल-करुणा भाव धारण करते हुए 'स्व'के प्रति-निजात्माके अवगुण, कर्मकलंकोंके प्रति-कठोर अर्थात् आत्मदमन, इन्द्रियदमन, आशा-अपेक्षाओंका दमन करनेके साथ ही साथ संसार और सांसारिक-भौतिक-पौद्गलिक भावनाओंके प्रति कठोरताका (इनके त्याग करनेका) आह्लेक जगाया गया है। जिससे विश्व व्यवहारके अनेक भावों और कार्यकलापोंका, शिक्षण-संस्कार-संस्कृति आदिका विकास और वृद्धि शक्य बन सकें। श्री आचार्यदेवने अपने काव्यमें इन्हीं भावोंको साकार करनेके लिए अत्यन्त ऋजुताके साथ अर्हद् भक्तिभावमें मग्न बनकर गाया है-

"अर्हंत पदको भजके चेतन, निज स्वरूपमें रम रहिये।
तुम अकल स्वरूपी, छोड़के परगुण, निज सत्ता लहीये।
आतम घनमें खोज पियारे, बाहिर भरम ते ना रहिये।
गड़बड़ सब त्यागी, पासके चरणकमलमें जा रहीये।।" [२०]

ऐसे ही परमात्व स्वरूप दर्शनसे प्रसन्नता व्यक्त करते हुए झूम उठे हैं-

"प्रभु अविचल ज्योति रे, निज गुण रंग रली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु त्रिभुवन चंदा रे, तामस दूर टली। जग शांति के दातार, अघ सब दूर टली।"[२१]

भव्य जनोंको हितशिक्षा देनेके लिए कैसी कोमल-कर्णप्रिय-पथ्यवाणीसे उद्‌बोधन किया है।

"जलके विमल गुण, दलके करम फुन, हलके अटल धुन, अघ जोर कसीए;
टलके सुधार धार, गलके मलिन भार, छलके न पुरतान, मोक्ष नार रसीए।
चलके सुज्ञान मग, छलके समर ठग, मलके भरम जग, जालमें न फसीए।
थलके वसन हार, खलके लगन टार, टलके कनकनार, आतम दरसीए।।" [२२]

कदम कदम पर प्रकट होनेवाली नम्रताका तो इनकी अधिकांश रचनाओमें दर्शन होते हैं, लेकिन विशेषतः दास्य भावसे भवपार उतरनेके लिए याचना रूप जो स्वर बहे हैं वे अधिक हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं-यथा-**"श्री सुपास मुझ विनती, अब मानो दीन दयालजी।**

तरण तारण तुम बिरुद छै, भगत वछल किरपालजी।
..... किरपा करो मुझ भणी, थाये पूरण ब्रह्म प्रकासजी।"... [२३]

बजते हुए अनहद नादके 'तुंही तुंही' के तार-तानमें प्रसन्नानंद फूट पड़ा है-

"आतमराम आनंद पुरण, तुं मुज काज सुधार रे
अनहद नाद बजे घट अंतर, तुंही तुंही तान उच्चार रे।" [२४]

निर्मल आत्मदशाके अनुभवको नैसर्गिक और सहज फिर भी मार्मिक शब्दावलिमें परमात्माके सम्मुख व्यक्त करते हैं- **"मनरी बातां दाखाजी, म्हाराराज हो, ऋषभजी थाने**

मनरी बातां दाखाजी म्हारा राज.....
अनुभव रंग रंगीला समता संगीजी म्हारा राज हो,
आतम ताजा अनुभव राजा रंगीजी म्हारा राज".... [२५]

यह संपूर्ण काव्य ही अनूठी भाव व्यंजना, सुरीली गेयता और आतमराज रंग रेलियोंमें झूलता-बहता भाविक श्रोताको डोलायमान कर देता है।

इसप्रकार हम देख सकते हैं कि तार्किक-शिरोमणि,-'न्यायाम्भोनिधि' बिरुदधारी और स्वसमय प्रभावसे प्रभावित खंडन-मंडनात्मक परुष एवं निश्चयात्मक वाग्-विलासके स्वामी सूरिराजके काव्यमें परमात्मा प्रति सर्व समर्पित न्यौछावरी और उदात्त जिंदादिलीके साथ पर्युपासना करनेवाले कोमल-ऋजु-विनम्र भक्त हृदय कवि योग्य अंतर भावोंके समीचीन स्रोत स्थान स्थान पर श्रोताजनोंको निजानंदजी सृष्टिकी मस्तीमें रमानेवाले बन पड़े हैं, जो काव्यके चारु-सौंदर्यके परिचायक हैं।

भरपूर भक्ति, आध्यात्मिक गांभीर्य और उपदेश रहस्योंकी त्रिवेणीः—मानव मात्रकी ख्वाहिशः प्राप्त जीवनमें सुखानंदकी प्राप्ति, उसके चिरंतन सामीप्यकी अपेक्षा, और उस अपेक्षा पुष्ट्यार्थ उस सुखानंदकी रक्षाके प्रयत्नमें ही प्रवृत्तिशीलता-होती है। इसके लिए सर्वश्रेष्ठ साधनका अनुसंधान करते करते आविष्कार हुआ भक्तिका-भगवद् भक्तिका-जिससे वह अपनी अंतरात्माकी चिरंतन शान्ति, जैविक सुख-समृद्धि, अंततः शाश्वत-मुक्ति संपत्ति प्राप्त कर सकता है। यह भक्ति-भगवंतके प्रति स्वच्छंद रूपसे भावोंकी—द्रव्य या भावसे--मुक्त अभिव्यक्ति है, अतः इसे स्वरूपोंमें बांधना यह प्रथम दृष्टिसे उपहासजनक लगता है फिर भी, उसमें कुछ सामान्यतः साम्यताको देखते और अनुभूत करते हुए उसके कुछ स्वरूपोंको हम निश्चित कर सकते हैं, जो सर्व धर्ममें विभिन्न रूपसे-परमात्माके परोपकारादिके कारण कृतज्ञता, भगवंतके रूप-गुण-कार्यादिके प्रति अहोभाव-आश्चर्यादिके गान रूपमें प्रकटीकरण, भक्तके स्वदोष प्रदर्शन और क्षमा प्रार्थना आदि पाये जाते हैं। भागवतमें वर्णित नवधा भक्ति या कबीरकी निर्गुण और सुर-तुलसी आदिकी सगुण-भक्ति, जैन कवियोंकी पंचपरमेष्ठि स्थित सालंबन या निरालंबन भक्ति अथवा नवपदादिके प्रति समर्पण भाव भक्ति आदि अनेक रूपोंको भी इन्हीं स्वरूपोंमें समन्वित कर सकते हैं।

महाकविराज श्री आत्मानंदजी म.की जीवन झलकसे विदित है कि जन्मजात कर्पूर-ब्रह्म क्षत्रिय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाला जोधाशाहके घर ढूंढक साधुओंके साहचर्यसे स्थानकवासी साधु बननेवाले, सत्यके मशालचीने कैसी कष्ट साध्य और अति दुष्कर परिस्थितिमें सत्यकी रक्षा करके शुद्ध जैनधर्मकी ज्योत प्रकाशित की थी। अद्‌भूत-अनिर्वाच्य और आत्मीय सुखानुभूति प्राप्त रससिद्ध कवीश्वर आचार्य प्रवरश्रीने उस चिद्‌घनानंद स्वरूप वीतरागके कायिक दर्शन-वंदन-आसेवन; वाचिक कीर्तन रूप अंतःस्पर्शन और मानसिक अर्चनसे आत्मिक रटण-स्मरण-श्रवण रूप अनेकविध भाव भक्तिसे छलाछल ऊर्मिल हृदय तंत्रीके तारको झंकृत करनेवाले मानो वीणावादन करते हुए जो पंचपरमेष्ठि स्थित परमात्माकी विविधा भक्तिके सूर प्रवाहित किये हैं, किसी भी सहृदयके चित्तको सहज ही में मंत्रमुग्ध कर देनेको समर्थ है तो सामान्य जन-जनके अंतरको भी रससागरमें निमज्जन करानेकी क्षमता रखते हैं। वीतराग देवकी अंगरचना करके जो साकार रूप अरिहंतके दर्शन करते समय आपके भाव बहे है उस भक्ति-सरितामें भाविक स्नान करते हैं-

"तुम चिद्‌घन चंद आनंदलाल, तोरे दरसनकी बलिहारी।
तोरे दरसनकी बलिहारी आनंदलाल दरसनकी बलिहारी.....
अलख निरंजन ज्योति प्रकासे, पुद्‌गल संग निवारी....तुम चिदघन चंद....
सम्यग् दरसन ज्ञान स्वरूपी, पूर्णानंद विहारी..... तुम चिद्‌घन चंद....."(२६)

इन काव्य पंक्तियोंको गाते गाते अंतरके जिस उदात्त और प्रसन्नताभरे भावकी अनुभूति होती है- भक्तिकी जिस अनुरूपता-चिन्मयताका आस्वाद प्राप्त होता है वही कविकी अनूठी भक्तिका परिचय करवाता है। शृंगाररसकी मस्तीको भी म्हात करनेवाली यह आत्मोन्मुख शांतरसकी प्रवाहिता भक्ति निरंतर प्रभाववृद्धि कारक बन पड़ी है।

इसके अतिरिक्त अनेक काव्योमें तरणतारण, करुणानिधान, परदुःभंजन रूप साकार अरिहंत देव और चिदानंद स्वरूपी, अचल, अक्षय, निरंजन-निराकार सिद्ध भगवंतके दर्शन-वंदन-आसेवनादि भावोंकी झलकें दिखाई देती हैं।

"जिन दर्शन मोहनगारा, जिने पाप कलंक पखारा।
भवोदधि तारण पोत मिला तूं, चिद्‌घन मंगलकारा
श्री जिनचंद जिनेश्वर मेरे, चरण शरण तुम धारा.....जिन....
अजर, अमर, अज, अलख निरंजन, भंजन करम पहारा,
आत्मानंदी पाप निकंदी, जीवन प्राण आधारा.... जिन दर्शन ...." (२७)
"सुविधि जिन वंदना, पाप निकंदना जगत आनंदना, मुक्तिदाता....." (२८)
"भविजन वंदो रे, धरम जिनेसर, धरम सरूपी, जिणंद मोरा;
परम धरम परगासै, परदुःखभंजन, भविमन रंजन....." (२९)
"जिनंदा तेरे चरण कमलकी रे, जो करे अर्चन नरनारी
नैवेध भरी शुभ थारी, तन मन कर शुद्ध आगारी....." (३०)

इस प्रकार भक्तिरसके भावमें सराबोर करनेवाली, आत्मोज्ज्वलता प्रदाता, अंतरकी गहराईको छू लेनेवाली रचनायें प्राप्त होती हैं।

भगवंतके जिस अप्रतिम रूपका कविराजने दर्शन किया-वंदन किया-उसी अनुभूत रूपको विविध भंगिमामें व्यक्त करते हुए जैन दर्शनाधारित साकार-निराकार स्वरूपोंका तादात्म्य जिस नैसर्गिक शब्दावलिमें अद्‌भूत गेय रूपमें, कीर्तित करते हैं-वे आश्चर्यकारी है; क्योंकि जिसे अन्य दर्शनकारोंने 'नेति नेति' कहकर अनिर्वचनीय कहा, उसी स्वरूपको–अंतरघटके अनुपम रहस्यको–व्यक्त करते हुए संपूर्ण अध्यात्म और योगके सुंदर व सरस समन्वयसे एक विशिष्ट भव्यताके साथ कलात्मक रूपमें प्रस्तुत किया है। इस काव्य प्रवाहमें बहती है सरल शांतता, छलकती है अंतर वेदनामें भी संभाव्य साध्य प्राप्तिकी मधुरता-जो कविकी सहज प्रतिभाको प्रतिबिम्बित करती है- **"ऋषभ जिणंद विमलगिरि मंड़न, मंड़न धर्मधुरा कहीये।**
तुं अकल सरूपी, जारके करम भरम, निज गुण लहीये.....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजर अमर प्रभु अलख निरंजन भंजन समर समर कहीये
तुं अद्‌भूत योद्धा, मारके करम धार, जग जस लहीये....
अव्यय विभु ईश जगरंजन रूपरेखा विन तुं कहीये,
शिव अचर अनंगी तारके जग जन, निज सत्ता लहीये.....
आतम घटमें खोज पियारे, बाह्य भटकतो ना रहीये
तुं अज अविनाशी धार निजरूप, आनंद घन रस लहीये....." (३१)

इसके व्यतिरिक्त विभिन्न द्रव्यों एवं भावसे साकार रूप अरिहंत भगवंतकी भक्ति करते हुए महान फल स्वरूप संसार सागरसे तिरानेवाली अनेक तरंग लहरियाँ प्राप्त होती है-

"पूजा अष्ट प्रकारकी, अंग तीन चितधार; अग्र पंच मन मोदसे, करी तरिये संसार।
न्हवण विलेपन सुमन वर, धूप दीप अति चंग; वर अक्षत नैवेद्य फल, जिन पूजन मन रंग।।".... (३२)

मुमुक्षु भक्तजनोंके प्राणाधार श्रीपंचपरमेष्ठी एवं नवनिधान-दाता, नवधा-भक्तिके आलंबन श्रीनवपदजीमें समाहित सुदेव-सुगुरु सुधर्मकी भक्तिका स्वरूप भी दृष्टव्य है-

"देव धर्म गुरु तत्त्वकी, सद्दहणा परिणाम; सातों मिलके मिट गये, सम्यग् दर्शन नाम।" (३३)

जैन दर्शनने योगको भी भक्तिकी एक धाराका रूप दिया है। इस योग साधनाके सालंबन और निरालंबन रूपके निरूपण भी आपके काव्योमें हुए हैं।

"योग असंख ही जिनवर भाषित, नवपद मुख्य करी।
कर अवलंबन भवि मन शुद्ध, कर्म जंजीर जरी।।" (३४)

परमात्माकी मन-वचन-कायाकी तद्रुपतायुक्त की गई अर्चना क्या रंग लाती है-

"ए नवपद शुद्ध अर्चन करके, निज घटमें हि धरी।
चिदानंद घन सहज विलासी, भव वन दाह करी।।" (३५)

"अरिहंत पद अर्चन करी चेतन, निज स्वरूपमें रम रहीये" अथवा
"जिन अर्चन सुख दाना रे भविका जिन अर्चन सुखदाना.....
आतम आनंद शिवपद रंगी, संगी सदा आधाना रे.....जिन (३६)

भक्ति अखंड़ बहनेवाली सरिता है जो साध्य-समुद्रकी ओर निरंतर गतिशील रहकर लक्ष्यको प्राप्त करती है। भक्ति अत्यन्त प्रकाशवान तेजपुंज है जो आत्म-ज्योतिको परमात्माके जाज्वल्यमान प्रकाश-ज्योतिमें विलय कराके शाश्वतता प्रदान करती है। लेकिन इस परम साध्यकी प्राप्तिके लिए भौतिक-लौकिक-पार्थिव कामनायें, वासानायें एवं भावनायें त्याग देनी चाहिए। इच्छाओं-अपेक्षाओंकी जंजीरें कर्ममुक्तिके इच्छुक आत्माके लिए बंधनकर्ता हैं। ये तृष्णायें भगवद् भक्तिसे ही विलीन हो सकती हैं और जीव परम विश्रामको प्राप्त हो सकता है। आचार्य प्रवरश्री ऐसी एकाग्रतापूर्ण समर्पित सेवाको सजीव करते हैं-

"मो मन तुम विन कित ही न लागे, ज्यूं भामिनी वश कामी
जनम जनम तुम पदकज सेवा, चाहुं मन विसरामी.....
रंभा-रमण सुरिंदपद-चक्री, वांछु हुं नहीं निकामी,
आतमराम आनंद रसपूरण, दे दरिसन सुखधामी।।" (३७)

ऐसे ही परमात्माके साथ भेदाभेदताको चित्रित करते हुए गाते हैं-

"तुं है अचरवरा, मैं हुं चलनचरा, मुझे क्युं न बनाओ आप सरा?
जब होश जरे, और साँग टरे, तुं और नहीं मैं और नहीं.....
तुं है भूपवरा शंखेश खरा, मैं तो आतमराम आनंदभरा,
तुम दरस करी, सब भ्रान्ति हरी, तुं और नहीं मैं और नहीं।" (३८)

जगतकी अनुकंपा अंधकार फैलाती है जबकि जिणंदजीका अनुग्रह चिरंतन ज्योति जगाता है। विश्वके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीन, दैन्य, दुःख गर्ताके घोर अंधकार बीच भी परमात्माकी स्नेहासिक्त करुणाधारासे सिंचित भक्त हृदयका मान उसकी परम निष्ठाको प्रस्फुटित करता हैं-

"तुं महावीर गुरु मेरा रे, हुं बालक चेरा तेरा
जिणंदा तोरे चरणकमलकी रे, हुं भक्ति करुं मन रंगे
ज्युं कर्म सुभट सब भंगे, हुं बेसुं शिवपुर द्रंगें
वीरजिन दाता रे, करो मुझ शाता रे, प्रभु तुं तारक मेरा
करुणानिधि स्वामी मेरा, हुं शासन मानुं तेरा... जिणंदा तोरे...."[३९]

कविवर श्रीआत्मानंदजीम.को. नैसर्गिक रूपसे ही सिद्धकविके रूपमें हम अनुभूत करते हैं, जो काव्यका निर्माण करते नहीं, लेकिन, लगता है उनके असीम भावयुक्त और भक्तिभरे दिलमें भरपूर भावोंके अनेक निर्झर कलकल निनाद कर रहें हों और बरबस फूटकर काव्यरूप बन जाते हों। उन रचनाओमें भक्त कविराजश्रीने वंदन-पूजन-अर्चन करते हुए दास्यभक्ति व सख्यभक्ति–दोनों स्वरूपोंका आलेखन किया है। आपकी इस सांगितिक स्वरलहरीके प्रवाहने कईं मूर्तिभंजकों-उत्थापकोंको आत्मीय उल्लासयुक्त मूर्तिपूजामें लयलीन बनाये और परमात्मा पूजनमें अग्रसर किये। आपकी रचनाओमें सर्वस्व समर्पित, केवल कर्ममुक्ति–संसारकी सर्वश्रेष्ठ सिद्धिकी ही याचनाके स्वर कदम कदम पर सुनाई देते हैं। साथ ही साथ विश्वके विभिन्न धर्मोमें जैनधर्मका सर्वोच्च स्थान क्यों हैं इसे भी प्रदर्शित किया है-

"एक ही सूरज जग परगासे, तारप्रभा तिहां कोन गणंदा।
ऐरावण सरिसो गज छंड़ी, लंबकरण मन चाह करंदा।।
जिन छोडी मन अवर देवता, मूढ़ मति मन भाव धरंदा।
कोई त्रिशूली चक्री फुन कोई, भामिनिके संग नाच करंदा।
"शांत रूप तुम मूरति नीकी, देखत मुझ मन हुलसंदा।
श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी, जग विसरामी, त्रिभुवन चंदा...."[४०]

जिस देव रूपका गुरु आतमने अनुभव किया-दर्शन किया उसका सतत स्मरण, निरंतर रटण-अंतस्तलमें गुंजनादिका अंकन भी मन मोहक बन पड़ा हैः-

"अनहद नाद बजे घट अंदर, तुंही तुंही तान उच्चारे रे श्री शंखेश्वर निज गुणरंगी.....
"तेरो ही नाम रटत हुं निशदिन, अन्य आलंबन छारे रे।
शरण पड्येको पार उतारो, एसो विरुद तिहारे रे....श्री शंखेश्वर" [४१]
"श्याम मेघ सम पासजी निरखी, आतम आनंद शिखी जिम हरखी।
कर्त शब्द मुख पास तुंही तुंही, यही रटना रट लइ रे....." [४२]

अतः हम यह कह सकते हैं कि महाकवीश्वर श्रीआत्मानंदजीके काव्य भक्तिरससे लबालब भरे हैं क्योंकि वे भक्त पहले थे कवि बादमें। निर्मल भाव-जल भरपूर मानससरमें 'आतम हंस' मुक्ति-मौक्तिकका चारा चुगते हुए विहर रहा है। जिन भक्तिकी श्रेष्ठता भी इसीमें है जो जिनके साथ जन-जन और जीवमात्रके प्रति भी करुणार्द्र दिलसे हमदर्द बनकर विश्व प्रेमका शंखनाद फूंके। सुरीश्वरजीके दिलकी गहराईमें भी इन्हीं उच्च और श्रेष्ठ भावोंकी अवस्थितिकी झलकको श्रीदेवकुमार जैनने प्रदर्शित की है-

"वैरीका उद्धार करो तुम देकर शुभ उपदेश; पापकार्यसे सदा बचो सब, उरमें भक्ति जिनेश।
प्रेम सूत्रसे जगको बांधो, बनो उदार विशेष ।। सादा रहन चलन भोजन हों, देशी वस्त्र अरु वेष।
धर्म समाज देश सेवामें, हो मन लग्न हमेश।। हिन्दी राष्ट्रभाषा सब मानो, अहिंसा वीरादेश।
भारतीय सुरीच्छा अंतिम, हो स्वतंत्र मम देश।। सुनो सब विजयानंद आदेश।" [४३]

आध्यात्मिक गांभीर्य (सैद्धान्तिक संकेत):—जैनाकाशके ओजस्वी आदित्य श्री आत्मानंदजी म. केवल सत्यके उपासक थे। जीवन-सत्य व आत्म-सत्यका अनवरुद्ध अन्वेषण करते करते इन्होंने जिन आदर्शोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संधान किया वे परमार्थके लिए पेश भी किया। इस आध्यात्मिकताके गहन-गंभीर अनुभूत सत्योंको विशेष रूपसे आपने गद्यमें निरूपित किया है, लेकिन, आचार्य प्रवरश्री दार्शनिक होने पर भी कला-रसिक आत्मा थे-जन्मजात कलाकार-कवि थे; अतः क्लिष्ट-गूढ दार्शनिकताको भी अप्रतिम भावधारामें-काव्यरूपोमें-सजाकार प्रवाहित किया है।

जैन दर्शनका सैद्धान्तिक हार्द, स्याद्वाद एवं अनेकान्तवादमें निहित है, जिससे विश्वके सर्व दर्शनोंके सिद्धान्तोंको 'स्यात्'की सप्तभंगी एवं प्रमाण-नयादिके सहारे सहज रूपमें ही समन्वित कर सकते हैं; क्योंकि प्रत्येक दार्शनिक धाराके विभिन्न सिद्धान्त एकांगी प्ररूपणा रूप होनेसे एक-दूसरेसे परस्पर व्याघात पाते हैं। इसलिए उन मतोंको "अज्ञान अंधकार" कहकर जैन दर्शनने अपने 'स्याद्वाद सूर्य'से उसे कैसे नष्ट किया, उसे वर्णित करते हुए जो चित्र खिंचा है- **"प्रवचन अमृत रस भरी ध्यानें, चिद्घन रंग रंगील रे।**

कुमति जाल सब छिनकमें जारे, प्रगटे अनुभव लील रे।।
तीनसो साठ तीन मतधारी, जगमें तिमिर अज्ञान रे...
जयो जिनवचन सूर तमनाशक, भासक अमल निधान रे.....
सप्तभंगी नय सप्त सुंहकर, युक्तमान दोय सार रे।
षड्भंगी उत्सर्गादिककी, अड़ पक्ष सम्यक् कार रे..... प्रवचन पद भवपार उतारे" (४४)

इसी तथ्यको अन्य रूपमें भी प्रस्तुत किया है–स्याद्वाद-वनराज, दुर्नय-स्यारवृंदको अपने दर्शन मात्रसे ही कैसे पलक झपकते भगा देते हैं इस चित्रको देखें-

"स्याद्वाद नयपंथमें, पंचानन बलपूर; दुर्नयवादी वृंदको, करे छिनकमें दूर" (४५)

इस रहस्यको प्रकट करनेके पश्चात् अपनी काव्य धाराको आगे बढ़ाते हुए उत्कृष्ट जैन दर्शनकी विशिष्टताको वर्णित करते हुए इन्होंने जिक्र किया है कि, एक जैन दर्शनकी ही देन है कि वह स्याद्वादके सहारे अन्य सबके साथ (इतर दार्शनिक सिद्धान्तोंके साथ) समन्वय कर सकता है। द्वैतवादी अद्वैतवादीसे टकराता है, तो निर्गुण-सगुणका उपहास करता है; चार्वाक आत्माका मूल ही उखाड़ फेंकता है, तो वेदान्तीकी उधेड़बून विचित्र ही है। इन विभिन्न दर्शनोंका समन्वय जैन दर्शनमें प्राप्त होता है-यथा-दो विरोधी सगुण-निर्गुण भगवद् रूपोंको समन्वित करके समुच्चय रूपमें जैनधर्म स्वीकारता है। श्री अरिहंत सगुण रूपका और श्री सिद्ध भगवंत निर्गुण ब्रह्म स्वरूपका प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे श्री महामंत्र नमस्कारमें देव तत्त्व स्वरूपमें 'नमो अरिहंताणं; नमो सिद्धाणं'–रूपमें दोनोंको नमस्कार किये हैं ।

इसे ही कविश्रेष्ठने बखुबी अपने काव्यमें भी अभिव्यक्ति दी है -

सगुण रूप- **"अरिहंत पद मनरंग चिदानंद अरिहंत पद मनरंग**

चिदानंद घन मंगल रूपी, मिथ्या तिमिर दिणंद; चौंतीस अतिशय, **पैंतीसवाणी, गुण बारे सुखकंद..... चार निक्षेप रूप जग रंजन, भंजन करम नरिंद; ज्ञायक नायक शुभगतिदायक, तुं जिन चिद्घन वृंद.."** (४६)

निर्गुण रूप- **"सिद्ध अचल आनंदी रे, ज्योतिमें ज्योति मिली।**

अज अलख अमूरति रे, निज गुण रंग रली। शिव अजर **अनंगी रे, करम को कंद दली।।.....**

नभ एक प्रदेशे रे, सब सुख पुंज भिलि। बंधन छेद असंगा **रे, पूर्व प्रयोग फली।....."** (४७)

देव-गुरु-धर्म–जैनदर्शनकी इस तत्त्वत्रयीको परस्पराश्रयी दिखाकर उनकी साधनाकी ओर संकेत किया है- **"दर्शन विना ज्ञान नहीं भविकुं, मानो तो सही; विना ज्ञानके चरण न होवे, जानो तो सही ।**
मिट गई अनादि पीर, चिदानंद जागो तो सही; साध्य दृष्ट सर्व करणी कारण धारो तो सही" (४८)

जैन दर्शनके प्राणाधार 'नवपद'का स्वरूप और कार्यका वर्णन करते हैं -

"अखिल वस्तु विकासन भास्करं, मदन मोह तमस्सु विनाशकम्;
नवपदावलिनाम सुभक्तितः शुचिमना प्रजयामि विशुद्धये।।" (४९)

सम्यग्-दर्शन्, सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-चारित्र रूपी रत्नत्रयीको ही जैनदर्शनमें मोक्षमार्ग, मोक्षमार्गके साधन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षमार्गका साध्य माना है। इसे श्रद्धेय सुरीश्वरजीने कैसे ग्रंथन किया है-दृष्टव्य है-

स. दर्शन- **"सम्यग् दर्शन पूज ले, जिम मिटे मन झोला**
मल उपशम, खय उपशमे, खयसे दृग खोला। त्रिविध भंग सम दर्शने, जिनवर इम बोला।।...." (५०)

स. ज्ञान- **"सबमें ज्ञानवंत बड़वीर, काटे सकलं कर्म जंजीर....**
"ज्ञान सुंहकर चिद्घन संगी, सप्तभंगी मत सारे रे.... शुद्धज्ञान मिथ्यात्व मिटेसे, ज्ञानावरण विड़ारे रे.....
गुरु सेवासे योग्यता प्रगटे, हेय उपादेय कारे रे..... ज्ञेय अनंत स्वरूपे भासे, दीप तिमिर जिम टारे रे.....
नित्यानित्य नाश-विनाशी, भेदाभेद अभंगी रे..... एक अनेक ही रूपी अरूपी, स्याद्वाद नय संगी रे....
संशय सर्व ही दूर निवारे, आतम सम रस चंगी रे....." (५१)

स.चारित्र- **"चय तें अष्ट कर्मका संशय, रिक्त करे सब थाना रे**
चारित्र नाम निर्युक्तिए भाष्यो, ते वंदु गुण ठाना रेः चारित्र मुज मन माना रे, भाविका....."(५२)

ऐसे ही षट्द्रव्य, कर्मविज्ञान, अष्ट-प्रवचन-माता, सामायिक, आदि अनेकानेक अध्यात्मके रहस्यमयी तत्त्वोंको सरल-सांकेतिक फिरभी भावपूर्ण कविता सरितामें बहाकर आत्मशीतलताके लाजवाब असबाब उपलब्ध करवाये हैं। **"पंच समिति तीन गुप्ति धरे नित, निशदिन धरत विराग....**
चार प्रमाण द्रव्य षट् माने, नव-तत्त्व दिलमें चिराग... सामायिक नवद्वार विचारी, निज सत्ताको विभाग....(५३)

अतः निष्कर्ष रूपमें हम देख सकते हैं कि अध्यात्मके अवधु श्री आत्मानंदजी म.ने आराधना-साधना एवं सिद्धान्तोंको भी छंदोबद्ध करके संगीतकी स्वर लहरियोंके साथ असाधारण कलात्मक काव्य रूपोंमें अंकित किया है।

उपदेश रहस्यः-- जिनके व्यक्तित्वमें अद्भूत सुधारकता, शुद्ध संयमकी प्रतिभा और प्रताप, दृढ निश्चयी मनोबल एवं भगवान श्री महावीरके प्रति सच्ची-शुद्ध श्रद्धा छलकती हों; जिनशासनके संरक्षण और संगठनके लिए शांत-सात्त्विक अहिंसक रूपसे सत्यके प्रचार-प्रसारका उदात्त आग्रह हों; वर्णभेद-वर्गभेद और जातिभेदसे नितान्त दूर *'सवि जीव करुं शासन रसी'*की सद्भावनाके रंग छाये हों, ऐसे क्रान्तिकारी, युगनिर्माताका यह सहज स्वभाव ही बन जाय कि, वह अन्यको प्रेरणा करें, प्रोत्साहित करें, उपदेश द्वारा उत्तेजित करें, निजात्म व परात्म-कल्याणके राह पर कदम बढानेको-तो उसमें आश्चर्य ही क्या! संगदिलोंको सहृदयी बनानेके लिए, कर्माधीन जीवोंके उद्धारके लिए, जिन शासनकी सेवाके लिए जिन्होंने अपना सर्वस्व न्यौच्छावर किया; आजीवन जिसने जनजनकी-जीव मात्रकी हितचिंतामें ही अपनी सर्वतोमुखी शक्ति लगा दी-ऐसे परमोकारी, विरल विभूतिने अपने अक्षरदेहसे भी अधिकांश रूपमें जिनशासनकी वैसी ही खिदमत की जिसे भावि संतति कभी भूला नहीं सकती।

इनकी एक पद्य कृतिका नामाभिधान ही *'उपदेश बावनी'* है जो आपकी सर्व प्रथम रचना है और जिसमें भाविकोंको देव-गुरुका स्वरूप परिचय कराते हुए धर्मतत्त्वकी आराधना-साधनाका उपदेश दिया है-

"थोरे सुख काज मूढ़ हारत अमर राज, करत अकाज जाने लेयुं जग लुंटके।
कुटुंबके काज करे आतम अकाज सारे, लछी जोर, चोर हरे, मरे शीर फुटके।
करम सनेह जोर, ममता मगन भोर, प्यारे चले छोर, जोर रोवे शीर कुटके।
नरको जनम पाय, वीरथा गमाय ताह, भूले सुखराह, छले रीते हाथ उठके।।" ५४

सर्वश्रेष्ठ रिद्धि समृद्धि एवं भौतिक सुखके भोक्ता, देवलोकके देवको भी वांछनीय ऐसे मानव भवको पाकर मनुष्यको क्या करना चाहिए इसे दर्शाते हुए कहते है-

"देवता प्रयास करे, नरभव कुल खरें, सम्यक् श्रद्धान धरे, तन सुख कार रे।
करण अखंड पाय, दीरघ सुहात आय; सुगुरु संजोग थाय, वाणी सुधा धार रे।
तत्त्व परतीत लाय, संजम रतन पाय, आतम सरूप धाय, धीरज अपार रे।
करत सुप्यार लाल, छोर जग भ्रमजाल, मान मीत जितकाल, वृथा मत हार रे।" ५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे सुहागन नारीका द्योतक भालतिलक होता है ठीक वैसे ही, कविराज, आत्म सुहागनके सुमति(शुद्धबुद्धि)संकेतसे चेतनजी (आत्मा)को शुभमनसे द्रव्य-समाधि और शुद्ध मनसे भावसमाधि प्राप्त करके अंतस्तलके पक्षपातको धारण करनेकी हिमायत करते हैं-

"धारो धारो समाधि केरो राग, राचोरे चेतनजी, मन शुद्ध लाग....
द्रव्य समाधि भाव समाधि, सुमति केरो सुहाग....राचोरे...." [५६]

इस दूषम कालमें जीवको समाधि-प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर एवं दुर्लभ है। शान्ति व समाधि-जलको, आधि-व्याधि-उपाधिकी दैहिक, दैवीक और भौतिक भीषण तपनने तपाकर अदृश्य कर दिया है। मानवमात्रकी-गहन समझो या विशाल–आज अत्यधिक विकट एवं विकराल समस्या है समाधि प्राप्ति। इसकी अत्यन्त सरलतम तदबीर फरमाते हुए सहृदय कवि गुनगुनाते हैं –

"पूजन करो रे आनंदी, जिणंद पद, पूजन करो रे आनंदी....
अष्ट प्रकारी जन हितकारी, पूजन सुरतरु कंदी....जिणंद पद....
आतमराम आनंद रस पी ले, जिन पूजत शिवसंगी....जिणंद पद....[५७]

अथवा इन आठों भेदसे न हो सके, केवल जिनेश्वरकी धूप-पूजाकी भी परिणति कैसी है देखें-

"धूप पूजा अघ चूरे रे भविका धूप पूजा अघ चूरे।
भवभय नासत दूरे रे भविका धूप पूजा अघ चूरे।।....
आतम धूप पूजन भविजनके, करम दुर्गंधने चूरे रे भविका धूप पूजा अघ चूरे। [५८]

जीवनकी क्षणभंगुरताको दर्शाकर उस भौतिक भ्रमजालमें न उलझनेकी सीख देते हुए सज्झायमें उलाहना देते हैं- **"तुम क्यों भूल परे ममतामें....**

जीवित रूप विद्युत सम चंचल, डाभ अनी उद्-बिंदु लगेरो;
इनमें क्यों मुरझायो चेतन, सत् चित् आनंद रूप एकेरो....तुम क्यों...." [५९]

केवलज्ञानको अवरोधनेवाले कर्मोंका स्वरूप निरूपित करते हुए उससे प्रीत तोडनेकी शिक्षा माढ़ रागमें सुंदर लयके साथ प्रस्तुत की है-

"प्रीति भांगीरे कुमति शुं....
ज्ञान दरसणावरणी दोउ रे, इसके पूत कपूत; महानंद गुण सोसियो रे, वेदनी दास करूर....प्रीति.....
कुमता तात भयंकरू रे, मोहे मोह गरूर....कुमति शुं प्रीति भांगीरे...." [६०]

'स्वमें बस-परसे खस' इसी उक्तिको चरितार्थ करते हुए–परस्वभावसे आत्म स्वभावमें आनेके लिए प्रेरणा करते हुए आत्माको उपालंभ देते हे-

"तें तेरा रूप न पाया रे अज्ञानी....(२)
देखी रे सुंदरी, पर की विभूति, तुं मनमें ललचायो रे....
एक ही ब्रह्म रटि रटना रे, परवश रूप भूलाया रे... अज्ञानी .....[६१]

इस आत्म स्वभावमें स्थिरता कैसे हो? उसकी युक्ति भी प्रकाशित करते हैं-

"सुगुरु सुदेव सुधर्म रस भीनो, मिथ्या मत छिटकाया रे
इन्द्रिय-मन चंचल वश कीनो, जायो मदन कु राया रे
आत्मानंदी अजर अमर तुं, सत्चिद् आनंद राया रे.... तें तेरा रूपकूं पाया रे सुज्ञानी...." [६२]

श्री आत्मानंदजी म. सा. 'सर्व जीवराशिके प्रति स्व-पर आत्म-कल्याण करके सर्वआतमराम चिदानंदघन बने–आत्मासे परमात्मा पद प्राप्त करें' यही कामना-हार्दिक अभिलाषाके साथ अनेकानेक रचनाओंमें गूढ रहस्योंको सरलतासे विश्व समक्ष प्रस्तावित करते हैं।

कलात्मकता–भावात्मकता और दार्शनिकताके पुट–निदर्शनः–

कलात्मकताः- किसी भी कृतिमें कलासे युक्तताको कलात्मकता कही जाती हैं। जीवन भी एक कला ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। बिना कलात्मकताके जीवन शुष्क-निष्प्राण या निर्माल्य सा बन जाता हैं। अतः कलाका मानवजीवनमें श्रेष्ठ व महत्वपूर्ण स्थान है। जीवनके रसात्मक सौंदर्यानन्दसे तराबोर करनेवाली, कल्याणकारी, उत्तम और उदात्त भाव प्रदात्री कलाका साहित्यमें प्रमुख स्थान माना जाता है; क्योंकि कलासे काव्यमें भावोंकी संप्रेषणीयता और भावाभिव्यक्तिको प्रबलता एवं सजीवता मिलती है। जो काव्यकृति प्राकृतिक सौंदर्यालेखन द्वारा जीवनोत्कर्षक घटना तथ्योंके चित्रांकन करती है; छंदोबद्धता एवं संगीतात्मक गेयतादिके साथ हृदयंगम भावों, आत्म विशुद्धिके उत्तम पथप्रदर्शन एवं सामाजिक कल्याणकारी अनुभूत सत्योंको प्रत्यक्ष करवाकर दूरस्थको निकट लाकर अदृश्यको दृश्यमान बना देती है-ऐसी अनेकविध कलात्मकताके साथ विविध भाव भंगिमाओंको समन्वित करके रची गयी हों वह काव्य कृति उत्कृष्ट कोटीकी बन सकती है और चिरस्मरणीय व विशेषतः अति लोकप्रिय भी बन जाती है।

"त्रिषष्ठी शलाका पुरुष" ग्रंथराजमें सूरि सम्राट श्री हेमचंद्राचार्यजी महाराजजीने पुरुषोंके लिए बहत्तर प्रकारकी और स्त्रियोंके लिए चौसठ प्रकारकी कलाओंके प्रथम तीर्थपति श्री आदिनाथजी भगवंत द्वारा किए गए सर्व प्रथम प्रचलन एवं प्रसारणका जिक्र किया है जिनमें वाद्य-उदकवाद्य-नृत्य-नाट्य-चित्रांकन-शिल्प-आलेखन,-माल्य ग्रथनादि कलाओंके साथ साथ गीत-प्रगीत (काव्य) रचनाको भी कलाके रूपमें स्वीकार्य किया है। इन सभी कलाओंका अथवा इनमेंसे एकाधिक प्रकारकी कलाका जब एक ही विधामें समन्वय किया जाता है, तब काव्यानंद अपनी चरमावधि पर पहुँचता है।

कविसम्राट श्रीआत्मानंदजीम.की रचनाओंमें भी ऐसे ब्रह्मानंद सहोदर रसानंदका आस्वाद लिया जा सकता है। इनकी रचनाओंमें कईं जगह शाब्दिक चित्रांकन हुआ है, तो कहीं पर नाद सौंदर्य छलकता है। संगीत तो इनकी रचनाओंका प्राण है, क्योंकि नैसर्गिक बक्षीसके रूपमें, जन्मजात गुणवत्ताके रूपमें, संगीत इनके रोमरोमसे प्रकट होता था। उनकी गद्यमय उपदेश-धारा(प्रवचनों) में भी संगीतकी झंकृति मिलती थी-वही आरोह अवरोह, लयबद्धता और तालके साथ उस स्वरसम्राटके शब्दरव श्रोताके कर्णपटल पर लास्य नर्तन करते रहते थे।

अतः प्रायः प्रत्येक काव्य रचना-गीत, प्रगीत, पद, मुक्तक, स्तवन, सज्झाय, पूजादि-में सर्वत्र राग-रागिनियोंके ताल-लय-नाद या छंदोबद्धता पायी जाती है। फिर भी विशेष रूपसे इनकी रचनाओंमें खमाज, बडहंस, बिहाग, बसंत, माढ, भैरवी, मालकोश, जयजयवंती, पीलू, रेखतादि अनेक रागोंका; दीपचंदी, कहरवा, पंजाबी-ठेकादि तालोंका; मराठी, सोरठी, ठुमरी, गज़ल आदि चालोंका गुंजन श्रुतियुगलोंको झंकृत करता रहता है और प्राकृतिक-मानवीय एवं मानवेतरादि प्रासंगिक शब्द-चित्रोंके रंग अपनी प्रभा बिखेर रहे हैं। आपका प्रिय छंद है 'सवैया इकतीसा'-जिसमें 'उपदेश-बावनी' 'ध्यान-स्वरूप' आदिकी उपदेशात्मक रचनायें हुई है। जबकि दोहा, अड़िल छंदोमें 'पूजा' आदि काव्य प्रकारोंका, इंद्रवज्रा आर्यावृत्तादिमें स्तवनादिका सृजन हुआ है। पूजाकी ढालोमें विविध रागोंका निरूपण, भावोंको उपयुक्त प्रवाहित प्रभावकता प्रदान करता है। जिस मालकोश रागमें श्री अरिहंत परमात्मा देशना (प्रवचन) प्रदान करतें हैं और जो राग देवलोकके देवोंको भी अत्यन्त प्रिय है, उसी मालकोशमें कवीश्वरने अरिहंत परमात्माके देवों द्वारा मेरुगिरि पर किये जानेवाले जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें स्नात्र महोत्सवको वर्णित किया है जो मानो साक्षात् स्वरूपमें अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन पड़ा है।

"न्हवण करो जिनचंद, आनंदभर न्हवण करो जिनचंद
कंचन तन कलश जल भरके, महके वास सुगंध....आनंद भर....
सुरगिरि उपर सुरपति सगरे, पूजे त्रिभुवन इंद....आनंदभर....
श्रावक तिम जिन न्हवण करीने, टेक कलिमल फंद....आनंदभर....
आतम निर्मल सब अघ टारी, अरिहंत रूप अमंद....आनंदभर....[६३]

इनके रसमाधुर्य और श्रुतिपेशलता एवं छटायुक्त सजधजके साथ चमत्कृत व मर्मस्पर्शी गेयकाव्योमें जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसफुहार बरसती है, वह रसमर्मज्ञ-रसिक आत्माको उस रस सागरमें निमज्जन कराते हुए अंतरकी ऊर्मियोंको उछालती है। उसे दीन-दुनियाकी विचित्र उपाधियोंसे मुक्त करवा कर मंत्रमुग्ध समाधिमें लीन कर देती हैं। ऐसी ही एक पूजा रचना, जो हमारे भौतिक-लौकिक-दुन्यवी-मानसिक एवं कायिक विकारोंको भूलाकर अपूर्व, उदात्त आत्मानंदका अनुभव करवाती है जिसमें कवि चिद्घनानंद परमात्माके दर्शन पर बारबार बलिहारी प्रदर्शित करते हैं-कैसी है वह दर्शनानुभूति!-

"पंच वरण फूलोंसे अंगीयां, विकसे ज्युं केसर क्यारी; कुंद, गुलाब, मरुक, अरविंदो, चंपक जाति मंदारी; सोवन जाति दमनक सोहे, मन-तनु, तजत विकारी.... तुम चिद्घनचंद आनंदलाल तोरे दर्शनकी बलिहारी...."[६४]

लगता है हमारा तन-मन और आत्मा-सभी इस सुवासित अंगरचनाकी महकसे मानो प्रफुल्लित बन रहे हों और निजानंदकी मस्तीभरी मदहोशीमें झूम रहे हों, हम भी न्योछावरी कर रहे हों। श्री जिनमंदिरके शिखर पर लहराकर जिनशासनकी शानकी संकेतिका-ध्वजा कैसी है ?-

"पंचवरण ध्वज शोभती, घूघरीको घमकार, हेमदंड मन मोहनी, लघु पताका सार।।
रणझण करती नाचती, शोभित जिनघर शृंग, लहके पवन झकोर से, बाजत नाद अभंग।।"

उसकी पूजाके समय-**"इन्द्राणी मस्तक लई, करे प्रदक्षिणा सार**
सधवा तिम विधि साचवें, पाप निवारण हार" [६५]

वह सुहागन सुंदरी, ध्वजाको शिर पर लेकर हर्षातिरेक व्यक्त करती है, उसे पंजाबी ठेकाकी ठुमरीमें ध्वनित-नाद सौंदर्यके स्फुट स्वर और जिस शाब्दिक चित्रके साथ प्रस्तुत किया है वह अवर्णनीय है। इस ध्वनि-नादके साथ चित्रांकनका आह्लाद तब आ सकता है जब उसके असली सूर-लय-तालके साथ उसे सुना जाय। तब हम महसूस करेंगे जैसे हमारी नजरोंके सामने ही वह सुहागन सुंदरीका मनमोहक स्वरूप नर्तन कर रहा हों।.....

"आयी सुंदर नार कर कर सिंगार, ठाड़ी चैत्य द्वार, मन मोदधार।
प्रभुगुण विथार, अघ सब क्षय कीनो....आयी....
जोजन उतंग अति सहस चंग, गई गगन लंघ, भवि हरख संग।
सब जग उतंग, पद छिनकमें लीनो....आयी....
जिम ध्वज उतंग, तिम पद अभंग, जिन भक्तिरंग, भवि मुक्तिमंग।
चिद्घन आनंद, समता रस भीनो....आयी..."[६५]

ऐसा ही एक शब्द चित्र परमात्म-प्रतिमाके आभरणोंसे सजे हुए स्वरूपका है। सोनेमें सुहागेकी भाँति एक एक अलंकार जिनेश्वर देवके अंगकी शोभाको तो वृद्धिगत बनाता ही है, साथमें ग्रथन किये गये काव्यालंकार काव्यकी शोभाकी श्रीवृद्धि करते जाते हैं। अंततः जिणंदजीका मनमोहक बिम्ब तादृश-पूर्णरूपेण उभर आता है-**"आनंद कंद पूजतां जिणंदचंद हूं....**

मोती ज्योति लाल हीर हंस अंक ज्यूं, कुंडलू, सुधार करण मुकुट धार तुं....
सुरचंद कुंडले शोभित कान दूं, अंगद कंठ कंठलो मुनींद तार तुं....
भाल तिलक चंग रंग खंग चंद ज्यूं, चमक दमक नंदनी कंदर्प जीत तुं....
व्यवहार भाष्य भाखीयो जिणंद बिम्ब युं, करे सिंगार फार कर्म जार जार तुं...."

परिणामतः यह जिनबिम्ब आत्माके भाव उमंगकी वृद्धि करके शुद्ध भाव प्रकट कर देते हैं-

"वृद्धि भाव आतमा उमंग कार तुं, निमित्त शुद्ध भावका पियार कार तुं....आनंद...."[६६]

जैन दर्शनमें परमात्माकी अनेक प्रकारसे भक्ति पूजाके स्वरूपोंको स्थान मिला है। कभी त्रिविध, कभी अष्टविध, कहीं सत्रहभेदी तो कहीं इक्कीस प्रकारसे पूजा वर्णन मिलते हैं। कविश्रेष्ठ श्री आत्मानंदजीम.ने भी इन विभिन्न रूपोंको काव्य रूप देनेका सफल प्रयत्न किया है। इन पूजा प्रकारोंमेंसे सत्रहभेदी पूजाके वर्णनमें सत्रहवें प्रकारकी पूजा होती है वाद्य पूजा। इस पूजा-गीतमें जिस अलौकिक स्वरूपको आश्चर्यकारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोड़ देकर प्रस्तुत किया है, वह अपने आपमें अनूठी चमत्कृति पैदा करनेवाली पेशकश है। इनके एक-एक वाद्य–वीणा, तुण, तबली–आदिने सजीव बनकर परमेश्वरके जीवनकार्य, निर्मल-वचन और उनसे आविर्भूत उज्ज्वल यशके प्रति जो हृदयोद्‌गार व्यक्त किये हैं, किसी भी व्यक्तिको प्राभाविक प्रसन्नतासे भर देनेके लिए सक्षम हैं।

"भवि नंदो जिणंद जस वरणीने....
वीण कहे जग तुं चिरनंदी, धन धन जग तुम करणीने।....भवि....
तुं जगनंदी, आनंदकंदी, तबली कहे गुण वरणीने। ....भवि....
निर्मल ज्ञान वचन मुख साचे, तुण कहै दुःख हरणीने।....भवि....
कुमति पंथ सब छिनकमें नासे, जिनशासन उद्‌धरणीने....भवि....
मंगल दीपक आरति करतां, आतम चित्त शुभ भरणीने....भवि....[६७]

सर्वदर्शनोमें भवभ्रमणको अनिष्टकारी माना है, लेकिन जैनदर्शनने तो उसे असंख्य भंवरोंका गहन गह्वर दर्शाया है जो आत्माकी तबाही कर देता है; जहाँ शाश्वत मुक्ति सुखके तो आसार तक नसीब नहीं होते। अनादिकालके अनंत भवसमूहको महासमुद्र रूपमें वर्णित करके वह भवसायरका स्वरूप कईं बार कईं ग्रन्थोंमें अनेक सुज्ञ-जनोंने स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। इसी भयानक भव समुद्रको तादृशरूपक स्वरूपमें रंगीन कल्पना प्रवाहोंकी विशाल गहराइयोंसे चित्रित करके जीवंत किया है–उत्तम काव्यप्रणेता श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने अपने काव्यमें। यह चित्रालेखन वाकइ मानवजीवन-रहस्योंका एक सात्त्विक प्रभावोत्पादक रूप प्रस्तुत करता है

"भवोदधि पार कीजोजी....
अजि तुम सुणियोजी, करुणानाथ, भवोदधि पार कीजोजी....
मोह सायरकी गहरी धारा, भमर फिरत गत चार मंझारा;
मंझधार अटकी मोरी नैया, अब प्रभु पार कीजोजी....अजि तुम....
चार कषाय बड़वानल जामें, रागद्वेष मगरादिक नामें;
कुगुरु कुघाट पडी मोरी नैया, वहीं थाम लीजोजी....अजि तुम....
विषे इंद्री वेला अति भारी, काम भुजंग उठे भयकारी
मन तरंग वेग. मोरी नैया. अब प्रभु काढ़ लीजोजी ..... अजि..... तुम .....
पाप पुण्य दोऊ तस्कर धेर्यो ....."....मैं चेर्यो प्रभु तुम गुण केरो।"

इस प्रकार जलनिधिमें तस्करों एवं हिंसक प्राणियोंसे घिरे, जीवनके लिए छटपटाते हुए डूबनेवालोंकी नज़रोंमें तारणहार खेवैयाकी तमन्ना रहती है, जिसके लिए गोते खाते खाते भी वह तरसता है-ढूंढता है, किसी सहारेको-जो उसे पार पहुँचाये। लेकिन अपार पारावारका पार पानेके लिए जहाँ कहीं भी निगाह फैलाता है, उसे निराशा और हताशा ही नज़र आती है; तब श्रद्धेय गुरुदेव इंगित करते हैं अशरणके शरण, अनाथोंकेनाथ, तरणतारण मल्लाह श्री अरिहंत परमात्माकी ओर, और उनकी दुहाई देते हैंः

"तुम बिन कौन सहाई मेरो, भवसिन्धु पार कीजोजी....अजि तुम...."[६८]

आपके अंतस्तलकी अतलस्पर्शी गहराईसे प्रस्फुटित होनेवाले मर्मस्पर्शी प्रत्येक पद्योमें ऐसी रहस्यमयता छिपी है कि कैसे भी भाव या तथ्ययुक्त कृतिका समापन आत्मानंद, आत्मानुभव, चिद्‌घनानंद आदिकी प्राप्तिकी प्रसन्नता या प्राप्त करनेकी तड़पमें वेधक शैलीमें प्रस्तुत होता है। यही कारण है कि इतने सालोंके व्यतीत हो जाने पर भी उनकी रचनाओमें भावोंकी नूतनता-मनमोहकता-आकर्षकताके चमकार अद्यावधि प्राप्त होते हैं या अद्यापि ताजगीयुक्त खिले पुष्प परिमल-से मघमघायमान हो रहे हैं। श्री रागमें प्रस्तुत रचना–

"जिन गुण गावत सुरसुंदरी....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंपक वरणी, सुर मनहरणी, चंद्रमुखी शृंगार धरी
ताल मृदंग बंसरी मंडल, वेणु उपांग धुनि मधुरी....जिन...."

यहाँ शृंगार-रस और शांत-रसके अद्‌भूत संयोजनसे जो अंतरमें भाव तरंगोकी लहरें उठती हैं वह रसागारमें तराबोर कर देती है। जैसे कवि हमें देवविमानमें होनेवाले नृत्य दृश्यका तादृश दर्शन कराते है। इससे आगे बढकर अन्य रचनामें नृत्य नाटिका जैसे साकार होती है-

"नाचत सुर वृंद छंद, मंगल गुन गा री....
कुमर कुमरी कर संकेत, आठ शत मिल भ्रमरी देत; मंद्र तार रणरणाट, घुंघरू पगधारी....नाचत....
बाजत जिहां मृदंग ताल, धपमप धुधुम किट धमाल; रंग चंग द्रंग द्रंग त्रौं त्रौं त्रिक तारी....नाचत....
तता थेइ थेइ तान लेत, मुरज राग रंग देत; तान मान गान जान, किट नट धुनिधारी...." [६९]

परमात्माके आठ अतिशयोंमें एक हैं पंचवर्णी पुष्पवृष्टि। इस पुष्पवर्षाका सजीव शब्दचित्र 'अड़िल' छंदमें प्रस्तुत है- **"फूल पगर अति चंग रंग बादर करी, परिमल अति महकंत मिले नर मधुकरी ।**
जानुदधन अति सरस विकच अधो बींट हैं, बरसे बाधा रहित रचे जिम छिंट है...." [७०]

कामदेवके बाण समान और शृंगारके साधन रूप सुविकसित-सुवासित पुष्पाच्छादित लतायें और क्यारियोंसे सजे उपवनकी शोभाका हूबहू वर्णन करके आचार्यदेवने उपदिष्ट किया है कि इनको जिन चरणोंमें समर्पित करनेसे फलप्राप्ति है, उन कामबाणोंकी पीड़ासे मुक्ति प्राप्ति....

"अर्हन जिणंदा प्रभु मेरे मन वसिया....
मोगर लाल गुलाब मालती, चंपक केतकी निरख हरसीया....अर्हन्....
कुंद प्रियंगु वेलि मचकुंदा, बोलसिरी, जाई अधिक दरसीया....अर्हन्....
जल थल कुसुम सुगंधी महके, जिनवर पूजन जिम हरि रसीया....अर्हन्....
पंचबाण पीड़े नहीं मुझको, जब प्रभु चरणे फूल फरसीया....अर्हन्...." [७१]

ऐसे अनेक कलात्मक निरूपण इनके काव्योमें कदम कदम पर मिलते हैं। प्रभविष्णुता उसमें है कि, ये रचनायें प्रभूत भावप्रवाहोंमें अवगाहन करते करते स्वतः ही प्रवाहित होती रहीं हैं ।

भावात्मकताः—इनमें दृष्टिगोचर होते हैं सैद्धान्तिक-दार्शनिक-तात्त्विक भाव निरूपण; प्राकृतिक-मानवीय-मानवेतर सृष्टिके आलंबनोंसे-प्रतीकोंसे-बिम्ब योजनाओंसे परमेश्वरके अनंतानंत गुणगान; देवाधिदेवके विविध स्वरूप गान; स्वात्माके अवगुण प्रकटीकरण एवं अज्ञों-बाल-हृदयभक्तों व सुज्ञजनोंको (स्व आत्माको निमित्त बनाकर) संबोधन, विशेषतः उपदेशक रूपमें उद्‌बोधन; प्रतिमा पूजनके विरोधियों और मूर्ति उत्थापकोंको हितशिक्षा, साथसाथमें परमात्माकी विविध रूपमें भक्ति पद्धति; परमात्माको आत्म समर्पण-सेवक भावसे और सख्य भावसे, कहीं बालक बनकर तो कहीं पर प्रियतमा बनकर। कहीं कहीं मिलते हैं वीतरागको दिए गए मीठे उपालंभ और उलाहनायें। जैसे- **प्रथम तीर्थपति श्री ऋषभदेवके स्तवनमें--**

"शत सुत माता सुता सुहंकर, जगत जयंकर तुं कहीये, निज जन तार्ये हमोंसे अंतर रखना ना चइये....
मुखडा भींचके बेसी रहना, दीन दयालको ना चइये, हम तन मन ठारो, वचनसे सेवक अपना कह दइये...."

क्योंकि श्रीआदिनाथके सौ पुत्र-दोपुत्री-माता-सकल परिवार मोक्षमें गया और हम अकेले रह जायें! और फिरभी प्रभु आँख मूंद कर चूपचाप बैठे ही रहें-यह बात कैसे सही जाय !! इस लिए आगे चलकर कहाँतक अधिकार जताते हैं-

"अवगुण मानी परिहरशो तो, आदि गुणी जग को कहीये; जो गुणीजन तारे, तो तेरी अधिकता क्या कहीये?"[७२]

उलाहनामें भी कैसा दमदार-शोखी भरा भाव है?! गुणवानको तारना सहजता है, विशिष्टता किसमें? अवगुणीको तारो! पढ़कर-सुनकर मन प्रमोद भावसे भर जाता है। लगता है जैसे दीनदयाल वीतरागदेव अभी दाता बनकर बरस पड़ेंगे, और हम न्याल हो जायेंगें।

कभी कभी, कहीं कहीं पर शब्दोंकी तोड़-मरोड़के कारण भाषामें थोडीसी क्लिष्टता आ जाती है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन कविके लिए यह तोड़-मरोड़ क्षम्य मानी गई है। काव्यमें व्याकरणादिसे अधिक महत्त्व भावोंके प्रबन्धका होता है। भाव तो काव्यकी आत्मा है। जैसे बिना आत्माके शरीर-देह मृतपिंड़ कहलाता है-चाहे वस्त्राभूषण या पुष्पादिसे उसकी कितनी ही सज़धज़ क्यों न की जाय-निरर्थक ही मानी जाती है। वह किसीको आनंदित नहीं कर सकती; वैसे ही बिना भावके काव्यमें कैसी भी अलंकार-ध्वनि-प्रतीक-बिम्ब या छंदोकी अजनबी सजावट क्यों न हों निरर्थक जैसी ही लगती है। भाव, काव्यको चैतन्यता, संवेदनशीलता और विराटता बक्षता है। भाव ही काव्यका माहात्म्य चिरस्थायी बना सकता है। इन्हीं भावोंका आस्वाद सुरीश्वरजीकी रचनाओमें हम अनुभव कर सकते हैं।

छोटे छोटे दोहोंमें भी कैसे गूढ़ भावोंकी भरमार है ! ब्रह्मचर्य जैसे नाजूक विषयको उसके अपूर्व और अनुपमेय महत्त्वको वर्णित करते हुए इन दोहोंमें प्रस्तुत किया है।

"कामकुंभ सुरतरु मणि, सब व्रत जीवन सार । कामित फलदायक सदा, भवदुःख भंजन हार ।।
तारागणमें उडुपति, सुरगणमें जिम इंद । विरति सकल मुख मंड़ना, जय जय ब्रह्म थिरिंद ।।"[७३]

चरम फल मुक्ति प्रदाताके भावसे सर्व जीवोंका परम हितस्वी 'विनय' गुणका स्वरूपालेखन देखें-

"गुण अनंतको कंद है, विनय जीवन सिंगार । विनय मूल जिनधर्म है, विनयिक धन अवतार ।।"[७४]

इस तरह विनयको सर्वाधिक-सर्वोत्कृष्ट-सर्वश्रेष्ठ दर्शाकर कविराज वर्तमान विश्वके जीवोंको जीवनका श्रेयस्कर पथ प्रदर्शित करते हैं। "विद्या विनयेन शोभते"- आदि नीति- वाक्योंसे विनय और विद्याका संबंध स्पष्ट ही है। गुरुदेव भी अपूर्व-नव्य-ज्ञानाभ्यासको तरणि (सूर्य)की उपमा देकर उज्ज्वल जीवनयापनकी राह इंगित करते हैं- **"भवि वंदो अपूर्व ज्ञान तरणिने.....**

ज्ञान अपूर्व जब ही प्रकटे, शुद्ध करे चित्त धरणीने.....भवि....."[७५]

जैनधर्ममें मोक्षमार्गके साधन रूपमें चार भावोंकी प्ररूपणा की गई है-दान-शील-तप-भाव। इनमें दानको प्रथम स्थान दिया गया क्योंकि दान-कर्मबंधनकी वृत्ति-प्रवृत्तिको रोकता है। दान-'धन-दान'-मूर्च्छा ममत्वादि राग सैन्यको और 'अभय दान' जीव मात्रके प्रति द्वेष-सैन्यको पराजित करनेमें मुख्य सेनापतिका कर्तव्य निभाता है। ऐसे दानका-सुपात्र दानका स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

"दान तो अभंग दीजे, मन धरी रंग ।
खान तो अमर अज सुख तो अभंग; गौतम रतन सम पात्र सुरंग.... दान तो
कनक समान मुनि, पात्र उतंग। देशविरति पात्र रौप्य मध्यम सुमंग.....दान तो...."

सर्व जीवोंके प्रति निर्व्याज-निर्हेतुक-निर्मल वात्सल्य-नीर-निधिको बहानेवाले, एकांत महोपकारी देवाधिदेवके केवल दर्शन मात्रसे क्या असर होता है, उसका प्रसन्न भाव भरपूर वर्णन देखें-

"बढयो जी मम भाग, भाग, निरख जिन बिम्बको....
मिट गइ फिकरी करम अघ आज, जिन जस अखिया जगत शिरताज...बढ़योजी....
सटक गइ ममता कुगुरु भइ लाज, पाखंड गड (गढ़) खड़नी जिणंद किरयाज....."
भटक मरी जड़ता आनंद खिड़यो आज, जिणंद वामानंदको, आतम जगराज.....बढ़यो....." [७७]

यहाँ फिकर(चिंता)का मिटना, ममताका सटकना और जड़ताका भटकना ऐसी मार्दवताके साथ मधुर शैलीमें प्रस्तुत हुआ है कि परिणामतः आनंद खिल उठता है।

ऐसे अरिहंत भगवंतके जन्म समय उनके पुण्यातिशयके कारण जीवोंको जो सुखका अनुभव मिलता है वह अलौकिक होता है। महापापी जीव-जो नारकीमें बिना क्षणांतर-निरंतर दुःख-वेदना और अंधकारमय भयंकर त्रास भुगतते हैं उनको भी क्षणिक सुख-प्रदाता श्री अरिहंतदेवोंके जन्म महोत्सवके उल्लासपूर्वक प्रवाहित आनंदका वर्णन कविवरने अपनी 'स्नात्र पूजा' कृतिमें ठाठसे किया है-

"शुभ लग्ने जिन जनमिया, त्रिभुवन भयो प्रकाश । नारकको सुख उपनो, भविजन पूरे आश ।।"
अथवा "सुपन महोत्सव करो भवि रंगे, मुक्ति रमणी सुख लहो भवि चंगे ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या भवताप दूर करनेवाले, "जन्म महोत्सव गावो रे, भवताप निवारी....."

इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक भावोंके निरूपण विविध स्तवन, स्तुति, तीर्थ वंदनादि रचनाओमें, विशेषतया 'द्वादश भावना'के सज्झाय संग्रहमें जीवमात्रकी और प्रमुखतया मानव भवधारी जीवकी अनित्यता, अशरणता, एकत्व एवं अन्यत्व अर्थात् 'एगोऽहं, नत्थि मे कोई', की भावना, आत्माके कर्मबंधके कारण, संवर-निर्जरा रूप उपाय आदि द्वारा यथोचित रूपमें हुआ है। उनके ऐसे भाव भरपूर काव्यावतरणोंको आज भी उतनी ही लगन और आत्मीयतासे अकेलेमें या समूहमें, एक बार और अनेकबार गाया जाता है और रसानंदका अनुभव करके जीवनके चरम सत्योंको, धर्म-राहोंको और उपदिष्ट सीखोंको अंगीकार करनेके प्रयत्न करते हुए अनेक भक्तजन भव साफल्यका लाभ ले रहे हैं।

दार्शनिकताः---हमें विदित ही है कि अक्षर-वर्ण एक एक अलग हों तब उसका कोई स्पष्ट अभिप्राय नहीं निकल सकता-वह निरर्थक-सा होता है; लेकिन वे ही वर्णोंको एकाधिक रूपमें परस्पर सम्बन्धित कर दिया जाय तब अमूल्य शब्दोंका निर्माण होता है और उन्हें सार्थकता प्राप्त होती है। जैसे मिट्टीका पिंड न आकर्षक होता है न मूल्यवान, पर किसी सिद्धहस्त कलाकारकी ऊँगलियोंकी करामात उसे पिंड़से प्रतिमा बना देती है-लोग उन्हें प्रणिपात करते हैं-पूजा करते है-प्रणिधान भी करते हैं। वैसे ही वर्णों एवं शब्दोंका, विशिष्ट व्यक्ति द्वारा उपयुक्त एवं विलक्षण संगठन या ग्रथन होने पर उनसे भरपूर भावयुक्त अद्‌भूत कृति साकार हो उठती है और चिरस्मरणीय बन जाती है।

ठीक उसी प्रकार श्री आत्मानंदजी म.सा.की कृतिमें वाणीके लिए कृपावान वह बावनी–'बावन वर्ण'-"उपदेश बावनी" बनकर भव्य जीवोंके लिए आत्म कल्याणकी पथप्रदर्शिका बन गयी हैं। जिसमें जीवके लिए विशेष उपादेय तत्त्वत्रयी–देव-गुरु-धर्म-तत्त्व–का उपयुक्त निरूपण हुआ है। उन्हीं वर्णोंसे व्युत्पन्न 'ॐ' बीजमंत्र माना जाता है। सभी धर्मोमें उसे अग्रीम स्थान मिला है। भक्तहृदय कविराजके अंतरमें भी उस प्रणवमंत्र 'ॐ'कारका रव-गुंजन-चिंतन-मनन अनवरत होता रहता था, न रोक सकती थी उसे दुन्यवी आधि-व्याधि-उपाधि, न हटा सकती थी लौकिक सुखशीलता-शान-शौकत और सिद्धिकी चकाचौंध। अ+अ+आ+उ+म् वर्णोंसे बना ऐसा प्रणवमंत्र-ॐका स्वरूप, सत्त्व और सार एवं उसके प्रति श्रद्धासे समर्पण-सुंदर शैलीमें, सवैया इकतीसा छंदमें बद्ध करके 'उपदेश बावनी'के मंगलाचरणके रूपमें प्रस्तुत किया है।

"ॐ नीत पंच मीत समर समर चित्त अजर अमर हित नित चित्त धरीए;
सूरि उज्झा, मुनि पुज्झा, जानत अरथ गुज्झा मनमथ मथन कथन सु न ठरीए ।
बार आठ षट्‌तीस पणवीस सातवीस सत आठ गुण ईश माल बीच करीए;
ऐसो विभु ॐ कार बावन वरण सार आतम आधार पार तार मोक्ष वरीए।"-(७८)

ॐ स्थित पंच परमेष्ठि, अ=अरिहंत, अ=अशरीरी (सिद्ध), आ=आचार्य, उ=उपाध्याय, म्=मुनि-के गुण-बारह, आठ, छत्तीस पचवीस और सत्ताईस = एकसौआठ–की स्तवना करके आतम आधार और मोक्ष दातारके रूपमें चित्रित किया गया है।

तत्पश्चात् 'ॐ'कार स्थित जैन दर्शनके अद्वितीय अनेकान्तवादकी उत्कृष्टताका परिचय करवाते हुए अष्टादश दूषण रहित और बारह गुण सहित, वशमें की हुई पांचो इन्द्रिय और निर्मल मनके धारक अरिहंत देवके स्वरूप वर्णन द्वारा साकार वीतराग तथा सर्व कर्मरहित और अनंत गुणसहित, अजर-अमर-अज-अलख-अमल-अचल-अशरीरी, मुक्ति नगरीके सादि अनंत निवासी सिद्ध परमात्माके स्वरूप वर्णन द्वारा निराकार वीतरागकी एकरूपताका एक ही मुक्तकमें अनुपम वर्णन किया है; जिसके गुणगान करते करते 'समर अमरवर गनधर नगवर', थक जाते हैं।

"नथन करन पन हनन करम घन धरत अनघ मन मथन मदनको,
अजर अमर अज अलख अमल जस अचल परम पद धरत सदनको ।" (७९)

इसी तरह नरेन्द्रों देवेन्द्रोंके नमस्करणीय, भगवद् भजनमें और कर्मवन कटनमें मग्न, जन-जनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनांधकारको दूर करनेवाले 'महामुनि पूरगुनी'के-गुणवंत गुरुके स्वरूपका वर्णन संक्षिप्त फिर भी सुंदर बन पड़ा है-

"महा मुनि पूर गुनी निज गुन लेत चुनी मार धार मार धुनि वुनी सुख सेजको
ज्ञान ते निहार छार दाम धाम नार पार सातवीस गुण धार तारक सेहजको
पुगल भरम छोर नाता ताता जोर तोर आतम धरम जोर भयो महातेजको
जग भ्रमजाल मान ज्ञान ध्यान तार दान सत्ताके सरूप आन मोक्षमें रहेन (ज) को।[८०]

तत्त्वत्रयीके '*धर्मीतत्त्व*'--देव और गुरुके-अभिज्ञापनके पश्चात् तृतीय 'धर्मतत्त्व'का निरूपण विस्तृत रूपसे किया गया है। वितंडाके वर्धक विभिन्न वादोंके इस युगमें जैन दर्शनने मुख्य दो वाद विश्वको अलौकिक उपहार रूप-वितंडासे मुक्तिके लिए-दिये हैं-(१) स्याद्वाद और (२) कर्मवाद। स्याद्वादकी रोशनी वर्तमान जीवनको आलोकित करती है जबकि कर्मवादकी अभूतपूर्व आभा भूत और भाविको उज्ज्वल बनाती है।

स्याद्वाद अर्थात् सापेक्ष दृष्टिसे सर्वांगिण निदर्शन। स्याद्वादकी दृष्टिभेदमें भी अभेदता, रूपमें भी रूपातीतता, शाश्वतमें भी अशाश्वतताका दर्शन करती है। व्यवहारसे जो रूप दृष्टिगत होता है निश्चयसे वही रूपातीत भी है; निश्चयसे जो शाश्वत है वह व्यवहारमें नाशवंत भी अनुभूत होता है। अतः वर्तमानमें दृश्यमान ही संपूर्ण दर्शन नहीं है लेकिन इससे पूर्ववर्ती-परवर्ती-अनेकशः दर्शनसे युक्त दृश्य ही सत्य और संपूर्ण दर्शन होता है। अन्य भी सापेक्षिक स्वरूपोंकी कथंचित् रूपमें प्ररूपणा स्याद्वाद-'स्यात्'-के सहारे ही शक्य है। इसके सात, सातसौ आदि असंख्य भेदोपभेद न्यायशास्त्रोंमें विश्लेषित किये गये हैं-

"सिद्धमत स्याद्वाद कथन करत आद भंग के तरंग साद सात रूप भये हैं;
अनेकंत माने संत कथंचित् रूप ठंत मिथ्यामत सब हंत तत्त्व चीन लये हैं।
नित्यानित्य एकानेक सासतीन वीतीरेक भेदने अभेद टेक भव्याभव्य ठये है;
शुद्धाशुद्ध चेतन अचेतन मूरती-रूप रूपातीत उपचार परमकुं लये हैं ।" [८१]

स्याद्वाद-जैन दानशालाकी अनुपम बक्षिस है; स्याद्वाद सर्वांगिण शीलधर्मकी सुवास है; स्याद्वाद तात्त्विक तप साधनाका तवाज़ा (सम्मान) है; स्याद्वाद भगवंतसे भावयुक्त भेंट है। स्याद्वाद सर्व वितंडा-विवादोंका दाना दुश्मन है तो सभी सापेक्षित नय-प्रमाणोंका जिगरी दोस्त है। ऐसे अद्‌भूत फिर भी गहन सिद्धान्तको काव्य रूप देकर अत्यन्त सहजता और सरलता युक्त भावप्रवण प्रवाहितताके साथ प्रस्तुत करना उत्तम कवित्त्व शक्तिको सूचित करता है। उस प्रकृष्ट शक्तिके कारणही 'स्यात्' शैली एवं सप्तभंगीसे निरूपित अनेकान्तके सिद्धान्त स्वरूपका रोचक वर्णन श्री मुनिसुव्रत स्वामीकी स्तवना करते करते गाया है-

"श्री मुनिसुव्रत हरिकुलचंदा, दुरनय पंथ नसायो।
स्याद्वाद रस गर्भित वानी, तत्त्व स्वरूप जनायो-सुन ज्ञानी
जिन वाणी रस पीजो अति सन्मानी....."

आगे एकांतवादी कैसे और क्यों परस्पर उलझते है और उस उलझनको स्याद्वाद कैसे सुलझाता है उसका तादृश चितार वर्णित किया है-

"बंध मोक्ष एकांते मानी, मोक्ष जगत उछेदे। उभय नयात्मभेद गहीने तत्त्व पदार्थ वेदे ..... सुन ज्ञानी....
नित्य अनित्य एकान्त गहीने, अरथ क्रिया सब नांसै। उभय स्वरूपे वस्तु विराजे, स्याद्वाद इम भासै.....सुन ज्ञानी....
करता भुगता वाही ज दृष्टे, एकांते नहीं थावे, निश्चय शुद्ध नयात्म रूपे, कुण करता भुगतावे...सुन ज्ञानी..."[८२]

अन्य दर्शनकारोंने ईश्वरको जगत्कर्ता और सुख-दुःख फलप्रदाता बना दिया है । वे परमेश्वरको कलंकित करते हैं। कर्मका कर्ता और भोक्ता-दोनों स्वयं आत्मा ही है इसकी प्ररूपणा करके परमेश्वरकी वीतरागताको सिद्ध किया है; क्योंकि जिसमें वीतरागता नहीं वह रागी-द्वेषी आत्मा कभी भगवद् स्वरूपी नहीं हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकते। इस तरह सभी दुर्नय वादियोंको मुंह तोड़ जवाब देते हुए गाते हैं-

"शुद्ध अशुद्ध नास अविनाशी, निरंजन निराकारो। स्याद्वाद मत सगरो नीको, दुर्नय पंथ निवारो..... सुन ज्ञानी... सप्तभंगी मत दायक जिनजी, एक अनुग्रह कीजो। आतम रूप जिसो तुम लाधो, सो सेवकको दीजो..... सुनज्ञानी.....[८२]

इसके अतिरिक्त भी **"सप्तभंगी गर्भित तुम वाणी, भव्य जीव सुखदायी...." अथवा "तत्त्व सरधान पंचंगी संमत कह्यो, स्याद्वादे कर बैन साचो"** आदि अनेक स्थानोमें कविवरने स्याद्वादकी उत्कृष्टताके गुणगान किये हैं।

द्वितीय उपहार है 'कर्मवाद'। उसके भी अनेक स्वरूपोंके विविध प्रकारसे कदम कदम पर वर्णन किया है, यथा-कर्मसंसृति, कर्मका स्वरूप, कर्मका सान्निध्य (बंध), कर्मका सत्त्व एवं शक्ति (फल प्रदाता रूपमें), कर्मसे स्वायत्तत्ता (मुक्तावस्था) आदि । 'कर्म' शब्दको सामान्यतः व्यवहारमें क्रिया अथवा कार्यके अर्थ रूपमें प्रयुक्त किया जाता है। अन्य दर्शनकारोंने भी कर्मको तकदीर-भाग्य-ईश्वरकृपादिके रूपमें स्वीकार किया है, लेकिन जैन दर्शनने उसका सम्बन्ध कार्मण वर्गणा—जो हमारे आस-पासके परिवेशमें अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म पुद्गल स्कंधोंके रूपमें स्थित है-उनसे युक्त माना है।

सर्वज्ञ प्रणीत जैनधर्ममें कर्म-संसृतिका स्वरूप जिस प्रकार विवरित, वर्गीकृत एवं विश्लेषित किया गया है, इतना विशद व व्यवस्थित निरूपण किसी भी धर्म या दर्शनमें, कहीं पर भी उपलब्ध नहीं होता है। कर्म संबंधी अथेति-सर्वांगीण-स्वतंत्र सर्वेक्षण रूपमें कर्मके प्रकार (प्रकृति), प्रभाव-प्रक्रियादि प्रभूत परिचर्चा कर्मग्रन्थ, कम्म-पयड़ी, पंचसंग्रह, प्रज्ञापनादि सूत्र ग्रन्थोमें विस्तृत रूपमें पायी जाती है।

कर्म स्वतंत्र रूपसे तो जड़ होनेसे अक्रिय है, लेकिन आत्माकी राग-द्वेषादि परिणतिके कारण मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय-योगके कारण सारासार प्रवर्तनसे, अस्थिर आत्म प्रदेशोंमें, प्रकंपन होने लगता है। वही चंचलता एक आकर्षण उत्पन्न करती है जो उन भावानुरूप यथायोग्य कार्मण पुद्गलोंको आकृष्ट करके क्षीर-नीरवत् आत्मसात कर लेती है जिसे 'कर्मबंध' संज्ञा दी जाती है; जो स्वप्रकृत्यानुसार अपने स्वभावको यथासमय-यथाप्रमाण प्रदर्शित करते हुए जीवको अपने प्रभावसे वेष्टित कर लेते हैं। इसी भावनाको लेकर सूरिराजने राग 'भैरवीमें' जो सूर प्रवाहित किये हैं -

"आश्रव अति दुःख दाना रे चेतन आश्रव अति दुःखदाना....."

मुख्य रूपसे मन-वचन-कायाके तीन योगोंसे, मैत्र्यादि भावना वासित जीव पुण्यानुबंधी पुण्य (शुभकर्म) अथवा पाप पिंड़रूपी मिथ्यात्वादिसे ग्रस्त होने पर पापानुबंधी शुभाशुभ कर्मोंका उपार्जन करता रहता है। उसे नसीहत देते हुए कविराज आगे ललकारते हैं-

"योग, कषाय, परमादा, विरति-रहित अज्ञाना रे। मिथ्या दरसनी आरत रौद्री, पाप करे सुखहाना रे..... चेतन..... आत्म सदा सुहंकर निर्मल, जिन वच अमृत पाना रे, करके जीवे सदा निरंगी, पामे पद निरवाना रे.... चेतन.."[८३]

इसी प्रक्रियाको विस्तृत रूपमें प्रस्तुत करते हुए *'बारह भावना स्वरूप'*का वर्णन करते हैं-

"हिंसा-झूठ-चोरी-गोरी-कोरीको रे रंग रस्यो; क्रोध-मान-माया-लोभ-खोभ घेरो देतु है।
राग-द्वेष ठग भेष, नारी राज भत्त देस कथन करन कर्म भ्रमका सहेतु है ।"

इस मुक्तककी इन प्रथम दो पंक्तियोंमें ही कर्मबंधके पांच हेतु—पांच अव्रत, (अविरति), चार कषाय, राग-द्वेषादिकी परिणति रूप मिथ्यात्व, चार विकथा रूप प्रमाद, और योगोंका अति संक्षेपमें-सूत्रात्मक शैलीमें-लयबद्ध-वर्णानुप्रासादि अलंकारकी सजावटके साथ प्रस्तुत करना सिद्ध कवित्व शक्तिका प्रमाण है। परवर्ती दो पंक्तियोंमें कर्मबंधकी प्रक्रिया एवं दुःखप्राप्ति रूप कर्मफल वर्णित है-

"चंचल तरंग अंग भामिनिके रंग चंग उद्गत विहंग मन अति गर भेतु है।
मोहमें मगन जग आतम धरम ठग, चले जग मग जिये ऐसे दुःख लेतु है ।" [८४]

इस कर्मबंध प्रक्रियाके प्रधान हेतुभूत आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे जैनदर्शनमें शुभाशुभ लेश्याभिधानसे पहचाना जाता है, 'लेश्या'के छ प्रकार होते हैं—कृष्ण, नील, कापोत (तीन अशुभ) और तेजो, पद्म,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्ल (तीन शुभ)। 'ध्यानस्वरूप'में आचार्य प्रवरश्रीने आर्तध्यानी और रौद्रध्यानी योग्य तीन अशुभ एवं धर्मध्यानी और शुक्लध्यानीके समीचीन तीन शुभ लेश्याकी प्ररूपणा इसप्रकार की है-

"राग द्वेष मोह भर्यो, आरतमें जीव पर्यो, बीज भयो जगतरु मन भयो आंध रे;
किसन कपोत नील लेसा भइ मध महो, उतकृष्ट जगनमें एक ही न सांध रे।"
"पीत पउम ने सुक्क है, लेस्या तीन प्रधान। सुद्ध सुद्धतर सुद्धतम है उत्कट मंद कहान।।" (८५)

आत्मा द्वारा किये जानेवाले शुभाशुभ विचार-वाणी-वर्तन (मन-वचन-काया)के कारण कर्मपुद्गल-रज–मुख्य रूपसे आठ या प्रभेदसे एकसौ अट्ठावन–आत्माकी ओर एक निश्चित परिमाणमें आकृष्ट होती है, उसी समय उन तीनों योगोंकी तीव्र या मंदपरिणतिके कारण कौनसे कर्मोंका परिपाक, कितने समय पश्चात्, कितने सत्त्व और शक्तिसे विपाक प्रदाता बनेगा-इन सभीका निर्धारण आत्मा स्वयं करती है। इसे जैनदर्शन प्रदेशबंध (परिमाण), प्रकृतिबंध (प्रकार), स्थितिबंध (काल), और अनुभाग या रसबंध (तीव्रता-मंदता) कहता है।

आचार्यश्रीजीके श्री अरनाथ भगवंतके स्तवनमें इनका वर्णन इस तरह मिलता है-

"उदर त्रिलोक असंखमें, महरिद नीर निवास।
कठन सिवाल अछा दियो, करम पड़ल तस आठ।। सखि मोने देखण दे, अर जिनेश्वर चंद....." (८६)

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय और अंतराय-चारघाति; और आयुष्य-नाम-गोत्र और वेदनीय-चार अघाति--इन आठोंका वर्णन कविराजने माढ़ रागमें गाये एक पदमें सुंदर ढंगसे किया है, साथ ही साथ कौनसे कर्मक्षय होने पर जीवके कौनसे गुणका उद्घाटन होता है उसे भी प्रस्तुत करके आत्माके महंत रूप प्रकटीकरणका आनंद ले रहे हैं-

"दर्शन चरण अमरणको रे रूप रहित विलसंत..... अगुरु लघु गुण उलहस्यो रे, आतम शक्ति अनंत।
सत चिद आनंद आदि ले'रे, प्रगटयो रूप महंत.... कुमति शुं प्रीति भांगी रे..."(८७)

आत्माकी चौदह राजलोकमें चारों गति द्वारा अनादिकालसे चलती सफरसे जब उसे देव-गुरुकी अपार कृपासे थकान महसूस होती है और निर्वेदता प्राप्त होती है, तब उसे स्थिरताकी इच्छा होती है जिससे कर्म-मुक्तिकी तड़प प्रबल बनती है। जैन दार्शनिक सिद्धान्तमें इस अध्यात्म स्वरूपको समझाते हुए षड्स्थानोंकी प्ररूपणा की गई है-(१) आत्मा है, (२) आत्मा नित्य है। (३) आत्मा कर्मका कर्ता है, (४) आत्मा कर्मका भोक्ता है, (५) आत्माका मोक्ष होता है (६) आत्माके कर्ममुक्तिके उपाय भी है। कृपावंत सर्वज्ञ भगवंतोने केवलज्ञानसे प्राप्त की हुई वे युक्तियाँ सभी भव्य जीवोंके लिए प्रसारित की और उन्हें ही पूर्वाचार्योंने एवं ज्ञानी महात्माओंने अक्षरदेहमें गुम्फित की। सूरिचक्रचक्रवर्ती श्री आत्मानंदजीम.ने कर्मवादकी प्ररूपणा करते हुए अपने काव्योंमें इन युक्तियोंको शब्दशक्तिके माध्यम द्वारा गुंजित किया है। कषाय-मुक्तिके लिए कहते हैं-

"मोह कोह दोह लोह जटक पटक खोह, आतम अजान मान फेर कहां दावरी ?" ८८

मुक्ति रमणीके रसिक, दृढ़ निश्चयी साधकको कर्मदलसे मुक्त होकर जल जैसे निर्मल गुण प्राप्त करनेके लिए प्रेरणा देते हैं-

"जलके विमलगुण दलके करम फुन, हलके अटल धुन, अघजोर कसीए।
टलके सुधार धार, गलके मलिन भार, छलके न पुरतान, मोक्ष नार रसीए।
चलके सुज्ञान मग, छलके समर ठग मलके भरम जग जालमें न फसीए।
थलके वसनहार, खलके लगन टार, टलके कनक नार, आतम दरसीए।" ८९

चराचर विश्वमें मानवीके लिए काम-इच्छा, जो सर्व अनिष्ट और दुःख प्राप्तिकी जड़ है, उसके लिए चेतावनी देकर उससे छुटकारा पानेके लिए कहते हैं-

"नरको जनम बार बार न, विचार कर, रिदे शुद्ध ज्ञान धर परहर कामको।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे फरमाते हैं- **"इर नर पाप करी देत गुरु सिख खरी, मान लो ए, हित धरी, जनम विहातु है।**
जोवन न नित रहे बाग गुल जाल महे, आतम आनंद चहे, रामा गीत गातु है।
बके परनिंदा जेति तके पर रामा तेती थके पुन्य सेती फेर मूढ़ मुसकातु है।
अरे नर बोरे! तोकुं कहुं रे सचेत होरे पिंजरेकुं तोरे देख, पंखी उड जातु है।।" [१०]

अखूट और अनंत श्रद्धासे अनादिके भवभ्रमणको रोकनेके लिए और सर्व कर्मक्षय करनेके लिए भवत्राता और मोक्षदाता–सर्वकर्मक्षायक–अनाथोंके नाथको दीनतासे समग्रतया शरणागत बनकर करबद्ध प्रार्थना करते हुए गाते हैं-

"त्राता धाता मोक्ष दाता, करता अनंत शाता; वीर, धीर, गुण गाता तारो अब चेरेको।
तुम है महान मुनि, नाथन के नाथ गुणी; सेवुं निशदिन पुनी, जानो नाथ देरेको।
जैसो रूप आप धरो, तैसो मुज दान करो; अंतर न कुछ करो, फेर मोह चेरेको।
आतम सरण पर्यो, करतो अरज खरो; तेरे विन नाथ कोन, मेटे भव फेरेको?" [११]

इस प्रकार जैन कर्मविज्ञानको काव्यमय रूप देकर, उपदेशात्मक शैलीमें, इस संसारसे मुक्त होनेके लिए अनेक युक्तियाँ सरल मुक्तक एवं प्रगीतोमें प्रस्तुत की हैं।

ज्ञानके संपूर्ण स्वरूप एवं केवली भगवंतकी ज्ञान-ज्ञेयकी प्ररूपणाको कवि श्रेष्ठ श्री 'शुभवीर'ने श्री आदीश्वर भगवंतकी स्तुतिमें इस प्रकार स्तवित किया है–

"ऋषभ जिनेश्वर केवल पामी, रयण सिंहासन ठायाजी,
अनभिलप्य अभिलप्य अनंता, भाग अनंत उच्चरायाजी" -अर्थात्

सर्वज्ञ वीतराग भगवंत भी वचनयोग और आयुष्य मर्यादाके कारण अनंतानंत द्रव्य-पदार्थ और भावोंसे ज्ञात होनेके बावजूद उस ज्ञानके केवल अनंतवें भागका ही उच्चारण अपनी आजीवन देशनाधारासे प्रवाहित कर सकते हैं, उसके अनंतवें भागको गणधर भगवंत धारण कर सकते है और धारण किये भावोंके अनंतवें भागको ही सूत्र-रचनारूप दे सकते हैं।

"तास अनंतमें भागे धारी, भाग अनंता सूत्रेजी....."
"गणधर रचियां आगम पूजी, करिये जन्म पवित्रजी ।"

यहाँ विचारणीय यह है कि ऐसे अनंतानंत ज्ञान-रत्नाकरमें कौनसे विषय-तथ्य-स्वरूपादि भावरत्नोंका अभाव हो सकता है! जीवन स्पर्शी सम्पूर्ण ज्ञानसे परिव्याप्त जैन वाङ्मयमें 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत्' पदार्थों-जीवाजीवादि षटद्रव्योंका अद्वितीय एवं असीम विस्तार युक्त विवरण प्राप्त होता है। जिनका कविराजने अपने काव्योमें भी स्थान-स्थान पर निरूपण किया है। साथहीसाथ जीवराशिका भवभ्रमण जहाँ होता है उस चौदह राजलोकके स्वरूपाकार आदिका भी जो वर्णन किया है वह जैन भौगोलिक प्ररूपणाका परिचायक है। **"भवि लोक स्वरूप समर रे....**

कटि धरी हाथ चरण विस्तारी, नर आकृति चित धर रे।
षड् द्रव्य पूरण लोक समर ले, उपजत बिनसत थिर रे....भवि....
त्रिभुवन व्यापक लोक विराजे, पृथ्वी सात सुधर रे।
घनोदधि घन तनु वात वलि कलशे, चार ओर ही थिर रे....भवि....
वेत्रासन समो लोक अधो है, झल्लरी निभ मध्यवर रे।
मुरजाकार ही ऊर्ध्वलोक है, भाखे जग जिनवर रे....भवि...." [१२]

(जैन भूगोल अनुसार वर्तमान विश्व, चौदहराज रूप सिंधुमें एक बिंदु जितना स्थान रखता है। इनका विशेष-सचित्र-परिचय इस शोध प्रबंधमें 'पर्व प्रथममें' करवाया गया है और जैन शास्त्र-ग्रन्थों क्षेत्र समास, लोक प्रकाशादिसे भी प्राप्त हो सकता है।)

इस प्रकार यहाँ आचार्य प्रवरश्रीके पद्योमें हृदय तंत्रीके भावोंका: भरपूर भक्ति, आध्यात्मिक गांभीर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उपदेश रहस्योंकी त्रिवेणीका एवं कलात्मक-भावात्मक-दार्शनिकताके पुट निदर्शन करवाते हुए भावपक्षका विस्तृत ब्यौरा दिया गया। अब इनके पद्योमें कलापक्षके उभार-दर्शनका प्रयत्न है, जिसके अंतर्गत इनके काव्योंमें अलंकार, प्रतीक योजना और बिम्ब विधानोंके सहारे ध्वन्यात्मकता, छंद, रस-निष्पत्ति एवं गेयता युक्त विविध राग-रागिनियोंसे नवाजित अमर काव्यदेहका वर्णन किया जा रहा है। इससे उनके कवि कौशलका परिचय प्राप्त होगा।

काव्यमें अभिव्यंजना शिल्पः— काव्य, जीवनको प्रेरणा-प्रगति-प्रकाश प्रदाता है, जो सांस्कृतिक जीवन शैलीका पोषक है। ऐसे उपकारक काव्यके कृतिकार द्वारा अनुभूत आंतरिक गहन भावोंका विश्व व्याप्त मनोवेगों और भावानुभूतियोंके माध्यमसे, विविध संवेद्य रूपोमें कलात्मक प्रणयन-वही है अभिव्यंजना शिल्प; जिसके अंतर्गत अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, छंद, लय, ताल, नाद सौंदर्यता, गेयतादि अभिव्यक्तिके अनेक विभिन्न अंगोंका विधान किया जाता है, और जिससे कृतिका प्रभाव, प्रांजलता एवं प्रभुताकी वृद्धि होती है, साथ ही साथ काव्यकी क्षमता-क्षेम और सौंदर्यकी, अभीष्टार्थ पूर्तिके साथ सिद्धि होती है। अभीष्टार्थकी सम्प्रेषणीय क्षमता वृद्धिके लिए एवं स्वानुभूत भावानुरूप साधर्म्य या वैधर्म्यके प्रतिपादनार्थ कवि नैसर्गिक-मानवीय-मानवेतरादि सृष्टिकी वस्तु-व्यापार-विचार(भाव)-तथ्यादिका अवलम्बन लेकर काव्य रचना करता है।

इस विभिन्न रंगयुक्त इन्द्रधनुषी आभासे भास्वरित काव्यमें प्रमुखतः दो तत्त्व पाये जाते हैं-(१) कविके हृदयकी मूल भावानुभूति अथवा काव्यमें प्रतिपाद्य भाव, जिसका वाच्य रूपमें या सूक्ष्म-स्थूल व्यंग्य रूपमें सार्थ शब्द प्रयोग हुआ है-उसे प्रस्तुत कहा जा सकता है और (२) जिसके बल पर काव्यकी सौंदर्यश्रीका संवर्धन होता है, जिसके सहयोगसे ही काव्यगत भाव, प्रकृष्ट रूपसे संवेदनशील आस्वादकको अखंड-हार्दिक काव्यानंदका आह्लाद प्रदान कर सकता है-उसे अप्रस्तुत कहा जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्लजी इसी बातकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं-**"काव्यमें कोई प्रस्तुत अवयव होना आवश्यक है तब उसके अतिरिक्त और जो कुछ रूपविधान होगा वह अप्रस्तुत होगा।"** [१३]

लेकिन हम देखते हैं कि इन 'प्रस्तुत' और 'अप्रस्तुत'को ही वर्तमान साहित्यिक परिभाषामें 'उपमेय' और 'उपमान'के रूपमें स्वीकृत कर लिया गया है; जो काव्यके भावोंकी तीव्र रसार्द्रता, प्रभविष्णुता, संप्रेषणीयता मार्मिक सुंदरताको विवर्धनशील बनाते हैं। काव्यके प्रस्तुत और अप्रस्तुत-दोनों परस्पराश्रित होनेके कारण ही काव्यमें दृश्यमान मूर्तरूप-गुण (धर्म), विभिन्न भाव-प्रभावादिका साधर्म्य-वैधर्म्य या औचित्य-चमत्कारादिका उत्कर्ष प्राप्य है। अतः कवि ऐसे ही उपमान चयनके साथ अपना बुद्धि सामर्थ्य और कल्पना वैभव जोड़कर नित्य नूतन प्रयोगोंको उपयुक्तापूर्वक प्रवाहित करते रहते हैं।

अलंकार—काव्यमें अलंकारका स्थान महत्त्वपूर्ण है यह निर्विवाद है, और उस महत्त्वके परिमाणमें भी उतने ही विवाद है, यह भी निर्विवाद है। अलंकार काव्यको चरमोत्कर्ष रूप प्रदान करनेमें कितने परिमाणमें कारगर होते हैं, इसका निर्णय विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न अभिप्रायके रूपमें प्राप्त होता है, फिर भी महत्त्व स्वीकार सभीने किया है। आश्चर्य इस बातका है कि, अलंकारका अक्षुण्ण महत्त्व स्वीकार करनेवाले अलंकारवादी भी न इसका ठोस-सैद्धान्तिक विवेचन कर पाये, न उसके मूल स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिए कोई गंभीर प्रयास ही किये। अतः निश्चित हुआ कि अलंकारका कार्य काव्यकी सजावट, शोभा वृद्धि या पूर्ति करना है।

'अलंकार' निहित शब्दयुग्ममें उसका अभिप्रेतार्थ समाविष्ट है-यथा-'अलं' अर्थात् आभूषण और 'कार' अर्थात् कर्ता-याने 'जो विभूषित करता है वह अलंकार है'। यह तो हुई निर्युक्तिक पहचान। लेकिन, वास्तवमें अलंकार है क्या ?-अलंकार है सुष्ठु अभिव्यंजनाकी अथवा काव्योत्कर्षकी विभिन्न प्रणालिका; वागेश्वरीके आभरण; चमत्कारपूर्ण उक्ति वैचित्र्य'; सुषमाभिव्यक्तिकी ललित भंगिमा; मनोवैज्ञानिक भावसौंदर्यके प्रसारक—संक्षेपमें वर्णनकी एक शैली मात्र है। सामान्यतः संपूर्ण रूपमें सौंदर्यका पर्यायवाची होना या काव्यकी शोभाकी अभिवृद्धि करना अथवा काव्य-भाषामें तथ्य-पदार्थ-सत्य और जीवनादिको रूपायित वा बिम्बित करनेकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कला ही अलंकारका प्रायोगिक रूप माना जा सकता है। जबकि व्युत्पत्ति रूपमें उसे व्याख्यायित करें तो-(१) 'अलं करोति इति अलंकारः'–आचार्य भामहके विचारोंसे अलंकार ही काव्यमें सुंदरता और रोचकता, रसात्मकता और जीवंतता ला सकता है। अर्थात् काव्यमें अलंकार अनिवार्यतः आवश्यक हैं। इन विचारोंके अनुगामी हम पाते हैं-दंडी, वेदव्यास, जयदेव, नरेन्द्रप्रभ सूरिजी, केशव, गुलाबसिंह, मुरारिदान, अप्पय दीक्षित, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. नगेन्द्र आदिको। (२) "अलंक्रियते अनेनेति अलंकारः" -आचार्य मम्मटके खयालमें जिसके द्वारा विभूषित किया जाय वह अलंकार है; अर्थात् अलंकार, काव्य-सौंदर्य-वृद्धिके केवल साधन है-साध्य नहीं अथवा अलंकार रसके पोषक, उत्कर्षक, उपकारक है। इन खयालातोंके अनुवर्ती हैं–जैनाचार्य श्री हेमचंद्र सूरिजी, विद्याधर, विश्वनाथ, चिन्तामणी, भिखारीदास, देव आदि। (३) 'अलंकरणम् इति अलंकारः'-आचार्य आनन्दवर्धनके अभिमतसे रस या व्यंग्यसे विपरित केवल काव्यको अलंकृत करते हुए चमत्कृति उत्पन्न करनेवाला अलंकार काव्यका गौण तत्त्व है। यही कारण है कि उन्होंने काव्यमें अलंकारको नितान्त आवश्यक नहीं माना है । इस धाराकी अनुमोदना की है–पंडितराज जगन्नाथ-गोविंददास-ग्वाल-लछीराम-अर्जुनदास केडिया-डॉ.रामकुमार वर्मादिने।

अब प्रश्न उपस्थित यह होता है कि अलंकार कब-कहाँ-क्यों प्रयोजित किये जाते हैं? इसके प्रत्युत्तरमें हम यह कह सकते हैं–अलंकार किसी तथ्य-वस्तु या चरित्रके स्वरूपके लिए; प्रभावके स्पष्टीकरण या प्रकटीकरणके लिए; व्यंग्य द्वारा प्रच्छन्न रूपमें निंदा या प्रशंसाको प्रकाशित करते समय; शाब्दिक ध्वनि या अर्थ चमत्कृतिके उद्भावनके प्रयोगमें उपकारी बन सकते हैं, इस प्रकार अलंकारसे कविता-रमणीकी बाह्य साजसज्जा आकर्षक रूप प्राप्त करती हैं। **"भाषाको गति, यति, चित्रात्मकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता अलंकारोंसे मिलती हैं। यद्यपि यह बाहरी साधन हैं तथापि उनके पीछे अलंकृतिकारकी आत्माका उत्साह और ओज विद्यमान रहता है। बाह्य साधन होनेके कारण सर्व प्रथम इन पर दृष्टि जाती है"** [१४]

अलंकारोका पृथक्करण–व्यवहारके विभिन्न दृष्टिबिंदुओंको केंद्रस्थ रखते हुए जीवन सत्यके विविध रूपोंको रूपायित करनेमें सहयोगी-अलंकारोंके, विद्वानों द्वारा अलग अलग भेदोपभेद प्रस्तुत करनेकी चेष्टायें हुइ हैं। ऐसे प्रयत्नोंका श्रीगणेश आचार्य भामहसे हुआ। लेकिन उनका वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टिसे तर्कसंगत नहीं माना जा सकता। तत्पश्चात् आचार्य रुय्यक द्वारा कुछ वैज्ञानिक ढंगसे अलंकारोंको-सादृश्यगर्भ, विरोधमूलक, शृंखलाबद्ध, न्यायमूलक तथा गूढ प्रतीतिमूलक-इन पाँच वर्गोमें वर्गीकृत किया गया।

दया, करुणा, कौतुक, विस्मय, जिज्ञासा, उत्कंठा, उद्वेग, विषाद, हर्षादि मनोवेगोंको साधर्म्य-वैषम्य या औचित्य-चमत्कार-वक्रतादि रूपोमें विभिन्न अलंकारोंके माध्यमसे पेश किया जाता है। अतः इनके आधार पर अलंकारोंका मनोवैज्ञानिक स्तरीय पृथक्करण किया जा सकता है-जो इस प्रकार निरूपित हो सकता है-साम्यमूलक, वैषम्यमूलक औचित्य मूलक, वक्रता मूलक, चमत्कार मूलक, अतिशय मूलक आदि।

इन्हें अधिकाधिक सुकरताके लिए मोटे तौर पर हम तीन विभागोमें विभाजित कर सकते हैं *शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार*-किसी विशेष शब्द प्रयोग द्वारा काव्यमें चमत्कृति उत्पन्न करें और उस विशेष शब्दके रहने पर ही वह चमत्कार रहें उसे *'शब्दालंकार'*; अलंकार सिद्ध करनेवाले शब्दके परिवर्तनके पश्चात भी वह चमत्कृति या काव्यानंद बना रहे वह *'अर्थालंकार'* और जो समान बलसे शब्द और अर्थ-दोनों पर निर्भर रहता है वह *'उभयालंकार'* कहा जाता है।

इन विभिन्न विभागीकरणके अभ्यासोपरान्त हम देख सकते हैं कि शब्दालंकारोंके वर्गीकरणमें तो समानता पायी जाती है, लेकिन अधिक मतभेद अर्थालंकारोंमें ही प्राप्त होते हैं। इनमें भी साधर्म्य या वैधर्म्यमूलक अलंकारोंमें प्रायः एकमतता पायी जाती है और अन्यत्र भिन्नता। फिर भी, सभीमें अल्पाधिक मात्रामें मनोवैज्ञानिकता पायी जाती है। इन सभीमें विद्यानाथजी और विद्याधरजीका वर्गीकरण अधिक युक्तियुक्त माना जा सकता है। इन्होंने अर्थालंकारोंको नव भागोमें विभक्त किया है-साधर्म्य मूलक, विरोधमूलक, अध्यवसाय मूलक, वाक्यन्यायमूलक, लोकव्यवहार मूलक, तर्कन्याय मूलक, शृंखला-वैचित्र्यमूलक, अपह्नव मूलक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और विशेषण वैचित्र्यमूलक।

अब 'एकावली' में विद्याधरजी द्वारा किया गया वर्गीकरण अत्र प्रस्तुत है-

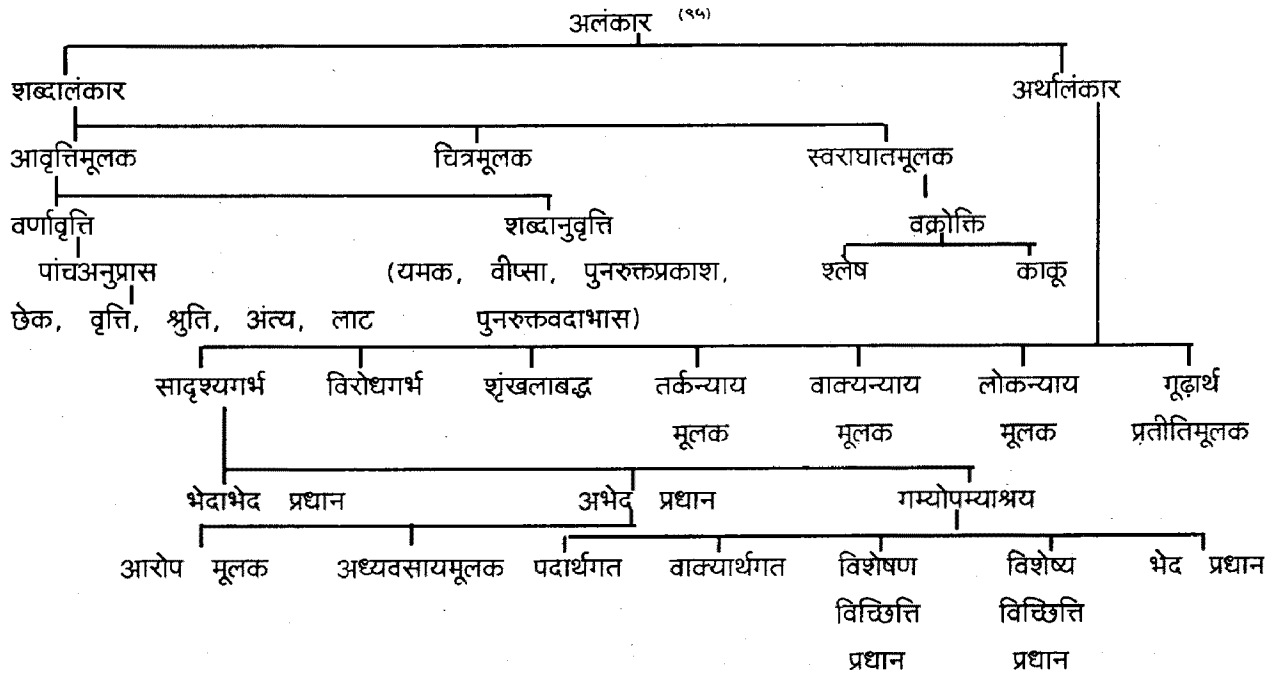

अब हम देखेंगें कि कविसम्राट श्री आत्मानंदजी म.सा.द्वारा अपनी काव्य रचनाओमें अलंकारोंका कितना और कैसा प्रयोग किया गया है। प्रथम शब्दालंकार तदनन्तर अर्थालंकारोंका विवरण किया जायेगा। *शब्दानुप्रास-आवृत्तिमूलक*-जहाँ वर्णोंकी या शब्दोंकी आवृत्ति होती हैं। *वर्णानुप्रास*-यहाँ स्वर या व्यंजनोंकी आवृत्ति-समानता दर्शायी जाती है। *'चिदानंद घन'* परमात्माके मनमोहक स्वरूपका वर्णन करते हुए स्तवना की है-

"चिदानंद घन अचर, अमूरत, सुरत त्रिभुवन मानी"-हस्त लिखित-स्तवन-६७

छेकानुप्रास-आत्माको अनुकूल सिद्धि पाकर कुछ कमाई करनेके लिए प्रेरित करते हैं-

"सकल सिद्धि अनुकूल हुए जब, सम दम संयम पाई
अकषाय अति उज्ज्वल निर्मल, मदन कदन चित्त लाई,
बंदे कछु करले कमाई रे, जाते नरभव सफल कराई....."न. पूजा-४

यहाँ स, ल, म, अ, द, न, क आदिकी आवृत्ति हुई है। अंत्यानुप्रास-'ई'कीभी आवृत्ति है।

वृत्यानुप्रास-भगवंतके उपकार सर्वविदित ही है, इन्हींको ऐसी लयके साथ पेश किया है-

"मदन कदन शिवसदनके दाता, हरन करन दुःखदायी रे....
कर्म भर्म जग तिमिर हरनको, अजर अमर पददायी सखि री....."ह. लि. स्त. ११

इसमें 'न' की आवृत्ति हुई है साथ ही साथ 'हरन'से यहाँ 'यमक' अलंकार भी बनता है।

श्रुत्यानुप्रास-देशनाकी अमृतवर्षा करनेवाले अरिहंत परमात्माकी विशिष्ट विशेषणों द्वारा स्तुति की गई है-
"शासनपति अरिहा नमो, धर्म धुरंधर धीर, देशना अमृत वर्षणी, निज वीरज वडवीर....."नवपद पूजा-१

और अब श्री सिद्ध भगवंतके गुण स्वरूप-सिद्धके विशेषणों द्वारा, कंठ्य 'अ' स्वरकी आवृत्ति करते हुए वर्णित हुआ है- **"अलख निरंजन अचर विभु, अक्षय अमर अमार**
महानंद पदवी वरी, अव्यय, अजर, उदार....."न. पू.-२

अंत्यानुप्रासः- **"सुविधिजिन वंदना, पाप निकंदना, जगत आनंदना, मुक्ति दाता;**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करमदल खंडना, मदन विहंडना, धरम धुर मंडना, जगत त्राता।
अवर सहु वासना, छोर मन आसना, तेरी उपासना, रंग राता;
करो मुझ पालना, मान मद गालना, जगत उजालना, देह शाता।।".....चतु. जि. स्त. ९

वैसे तो, अंत्यानुप्रासका प्रसाद इनके काव्यमें प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।

यमक-श्रीनेमिनाथ भगवंतके चचेरे-भाई-कृष्णजी जब भगवंतके कहनेसे जानते हैं कि उन्हें नरकमें जाना पडेगा तब विह्वल होकर नरकसे मुक्तिका उपाय पूछते हैं। उसके प्रत्युत्तरमें सर्वज्ञ परमात्मा उन्हें सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि आप भी नरकगमन पश्चात् भावी तीर्थंकर 'अमम' नामसे बनोगे। इसीको कविवरने, ममत्वरहित-'अमम जिन'का आलेखन किया है-

"अमम अमम" जिन रूप सरिसो, जिनवर पद उपजाई".....ह. लि. स्त-११
"भामंडल पूंठे प्रभु दर्सण, तम मिथ्यातम नावे रे"....ह. लि. स्त-२९
"आतम आनंद चिदघन स्वामी, शांति, शांति कर तार हो"....ह. लि. स्त-३३
"परमानंद कंद प्रभु पारस, पारस तो सही।
तुम निज आतमको कनक करण, टुक फरसो तो सही"....आ. वि. स्त.-पृ १०५
"शीतल जिनवर नाम, शीतल सेवक कीजिए
शीतल आतम रूप, शीतल भाव धरीजिए ।"..... च. वि. स्त.-१०

इस प्रकार जगह जगह पर सभंग एवं अभंग यमकके चमकार प्राप्त होते हैं।

वीप्सा-आदरणीय-शुभ-शुद्धादि भावोंके प्रभावकी वृद्धि हेतु किसी शब्दकी पुनरावृत्ति करने पर यह अलंकार बनता है। परोपकारी गुरुदेव जलमें कमलकी तरह तैरनेके लिए और पाप-पंकको झाड़ कर समाधि प्राप्त करके निर्मद एवं निर्ममत्व धारण करनेके लिए शीख देते हैं। यहाँ तैरना, झाड़ना, वरना आदिकी प्रभावोत्पादकता इनकी अनेकबार आवृत्ति करके की गई है-

"काम भोग जल दूर तजीने, उर्ध्व कमल जिम तर रे तर रे तर रे तर रे,
मुनिजन अर्चन शुद्ध मन कर रे, कर रे कर रे कर रे कर रे....
अंग अष्ट चित्त जोग समाधि, पाप पंक सब झर रे झर रे झर रे झर रे....
शुद्ध स्वरूप रमणता रंगी, निर्मम निर्मद वर रे वर रे वर रे वर रे...." न. पू.-५

पुनरुक्त प्रकाश-भावको रुचिकर बनानेके लिए यहाँ कविराजने 'सुमति' शब्दकी दो बार आवृत्ति की है। इसे पुनरुक्ति भी कहते हैं-**"सुमति सुमति समता रस सागर, आगर ज्ञान भरिनो ।**
आतम रूप सुमति संग प्रगटे, सम दम दान वरिनो....आ. वि. स्त. पृ-८३

यहाँ 'सुमति संग'से आत्मरूप प्रगटनेमें सहोक्ति अलंकार भी दृष्टव्य है।

पुनरुक्तवदाभास-जिनशासनके अनेकांतको उजागर करते हुए अहिंसाकी प्रधानता गाते हैं। *'काम-वासना'* रूप भावकी हिंसा करके कैसे करुणा भावको प्राप्त करना है इसे ध्वनित किया है-

"करुणा रससे धरी शुभ फ्नस, मरत न जेम पतंग।
तिम जिन पूजत मिले चित्त दीपक, जरत है समर पतंग रे"....अ. प्र. पूजा-दीपक पूजा

चित्रमूलक-अपरिग्रही निर्मम-अकाम केवलज्ञान दिवाकर-विश्व रूपी टहनी पर पुष्प सदृश संसारमें ज्ञान परिमल प्रसारक-नवनव भवकी प्रीतिपात्र-राजमतिका दीनतासे उद्धार करके संसार पार कराकर प्रसन्न करनेवाले-बाल ब्रह्मचारी परमात्मा श्रीनेमिनाथजीके रूप-गुणका जो शब्द-चित्र अंकित हुआ है वह अपने आपमें स्पष्ट व संपूर्ण प्रभावशाली बन पड़ा है।

"टहके सुमन जेम, महके सुवास तेम, जहके रतन हेम, ममताकुं मारी है,
दहके मदनवन, करके नगन तन, गहके केवल धन, आस वास डारी हैं।
कहके सुज्ञान भान, लहके अमर थान, गहके अखर तान, आतम उदारी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चहके उबार दीन, राजमति पार कीन, ऐसे संत ईश प्रभु बाल ब्रह्मचारी है।" उ. बा.-३४

अर्थालंकारः--सादृशमूल--भेदाभेद प्रधान--उपमा-

पूर्णोपमा– **"मन वच तन कर पदकज सेवो भृंग परे लपटानी"....ह. लि. स्त-६५**

"वदन चंद ज्यूं शीतल सोहे, अमृतरस मय बानी"..... ह. लि. स्त-६६

"अश्वसेन वामाके नंदन, चंदन सम प्रभु तप्त बुझारी"..... चतु. जिन स्त-२३

"राजकुमर सरिसा गणचिंतक, आचारज पद जोगी"..... श्री नवपद पूजा-चौथी

लुप्तोपमा- **"त्रिशलानंदन सुरतरु जगमें, वांछित फल पावेजी".....-ह. लि. स्त-४५**

यहाँ त्रिशलानंदन (भ.महावीरजीको) कल्पवृक्षकी उपमा दी है, लेकिन वाचक शब्दका लोप है, इसलिए वाचक लुप्तोपमाका प्रयोग हुआ है।

मालोपमा–भगवंतको उपमेय बनाकर विभिन्न उपमानोंकी माला-सी गूंथी गई है-

"प्रभु अविचल ज्योति रे, निज गुण रंग रली। प्रभु त्रिभुवनचंदा रे, तामस दूर टली।
जग शांतिके दाता रे, अघ सब दूर दली। प्रभु दीन दयाला रे, मुझ मन आश फली।" ह.लि.स्त ७१

इसीका एक और सुंदर प्रयोग है- **"दीन दयाल करुणानिधि स्वामी, वर्धमान महावीर भलेरो।**
श्रमण, सुहंकर, दुःखहर नामी, ज्ञातपुत्र भ्रमभूत दलेरो....." आ.वि.स्त.७८

उपमेयोपमा–परमात्माकी वाणीके जो गुण-भेद है उन्हें सुंदर ढंगसे उपमेय-उपमान-परस्पर उपमेयोपमान बनाकर जाल जैसे गूंथा है- **"उत्सर्ग अपवाद अपवाद उत्सर्ग उत्सर्ग अपवाद मन धार लीजो,**
अति उत्सर्ग उत्सर्ग है जैनमें, अति अपवाद अपवाद कीजो।" - च.जि.स्त-९.

अनन्वय–सर्व जीव समान होते हैं-यह है साम्यवाद; लेकिन वैषम्य कहाँ है? कर्मके कारण। "कर्म हठे"-सर्वकर्मरहित–सर्व जीव एक समान ही होते हैं । इसे श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथके स्तवनमें अनन्वय अलंकारके प्रयोग द्वारा–जहाँ उपमेय उपमान एक ही हों–दर्शाया गया है-

"जब करम कटा और भरम फटा, तुं और नही मैं और नहीं"। - आ.वि.स्त.-पृ.७४

"जब राग कटे और द्वेष मिटे, तुं और नहीं मैं और नहीं"। - आ.वि.स्त.-पृ.७४

प्रतीप- **"पंचभद्रनो त्याग करीने, पंचमी गति द्यो सारजी, निर्ग्रंथपणाने त्यागो प्राणी, निर्ग्रंथ आदर सारजी".....ह.लि.स्त.३०**

अभेदप्रधान–आरोपमूल-*रूपक*–**"अब हुं निरासो कदी ही न थावुं, कल्पवृक्ष प्रभु पायो रे...."** ह.लि.स्त.१०

अभेद रूपक-यहाँ परमात्मा रूपी आरीसे भवभ्रमण रूपी बनको काटने-खत्म करनेके स्वरूपमें प्रस्तुत किया है। **"अश्वसेन वामाजीको नंदन, भववन काटनको प्रभु आरी"..... ह.लि.स्त. २८.**

"अब तुम नाम प्रभंजन प्रगटयो, मोह अभ्र छय कीनो"..... आ.वि.स्त.-५.

"परगुन बकरीके संग चरके, हुंडुं नाम धरायो;
जिनवर सिंघको नाद सुण्यो जब, आतम सिंघ सुहायो..." आ.वि.स्त.-पृ.१००

सांग रूपक-जहाँ उपमेयके अवयवों सहित उपमानके अवयवोंकी एकरूपता दिखाई जाती है।

"चंद्रवदन मुख तिमिर हरे जग, करुणा रस दृग भरे मकरंद
नीलांबुज देखी मन मधुकर, गूंजे तूंही तूंही नाद करंद...
कनक वरण तनु भवि मन मोहे, सोहे जीते सुरगण वृंद
मुखथी अमृत रसकस पीके, शिखीवत् भविजन नाच करंद....
श्री वीरजिन दर्शन नयनानंद.....आ.वि.स्त. पृ.६९

परंपरित रूपक- **"करम कुधातुसे चेतन विगर्यो, माने सबहि एकंगी रे।**
सम्यग् दरसन चरण तापसे, दाहे करम सरंगी रे...."(बा.भा.स.५.)

तद्रुप रूपक- **"तुम गुण कमल भ्रमर मन मेरो, उड़त नहीं है उड़ाई।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृषत मनुज अमृत रस चाखी, रुचसे तप्त बुझाई।। तारोजी"....च. जिन. स्त. २१

"वचन सुधारस तुम जग प्रगटे, गटके भविजन लाल हो...." ह. लि. स्त. ३१

उल्लेख–यहाँ पाठक-उपाध्यायके 'निमित्त भेदाश्रयी' विभिन्न गुणोंका वर्णन किया गया है।

"पाठक पद सुख चेन देन, वच अमीरस भीनो रे..... स्वपर रूप विकासी चंद, अनुभव सुरतरु केरो कंद.....

कुमति पंथ तम नाशक सूर, सुमति कंद वर्द्धन घनपूर.....

सरस वचन जिम तंत्री वीन, निज गुण सब चीनो रे."बी.स्था.पू.५

अध्यवसाय मूल-उत्प्रेक्षा-**"अश्वसेन वामाजीको नंदन, चंदन रस सम सारे रे।**

अनियाली तोरी अंबुज अखियां, करुणारस भरे तारे रे.... आ.वि.स्त.पृ. ५९

फलोत्प्रेक्षा- **तपत मिटी तुम वचनामृतसे, नासे जन्म मरण दुःख फंद,**

अक्ष परे तुम दरस करीने, पर्तक्ष मानुं हुं जिनचंद.....आ.वि.स्त.पृ. ७०

यहाँ जिनचंदके प्रत्यक्ष दर्शनके अफलमें 'अक्ष परे दरस करके' प्रत्यक्ष दर्शनकी संभावना की है।

प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा–वाचक शब्दके अभावसे यह उत्प्रेक्षा अलंकार बनता है-यथा-

सावन घटा घनघोर गरजी, नेमवाणी रस भरी। अपछंद निंदक संघके, तिन जान सिर विजरी परी।।

सत्ता सुभूमि भव्यजनकी, अंश अंशे सब ठरी। अब आस पुन्य अंकुरकी, मनमोद सहियां फिर खरी।।

च.जिन स्त.२२

यहाँ श्रीनेमजिनकी वाणीमें 'सावनकी घटाकी घनघोर गर्जना' आदिकी संभावनामें संशयवाचक शब्द लुप्त है।

अतिशयोक्ति-ऐसा कभी हो नहीं सकता कि क्रोड़ सागरोपम वर्ष (असंख्यात वर्ष) पर्यंत गुण गाने पर भी वह अधूरे रहें लेकिन कविराजने परमात्माके अलौकिक-अनंत गुणगानके माहात्म्यको प्रदर्शित करनेके लिए लोक व्यवहार विरुद्ध भासे ऐसी स्तवना की है-

"कोडि वदन कोडि जीभसें रे, कोडि सागर पर्यंत

गुण गाउँ तेरे भक्तिशुं रे, तो तुम रिण को न अंत....." आ.वि.स्त.पृ.६१

सम्बन्धातिशयोक्ति--**"जनम जनममें माता रोई, आंसूनासंख कराना रे**

होय अधिक ते सब सागरथी, अज हुं चेत अज्ञाना रे....." ह.लि.स्त. -२५

असम्बन्धातिशयोक्ति-**"धारो 'चरण' नहीं मिले मोल, रंक-राज्य पद दायी ...." नव.पूजा.-८.**

यहाँ 'चरण' शब्दमें 'श्लेष' अलंकार भी बनता है 'चरण' याने पाँव और 'चरण' याने सम्यक् चारित्र। दोनों ही मूल्य चूकाने पर भी नहीं मिलते हैं। वैसे तो मोल देनेसे सबकुछ प्राप्त करनेका जो सम्बन्ध उसे 'न मिलना' वर्णित करके असम्बन्धकी कल्पना की गई है।

क्रिया साम्य मूल (गम्योपम्याश्रय):--पदार्थगतः दीपक-('तुल्ययोगिता')–विभिन्न आत्माओंकी इस संसार परिभ्रमण क्रिया रूप धर्मको प्रस्तुत करके कविने यह अलंकार नियोजित किया है।

"ऊँच नीच रंक कंक कीटने पतंग ढंक, ढोर मोर नानाविध रूपको धरतु है ।

श्रंगधार गजाकार, वाज वाजी नराकार, पृथ्वी तेज वात वार (वारि) रचना रचतु है"उ.बा.१८.

माला दीपक–**"अठारे सहस्त्र शिलांग धार, जयणायुत अचल आचार पार;**

नव विध गुप्तिसे ब्रह्मकार, आतम उजार भवबन दव दीना।।

जे द्वादशविध तप करत चंग, दिन दिन शुद्ध संयम चढ़त रंग .

सोनाकी परे धरे परिख चंग, चित्तमें अभंग संजम रस लीना।।" नव.पूजा.५

यहाँ 'अभंग संयम रस प्राप्ति'के लिए साधु जीवनकी विविध चर्या-क्रियामें एक धर्म क्रियारूप धर्मकी समानता प्रदर्शित की गई है।

देहली दीपक -एक ही क्रिया दोनों वाक्योंके बीच आती है तब यह अलंकार बनता है-केवलज्ञान रूपी दीपकके प्रकाशमें दो क्रियाओंका निषेध किया गया है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पड़त पतंग न धूमकी रेखा, केवल दीप उजासे रे....." अष्ट प्र.पूजा - दीपकपूजा-

वाक्यार्थगतः— *प्रतिवस्तूपमा-***"तें तार्यो प्रभु मोह को रे, हरी भवसागर पीर।**

ग्यान नयन मुजे तें दीये रे, करुणा रसमय वीर ।।" .... आ.वि.स्त.पृ. ६१

यहाँ 'तारना', 'हरना' और 'ज्ञान नयन देना'-तीनोंमें एकही क्रियाधर्म दर्शाया गया है और 'मुझे' एवं 'मोहको'-दोनों शब्द भी एकार्थी है। अतः प्रतिवस्तूपमा अलंकार बनता है।

दृष्टान्त- **"तुं मुझ साहिब वैद्य धन्वंतरी, कर्म रोग मोह काट**

रत्नत्रयी पथ मुझ मन मानीयो रे, दीजो सुखनो थाट।"चतु. जिन स्त.-१७

यहाँ अरिहंत देवका रत्नत्रयी रूप पथ्य देकर मोहनीय कर्मरोगको नष्ट करनेवाले धन्वंतरी वैद्यके साथ समानधर्मा बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव प्रस्फुटित होता है। इसलिए दृष्टान्त अलंकार बनता है। वैसे ही मिथ्यात्व रूपी लोहेको जिनवाणीके रसायण रससे सम्यक्त्व रूपी सुवर्ण बनानेमें भी समानधर्मी बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव झलकता है- **"नाम रसायण सहु जग भासे, मर्म न जाने कांइ री।**

जिनवाणी रस कनक करणको, मिथ्या लोह गमाइ...." चतु. जिनस्त.-८.

उदाहरण—दृष्टान्तमें वाचक शब्द आने पर उसे 'उदाहरण' अलंकार कहते हैं-

"बंधन गये तुंब ज्युं जलमें, छिनक में उर्ध हि आवे,

आतम निर्मल सुध पद पामी, जनम मरण मिटावे रे...." आ.वि.स्त.पृ.-५८

"छिनमें बिगर गयो, क्या है मूढ़ मान गयो, पानीमें पतासा तैसा, तनका तमाशा है"- उप.बा.५८.

निदर्शना—जहाँ वाक्य या पदार्थमें असंभव संबंधके लिए उपमाकी कल्पना की जाती है—जैसे, भवनको जलानेवाली साधना रूपी अग्निकी साक्षीमें मनभावन सिद्धिवधूके साथ साधकके लग्न चित्रको चित्रित किया है, जिसके आनंद प्रदर्शनके लिए मंगल 'तूर्यादि' वाद्य बज रहे है । 'सिद्धिवधू' कोई नारी तो है नहीं। लेकिन मोक्षके सबल भावको पेश करनेके लिए असंबंध संबंधकी कल्पना की गई है । यथा -

"उदे भयो पुन पूर नर देह भूरि नूर, बाजत आनंद तूर मंगल कहाये है ।

भवन सघन दगधकर अगन ज्युं सिद्धि वधु लगन सुनत मन भाये है ।" उ.बा.१३

विशेषण विच्छित्ति प्रदानः—*समासोक्ति*--कर्मसे दीन बने हुएको सांसारिक शक्तियाँ (वाचिक शक्ति) सुवर्ण सदृश शुद्धात्माको भी डुबा देनेका सामर्थ्य रखती हैं तो परमात्माके चित्तका संग करनेकी इच्छावाले-लोहकंकण लेकर आये हुएके क्या हाल होंगें?-इस पंक्तिमें सांसारिक शक्ति रूप अप्रस्तुतकी स्फुरणा की गई है-

"एक इच्छक प्रभु लोह कंकण ले, भूपति अंग संगकार,

वचन युक्तिसे हेम डूबोए, है एह शक्ति संसार।" ह. लि. स्त-२७

परिकर--**"शिववधू वशीकरणको नीकी, तीनों रतन धरी।**

आतम आनंद रसकी दाता, वीर जिने दान करी.... वीर जिने दीनी माने एक जरी।" आ.वि.स्त.पृ-६९

'परमात्माके दान' रूपी विशेष्य-'जड़ीबुट्टी'को वशीकरण करनेवाली, नीकी, तीन रत्नधारी, आत्माको आनंदरसकी दाता आदि विशेषणों द्वारा प्रकट किया है। अतः यहाँ परिकर अलंकार बनता है। इसके अतिरिक्त 'आतम' शब्द पर श्लेष है(१) आत्माके आनंदकी दाता और (२) श्री आत्मानंदजी म.को आनंदरस प्रदान करनेवाली-'धरी', 'जरी', 'करी' आदिमें अंत्यानुप्रास भी वर्णित है।

श्लेष— **"शुचितनु वदन वसन धरी, भरे सुगंध विशाल।**

कनक कलश गंधोदके, आणि भाव विशाल ।।" सत्रह भेदी पूजा-१

यहाँ 'आणि'-गुजराती भाषानुसार 'लाकर' और संस्कृत भाषानुसार 'कोटि' अर्थसे श्लेषका चमत्कार अनुभूत होता है जबकि 'विशालमें' में यमक और पदानुवृत्ति अलंकार बनते हैं।

"ज्ञान अपूरव जबहि प्रगटे, शुद्ध करे चित्त धरणीने" बीस स्थानक पूजा-१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ 'अपूरव' अर्थात् अभिनव-नूतन और 'अपूरव' अर्थात् अद्‌भूत; अपूर्व याने केवलज्ञान इस प्रकार अपूरवके विभिन्न अर्थग्राही श्लेष अलंकार बनता है।

"हुं तो नाथ ही नाथ पुकार रही, कुमता जर जार ही जार रही"-आ.वि.स्त-९४

यहाँ अनादि कालसे वृद्ध बनी कुमतिके जार-पुरुषको जलाना और वही कुमतिकी बिछायी हुई जालको जलाकर खत्म करनेकी बातको 'जार' शब्दसे श्लेषित की गई है।

अर्थांतिरन्यास-जहाँ विशेषसे सामान्यका अथवा सामान्यसे विशेषका साधर्म्य या वैधर्म्यके द्वारा समर्थन होता है-

"मन मेला,तनका अति उजला,बगलेके सा तोल। घोडा काठका होसा न पूरे,बाजे न फूटा ढोल..."ह.लि.स्त१७

यहाँ काठका घोडा, फूटा ढोल और बगले से, मनके मैले और तनके उजले व्यक्तिके मानसिक भावोंका चित्रण किया गया है।

पर्यायोक्ति- **"शील सेना जिन, निज तन धारो; मदन अरि जिन पकड पछार्यो; धन धन नेम कुमार....ह.लि.स्त२६**

यहाँ बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथकी धन्यता-महानताको, शीलसेनाधारी सेनापतिके कामदेव रूप महान शत्रुको पकड कर पछाडने रूप विशेष भावोंसे व्यक्त किया है।

व्याजस्तुति- **"जो दायक समरथ नहि तो, कहो कुण मांगन जाये।**
त्रिभुवन कल्पतरु में जाच्यो, कहो किम निष्फल थायें !"....ह.लि.स्त-२२

यहाँ प्रथम परमात्मा की निंदा-"देनेमें समर्थ नहीं"-कहकर फिर कहा है कि, 'नहीं, तुम तो कल्पतरु हो तो फिर मेरी याचना कैसे निष्फल हो सकती है?' अर्थात् आप समर्थ ही हो।

भेदप्रधानः— *व्यतिरेक*-**"चंद्रकिरण जस उज्ज्वल तेरो, निर्मल-ज्योत सवाइ री.... चतु. जिन स्त-८**

यहाँ 'चंद्र किरणकी उज्ज्वलता' उपमानकी अपेक्षा 'यशकी निर्मल ज्योत'को 'सवाइ' कह कर उपमानका अपकर्ष दिखाया गया है इसलिए व्यतिरेक अलंकार बनता है।

विरोधगर्भः—*विरोधाभास*-**"घृत विन पूरे ज्योति अखंडित, वर्तिक मल न चिकासे रे**
दीप जयंकर चिद् घन संगी, केवल जगत प्रकासे रे....अष्ट.प्र.पूजा-४

यहाँ बिना घृत-वर्तिकके जयंकर दीपककी ज्योतिका विरोध आभासित है यह बात जब केवलज्योत, जगत प्रकाशकी बात सुनते ही प्रकट होकर विरोधका परिहार कर देती है।

विभावना-जहाँ कार्य-कारणान्तरकी कल्पना की जाती है-यथा-

"यह संसार सुही सावरजो, संबल देख तु भायो।
चाखन लाग्यो रुइसी उड गइ, हाथ कछुय न आयो रे मन...." आ.वि.स्त-पद

असंगति-जहाँ जो कार्य-प्रवृत्ति होनी चाहिए उससे विरुद्ध कार्य-प्रवृत्ति हों तब यह अलंकार बनता है-यथा-

"प्रवचन अमृत जलधर बरसे, भवि मन अधिक उल्लास रे;
कुमति कुपंथ अंधजन जे ते, सूकत जैसे जवास रे।" बीस. स्था. पू.-३

यहाँ भव्य जीवोंको उल्लास देनेवाली अमृतमयी प्रवचन धारासे कुमतिधारी कुपंथी, जो अभी अज्ञानांधकारमें भटकते हैं-प्रफुल्लित होनेके बदले सूखने लगे-अतः असंगति अलंकार बना ।

सम-कारणके अनुकूल जहाँ कार्यका वर्णन किया जाता है, वहाँ 'सम' अलंकार होता है -

"ओढ़क बरस शत आयुमान मान सत्, सोवत विहात आध लेत है विभावरी,
तत बाल-खेल ख्याल अरध हरत, प्रौढ़, आध, व्याध, रोग सोग सेव कांता भावरी ।
उदग तरंग रंग, योवन अनंग संग, सुखकी लगन लगे, भई मति बावरी,
मोह कोह दोह लोह, जटक-पटक खोह, आतम अजान मान, फेर कहाँ दावरी ?" उ.बा.२१

यहाँ आत्मा शत वर्षायुष्यको कैसे पागलकी भाँति व्यर्थ व्यतीत कर देती है, इसका यथार्थ वर्णन करके श्री आत्मानंजी म.निजात्माको सचेत करते हैं कि, ऐसा मानव भव प्राप्तिका दाव-अवसर बारबार कहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त होगा ? अर्थात् प्राप्त अवसरका समुचित उपयोग कर लें ।

शृंखलाबद्धः--- *एकावली*–जहाँ वस्तुओंके ग्रहण और त्याग की एक श्रेणि बन जाती है-

"बिना सरधानके ज्ञान नहीं होत है, ज्ञान बिन त्याग नहीं होत साचो।
त्याग बिन करमका नास नहीं होत है, करम नासे बिना धरम काचो।" चतु.जिन.स्त-९

यहाँ सच्चे धर्म तक पहुँचनेके लिए कर्मनाश, त्याग, ज्ञान-प्राप्ति, और शुद्धश्रद्धानकी एक श्रेणि बनाई गई है अतः यहाँ एकावली अलंकार बनता है।

वाक्य न्यायमूलः--- *यथासंख्य*–क्रमशः कहे हुए पदार्थोंका उसी क्रमसे जहाँ अन्वय होता है।

"चार अवस्था तुम तन शोभे, बाल तरुण मुनि मोक्ष सोहंदा
मोद हर्ष तन ध्यान प्रदाता, मूढ़ मति नहीं भेद लहंदा...

यहाँ श्री श्रेयांसनाथ जिनेश्वरकी स्तवना करते हुए परमात्माके जीवनकी चार अवस्थाओंका चार भावोंमें अन्वय करके कविवरने 'यथासंख्य' अलंकार रचा है।

पर्याय–एक ही आधेयका अनेक आधारोंमें होना पर्याय रूपमें वर्णित होता है।-

"उपादान तुं ही, सिद्ध रूप तूंही, निमित्त खरो सिद्धचक्र मुही।
जब ध्याता, ध्येय, अरु ध्यान मिले, सिद्ध और नहीं तुं और नहीं...."नव.पू.२

यहाँ आत्मा रूपी आधेयको विभिन्न आधारोमें वर्णित किया गया है और अंतमें निष्कर्ष रूप आत्मा ही सिद्ध स्वरूपी है यह सिद्ध किया है।---**"मंगल पूजा सुरतरु कंद....**

सिद्धि आठ आनंद प्रपंचे, आठ करमका काटे फंद....
आठों मद भये छिनकमें दूरे, पूरे अड़ गुण, गये सब धंद....
आठ प्रवचन सुधा रस प्रगटे, सूरि संपदा अति ही लहंद...." सत्रह भेदी पूजा-१३

यहाँ 'अष्टमंगलकी पूजा'को विविध भावोंमें पर्यवसित किया गया है।

लोकन्यायमूलकः--- *प्रत्यनीक*–शत्रुको जीतनेमें असमर्थ होनेके कारण उसके पक्षवालोंसे वैर निकालनेको 'प्रत्यनीक' अलंकार कहते हैं। प्रत्यनीकका अर्थ ही है प्रतिवादी।

"दुग्ध सिंधुरस अमृत चाखीं, स्याद्वाद सुखदायी रे।
झहरपान अब कोन करत है, दुर्नय पंथ नसायां री।.... चाह लगी...." आ.वि.स्त.पृ-८८

प्रतीप–जहाँ विपरीतता दिखाई देती है।

"पंचभद्रनो त्याग करीने, पंचमी गति द्यो सारजी।
निर्ग्रंथपणाने त्यागो प्राणी, निर्ग्रंथ आदर सारजी।।"....ह.लि.स्त.-३०

गूढार्थप्रतीतिमूलः-- *स्वाभावोक्ति*–मनुष्यकी किसी भी अवस्था विशेषका स्वाभाविक रूपसे वर्णन मिलता हों-

"आवो नेम, सुख चैन करो, दुःख काहे दिखावो रे....
विरहै तुमरो अति ही कठन, सह न सकू मन एक छिन,
जगत लगा सब हाँसी करन, मत छोड़ीने जावो रे....आवो....
करुणासिंधु नाम धरन, सुन अनाथके नाथ जिन,
रुदन करुं तुम चरन पडन, टूक दया दिल लावो रे....आवो....
अड़भव सुंदर प्रीत करी, अब कयुं उलटी रीत धरी,
'आतम' हित जग लाज टली, निज भवन सधावो रे....आवो...." ह.लि.स्त-१४

यहाँ भगवान श्रीनेमिनाथजीकी लग्न-मंडपसे वापस जानेकी बात सुनकर विरहिणी 'राजुल'की हृदयद्रावक विनतीका वर्णन स्वाभाविक ढंगसे फिर भी मार्मिक रूपमें किया गया है।

अलंकार सृष्टिका पर्यालोचन करते हुए हम देख सकते है कि कविराज श्री आत्मानंदजी म.ने काव्योद्यानमें प्रायः सर्व प्रकारके पुष्पालंकारोंकी परिमल प्रसारित की है। फिर भी, प्रमुख रूपसे अनुप्रास,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, दृष्टान्त, आदिकी नैसर्गिक-प्रभूत परिमाणमें सजावट आह्लाददायी बन पड़ी है। अन्त्यानुप्रासका शृंगार तो प्रत्येक रचनाको सजाता रहा है। परंपरित उपमेयोपमानोंको भी नव्य साज-सिंगारका ओप मिला है। यही कारण है कि अलंकारोंकी प्रचुरता होने पर भी वे काव्यको बोझिल बनानेके प्रत्युत उसे लचीला बनानेमें कामयाब हुए हैं।

अतः प्रत्यवेक्षाके निष्कर्ष रूपमें हम कह सकते हैं कि जन्मजात कवित्वशक्ति प्राप्त कवि सम्राट श्री आत्मानंदजी महाराजजीके काव्योमें कदम कदम पर अनायास ही एक सिद्ध कवि सदृश अलंकारोंके सफल प्रयोग झलकते हैं। प्रायः सभी रचनाओमें हमें केवल चमत्कृति ही नहीं, अपितु अर्थ गांभीर्य, आत्मानुभूतिकी सरस एवं सहज-प्रवाहितताके साथ प्रौढ़ भावाभिव्यक्ति, काव्य सौंदर्यकी परिमार्जित सुष्ठु सज्जादिका परिचय प्राप्त होता है।

अब हम इनके प्रतीक विधानसे व्युत्पन्न सौंदर्यका अवगाहन करेंगे।

प्रतीक विधानः— भगवद्भक्तिमें लयलीन भाविक भक्तके अंतरमें व्युत्पन्न अनेकानेक विशिष्ट भावात्मक रहस्योंको, अत्यल्प शब्दोमें अभिव्यक्त करनेवाले प्रतीक, अलंकारोंके समान ही काव्योत्कर्ष और सौंदर्य प्रदाता होते हैं, जो बाह्याभ्यंतर मनके सुषुप्त एवं अवरुद्ध भाव या भावनाओंको जाग्रत करते हैं और उलझनमय, गूढ, दुर्बोध रहस्योंका सुलझे हुए सरल एवं स्पष्ट अभिभावन कराते हैं। इन भक्त कवियोंकी आध्यात्मिक चिंतन-मनन-निदिध्यासनकी पार्श्वभूमिको संवेदनात्मक एवं प्रतीतिगम्य बनानेके लिए जिन आलंबनोंका सहयोग प्राप्त होता है उनकी पहचान प्रतीकाभिधानसे करायी जाती हैं। अर्थात् पदार्थ या प्राणीके रूप-गुण या व्यापार, भाव और भावनादिके सादृश्य या प्रत्यक्षीकरणके लिए जिन-जिन पदार्थ-क्रिया-नैसर्गिक भावना या सांस्कृतिक गुण-व्यापारोंका व्यवहार उनके प्रतिनिधि रूपमें किया जाता हैं- वे ही प्रतीक कहलाते हैं। "सादृश्यके अभेदत्वका घनीभूत रूप प्रतीक है। अतः रूपकका अत्यधिक रूढ़–सर्व सामान्य स्वरूप जिसमें अप्रस्तुतसे ही काम चलता है–प्रतीकके रूपमें हमारे सामने आता है?"[९६]

ये प्रतीक, विवक्षित या चिंतित विषयानुरूप एवं भाव आंदोलनोंसे आविर्भूत अनेक रूपोमें प्राप्त होते हैं-यथा- लौकिक-लोकोत्तर-जैविक-प्राकृतिक, शाब्दिक-ध्वन्यात्मक, करुणामय- आनंदोर्मिमय आदि-जिनके सहारे साधारण-सी दिखनेवाली उक्ति विशिष्ट वैचित्र्ययुक्त, मार्मिक या चमत्कृत बन जाती हैं। अनुभूतिकी सूक्ष्म गहराई जिसके अंतरको आंदोलित कर चूकी है, वे सफलतासे प्रभावक प्रतीकोंकी संयोजनासे अपनी रसीली रचनाको सहज ही में सजा देते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्रमें इन प्रतीकोंका सहयोग दो प्रकारकी भावाभिव्यक्तिके लिए विशेषतः किया जाता है। प्रथम–परमात्माका स्वरूप-परमात्मासे आत्माकी भेदाभेद अवस्थाके स्पंदन, परमात्मासे विरहावस्थाकी करुण--असह्य वेदनाभिव्यक्ति, परमात्मासे मिलनकी उत्कट उत्कंठा और उसके लिए सत्प्रयत्न, परमात्म स्वरूप प्राप्तिकी परम-उल्लासमय-परिपूर्ण-"सत् चित् आनंदकी अनुभूति" आदिकी अभिव्यक्ति; और द्वितीय-तात्त्विक अथवा दार्शनिक-जिसके अंतर्गत (तत्त्वत्रय) देव-गुरु-धर्मका स्वरूप, कर्मस्वरूप भवभ्रमण स्वरूप, लोकस्वरूप, संसारस्वरूप, मुक्तिस्वरूप, मुक्ति प्राप्तिके मार्ग आदिकी भावाभिव्यक्तियोंका सन्निवेश किया जाता है।

इनके अतिरिक्त लौकिक या सामाजिक जीवन व्यवहारके विभिन्न भावव्यापारोंको प्रभावित करनेवाले एवं सात्त्विक-असात्त्विक वृत्तियोंको भी विशेष चारुत्वके साथ व्यवहृत करनेमें सहयोगी क्रिया–कलापोंकी श्रेणिको स्पर्शनेवाले प्रतीकोंका भी काव्यमें समाहार किया जाता है जो साहित्य सृष्टिकी प्रारम्भिक अवस्थासे अद्यावधि विभिन्न स्वरूपोंमें अक्षुण्ण रूपसे प्रयुक्त होते आ रहें हैं।

लेकिन साम्प्रत साहित्य सृजनमें जो प्रतीकवादी काव्यधाराकी संज्ञा प्राप्त काव्योंका आविष्कार हुआ–वे यथार्थवादी प्रवृत्तियोंकी आदर्शवादी प्रतिक्रियाके रूपमें ही आविर्भूत हुए, जिससे जीव और जीवनकी यथातथ्य प्ररूपणाके प्रत्युत प्रतीकात्मक संदर्भ या अलंकारोंके माध्यमसे स्वप्निल आदर्शोंका प्रकटीकरण होने लगा। इनके अनुसार कोई भी रचना भावात्मक, विषयपरक, प्रतीकात्मक, संश्लिष्ट,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलंकारिक होनी चाहिए। अतः प्रतीकवाद अंतर्गत स्थूल भाव चित्रणोंका झुकाव गूढ रहस्यमय सूक्ष्मताकी ओर ढलकर अस्पष्टवादिताके स्वरूपमें विकसित हुआ। यही कारण है कि पाश्चात्य-नव्य प्रतीकवादी काव्यमें रहस्यमयी प्रवृत्तिके कारण अस्पष्टता, अनिश्चितता, सादृश्यताको लेकर गुणादिका केवल बौद्धिक संकेत पर आधारित संक्षिप्त सांकेतिकता, प्रभाव क्षमताकी शिथिलता आदिके दर्शन होते हैं। "इसमें संदेह नहीं कि इसका उपयोग अधिक व्यापक भूमि पर नहीं हो सकता।" [१७] फिर भी यथाशक्य 'विस्तृत एवं स्वस्थ प्रयोगों'के आधार पर इन प्रतीकवादी रचनाओंमें प्रयुक्त पौराणिक, शास्त्रीय, दार्शनिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक, वैयक्तिक (मानवीय), सामाजिक, राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, संख्यापरक जीवन व्यवहार एवं व्यापारादिको स्पर्शित प्रतीक संवेदनाकी गहराई और तीव्रताको संक्षेपमें प्रस्तुत कर सकते हैं।

अब,श्रीआत्मानंदजी महाराजजीके 'काव्य'नभांचलमें'प्रतीक'सितारोंकी चमककी चारुताका आह्लाद प्राप्त करेंगें, जिन्होंने प्रायः सभी प्रकारके प्रतीकोंका सफल प्रयोग किया है।

शास्त्रीय-(आगमिक)-जैनागमों एवं पूर्वाचार्यों विरचित जैनशास्त्रोंमें अध्यात्म विषयक विस्तृत निरूपण अंतर्गत परमात्माका स्वरूप, आत्माका बाह्याभ्यन्तर स्वरूप, आराधनाकी भिन्न भिन्न प्रणालियाँ व शैलियाँ, देवगुरु एवं धर्म-कर्मादिका विवरण तो प्राप्त होता ही है, साथ ही साथ आत्मासे संलग्न चिंतन-मनन-निदिध्यासन; ध्यान एवं योगादिमें सहयोगी आलम्बन या निमित्तरूप षट्द्रव्य, चौदह राजलोक एवं तत्र स्थित जीवोंके कार्य-कलाप, कला-व्यापार, क्रिया-विधान और प्राप्तव्य लक्ष्यकेन्द्र-मोक्ष आदिका भी विशद विवेचन मिलता है; जिन्हें कविवरश्रीने प्रतीक विधानके रूपमें अपनी रचनामें भावोंको सबल बनानेके लिए उपयोगमें लिए हैं।

'बारह भावना स्वरूप'में कविश्रीने जैन-भूगोल अर्थात् चौदह राजलोकके स्वरूप (संस्थान) का वर्णन किया है- **"जामाधार नराकार भामरी करत यार लोकाकार रूप धार कह्या करतार रे....**

"आदि अंत नही संत स्वयं सिद्धरूप ए तो षट् द्रव्य वास एही आपत उचारने।"

नवतत्त्व संग्रह-बारह भावना स्वरूप पृ.१६३

परमात्माकी प्रतिमा पूजनीय होनेके आगमिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

"उववाइ, राइपसेणीकार, जिवाभिगम पन्नति धार, जिन प्रतिमाका कथनसार, मुक्ति फल पावे रे...." ह.लि.स्त-२४

मूल, निर्युक्ति, वृत्ति चूर्णी, भाष्य,-टीका-यह पूर्वाचार्य विरचित जैन शास्त्रोंकी पंचांगी कही जाती है। यह जैन दर्शनका निधि है, जिसके आधार बल पर अंग-उपांग रूप मूलागमोंमें निरूपित कथन स्पष्टतया प्रस्तुत किया जाता है।-

"पंच अंग ताली सद्गुरुकी, प्रवचन संघ निधान रे।"

"आतम अनुभव रतन सुहंकर, अचर अनघ पद खान रे।".... बीस स्था. पू.-३

परमात्माकी काउसग्ग मुद्रा स्वरूपके लिए-

"काउसग मुद्रा धीर ध्यानमें, आसन सहज सुथिर रे

तप तेजे दीपे दया दरियो, त्रिभुवन बंधु सुगिर रे...." श्री.न.पू.-५.

कविकी अंतरंग अनुभूतियाँ ऐसे उपमा या रूपकात्मक प्रतीक माध्यमों द्वारा अभिव्यक्ति पाती है कि जो- सामान्यतया विपर्यय संकेतोमें प्रस्तुत होनेके कारण तार्किक दृष्टि-बिंदुसे न युक्तियुक्त लगती है न बुद्धिग्राह्य हो सकती है; साधारण जन-समाजको जो कल्पनाकी तरंगें भासित होती हैं या लोक व्यवहारमें जिसे कुछ उटपटांग मनोसाम्राज्यकी उद्भावनायें मानी जाती हैं-उन रचनाओंका 'उलटवाँसी' नामाभिधान किया जाता है। भारतीय भक्ति-परक काव्योमें इन विपर्याय या विपरीतार्थ प्रतीकोंके आधिकारिक-प्रयोग कबीरकी साखियों या पदोंमें-मिलते हैं। जिनसे उन्होंने गंभीर एवं रहस्यमयी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोद्भावनाओंको अप्रत्याशित रूपमें अभिव्यंजित किया है। इस काव्य प्रकार-'उलटवाँसी'-का उपयुक्त एवं स्वस्थतापूर्वक उपयोग करके आचार्यश्रीने अंतरके भाव संकेतोंकी सफल अभिव्यक्ति की है-यथा-

"दुषम कालमें कुमति अंधेरो, प्रगट करे सब चोरी।
श्री चिदानंद विडारोने, कुमति जो मेरी।"....बीस स्था. पूजा-१९

तथा-"भावरोगकी औषधि,अमृत सिंचनहार;भवभय ताप निवारणी,अरिहंत पद फलकार।"..बीस स्था.पूजा-३.
एवं-**"मुक्तिवधुकी पत्रिका, वरणी श्रीजिनदेव; सुधी तत्त्व समजे सही, मूढ़ न जाने भेव"। स.भे.पू.-७.**
जगत स्वरूपको स्पष्ट करते हुए 'बारह भावना सज्झाय' में गाते हैं-

"रचना इसकी किन ही न कीनी, नहीं धार्यो किन कर रे;
स्वयं सिद्ध निराधार लोक ये, गगन रहयो ही अचर रे....भवि लोकस्वरूप समर रे सम." सज्झाय-१०

जैन दर्शनके गूढ रहस्यमयी सिद्धान्तोंको व्यक्त करते हुए श्री महावीर स्वामीके स्तवनमें गाते हैं'

'कुमति कुटल अनादिकी वैरन, देखत तुरत डरी; चारों ही दासी पूत भयंकर, हुए भसम जरी।।
बावीस कुमति पूत हठिले, नाठे मदसें गरी; दोउ सुभट जर मूरसें नासे, छूट्यो मदन मरी।।
शिववधू वशीकरणको नीकी,तीनों रत्न धरी;आतम आनंदरसकी दाता,वीरप्रभु दान करी।।".आ.वि.स्त.पृ-६९

पौराणिक प्रतीक-पौराणिक पात्रोंके चित्रण-माध्यमसे आत्माको सीख देते हुए जो प्रयोग हुए हैं-

"द्वारामती नाथ निके, सकल जगत टीके, हलधर भ्रात जीके, सेवे बहुरान है।
हाटक प्राकार करी रतनको शीश जरी, शोभत अमरपुरी, सा जन महान रे।
पुन बीते हाथ रीते, संपत विपत लीते, हाय साद रोत कीते जर्यो निज थान रे।
सोग भरे छोर चरे, वनमें विलाप करे, आतम सीयानो, काको करता गुमान रे।" (उ.बा.४६.)

सांस्कृतिक- **"राय बेल नव मालिका कुंद मोगर तिलक जाति मचकुंद**
केतकी दमनक सरस रंग, चंपक रसभीनो रे....
इत्यादिक शुभ फूल रसाल, घर विरचे मनरंजन लाल
जाली झरोखा चितरी शाल, सुर मंड़प कीनो रे....
गुच्छ झूमखां लम्बा सार, चंदुआ तोरण मनोहार, इंद्रभुवनको रंगधार....स.भे.पू.११

यहाँ परमात्माको बिराजित करनेके लिए जो गृह सजाते हैं, इसका वर्णन किया गया है। भारतीय संस्कृतिका प्रमुख त्यौहार 'होली',रंग डालने और फाग खेलनेका-मनभावन त्यौहार । इसके आलंबनसे सुरीश्वरजी मोह-सुभटसे लड़कर श्रुतज्ञानको हृदयस्थ करनेके अरमान अभिव्यक्त करते हैं-

"अपने रंगमें रंग दे हेरी, हेरी लाला, अपने रंगमें रंग दे....
सात हि विकथा दूर निवारी, मोह सुभट संग जंग दे।
श्रुतके सातों अंग रंगीले, मुझ हृदयमें टंग दे....हेरी...." बीस स्था. पूजा ४.

"सील सज तनु केसरी, पिचकारीयाँ शुभ भावना ज्ञान मादल ताल सम रस, राग सुध गुण गावना;
धूर झड़ी करमकी, सब सांग सगरें त्यागीया, नेम आतमरामका, धरिध्यान शिवमग लागीया"[२२]

प्राकृतिक- **"चंद बदन भवि जन मन मोहे, तूं त्रिभूवन शिरताजजी" ह.लि.स्त-४७**
"जूं पारस लोहता खंडे,कनक सुध रूपकुं मंडे ऐसो जिनराज तुं दाता,हीवे क्यूं ढील है त्राता।".ह.लि.स्त-९
'एह संसार पलाल पूंजको,दूर कर्णको अग्नि झारो, यह संसार विकट अटवीमें,काम-क्रोध-दुःख देतहै भारो"..ह.लि.स्त.२८

"यह दुनिया है धुंध पसारो, आपने स्वरूप फलूंगी"....ह.लि.स्त.४२
"भये जगमें सुरतरु कंदा, के सिमरो धर्मन आनंदा"....ह.लि.स्त-६२
"रंग पतंग जो फीका छिनमें, मूरख क्यों भरमाया"....ह.लि.स्त-६४
"तीन छत्र प्रभुके पर कहकर त्रिभुवन स्वामी जनावे रे चामर कहत है नीचे झुक कर,उर्ध्वगति तुम जावे रे
भामंडल पूंठे प्रभु दर्सण, तम मिथ्यातम नावे रे...." ह.लि.स्त. २९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"रंभा रमण अनंग संग बहु केल कराये संध्या रंग बिरंग देख छिनमें बिरलाये...." चतु. जिन स्त.१३
"दीन हीन अब देख, करो वेग सहाइ, चातक ज्यूं घनघोर,सोर निज आतम लाइ.." चतु. जिन स्त.१३

"तुम गुण कमल भ्रमर मन मेरो, उडत नहीं है उडाइ।
तृषत मनुज अमृतरस चाखी, रुचसे तप्त बुसाई।".... चतु. जिन. स्त.१३

"जिम तरु फूले चैत भृंग, आतम संतोषे अधिक रंग।
बिन पीड़े ले मकरंद चंग, होके आनंद गोचर कर लीना।"....नव. पू.-५

इस पूजा काव्यमें मुनि भगवंतको गौचरी ग्रहण करनेकी विधि-तरुफूल-मकरंद और चैतभृंगके प्रतीकोंसे दर्शायी है;तो साधु कर्मक्षयकी साधनामें कैसा है-इसे योद्धाके प्रतीक द्वारा पेश किया है-

"कषाय टार पण इंद्री रोध, षट्काय पार मुनि शुद्ध बोध;
संजम सतरे मन शुद्ध सोध, मचे रणमें जोध, मनमें नहीं दीना।"....न.पू.५.

"प्रवचन अमृत जलधर बरसे, भविमन अधिक उल्लास रे।
कुमति कुपंथ अंधजन जे ते, सूकत जैसे जवास रे....।" बीसस्था. पूजा-३

अंतर्चक्षुके उद्घाटनसे मनकी स्थिरताके अनुभवको झूलेके प्रतीकसे प्रस्तुत किया है-
"हरि विक्रम नृप सेवना,अंतर दृग खोला; आतम अनुभव रंगमें,मिटे मनका झोला ।"..बीसस्था. पूजा-९
"कुमति धूक सब अंध हुए हैं,भूले जडमति करणीने भवि वंदो अपूर्व ज्ञान तरणिने"...बीसस्था.पूजा-१८

"तपगच्छ गगनमें दिनमणि सरिसे, विजय सिंह विरंगी ।" बीसस्था.पूजा-कलश

आत्म स्वरूपके लिए राकाके पूर्ण चंद्रकी प्रतीक योजना-

"चिदानंद सुखकंद, राकाके पूरण चंद, आत्म सरुप मेरे, तूं ही निज भूप है...." नव.सं.पृ.१६२

वैयक्तिक (मानवीय)--परमात्माके साथ अभेदता या सख्यभावके अथवा पतिरूपके माधुर्य गुण भरपूर भावको मानवीय प्रतीकोंके माध्यमसे प्रस्तुत किया है -

"जो तुम जोगी, हुँ मैं जोगन, चरण सेवुं करी सुध तन मन
नास करुंसब ही भव वनं, मोहि पार उतारोजी....नेम हमको न विसारोजी" । ह.लि.स्त-१९.

कर्म क्षयकी उत्कट तमन्नाने परमात्माको धन्वंतरी वैद्यका रूप दे दिया है -

"तुं मुझ साहिब वैद्य धन्वंतरी रे....."अथवा
"जो रोगी होत है तनमें,तो वैद्यो धारत मनमें,हुं रोगी,वैद्य तुम पूरो,करो रोग सब चकचूरो ।".....ह.लि.स्त.९

परमात्माके प्रति अविहड़ प्रीतको जताते हुए गुनगुनाते हैं -

"जिस पद्मणी मन पिउ वसै, निर्धनीया हो मन धन की प्रीत;
मधूकर केतकी मन बसै, जिम साजन हो विरही जन चित्त ।
अनंत जिणंद सु प्रीतड़ी, नीकी लागी हो, अमृत रस जेम"....चतु.जिन.स्त.-१४

शुद्ध सम्यक्त्वरहित या हीन-क्रिया-धर्म आदि जीवको उपकारी नहीं होते उसका स्वरूप वर्णित है -

"सुंदर सिंगार करे, बार बार मोती भरे, पति बिन फीकी नीकी, निंदा करे लोक रे ।
वदन रदन सित, दृग विन फीके नित, पग रीते रित कित भूषनके थोक रे....
तप जप ज्ञान ध्यान मान सन्मान सब, सम्यक् दरस बिन जाने सब फोक रे"...द्वा.भा.पृ.१६४

"महागोपण सत्थ निर्यामक वलि महा माहना रे"..... नवपदपूजा - प्रथम पूजा

जीवन व्यवहार एवं व्यापाराधारित प्रतीक--

"याम सुमति तप कुठारे,करम छिल्लक छेलीया जारके सब मदन वन घन,मोखमारग फैलीया ।"...चतु... जिन.स्त.२२

"तेल तिल संग जैसे अगनि वसत संग रंग है पतंग अंग एक नाही किञ्च हैं,....
दधि नेह, अभ्र मेह, फूलमें सुगंध जेह, देह गेह चित एह एक नही भिन्न है,
आतम सरूप धाया, पुग्गलकी छोर माया, आपने सदन आया, पाया सब धिन्न है ।" बा.भा.१६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जैसे हटवाले मीले, मीलके बीछर जात, तैसे जग आतम संजोगमान दिलना
कौन वीर मीत तेरो, जाको तू करत हेरो, रयेन बसेरो तेरो, फेर नहीं मिलना"....उ.बा.-३९.
"ढोरवत रीत धरी, खान पान तान करी, पूरन उदर भरी, भार नित वह्यो है,
पीत अनगल नीर, करत न पर पीर, रहत अधीर कहा शोध नही लह्यो है ।
वाल विन पल तोल, भक्षाभक्ष खात घोल, हरत करत होल पाप राच रह्यो है ।
शींग पूंछ दाढी मूंछ, बात न विशेष कुछ, आतम निहार उछ, मोटारूप कह्यो है ।"...उ.बा.३७

विवेकहीन मनुष्यके व्यवहारको किस कदर जानवरकी श्रेणिमें पहुँचाया है ! और अब, मनुष्य जीवनमें ब्रह्मचर्यका स्वरूप वर्णित किया है, उसे देखें,

"नव वाडें शुद्ध ब्रह्म आराधे, अजर अमर तुं अलख री ।
औदारिक सुर कामजालसे, अपने आपको रख री ।
सिंहादिक पशु भय सब नासे, ब्रह्मचर्य रस चख री ।" ....बीस स्था. पूजा-१२

जीवके भवभ्रमणको नाट्यगृह एवं नाटकके प्रतीकात्मक ढंगमें पेश किया है -

"गति चारु ए नाटक थानक,विषम कर्म गति भूप,लाख चौरासी सांग धारावी,निरखे नव नव रूप..." ह.लि.स्त.२०

साधनाके क्षेत्रमें 'योग'का अद्‌भूत महत्व गाया है । अपने 'योग-शास्त्र'में श्री हेमचंद्राचार्यजी म.ने अष्टांग योगका अद्‌भूत निरूपण किया है, जिसे गुरुदेवने इस प्रकार अपने काव्यमें गूंथा है -

"अंग अष्ट चित्त जोग समाधि, पाप पंक सब झर रे झर रे...." नवपद पूजा-५
"योग असंख्य ही जिनवर भाषित, नवपद मुख्य करी...." नपपद पूजा-९
"मन वच कायाके व्यापारे, योग यही मुख माना रे..... बारह भावना सज्झाय-आश्रव भावना
"जोग समाधिमें वसे, ध्यान काल है सोय; दिवस घरी के कालको, ताते नियम न कोय ।
सोवत बैठत तिष्ठते, ध्यान सवि विध होय; तीन जोग थिरता करो, आसन नियम न कोय
विषम प्रासाद पर, चरवेको मन कर, रजुकुं पकर नर सुखसे चरतु हैं ।
ऐसो 'धर्मध्यान'सौध चरवेको भयो बोध, वाचनादि 'आलंबन'नाम जुं कहतु है ।" ...ध्या.स्व.१७८

इस प्रकार 'केवलज्ञान' प्राप्तिमें बाधक-'आर्त', 'रौद्र'—और साधक-'धर्म', 'शुकल'—चारों ध्यानके स्वरूपको दिखा कर 'केवलप्राप्ति' एवं शैलेशीकरणसे 'मोक्षप्राप्ति'की प्रक्रियाका सुंदर निरूपण किया है ।

"तीन गुप्ति से योगको जीते, हरे परमाद कुरानी ।
अपरमादे पाप योगकुं, बिरतीसे सुख जानी ।"(बा.भा.स.८)

ऐसे ही संसार स्वरूप और उससे मुक्तिके सफल उपाय—

"जग तरु बीज भूत करमजे; खेरू करे सुख पाये ।
सो निर्जरा दोय भेद सुणीजे सकामाकाम बतावे रे ।"(बा.भा.स.९)

ऐसे ही अनेक स्थानों पर योगपरक प्रतीक अष्टदृष्टियोग, भावनात्रिक, पंचज्ञानयोग आदि पाये जाते हैं।

ऐतिहासिक--जैन इतिहासने चौबीस तीर्थंकरोंके शासनकालमें होनेवाले असंख्य आत्माओंके ऐतिहासिक उल्लेख दिए हैं । इनमें से श्रीआत्मानंदजीम.ने.भी अनेकोंके प्रतीकात्मक उपयोग अपने काव्यमें किए हैं

"राजमति निज वनिता तारी, नव भव प्रीत निभाइ री,
हलधर रथकर मृग तुम नामे, ब्रह्मलोक सरजाइ.....सखी री.....
गजसुकुमाल लाल तुम तार्यो, भववन सगरे जराइ री
ए उपगार गिनू जग केता, करुणासिंधु सहाइ .... सखी री...." ह.लि.स्त. ११
"वीर पिता सिद्धारथ रान, जिन-पूजा कुं लक्षदान....सूयगडांगे आर्द्रकुमार".....ह.लि.स्त.-२४
"अश्वसेन अचिराजीके नंदन,भंजन कर्मकठार हो।गर्भ थकी प्रभु मारी निवारी, ठारी अघ सब भार हो...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तू शांतिके दाता, शांति जिणंद उद्धार हो....” हस्त लिखित-स्त.-३३
“धर्मनाथ जिन धर्मके धोरी, कर्म कलंक मिटानी.....” ह.लि-स्त.-७२
“श्रेणिक नरपति पदकज सेवी, जिनवर पद उपजानी....” हस्त लिखित स्त.-७३
“सनत कुमार तन, नाकनाथ गुण भन, देव आय दरशन, कर मन आसा रे....”(उ.बा.५८)
“नरवर हरिहर चक्रपति हलधर काम हनुमान वर भान तेज लसे है ।
जगत उद्धारकार संघनाथ गणधार फुरन पुमान सार तेउ काल ग्रसे है ।
हरिचंद मुंजराम, पांडु सुत शीतधाम, नल ठाम छर वाम नाना दुःख फसे है ।
देढ़ दिन तेरी बाजी करतो निदान राजी आतम सुधार शिर काल खरो हसे है ।” -उ.बा. ४३

इनके अतिरिक्त विप्रवधू सोमेश्वरी, जयसुर, शुभमति, वणिक पुत्री लीलावती, नृप विनयंधर,जिनमति,धनश्री, हालिजन-राजा आदि अनेक ऐतिहासिक प्रतीकोंका विधान है।'बीस स्थानक पूजा' काव्यकृतिमें तो प्रत्येक पूजामें ऐसे ऐतिहासिक प्रतीकोंका निरूपण दृष्टिगोचर होता है ।

संख्यापरक--प्राचीनकालमें एक समय ऐसा था कि संख्या-अंकोका महत्व सविशेष रूपसे वृद्धिगत बन गया था। नोबत यहाँ तक आयी कि केवल अंकोमें विशिष्टग्रन्थ रचनायें होने लगीं । अंकपरक इन रचनाओंमें संक्षिप्तता- सूत्रात्मकता, गूढ़ता-गुप्तता, बौद्धिकता-रहस्यमयता आदिका निर्वाह भलीभाँति किया जा सकता है। अर्थात् अंकसे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की जाती है । कविराज श्री आत्मानंदजीम.ने भी कुछ अंकोंको ऐसे ही निबद्ध करके अपनी रचनाओमें कुछ स्थानों पर इस प्रणालिकाको अपनाकर स्वयंको गौरवान्वित किया है-यथा-

“षट् पीर सात डार आठ छार पांच जार चार मार तीन फार लार तेरी फरे है ।
तीन दह तीन गह पाँच कह पाँच लह पाँच गह पाँच बह पाँच दूर करे है ।
नव पार नवधार तेरकुं विड़ार डार, दशकुं निहार, पार आठ, सात लरे हैं ।
'आतम' सुज्ञान जान करतो अमरथान, हरके तिमिर मान ज्ञान भान चरे हैं ।” उ.बा.५५

इन प्रतीकोंके अतिरिक्त और भी प्रतीकोंका आयोजन इनकी रचनाओंमें प्राप्त होता है-यथा- 'सजन सनेहि संग विजके-सा जमको', 'पर्यो हूं काल अनादि भवोदधि कूपमें', 'तरुण अरुण सित नयण', 'मन तरंग वेग मोरी नैया', 'वयण अमृत रस नीके', 'पाप-पुण्य दोऊ तस्कर', 'मोह नदीकी गहरी धारा', धर्म कल्पतरु कंद सींचतां अमृत घन झरता', 'कामभोग जल दूर तजीने, ऊर्ध्वकमल जिम तररे' 'बावनाचंदन, रससम वचने, निज आतम सुख भोगी' 'मोह सुभट संग जंग दे 'पवन झकोरें पत्र गगन ज्यूं उडत फिरे जड़कामी' 'सूत्रानुसारी दिए देशना, भवि चकोर शशि करत आनंद', 'कषाय बडवानल', 'पापपंक', 'पाप कलंक', 'कर्मकलंक पहारा', 'सिरसेहरो', 'हियडेकेहार' 'पापलूंहण अंगलूंहणा', 'आतम अनुभव मेघ वरसीया', 'भवोदधि तारण पोत मिला तूं,' 'भवनाटक', 'जयो जिनवचन सूर तमनाशक, भासक अमल निधान रे' 'पाप तापके हरणको चंदन सम श्रुतज्ञान', 'मगर', 'भुजंग', 'जडीबुट्टी', 'ऊखर में मेह तैसो सजन सनेह जेह', 'चातकघन जिम दर्शन चाऊँ मन भावन अभंग' आदि अनेकानेक प्रतीकोके प्रबंधमें कविराज संपूर्ण सफल रहे हैं ।

इस प्रकार हमें प्रतीत होता है कि इन पद्योमें रूढ़ प्रतीकोंका तो सफल प्रयोग हुआ ही है, साथहीसाथ कुछ नूतन प्रतीकोंके आस्वाद भी हमें प्राप्त होते हैं। चंद रचनाओंके इस अल्प पद्य साहित्यमें ऐसे विशद प्रतीक विधानकी देन, वाकइ कवीश्वर श्रीआत्मानंदजी म.की तीव्र मेधा शक्ति एवं रसिक-सहृदयी कवि प्रतिभाकी परिचायक मानी जायेगी ।

बिम्ब विधानः--- काव्यके तात्त्विक तात्पर्य और प्रतिपाद्य अनुभूतियों एवं मानसिक क्रिया-कलापोंको अभिभावकके लिए ग्राह्य करवानेवाले माध्यमको 'बिम्ब विधान' कह सकते हैं । पाश्चात्य साहित्यिकोंने बिम्ब रचनाको काव्यका मुख्य व्यापार माना है, जिससे कवि अपनी मानसकि या काल्पनिक सृष्टिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुचित उपयोग करते हुए पदार्थके रूप-गुण, घटनायें, भाव या विचारोंकी प्रक्रियायें आदिको प्रत्यक्ष रूपमें इन्द्रिय ग्राह्य एवं विशेष संवेद्यतासे हृदयंगम बनानेका प्रयास करता है। कवि जिस वर्ण्य विषयको प्रस्तुत करनेके लिए जिस चित्रालेखन सदृश बिम्ब विधानका उपक्रम करके उसके मनोवैज्ञानिक पक्षको उद्‌घाटित करता है, वह काव्य-प्रतिभाकी सहज प्रक्रिया है। "अलंकार और बिम्ब-दोनों अप्रस्तुत योजनाको लेकर चलते हैं, लेकिन अलंकार उससे कलात्मक चमत्कार निष्पन्न करता है; जबकि बिम्ब उससे काव्यमें संप्रेषित प्रभाववृद्धि करता है ।"[९८]

इस काव्य प्रवृत्तिका केवल 'बिम्बवाद' नामाभिधान पाश्चात्य साहित्यविदोंकी बक्षिस मानी जा सकती है। लेकिन इनसे पूर्व भी पौर्वात्य काव्य कृतियोंमें इनका प्रबन्ध प्राप्त होता है। संस्कृत-प्राकृत या हिन्दी आदि किसी भी भाषाके किसी भी समयके उद्‌भावित सृजनमें हमें इस बिम्ब-विधान प्रवृत्तिका आस्वाद प्राप्त हो सकता है। प्रतीकों और बिम्बोंका निरूपण जितने जीवनके अंतरंग भावोंको लेकर हुआ है उतना वस्तुवादी रूपमें नहीं हुआ । फिर भी उन रचनाओमें उनका पर्याप्त एवं स्पष्ट चित्रण मिलता है । प्रतीक विधानमें अस्पष्टता-रहस्यमयता-संक्षिप्तता और प्रभावकी शिथिलता होती है, जबकि बिम्ब विधानमें वर्ण्य विषयका निश्चयात्मक-ठोस-स्पष्ट स्वरूप प्रकट होता है । साथ ही साथ चित्रात्मकताके कारण सहज संवेद्यता, प्रत्यक्षीकरणका अत्यन्त विवरित रूप, प्रभाव गांभीर्यसे भावोंको हृदयंगम करानेकी क्षमता होती है । अर्थात् "बिम्ब योजनाके प्रभावसे काव्यार्थका स्पष्टीकरण, वस्तु या घटनाका प्रत्यक्षीकरण भावोंका संप्रेषण या उत्तेजन और रूप या गुणोंका हृदयंगम कराना कविका लक्ष्य रहता है ।"[९९]

यहाँ सूक्ष्म अनुभूतियाँ अथवा गूढ या दुर्बोध-वैचारिक-कल्पनामय तथ्यों या भावोंको अप्रस्तुतों द्वारा रूपायित करके प्रभावशाली रूपमें स्पष्ट करना; वर्ण्य विषयको उसके मूलरूप एवं सहज स्वरूपमें-जैसे कविने अनुभूत किया है वैसे ही-हमारे सामने प्रत्यक्ष करना; भावों और अर्थोंकी जिस प्रमाणसे तीव्रानुभूति कविने की, वैसी ही तीव्रानुभूति सहृदयोंको करवाने हेतु भावोंकी संप्रेषणीयता या उत्तेजनाको उभारना; वर्ण्य विषयके प्रभाविक रूप-सौंदर्य और गुण चित्रणको ताजगीपूर्ण नव्यता प्रदान करना आदि हेतुओंको लेकर बिम्ब विधान करनेका कविका लक्ष्य माना गया है ।

'बिम्ब विधान'के इस संक्षिप्त विवरणसे यह स्पष्ट होता है कि हमारे जीवनयापन या व्यापारके विभिन्न क्षेत्रोंसे बिम्बोंका चयन संभाव्य है, जिसे प्रायः इस प्रकार विश्लेषित कर सकते हैं-ऐन्द्रिय बिम्ब और मानस बिम्ब । ऐन्द्रिय बिम्ब पाँच इन्द्रियसे सम्बन्धित हो सकते हैं जबकि मानस बिम्ब मानसिक भाव और विचारोंसे आधारित रहते हैं। इनके अतिरिक्त व्यावहारिक, अनुभूतियों और घटना तथ्योंसे भी बिम्ब-चयन होते रहते हैं; जिसके अंतर्गत व्यापारिक सांस्कृतिक, जीवन व्यवहाराधारित, जीवन आवश्यकताधारित, शृंगारिक, यांत्रिक या कृषिक आदि विभिन्न आधारों पर आधारित बिम्ब निर्वाचित हो सकते हैं।

इस 'बिम्ब विधान'की साज-सज्जा हमें श्री आत्मानंदजी म.की काव्य कृतियोंमें यथेष्ट रूपमें प्राप्त होती हैं-यथा-(१) चउगति-भ्रमण रूप घटना-तथ्याधारित बिम्ब–इस विश्वके चौदह राजलोकके चार गति रूप संसारमें आत्माका निरंतर परिभ्रमण अनादिकालसे चालू है–इस घटना तथ्यको कविराजश्रीने श्रीपार्श्वनाथजीके स्तवनमें इस तरह प्रतिबिम्बित करनेका प्रयत्न किया है-

"शिवरमणी जादू डारा, जब पास जिणंद जुहारा.....

तिर्यग् अमर नर नारक रूपमें सांग धरे अति भारा,मोहकी दोर बंधी गल तेरी,घटमें घोर अंधारा... शिव... कुमता रमण भर्म रस राच्यो, नाच्यो अनादि अपारा, माता उदरकूप रसकसमल, मनुष्य जन्ममें धारा...शिव.. किहां हसे ते नाथ निरंजन, हम ढूंढत जग सारा, धोधा मंडण सब दुःखखंडण, मिलियो प्रेम प्यारा.... शिव..."

ह.लि.स्त.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांस्कृतिक बिम्बः— भक्त कविवरके दिलमें परमात्माके जन्म कल्याणककी यादसे अत्यन्त प्रमोद और आह्लादके भाव उमड़ते हैं, और कवि मेरु पर्वत पर होनेवाले अरिहंत देवके स्नात्र महोत्सवमें शरीक होनेके लिए हम सबको साथमें ले चलते हैं - जहाँ इन्द्र महाराजा कलश भर भर कर भगवंतको अभिषेक करवाते हैं - करते हैं और इंद्र-इंद्राणि आदि सकल सुर परिवार नाच-गानकी तानमें मस्त होकर जन्म सफल कर रहे हैं -

"कलश इंद्र भर ढारे, जिणंद पर, कलश इंद्र भर ढारे...
हाथो हाथ हि सुर वर लावत, खीर विमल जलधारे.....
गंधर्व किन्नर गण सब करते, गीत नृत्य स्वर तारे..... जिणंद"....स्ना.पू.ढाल-५
तथा **"नाचत शक्र शक्री, हेरी माई, नाचत शक्र शक्री**
छं छं छं छं छननननन, नाचत शक्रशक्री..... हेरी भाई.....
इंद्र इंद्राणी करे नाटक संगीत धुनी, जय जय जिन जग तिमिर भानु तूं.....
घौं घौं धप मप मादल करत धुनी, सुंदर रंगीली गोरी गावत जिणंद गुनी,
धन्य कृत पुण्य हम जन्म सफल आज, मेटे भव दुःख तुम वरनननननन....." - ढाल-६

ऐन्द्रिय बिम्ब- आत्मा चउगति परिभ्रमण करते करते अनंत पुण्यराशी प्राप्त्यानन्तर मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। लेकिन आराधना-साधनादिसे इसे सफल बनानेको भूलकर कैसे कैसे कृत्य करता है और आयुष्यांते उसके क्या हालात होते हैं, उसका तादृश चित्र चित्रित कियाहै -

"आलम अजान मान, जान सुख, दुःख खान, खान सुलतान रान अंतकाल रोये है ।
रतन जरत ठान, राजत दमक भान, करत अधिक मान अंत खाख होये है ।
केसुकी कली-सी देह, छीनक भंगुर जेह, तीनहिको नेह एह, दुःख बीज बोये है ।
रंभा धन धान जोर, अमित अहित भोर, करम कठन जोर, छारनमें सोये है ...." उ.बा. १०

व्यावसायिक बिम्ब—जीवन व्यवहारको कृषि व्यवसायोपयोगी साधन एवं कृषकके जीवन चित्रणके माध्यमसे आत्माके भ्रमको दूर करनेके लिए प्रेरित करते हैं ।

"खेती करे चिदानंद, अघ बीज बोत वृंद, रसहे शींगार आद लाठी रूप लइ है ।
राग द्वेष तुव घोर, कसाय बलद जोर, शिरथी मिथ्यात भोर गर्दभी लगई है ।
तो होय प्रमाद आयु चक्रकार घटी लायु शिर प्रति प्रष्ट हारा कार कर खइ है
नाना अवतार लार, चिदानंद वार धार, इत उत प्रेरकार, आतमकुं दइ है ।" ....उ.बा.-२६

व्यावहारिक - यह संसार एक युद्धभूमि है, जहाँ जीव मोहनीयादि कर्मोंसे जंग खेलता है, और अंततः 'जिनचंद'के कृपादानसे विजयी बनता है ।

कुमतानो जादू जारा, जब ऋषभ जिणंद जुहारा....
मोह सुभट जग जेर करीने, करत कलोल अपारा, वपु नगरके वारणे बैठो, साथे सहु परिवारा....
कर्मरायने विवर दियो है, चेतन होय हुश्यारा, सात सुभटका नास करे जो, तो तुम जीत नगारा....
निंद छोड़ जब चेतन जाग्यो, सात सुभट तीन मारा, मोहराय बलहीन भयो है, अजयणा छोड़त लारा...
जयो जिनचंद आनंदके दाता,सघरे काज सुधारा, आतमचंद आनंद भयो है,भवोदधि पार उतारा.....ह.लि.स्त.७

मनोभावाधारित--अतः कविश्री हमें यह प्रेरणा देते हैं कि, इस संसार समुद्रमें जीव अशरण- दीन और अनाथ-बनकर भटक रहा है, जिसका एक अरिहंत परमात्माके बिना कोई त्राता नहीं ।

"साजन सुहाये लाख, प्रेमके सदन बीच हसे मोह फसे कसे नीके रंग लसे है ।
माननीके प्रेम लसे फसे धसे कीच बीच मीचके हिंढोले हीच मूढ रंगरसे है ।
चपला सी झमक अनित बाजी जगतकी रुंधनमे वास रात पंखी चह चसे है ।
मोहकी मरोर भोर ठानत अधिक ओर छोर सब जोर सिर काल बली हसे हैं ।" नव.सं.१६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह परम भक्त कविवर श्री परमात्माको इस भवोदधिसे तिरानेके लिए विनित प्रार्थना करते हुए उस भवोदधिका स्वरूप आलेखन भी करते हैं-जिससे वे ड़र गये हैं, थक गये हैं और हार गए हैं -

"तम सुणियो जी, अजित जिनेश भवोदधि पार कीजोजी ।

जनम मरण जल फिरत अपारा, आदि अंत नहीं घोर अंधारा, हुं अनाथ उरझ्यो मझधारा, दुक मुझ पीर कीजोजी....तुम... कर्म पहार कठन दुःखदायी, नाव फसी अब कौन सहाई, पूर्ण दया सिंधु जगस्वामी, झटती उधार कीजोजी.....तुम.... करण पांच अति तस्कर भारे, धरम जहाज प्रीति कर फारे, राग फांस डारे गर मोरे, अब प्रभु झिरक दीजोजी.....तुम... तृष्णा तरंग चरी अति भारी, बहे जात सब जन तन धारी, मान फेन अति उमंग चढयो है, अब प्रभु शांत कीजोजी....तुम... लाख चउरासी भमर अति भारी,मांहि फस्यो हुं सुध बुध हारी काल अनंत अंत नहिं आयो,अब प्रभु काढ लीजोजी. तुम."चतु.जिन.स्त.२.

अतः निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि, प्रतीक विधानमें जैसी सफलता कवीश्वर श्री आत्मानंदजी म.सा.ने पायी है वैसे ही वे बिम्बविधानको भी संप्रेषणीय एवं भावोत्तेजक रूपमें नियोजित करनेमें सिद्धहस्त कामयाबी हासिल कर सके हैं।

ध्वन्यात्मकताः--- 'ध्वनि'से प्रतिफलित भाव है ध्वन्यात्मकता । 'ध्वनि'शब्द हमें दो दृष्टिबिंदुओंका भासन कराता है-प्रथम-सामान्यार्थ, जो नाद-निनाद, ताल-लय-स्वरादि संगीतात्मकताको फलित करनेवाला; और द्वितीय-विशिष्ट्यार्थ, जो गूढ या व्यंजक व्यंजनाको अभिव्यक्त कर्ता एवं जो साहित्यान्तर्गत व्याकरण, रस, रीति अलंकारादिका पोषक या सहयोगीके रूपमें सूचितार्थ प्रदर्शित करनेवाला होता है ।

'ध्वनि' विशिष्ट्यार्थ साहित्यसे अनुबद्ध होनेके कारण हम प्रथम उसे लक्ष्य करके कुछ विचार विमर्श करेंगें। अभिधा और लक्षणाके अतिरिक्त विशिष्ट व्यंग्य द्वारा जो चमत्कार व्युत्पन्न होता है, वही शब्द-अर्थ रूपको 'ध्वनि' कहते हैं। इस 'ध्वनि'को आचार्य श्री आनंदवर्धनने अनुरणन रूपमें प्ररूपित की है, जो घंटनाद-सदृश प्रथम तो टकराहटसे टंकार,पश्चात् शनैःशनैः, सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होते होते मधुर-मधुरतर झंकारको ध्वनित करती जाती है।-यथा- **"एवं घंटनादस्थानीयः अनुरणनान्त्योपलक्षितः व्यंग्योऽप्यर्थः ध्वनिरिति व्यवहृतः ।"**[१००] अतः पूर्वाचार्य निर्धारित यह ध्वनि सिद्धान्त व्यंजना प्रधान होनेसे काव्यके तीन प्रकार बन जाते हैं - ध्वनिकाव्य, गुणीभूत व्यंग्यकाव्य, और अवर काव्य ।

काव्यमें व्यंग्यार्थकी निष्पत्ति भी वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ आश्रित रहती है अतः व्यंग्यार्थकी प्रमुखता प्रधान ध्वनिकाव्यके मुख्य दो भेद होते है - (१) लक्षणामूला-ध्वनि और (२) अभिधामूला-ध्वनि । इन दोनोंके दो उपभेद किये जाते हैं (१) A. अर्थांतर संक्रमित और B. अत्यन्त तिरस्कृत; एवं (२) A. संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि और B. असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि । साहित्यमें ध्वनिकाव्यकी अतीव विशालताको लक्ष्यमें रखते हुए उपरोक्त भेदोपभेदोंके अनेक प्रभेदोपभेद होते हैं। वाच्यार्थकी तुलनामें गौण या अप्रधान व्यंग्यवाले काव्य-गुणीभूत व्यंग्य काव्यके आठ भेद माने जाते हैं-अगूढ, अपरांग, वाच्य सिद्ध्यंग, अस्फूट, संदिग्ध प्राधान्य, असुंदर, तुल्य प्राधान्य एवं काक्वाक्षिप्त व्यंग्य। और जहाँ व्यंग्यार्थ होता ही नहीं, केवल शब्द-वैचित्र्यसे काव्यमें सौंदर्यानंद निहित रहता है वह अवरकाव्य या चित्रकाव्य कहा जाता है। अतः संक्षेपमें हम यह कह सकते हैं कि - **"ध्वनि सिद्धान्तकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसने अपने अंतर्गत रस, अलंकार, व्रकोक्ति, रीति आदि समस्त काव्य सिद्धान्तोंके मूल तत्त्वोंका समावेश कर लिया है। ऐसा व्यापक काव्य सिद्धान्त विश्वके साहित्यमें नहीं मिलता। यह काव्यकी व्यापकसे व्यापक और सूक्ष्मसे सूक्ष्म विशेषताओंको अपने भीतर समेट लेता है ।"**[१०१]

अद्यावधि विवक्षान्तर्गत शब्दशक्ति-अलंकार-प्रतीक-बिम्बादिके विश्लेषण एवं विवरणसे हम यह निर्धारित कर सकते हैं कि श्री आत्मानंदजी म.सा.के पद्य साहित्यमें प्रमुखतः ध्वनि काव्यके एवं गुणीभूत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंग्य काव्यके भेद-प्रभेदोंकी उपलब्धि अभिभावकको काव्यानंद और प्रमुदित आत्मतोष प्रदान करनेमें कामयाब रही हैं । अब, संगीतात्मक-ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियोंकी विवक्षाको लक्ष्य करके इनके काव्यकी आलोचना करनेका प्रयास करेंगें जो छंदप्रयोग, शब्दचयन, गेयता और राग-रागिणियोंकी नवाजिशसे-अभिभूत हैं ।

छंद विधान :– "यदि वाक्य भाषाकी ईकाई है तो छंद वाक्यकी भंगिमा है ।" [१०२] काव्य हमारे प्राणोंका संगीत है, तो छंद हमारे दिलोंकी धडकन या कंपन है । कवि पंतके शब्दोंमें **-"(छंदसे) वाणीकी अनियंत्रित सांसे नियंत्रित-तालयुक्त हो जाती है, उसके स्वरोमें प्राणायम और रोओंमें स्फूर्ति आ जाती है ।"**-अतः हम कह सकते हैं कि व्याकरण शास्त्रका अनुशासन गद्य पर चलता है, जबकि पद्यको शासित करता है'पिंगल' या 'छंदशास्त्र'। छंद शास्त्रका प्रचार अति प्राचीन कालसे चला आ रहा है। अंतरकी अनुभूतियोंमें नादसौंदर्य उत्पन्न करनेमें महत्त्वपूर्ण योगदान छंदशास्त्रके नियमोंका ही माना जाता है । वास्तवमें छंद और काव्यका रिश्ता प्राचीन है। भरतमुनिके 'नाट्यशास्त्र'में छंदोंका विवेचन मिलता है, तो जैनाचार्य श्री हेमचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.ने 'छंदोऽनुशासन' नामक ग्रन्थकी रचना करके उसके महत्त्वको सिद्ध कर दिया है ।

'छद्' धातुमें 'असुत्' प्रत्यय जोडनेसे 'छन्द' शब्द बनता है । इससे 'छन्द'का व्युत्पत्त्यार्थ होगा–प्रसन्नता, आह्लादन, आच्छादन या बन्धनः अर्थात् काव्यकी आत्माको आनन्ददायक साज सज्जा (आच्छादन) से जो सजाये उसे 'छंद' कह सकते हैं । लेकिन, 'छंदकी' शास्त्रीय परिभाषा इससे भिन्न रूपमें विभिन्न विद्वानोंने विभिन्न प्रकारसे दी है, जिसका तात्पर्य इस तरह निकल सकता है- **"ऐसी पदरचनाको-जिसमें चरण (पाद) मुख ध्वनि-वर्ण-मात्रा-गति-तुक आदिकी एक निश्चित व्यवस्था हों-छंद कहलाती है ।"** [१०३] इस परिभाषानुसार छंदके लिए आवश्यक तत्त्वोंका उद्घाटन इस प्रकार होता है-(१) पाद या चरणोंकी और चरणान्तोंकी; मात्राओं तथा वर्णोंकी; निश्चित रूपमें एवं संख्यामें-निश्चित व्यवस्था (२) गति, यति या विरामके नियमोंका पालन और (३) गणोंकी निश्चित व्यवस्था।

अतः काव्यमें छंदकी आवश्यकताको लेकर हम कह सकते हैं कि-**A.** छंद काव्यको आकर्षक, चिरस्मरणीय और लोकप्रिय बनाकर कविकी प्रतिभा एवं व्यक्तित्वको प्रदर्शित करते हैं; **B.** छंद काव्यमें भावकी संप्रेषणतामें वृद्धि करते हैं । **C.** छंद-काव्यमें लालित्य, श्रुति, मधुरता, कोमलता एवं लयात्मकताका संक्रमण करके काव्यको सजीवता बक्षते हैं **D.** छंद-काव्यमें गेयता प्रदान करते हैं । **E.** छंद योजनासे काव्य स्थित भावोमें एक-सूत्रता आनेसे छंद-रसानुभूतिमें सहयोगी बनते हैं **F.** छंद योजनासे अभिभावकको भाव ग्रहणकी सुगमता और काव्य कंठस्थ करनेकी सरलता प्राप्त होती है । **G.** छंद योजना द्वारा प्रभाविक रूपमें अभिव्यंजनासे भाववृद्धि होनेके कारण, काव्यमें अंतरंग सौंदर्यमें वृद्धि होती है जो श्रोताको मनोरंजित करनेमें और उसकी रुचि परिष्कार करनेमें महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं ।

विद्वद्वर्यों द्वारा इन छंदोंको प्रमुख रूपसे दो भागोंमें विभाजित किया गया है-(१) वर्णिक या वृत्त छंद-जो संस्कृतकी देन है, और जिनमें वर्ण-संख्या, लघु-गुरु क्रम और गणोंका नियमित या निश्चित रूपमें प्रयोग होता है; और (२) मात्रिक या जाति छंद-जो प्राकृत और अपभ्रंशकी देन है और जिनमें मात्राकी संख्यादि नियमोंका पालन होता है । लघु-गुरुके क्रमकी जो अनियमितता-वही मात्रिक छंदोकी विशिष्टता होती है । इन दोनों भागोंके तीन उपविभाग होते हैं-सम, अर्धसम और विषम । इनके और भी प्रभेद होते हैं-(१) बत्तीस मात्रा अथवा छब्बीस वर्णोंवाले एवं उससे कम मात्रा या वर्णोंवाले छंद–जो 'साधारण' कहलाते हैं और (२) दंडक–जो बत्तीस या छव्वीस मात्रा या वर्णसे अधिक मात्रा या वर्णवाले छंद ।

<u>श्री आत्मानंदजीम.के पद्यमें छंदविधान</u>– भक्तहृदय सूरिदेवने अपनी रचनाओमें-विशेषतः उपदेशात्मक रचनाओमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सवैया इकतीसा'-छंदका प्रयोग किया है । और भक्ति-भाव-प्रवण रचनाओमें-विशेष करके 'पूजा काव्यो'में *जैन परम्परानुसार छंद योजना की है ।सामान्यतः* 'पूजा काव्यो'में प्रत्येक पूजाके प्रारम्भमें 'दोहा'छंद प्रयुक्त होता है जिसके माध्यमसे विवक्षित पूजामें विवरित विषयका संक्षेपमें परिचय करवाया जाता है । तत्पश्चात् प्रायः विभिन्न छंदोमें, लोकगीतों-ढालों-देशीओंमें विषयका विस्तृत निरूपण होता है और अंतमें 'काव्य'रूपमें विविध छंदोके माध्यमसे 'संस्कृत'भाषामें उस विवरित विषयकी फलश्रुति एक श्लोकमें की जाती है ।

इन 'पूजा काव्यों'की-जैन परंपरासे समभिज्ञ गुरुराजने इसका परिपूर्ण रूपमें निर्वाह किया है। इनके पूजा काव्योमें भी प्रारम्भिक परिचयके लिए 'दोहा'छंदका प्रयोग और 'काव्य' रूपमें वसंततिलका, द्रुतविलम्बित आदि वर्णिक छंदोके उपयोग किये गये हैं । जबकि ढालोंमें विविध राग-रागिणियोंका कुशलतापूर्वक उपयोग किया गया है क्योंकि 'पूजा-काव्य' समूहगानके रूपमें जनसमाज द्वारा भक्तिके उत्कट भावोंके साथ वाद्योंके सहयोगसे, लयलीन बनकर गाये जाते हैं । इन 'पूजा काव्यों'की रचना हिन्दी भाषामें सर्व प्रथम बार रचनेका श्रेय श्री आत्मानंजीम.सा.को प्राप्त होता है । इनके पद्य साहित्यमें हार्दिक भावसौंदर्य, नाद-ताल और लययुक्त विविध रागोंके सांचेमें ढलकर प्रस्तुत हुआ है । साथ ही साथ छंद योजना भी प्रत्येक पूजामें परंपरानुसार प्राप्त होती है ।-यथा-

दोहा--मात्रिक अर्धसम छन्द 'दोहा', अति लोकप्रिय और प्रचलित छंद है, जिसके 'विषमचरण'में तेरह मात्रा और प्रारम्भमें 'जगण'का निषेध एवं 'समचरण'में ग्यारह मात्रायें और अंत्याक्षरका लघु होना अनिवार्य होता है। कुल मात्रायें ४८ होती हैं और यति पादांते होती हैं । अब, श्री आत्मानंदजीम.सा.का पूजाकाव्योमें इसका प्रयोग दर्शित है-

"जिनवर वाणी भारती, दारति तिमिर अज्ञान;
सारति कविजन कामना, वारति विघन निदान ।"-अष्ट प्रकारी पूजा 'मंगलाचरण'

"जिनवर भाषित तत्त्वमें, रुचि लक्षण चित धार; सम्यग दर्शन प्रणमिए, भवदुःखभंजनहार ।" न.पू.-६
"शोभित जिनवर मस्तके, रयण मुकुट झलकंत; भाल-तिलक अंगद-भुजा, कुंडल अति चमकंत ।" स.भे.पू.१०
"आगम अनुसारी क्रिया, जिनशासन आधार; प्रवर-ज्ञान-दर्शन लहे, शिवरमणी भरतार ।"-बी.स्था.पू.१३

इनके अतिरिक्त 'ध्यान-स्वरूप', द्वादश-भावना-स्वरूप,'उपदेश बावनी' आदि काव्य-कवनोमें भी यत्र-तत्र'दोहा'छंदके प्रयोग मिलते हैं-यथा-**"पावन भावना मनवसी, सबदुःख मेटनहार;**
श्रवण सुनत सुख होत है, भवजल तारणहार ।।"-द्वा.भा.स्व.-मंगलाचरण
"प्रथम निरोधे मनशुद्धि,वच तन पीछे जान; तन वच मन रोधे तथा, वच तन मन इकठान ।।"-'ध्यान स्वरूप'-।

"करता हरता आतमा, धरता निर्मल ज्ञान ।
वरता भरता मोक्षको, करता अमृत पान ।"-'उपदेश-बावनी'-अंतिम मंगल ।

वसंततिलका--बंदिश-(तभजजगग)-सम वर्णिक साधारण वृत्तवाले इस छंदमें प्रत्येक पादके चौदह वर्णमें तगण, भगण, जगण, जगण,गुरु,गुरु,कायोग और आठवें वर्ण पर विराम होता है । कुल चार पादमें छप्पन वर्ण समाविष्ट होते हैं ।

"सन्नालिकेरपनसामलबीज पूर, जंबीरपूग सहकार मुखैः फलैस्तैः ।
स्वर्गाद्यनल्पफलदं प्रमदाप्रमोदं, देवाधिदेवमशुभप्रशमंमहामि ।" अ.प्र.पू.-८

द्रुतविलम्बित--बंदिश (नभभर)-समवर्णिक साधारण वृत्तवाले इस छंदमें प्रत्येक पादके बारह वर्णमें नगण, भगण, भगण, रगण का योग होता है--यथा--

"अखिलवस्तुविकासनभास्करं, मदनमोहतमस्सुविनाशकम् ।
नवपदावलिनामसुभक्तितः, शुधिमनाः प्रयजामि विशुद्धये ।"-श्री न.पू.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया इकतीसा--यह 'सवैया' छंदका उपविभागीय छंद है । जो दंडक प्रकारका छंद है । इसमें इकत्तीस वर्ण होते हैं । यतिप्रायः ८,८,८,७पर निश्चित होती है । अंतमें गुरु वर्ण होता है । आचार्यश्रीजीने इसका उपयोग विशेषतः अपनी उपदेशात्मक रचनाओंमें किया हैं-यथा-

"डर नर पाप करी, देत गुरु शिख खरी, मान लो ए हित धरी, जनम विहातु है ।
जोवन न नित रहे, बाग गुल जाल महे, आतम आनंद चहे, रामा गीत गातु है ।
बके परनिंदा जेति, तके पर रामा तेति, थके पुन्य सेती फेर, मूढ मुसकातु है ।
अरे नर बोरे! तोकुं, कहुं रे सचेत हो रे, पिंजरेकुं तोरे देख, पंखी उड जातु है।" उ.बा.-३६

इस श्लोकमें ८, ८, ८, और ७ पर यति है; लेकिन कहीं कहीं पर अनियमितता भी दर्शित होती है-

"काची काया मायाके भरोसे भमियो तुं बहु, नाना दुःख पाया काया जात तोह छोरके" (उ.बा.२५)

तथा-"ठोर ठोर ठानत विवाद पखपात मूढ, जानत न मूर चूर सत मत बात की "-उ. बा.३५

उपरोक्त पंक्तियाँ श्लोकके प्रथम चरणकी हैं उनमें१६और१५ अक्षरों पर यति आती है । लेकिन इन श्लोकोंके शेष चरणोंमें ८, ८, ८, और ७ पर ही यति रखी जाती हैं ।

ऐसे ही दोनों प्रकारके 'सवैया इकतीसा' 'ध्यान स्वरूप'में भी पाया जाता है-यथा-

(१) "ईस सब कर्म पीस, मेरु नगरा जईस, ऐसे भयो थिर धीस, फेर नहीं कंपना ।
कदेही न परे ऐसो, परम शुकल भेद, 'छेद सब क्रिया' ऐही, नाम याको जंपना ।
प्रथम शुकल एक, योग तथा तीनहीमें, एक जोग माहे दूजा, भेद लेइ ठंपना ।
काय जोग तीजो भेद, चौथ भयो जोग छेद, आतम उमेद मोख्र महिल धरंपना ।"ध्या.स्व.पृ.१८१

(२) "एकही दरव परमानु आदि चित धरी, उतपात व्यय ध्रुव स्थिति भंग करे है ।"-ध्या.स्व.

सारांश रूपमें हम यह कह सकते हैं कि श्री आत्मानंदजीम.सा.ने बहुत कम छंदोको प्रयुक्त किये हैं, क्योंकि, हृदयके अंतरंग भावोंकी मुक्त रूपसे अभिव्यक्ति करनेमें उन्होंने छंदके बंधनोंकी अपेक्षा विविध राग- रागिणियोंकी बंदिशोंको और लोकगीतादिकी चालोंको अधिक पसंद करके उनका विशेषतया उपयोग किया है। फिर भी जितने छंदोका प्रयोग किया गया हैं वह काव्य-भावानुरूप उपयुक्त है । उन छंदोके आयोजनमें कविका साफल्य झलक रहा है ।

शब्द चयनः--आचार्यदेव श्री आत्मानंदजीम.सा., श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समकालीन थे । यह वह समय था जब हिन्दी साहित्यका गद्य बाल-शिशुकी चाल चल रहा था और पद्य रचनाओमें तो शुद्ध हिन्दी भाषा प्रयोगकी बनिस्बत ब्रज भाषाके प्रयोगकी ही प्रमुखता स्पष्ट झलकती थी । जिनके नामसे उस युगका प्रवर्तन हुआ, उस युगपुरुषने भी स्वयंकी पद्य रचनाके लिए ब्रज भाषाके व्यवहारकी परिपाटीको ही बहुलतया अपनाया हैं ।उस परिवर्तनशील युगकी हिन्दी भाषा शनैः शनैः समस्त भारतमें अपने पैर जमाकर राष्ट्र-भाषाकी मानिंद उच्च एवं उत्तम, विशाल एवं समृद्ध स्थिति प्राप्तिके भरसक प्रयत्नमें निरन्तर उद्यमशील थी । अतः ऐसे समयमें उसमें अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोंकी शाब्दिक झलककी उपलब्धि सहज स्वीकार्य है । दूसरा, चिरन्तन प्रकाशकी आशासे जीवनोत्थान और अमरत्वकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित करके बंधनसे मुक्ति मार्गको संकेतिक करनेवाले कविराज श्री आत्मानंदजीम.सा. जैन साध्वाचार--नव-कल्पी विहार--के निःशंक दृढ पालक थे । अतएव उनका जीवन भ्रमणशील था, जिससे निरंतर विभिन्न क्षेत्रोमें--पंजाबसे लेकर गुजरात पर्यंतके प्रमुख ग्राम-नगरोंमें-विचरण करते करते अनेक जन एवं जैन-समाजोंसे परिचयमें आते रहें यही कारण है कि उनकी वाणीमें उन भाषाओंका-गुजराती, राजस्थानी, मालवी, खडीबोली आदिका सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है । स्वयं पंजाबी भाषी होनेसे पंजाबी और उर्दू भाषाके शब्दोंकी तो भरमार छलकती है। चूंकि उस समय तक धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत या प्राकृतमें लिखे जाते थे और सुरीश्वरजी भी इन भाषाओं पर प्रकांड प्रभुत्वधारी थे ही; अतः अधिकतर जनजीवनमें व्यवहृत लोकबोधगम्य संस्कृत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतके भी तत्सम-तद्भव शब्दोंका प्रभूत मात्रामें प्रयोग भी झलकता है ।

उपरोक्त निमित्त-कारणोंसे उनकी भाषामें विविध भाषाके शब्द प्रयोगोंका प्राप्त होना अस्वाभाविक तो नही है, प्रत्युत इन प्रयोगोंसे भावाभिव्यक्तिको अधिक सबल बनानेमें सहयोग ही मिला है । जैसे श्री ऋषभदेवजी भगवंतके माढ़ रागमें रचित स्तवनमें-जो राजस्थानियोंका प्रिय राग है और जिससे वैराग्य-वासित आत्माकी प्रभु-प्रीति और प्राप्तिकी तड़प आदि भावोमें विशिष्ट निखार आता है-आपने भी राजस्थानी शब्द प्रयोगका विशिष्ट उपयोग करके उस स्तवन-काव्यमें अत्यधिक मार्मिक अनुभूतिकी अभिव्यक्ति की है-यथा-

"मनरी बातां दाखाजी, म्हारा राज हो, रिखबजी थाने....
मन मर्कटकुं शिखो निज घर आवेजी, म्हारा राज रे कांइ ।
सघली बाते, समता रंग रंगावेजी म्हारा राज हो रिखबजी थाने...."आ. वि.स्त.-पृ-८६

इस तरह हम देखते हैं कि गुरुदेवके काव्य विशेषतः ब्रज भाषामें लिखे जाने पर भी उनमें हिन्दी खड़ी बोली, राजस्थानी, गुजराती, मालवी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओंके उपयुक्त सम्मिश्रण और संस्कृतादिके तत्सम-तद्भव शब्दोंके प्रयोगसे काव्यमें ताज़गी-स्फूर्ति-चूस्तता और चारुता एवं काव्य-चातुर्य-निष्पन्नता आती है, जो काव्यको हृदयस्पर्शी प्रभावकतासे भर देती है । किसी वस्त्रके फटने पर एक अबुध उस पर पैबंद लगाता है, जो वस्त्रको असुंदर बना देता है, जबकि उसी वस्त्रको अन्य विचक्षण व्यक्ति अपनी विलक्षण सुझबुझसे इस कदर पैबंद लगाता है कि, वस्त्रमें एक नयी परिकल्पना उभर आती है; जो शायद उस वस्त्रको अधिक सुंदरता बक्षती है । ठीक वैसे ही कविराजश्रीने भी विविध शब्द प्रयोगोंके पैबंद ऐसे लगाये हैं जो नूतन परिकल्पनाके साथ काव्यमें चमत्कृत उद्भावनाओंको प्रत्यक्ष करवाते हैं ।

अब हम इनके काव्यमें प्रयुक्त विभिन्न प्रायोगिक शाब्दिक इन्द्रधनुषी-आभा-सौंदर्यके दर्शन करें -

पंजाबी शब्द :- पंजाबी होनेके नाते पंजाबी भाषाके शब्दप्रयोग अधिक मात्रामें मिलते हैं-

अव्ययके रूपमें --- **सेंती(समेत), इतरां(अन्य), कदे(कभी), नेडे(नज़दिक), ऐन(ऐसे), ओडक(आखिर), जौलों.... तौंलों(जबतक....तबतक), नाल(साथमें), रीते(खाली), काको(क्यूं), परलै(पीछे के), सरवंग आदि;** *सर्वनामके रूपमें-* **तिनसे(उनसे), तिनमें(उनमें), मैनुं(मुझे), तोनुं(तुझे),** आपना(आपका) **आदि;** *जातिवाचक संज्ञा* - **हाटक(सुवर्ण) पूत (बेटा), सथान(स्थान), मुनिवरिंद(मुनिवृंद)** आदि; *भाववाचक संज्ञा* --- **चंगा, चंगेरा, नीके(सुंदर), टरा(अकड़ता), प्रणाम(परिणाम) आदि;** *क्रियावाचक* --- **जप्पो(जल्पना-बोलना), चइये(चाहिए), दसें(कहें), कीते(किया), गेरे(डाल दें), भामरी, कूफर धोहे, मन टोहे, गुमर आदि;** *वर्णविपर्यय* --- **प्रणाम(परिणाम), सथान(स्थान), वरिंद(वृंद), पर्तक्ष(प्रत्यक्ष) आदि;** *खाद्यपदार्थके नाम* --- **साटा, दोठा, मठड़ी, सबुनी, कलाकंद, कलीदाना, गुज्जा, बिदाना, पेठा आदि ।**

उर्दू शब्द - **यारा(दोस्ती), यार(मित्र), नूर(चमक) आदि**

गुजराती शब्द :- **मुज भणी(मेरी ओर), माटी तणो घट(मिट्टीका घट), छाजे(सोहे), मांडीये (प्रारंभ कीजिए), केटला(कितना), जीवना(जीवके), बेसुं(बैठुं), आगल(सामने), करशुं(करेंगे), शुं(क्या), वधे(बढ़े), जोया(देखा), हुं(मैं), टाणा(अवसर), करथी(हाथसे), रुल्यो(भटका), राजी(प्रसन्न) आदि ।**

मराठी शब्द :- यद्यपि सुरीश्वरजी का विचरण महाराष्ट्रमें नहीं हुआ फिरभी क्वचित् मराठी शब्द-प्रयोग भी आपने किये हैं-**यथा-झाली (हुई), ठेवली (रखी), ठंपना आदि ।**

राजस्थानी शब्द :- **दूजो (दूसरा), छै (है), वेगा (जल्दी), छारना (निकम्मा बनाना), मोने-माने-मोहको (मुझे), घनेरो (बहुत), थाने (आपको), दाखां (कहना), बेर करना (देर करना), मो मन (मेरा मन), लार (साथ), भींचके (बंद करके), तो कुं (तेरे पास), मनरी (मनकी), थे (आप), झीले (स्नान करें), खेरुकरे, शिरथी, गर्दभी (खेतीके साधन), धरंपना आदि ।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत :- **निखेपा (निक्षेपा), वाग-जोग (वाक्ययोग), परतीत (प्रतीत), आणा (आज्ञा), मोख (मोक्ष) पुग्गल (पुद्गल), सांग (स्वांग), रयण (रत्न), अड़दिट्ठि (अष्ट-दृष्टि), नेह (स्नेह), जम्म (जन्म), अप्पा (आत्मा), सुरग (स्वर्ग), विजोग (वियोग) आदि**

इनके अतिरिक्त अपनी भाषामें मधुरता लानेके लिए ध्वनि-नाद सौंदर्य व्युत्पन्न करनेके लिए आपने पद्य रचनाओमें विशिष्ट शब्द प्रयोग भी किये हैं -यथा-शब्दोंके रूपमें परिवर्तन करते हुए लाघव युक्त मधुरता भरनेवाले प्रयोग- **मुरझाइयां, सुसाइयां, धाइयां, पाइयां, आइयां, छाइयां आदि एक ही पद्यमें प्रयुक्त करके; पियारिया (प्यारा), पूजारिया (पूजारी), पहाडिया (पहाड़), इछिया (ईच्छा) आदि परिवर्तन करके; सोहंदा, रतनंदा** आदि मधुर रूप बनाये गये हैं तो नादसौंदर्यके लिए विशिष्ट प्रयोग -

"धूं धूं धप तार चंग, खुखुडघुटट जल तरंग
वेणु वीणा तार रंग, जय जय अघटारी ।" ..... आ.वि.स्त.पृ.६०
"अखय भंड़ार भरे कौन करे वरननन"..... अष्ट प्रकारी पूजा - धूपपूजा

रसोपलब्धिः---आत्मा देह द्वारा आहार ग्रहण करके और उसका रसमें परिणमन करके उसीसे देह निर्माण करती है; वैसेही कवि स्वात्मासे उद्भवित निजानंद स्वरूप-रसाप्लावित भावसृष्टिको सत्-चित्-आनंदकी सीमाको स्पर्श करनेवाले शब्दार्थके सहयोगसे निर्मित कृति द्वारा प्रवाहित करता है, जिससे अखंड़ रसोपलब्धिकी प्राप्ति होती है, साथ ही ब्रह्मानंद सहोदर अलौकिकताका आस्वाद उपलब्ध होता है।

रस क्या है-**"रसो वै सः"** रस आनंद स्वरूप ब्रह्म है--काव्यका प्राण-काव्यकी आत्मा है। रस कवि कल्पनाका नियमन एवं काव्यगत संपूर्ण भावसंपदाका अंतर्भाव है, जो हृदयकी मुक्तावस्थाका अनुभव करवाता है, जहाँ भावकी भूमिका पर शब्दार्थके सौंदर्यका आस्वाद और शुद्ध मानवीय-मानसिक अनुभूति रस रूपमें ही प्राप्त होती है, जो साधारणीकरण द्वारा काव्यकी भावसंपदाको सार्वजनिक बनाकर चीरंजीव बनाती है। इसे ही विश्लेषित करते हुए डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन्जीने अपने भावोंको इन शब्दोमें अभिव्यक्ति दी है--**"काव्य शब्दोंके माध्यमसे अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। कविके अनुभव साधारण व्यक्तिके अनुरूप ही होते हैं, परंतु उसकी प्रेरित--अनुभूति चेतनाकी उस सांद्रता और घनत्वकी अभिव्यक्ति होती है, जो साधारण व्यक्तिकी क्षमतासे इतर है।"**

रसनिष्पत्ति--रस सिद्धान्तका प्राचीनतम निर्देश भरतमुनिके 'नाट्यशास्त्र'से प्राप्त होता है। रस निष्पत्ति विषयक उनका अभिमत यह है कि, **"विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः"**- अर्थात् विभाव-अनुभाव और व्यभिचारी भावोंके संयोगसे रसनिष्पत्ति होती है। *भट्टलोल्लट*के मतानुसार विभाव-कारण और रस-कार्य है, अर्थात् रसकी उत्पत्ति विभावोंसे, पुष्टि संचारियोंसे, और अभिव्यक्ति अनुभावोंसे होती है। *भट्ट नायकके* मतानुसार अभिधासे शब्दार्थ-ज्ञान होने पर भावकत्व द्वारा भावकको अनुभूति होती है, और विभावादि साधारणीकृत होकर सर्वके अनुभव योग्य बन जाते हैं; जबकि *अभिनव गुप्तजी* अभिभावकमें ही रस निष्पत्ति मानते हैं-यथा-स्थायीभाव, वासना या संस्कार रूपमें अभिभावकमें विद्यमान होते ही हैं, जो विभावादिके साधारणीरण द्वारा उद्भूत होकर उसे तन्मय बनाते हैं और वह, उस रसानंदका अनुभव करता है।

अतः निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि, जिस प्रकार किसी विषयको आलेखित करनेवाली, चित्र-विचित्र रेखायें विभिन्न रंगोंकी सप्रमाण सजावट युक्त चित्रांकनसे निष्पन्न किसी सुंदर चित्राकृति दर्शकको विशिष्टानंदानुभूति करवाती है, उसी प्रकार स्थायी भावको पूर्णतया आस्वादन करनेके लिए उसे उद्बुद्ध करने हेतु सर्वांग साधारणीकरण प्राप्त विशेष प्रकारके एवं यथावश्यक विभावों और अनुभावोंके संयोग होने चाहिए।

श्री आत्मानंजीम.सा.के पद्योंका रसास्वादन--श्रीआत्मानंदजी म.सा. प्रथम भक्त थे, बादमें कवि, अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मानुभूतियोंके प्राधान्यको लेकर भक्तिकी मधुरतामें पगे हुए सत्य-शाश्वत धर्म और दर्शन, साधना और सिद्धान्तोंका निरूपण सरल एवं हृदयस्पर्शी, फिर भी अनन्य वैशिष्ट्यके साथ किया गया है। यद्यपि उनकी कृतियोंकी सृजना काव्य-शास्त्रीय उद्देश्यको लेकर नहीं हुई, न उनको काव्यकी आत्मा, साधारणीकरण या रस-निष्पत्तिकी परवाह थी; न वे स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भावोंकी समन्वित अनुभूतिके प्रति सावधान थे, फिर भी काव्यके माध्यमसे उन्होंने अपनी हार्दिक-सूक्ष्म एवं तीव्र आत्मानुभूतियोंको इस कदर प्रवाहित किया है कि, उनसे भाविकोंके दिलोंसे स्वतः साधारणीकरण होकर यथायोग्य रस-निष्पत्तिका तजुर्बा होने लगता है।

पूर्वाचार्योंने रसके नव प्रकार माने थे और उत्तर मध्यकाल पर्यंत पहुँचते पहुँचते उनमें अन्य दो रसोंकी समन्विति की गई--वात्सल्य और भक्ति--जिनको स्वतंत्र रस रूपमें स्वीकारनेवाले भोज, भानुदत्त, विश्वनाथ, हरिश्चन्द्रादि हैं-अतः शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्‌भूत, शांत, वात्सल्य और भक्ति--इन ग्यारह रसोमेंसे आचार्य प्रवरश्रीके पद्य साहित्यमें भाव सुमनोंके उद्‌घाटक, आनंदोल्लासकी अनुभूतियोंके निर्झरोंके प्रवाह रूप, वात्सल्य रसके माधुर्य और शांतरसकी सुधाधाराओंमें प्रवाहित विभिन्न रसोंका यहाँ परिचय करवाया जा रहा है।

भक्त कवि श्री आत्मानंदजी म.सा.की रचनाओमें विशेषतः भक्तिरसको प्राधान्य मिला है जिसकी भावपरक पृष्ठभूमिमें हम भक्तिके राग-अनुराग, त्याग-वैराग्य, विनय-विवेक-विश्वास, ज्ञान-ध्यान-विज्ञान, आत्मनिवेदन और सर्वसमर्पण आदि वैविध्य पूर्ण अंगोंका प्राधान्य देख सकते हैं। सामान्यतः भक्तिरसके अंतर्गत शांतरस, वात्सल्य रस और मधुर-दास्य-सख्य भावोंसे छलकता शृंगार रस पलता हुआ अनुभूत होता है। उन्हीं दर्पणमें उनके भक्तिरस प्रवाहका दर्शन करेंगें-

राग-अनुराग भावकी सख्य भक्ति (संयोग शृंगार रूप)--

"प्रीत लागीरे जिणंद शुं प्रीत लागी ..... तें तार्यो प्रभु मोहको रे, हरि भवसागर पीर;
ज्ञान नयन मुझे तें दिये रे, करुणा रसमय वीर....." (आ.वि.स्त.पृ.६१)

त्याग-वैराग्यके भावमें पगा हुआ भक्ति रस--

"भव तरु डार ताण विस्तारिया, मोहकर्म जड़मूल जर्यो रे,
क्रोध मान माया ममता रे, मतवारे चिहुंकन चर्यो रे.....अब क्युं पास परो मन हंसा .....
पास परन वामा रस राच्यो, खांच्यो कर्मगति चार पर्यो रे
राग द्वेष जिहाँ भये रखवारे, भववन सघन जंजीर जर्यो रे..... (आ.वि.स्त.पृ.९६)

संयोग शृंगार रसासिक्त विनय-विवेक और विश्वासयुक्त माधुर्य भक्तिको देखें-

"मेरो कोई न जगतमें, तुम छोड़ी हो जगमें जगदीश,
प्रीत करुं अब कौन सुं, तुं त्राता हो मोने विसवावीस ..... (चतु.स्त.१४)

प्रभुके प्रति प्रणय भाव रूप भक्तका आत्म निवेदन--

"जैसे धेनु वन फिरे रे, मन बछरेके रे मांह, चरणकमल त्यूं वीरके रे, छिनकही विसरत नाह.....
विंध्याचल रेवा नदी रे, गजवर भूलत नाह, मनमोहन तुम मूर्ति रे, सिमरत मिटे दुःखदाह .....
कदियक दिन मुझ आवशे रे, निरखुं तेरो रे रूप,
मो मन आशा तो फले रे, फिर न परुं भव कूप— (आ.वि.स्त.पृ.६२)

सर्व समर्पण भावमें अनन्य भक्ति भावनाके भाव--

"त्रिभुवन ईश सुहंकर स्वामी, अंतरजामी तुं कहीये, कल्पतरु चिंतामणी जाच्यो, आश निराशे ना रहीये.....
तुम बिन तारक कोई न दीसे, होवे तुमकुं क्युं कहीये,.....
इह दिलमें ठानी, तारके सेवक, जगमें जस लहीये..(ऋषभदेव स्त.)

वैसे तो श्री आत्मानंदजी म.का समस्त पद्य साहित्य भक्ति भाव प्रधान छलछलाता मानस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर है, जिनमें कुछ भावोंके प्रणयनके आह्लादके बाद उनके वात्सल्य-भक्तिके भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। *वात्सल्यरस*--भ.महावीरको माता त्रिशलाजी गोदमें लेकर खेलाती हैं। उनके उमड़ते हुए भावना भरपूर इस पदको आस्वादें-**"त्रिशलादे गोद खिलावे छे.....**

वीर जिणंद जगत कृपाल, तेरा ही दरस सुहावे छे.....
आमेरवाला, त्रिभुवनलाला, ठुमक ठुमक चल आवे छे.....
पालने पोढ्यो त्रिभुवन नायक, फिर फिर कंठ लगावे छे.....
आओ सखि मुझ नंदन देखो, जगत उद्योत करावे छे.....
आतम अनुभव रसके दाता, चरण शरण तुम भावे छे.....(ह.लि.पद.४९)

पालनेमें सो रहे श्री पार्श्वनाथ भगवंतकी स्वर्गलोकके इंद्र इंद्राणीकी भक्ति--

"पालने जिन पास पोढइया
सुरपति मिल सब देत है लोरी, हर्षि वामा देवी मइया.....
इंद्राणी मिल मंगल गावे, नाचे करे ता ता थइया.....
तूं मेरा लाला, सब जग बाला, फिर फिर निज मुख मटकइया.....
आतम कल्पतरु जग प्रगट्यो, दीठड़े प्रभु आनंद लइया..... (ह.लि.स्त.६५)

ऐसे ही उनकी पूजा काव्य-कृतियोंमें भी-विशेष रूपसे *"स्नात्रपूजा"*में-वात्सल्य रसके प्रवाह हमें भिगोते हैं- **"सुपन महोत्सव करो भविरंगे, मुक्तिरमणी सुख लहो भवि चंग"-ढाल-२**

"जन्म महोत्सव गावो रे, भवताप निवारी".....ढाल-३

इस प्रकार सभी ढालों और कलशमें श्री अरिहंत भगवंतके जन्मोत्सवका वर्णन किया गया है।

शांतरसः---साधककी साधनाका चरमलक्ष्य आत्मिक सुख प्राप्ति है, जो भवनिर्वेदसे प्राप्त होती है। अतः ऐसी उत्तम साधनाके उत्कृष्ट साधककी कृतियोंमें उसका विन्यास होना सहज है, जिससे शांतरस निष्पन्न होता है। उनके पद्य साहित्के बहुलांशमें रसराज--शांतरसका अनुभव मिलता है। यहाँ कुछ उदाहरण पेश करते हैं। *आत्माकी स्थितिकावर्णन करते हुए श्री वासुपूज्य स्वामीजीके स्तवनमें वे गाते हैं-*

"आतम रूप भूलाय रम्यो पर रूपमें, पर्यो हुं काल अनादि भवोदधि कूपमें;
अब काढ़ो गही हाथ, नाथ मुझ वारिया, पाऊँ परमानंद करमरज झारिया।".....

कितनी ही रिद्धि-समृद्धि या भोग-विलास आत्माको प्राप्त हों, लेकिन श्री आत्मानंदजी म.सा.कहते हैं कि, इन सबसे आत्मा कर्म-मुक्त नहीं हो सकती । उसके लिए तो-

"जिन भक्ति फल पाये, मोक्ष तिन नाहि दूरे".....

आत्म हितकारी और भवनिर्वेद प्राप्तकारी उनकी वाणी *"उपदेश बावनी"*में भी स्थान-स्थान पर प्राप्त होती है-यथा-

"रुल्यो हुं अनादिकाल, जगमें बीहाल हाल, काट गत चार जाल, ढार मोह कीरको;
नरभव नीठ पायो, दुषम अंधेर छायो; जगछोर धर्म धायो, गायोनाम वीरको (उ.बा.५०)

*"भावना स्वरूप"*में संसार स्वरूपका वर्णन पढते ही अंतरमें निर्वेद भाव-झरने लगता है, और नश्वर सुखकी धड़ाधड़ीसे मन विराम पाता है ।

"रंग चंग सुख मंग, राग लाग मोहे सोहे, छिनकमें दोहे जोहे, मौत ही मरदके
नीके बाजे गाजे साजे राजे दरबारहीमें, छिनकमें कूक हूक सुनीये दरदके"

उपरोक्त रसोंकी अग्रीमता होने पर भी उनके पद्योमें शेष अन्य रसोंको भी यथोचित स्थान प्राप्त हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करुणरस—राजुलके साथ शादी निमित्त, श्री नेमिनाथ भगवंत बरात लेकर आते हैं; और 'पशुओंके वधका' निमित्त बनाकर बिना ब्याह किये लौट जाते हैं, तब विरहिणी राजुलके अंतरकी पुकार हमारी करुणाको झंकृत कर जाती है।

"शामरे.....ना जा रे.....
नव भव केरो नेह निवारी, छिनकमें ना छटका जा रे .....
हुं जोगन भइ नेह सब जारी रे, अंग विभूति रमा जा रे.....
मैं दासी प्रभु तुमरे चरनकी, आतम ध्यान लगा जा रे..... (आ.वि.स्त.-९९)

वीर—वीररस प्रायः युद्धभूमि आदिके वर्णनोंमे अधिक फबता है।कविने यहाँ आत्मा और मोहनीय कर्मका युद्ध वर्णित किया है जिसमें आत्माकी वीरता प्रदर्शित की है-

"मोह सुभट जग जेर करीने, करत कलोल अपारा
कर्मरायने विवर दियो है, चेतन होय हुश्यारा.....
सात सुभटका नाश करे जो, तो तुम जीत नगारा,
नींद छोड़ जब चेतन जाग्यो, सात सुभट तीन मारा.....
मोहराय बलहीन भयो है, अजयना छोड़त लारा,
कुमति कुटल विटल मदनासुर, राग-द्वेष निशिचारा.....

भयानक—*संसार समुद्रकी यथा स्थित भयंकर स्थितिका साक्षात् वर्णन.....*

"मोह नदीकी गहरी धारा, भ्रमत फिरत गत चार मंझारा;
मझधार अटकी मोरी नैया, अब प्रभु पार कीजोजी.....
चार कषाय बड़वानल जामें, राग-द्वेष मगरादि नामें
कुगुरु, कुघाट पड़ी मोरी नैया, वही थाम लीजोजी.....
विषय इन्द्री वेला अतिभारी, काम भुजंग उठे भयकारी, मन तरंग वेग मोरी नैया.....
पाप-पुण्य दोउ तस्कर घेर्यो, मैं चेर्यो प्रभु तुम गुण केरो,
तुम बिन कौन सहाइ मेरो, भवसिंधु पार कीजोजी.....

बीभत्स-*जीवके आहार-निहारका, जो जुगुप्सादायी चक्र चलता है, जिसे सुनकर आहार छोडनेका मन हो जाय और अनहारी बननेका विचार उद्‌भवित हों-उसका वर्णन करते हैं-*

"सब जगमांहि जेता पुद्‌गल, निगल निगल उगलाना।
छरद डार कर फिर तू चाखे, उपजत नाहि ग्लाना रे....."

जीवके जन्मके पूर्वकी गर्भावस्थाकी स्थितिका चित्रण-

"माता उदर कूप रसकसमल, मनुष्य जन्ममें धारा..... जोनि द्वार खाल तुम निकसे, पुण्य उदय रखवारा....."

अद्‌भूत—अरिहंत परमात्माके अष्ट प्रातिहार्यके अद्‌भूत वर्णनको श्रीपार्श्वनाथ भगवंतके स्तवनमें वर्णित किया है- **"तीन छत्र प्रभुके पर रह कर, त्रिभुवन स्वामी जनावे रे.....**
चामर कहत है, नीचे झुककर, उर्ध्वगति तुम जावे रे.....
भामंडल पूंठे प्रभु दर्सण, तम मिथ्यातम नावे रे.....
अजुत योजन ध्वज आगल प्रभुके तिस उपर कर साखा रे....."आ.वि.स्त.२९

इस प्रकार भक्ति रस प्राधान्य पद्य रचनाओंके रचयिता-सहृदय-कवीश्वर द्वारा प्रायः सभी रसोंकी निष्पत्ति होते हुए रस निर्झरोंकी वैविध्यपूर्ण अमृतधारा प्रवाहित हुई है जो आस्वादकके अंतरको स्पर्श करते हुए हृदय कमल विकस्वर करनेमें नितान्त सफल हुई हैं।

राग-रागिनियोंसे नवाजित अमर काव्यदेहका वैभविक वर्णनः---जीवनोल्लास वर्धक, सांगितिक तालबद्धता एवं लयबद्धता युक्त जीवन-संगीत, अनादिकालसे हमारा संगी रहा है, अर्थात् संगीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा जीवन है; क्योंकि यह हम सबका अनुभव है कि अत्यन्त शुष्क-नीरस जीवनको संगीतके सहारे प्रफुल्लित एवं प्रसन्न बानाया जा सकता है, अथवा भयंकर तप्त वैशाखी दोपहरीमें नीमके पेड़के नीचे बैठकर सारंग राग गाने-बजानेसे अनुपम-अद्‌भूत शीतलताका अनुभव होता हैं; या मेघ मल्हार राग गाने-बजानेसे बिन बादल वर्षारानीका आगमन करवाया जा सकता है; तो दिपक-रागसे बिना किसी तीली आदिकी सहायता अपने आप ही दीप प्रज्वलित किये जा सकते हैं । ऐसे ही अनेक राग-रागिनियोंके अनुभव प्रत्यक्ष हैं । किसी भी रागका रंग तब खिलता है जब वह स्वयोग्य वातावरण निष्पन्न कर दें, तभी उसका महत्त्व और प्रभाविकता वर्धमान बनते हैं ।

यह साधारण-सा प्राथमिक परिचय ही संगीतके साथ जीवनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्तुत करता है । मानव तो क्या निसर्गकी गोदमें खेलने और पलनेवाले पशु-पक्षी भी इससे प्रभावित बनकर तन-मनकी सुध-बुध गँवाते दृष्टिगत होते हैं । हमारा यह भी दैनिक अनुभव हैं कि प्रकृति भी संगीतके प्रभावसे अभिभूत होती है । अतः जीव या जड़ सभी संगीतकी प्रभविष्णुतासे वेष्टित है। रुदनको हास्यमें या हास्यको शोकमें परिवर्तित करना-शुष्कको सरस और मौनको मुखर बनाना-संगीतका निजी सामर्थ्य है । अतएव सहृदयोंके जीवनमें संगीतकी कशीश विशेषतया दृष्टिगोचर होती है। उनके विचार-वाणी-वर्तनमें, सर्वत्र-सर्वदा संगीतात्मकता समाविष्ट रहना अत्यन्त स्वाभाविक है ।

श्रीमद् विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.भी एक ऐसे व्यक्तित्वसे सम्पन्न थे, जिनमें हम इन विशिष्टताओंको झलकती हुई प्रत्यक्ष कर सकते हैं। उनके कंठसे बहनेवाली हवा सांगितिक झंकारसे युक्त रहती थी । जैसे प्रत्येक स्वरके प्रस्फुटनमें प्रकट होती थी तालबद्ध सुरीली स्वरावलि, जो श्रोताकेदिल-दिमागको डोलायमान करानेके लिए पर्याप्त होती थी । उनके विचार और वाणी जैसे संगीतके लय और तालसे परस्पर सम्बन्धित स्पर्धा करते थे; अर्थात् उनके अंतस्तलसे विचार लयात्मक और जबानसे वाणी तालबद्ध रूपमें प्रकट होती थी । जैसे परमात्माकी गिरा प्रमुख रूपसे 'मालकौंश' रागमें प्रवाहित होती है; ठीक उसी प्रकार उनके देशना प्रवाहमें 'भैरवी'की मधुर लय झिलमिलाती हुई श्रोताओंको अत्यन्त प्रमोदित करती थीं । एक ही सम-सूरमें तालबद्ध शाब्दिक स्वर, लयबद्ध नर्तन करते हुए कर्णपटल पर कब्जा जमा देते थे । एक बार देशना श्रवण करनेवाला सहृदय श्रोता बारबार आपके सुरीले स्वर सुननेका लालची बन बैठता था । आपके कंठसे निकलनेवाला गहन गंभीर स्वर समुद्रगर्जन या मेघगर्जनका सानी होता था । किसी प्रसिद्ध उस्ताद गायकने भी एक बार आपकी ऐसी सुरीली गंभीर स्वर लहरी पर आफरिन होकर अत्यंत आश्चर्य मिश्रित आवाज़में प्रशंसा करते हुए कहा, **"महाराज ! आप तो संगीत कला-पारगामी हैं । आप तो उस्तादके भी उस्ताद हैं।"**[१०४] अतएव हमें प्रश्न उठता है कि ऐसी संगीत साधना उन्होंने कब, कहाँ और किनसे प्राप्त की होगी ? श्री फतेहचंद झवेरभाई शाहके शब्दोंमें, **"श्रीमद् आत्मारामजी महाराजने इस संगीतकलाको पंजाबमें किसी उपाश्रयके समीपस्थ संगीत निष्णात-उस्तादके मकानसे सुनाई देनेवाले आलाप–आरोह-अवरोहादि सुनने मात्रसे ही संपादित की थी; जिसके आधार पर पद, स्तवन, पूजादि सभी प्रकारके भक्ति-भावयुक्त संगीतकी लहरियोंमें जैनदर्शनके विशाल-गंभीर ज्ञानको सहज एवं सरल रूपमें प्रस्तुत किया।"**[१०५]

सहृदय कविराजके काव्योमें आत्मीय मस्ती और भरपूर पद लालित्यसे झंकृत सुरावलि,. हृदयोर्मिको जागृत करके रोमराजीको विकस्वर कर देती है या, जो अनिर्वाच्य सुखका अनुभव कराती है एवं जो रससिद्ध नैसर्गिक कृतियोंकी मर्मस्पर्शिता और गुण सम्पन्नता प्राप्त है, हमें लबालब भरे रस सरोवरमें स्नान करवानेकी शक्ति रखती हैं। उन रचनाओंको साजोंके साथ गाया-बजाया जाने पर प्रच्छन्न मंत्रमुग्धताका प्रभाव प्रगट हो उठता है, फलतः आनंदानुभूतिका अवधि हिलोरें लेने लगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उन स्वरलहरियोंका आस्वाद अनेकबार, बार-बार करनेके लिए मन मज़बूर बनता है । श्री मोतीचंद कापडियाजीके शब्दोमें - **"उनके काव्योंसे अगर उनकी अंतरात्माकी पहचान हो सकती हों तब वह अति उदात्त भावोंमें सर्वदा मस्त रहती होगी—ऐसा ही अंदाज़ किये बिना रहा नहीं जा सकता। उनकी वाणी अंतर्दशाका आविर्भाव है, उनके शब्दचित्र अंतरात्माका प्रदर्शन हैं और उनके व्यक्तित्वको समझनेके लिए उनके हार्दिक उद्‌गार फोटोग्राफ रूप है ।"**[१०६] इन्हीं भाव प्रतिबिम्बको ऐसे ही कुछ रसांशयुक्त आलेखनोंमें प्रत्यक्ष करानेवाला प्रयत्न अब किया जाता है ।

भैरवीः— "भैरवी सदा सुखदायिनी" अर्थात् "भैरवी" किसी भी समय गा सकते हैं, फिर भी विशेष रूपसे सुबहके समय गाना चाहिए । कईं बार कार्यक्रमके समापनके समय भी गाया जाता है। गंभीर ध्वनिके साथ सभी सूरोंसे गाया जा सके ऐसा यह भैरवी राग ज्यादा असरकारक वातावरणका आविर्भाव कर सकता है । जैसे सिद्धोंकी अकल-अपूर्व गतिका वर्णन गंभीर ध्वनिके साथ गानेसे मानो श्रोता भी सिद्धशिला पर स्वयंको स्थित हुआ अनुभव कर सकता है-

"बंधन छेद असंग लही, गति कारण पूर्व प्रयोग कही;
जब गति परिणामका राग गहे, सिद्ध और नहीं तूं और नहीं" । नवपद पूजा-२

सूर-सम्राट कविवरने भैरवीका प्रयोग अनेक स्तवन-पद-पूजादि विविध काव्योमें यथायोग्य रूपमें किया है-जैसे परमात्माके जन्म महोत्सवका वर्णन परिपूर्ण भक्तिभावसे भैरवीमें गाया है

"सुरपति सगरे जिनपति केरा, करे महोत्सव रंगे रे....
सब सुरवर मिलि, सुरगिरि आये, सोहमपति चित्त चंगे रे;
बहु परिवारे जन्म नगरमें, जिनपति नमत उमंगे रे..." स्नात्रपूजा-ढाल-४

कल्याणः— संध्या समय गाया जानेवाला और शांत प्रकृतिके कल्याण थाटके रागको आत्म-परितोष या मंगलके लिए गानेकी परिपाटी है इसके अनेक भेद है—शुद्ध-श्याम-गोरख-यमन आदि-

"रावण अष्टापद गिरिंद, नाच्यो सब साजसंग । बांध्यो जिनपद उतंग, आतम हितकारी"..... स.भे.पू.१६

*माढ़ रागः—*शुद्ध स्वरोंसे गाया जानेवाला यह माढ़ राग विशेषतः राजस्थान-पंजाब आदि प्रान्तोमें गाया जाता है। इस रागसे प्रीति, विरहकी तड़पन, वैराग्य रस आदिमें निखार आता है । यथा-

"प्रीत लागी रे जिणंद शुं प्रीत लागी.....
जैसे धेनु वन फिरे रे, मन बछरे के रे मांह ।
चरण कमल त्युं वीर के रे, छिनक ही विसरत नांहि ।".....आ.वि.स्त.पृ.६१

सुहाः— इसका सीधा सम्बन्ध वैराग्यके साथ माना जाता है ।

"शामरे ना जा रे....
नव भव केरो नेह निवारी, छिनकमें ना छटका जा रे...
हुं जोगन भइ नेह सब जारी रे, अंग विभूति रमा जा रे..." आ.वि.स्त.पृ.९९

खमाजः— लगता है यह संगीतज्ञ सुरीश्वरजीका प्रिय राग होगा । इसका उन्होंने अनेक बार प्रयोग करके अपने आत्मीय भावोंको सहलाया है-कभी बहलाया भी है । कईं बार आत्मीय सुखकी याचनायें भी की हैं; यह राग '(Light Music)'के योग्य है और शृंगारसे शांतरस निष्पन्न करानेका सामर्थ्य रखता है -

"मान मद मनसे परिहरता, करी न्हवण जगदीश....
मनकी तपत मिटि सब मेरी, पदकज ध्यान हिये धरता,
आतम अनुभव रसमें भीनो, भवसमुद्र तरता...."सत्रहभेदी पूजा-ढाल-१

*भोपाली—*यह अत्यन्त सादा राग होने पर भी अति विशाल और अत्यन्त गंभीर राग है । अधिकतर आग्रा घरानेकी गायकीमें इसका विशेष प्रयोग होता था । यह गंभीर प्रकृतिका है और शामको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाया जाता है । कविराजने इसे ताल दीपचंदीके साथ प्रस्तुत किया है श्रीमहावीरजीके स्तवनमें-

दीन दयाल करुणानिधि स्वामी, वर्धमान महावीर भलेरो ।

श्रमण सुहंकर दुःखहरनामी, आर्यपुत्र भ्रमभूत दलेरो..."आ.वि.स्त.७८.

इसी भोपाली रागको "ताल-जलद एकतालमें" गानेसे गंभीरतामें कैसे परिवर्तन आता है देखिये-

"नाचत सुर पठित छंद, मंगल गुन गारी....

सुर सुंदरी कर संकेत,पिक धुनी मील भ्रमरी देत;रमक छमक मधुरी तान,घुंघरु धुनिकारी...." आ.वि.स्त.पृ.६०

श्रीरागः—यह अति भव्य राग है..जो शामको गाया जाता है। इसकी बंदिशमें ही ऐसी भव्यता है कि, श्रोताको आनंदित और प्रसन्न बना देती है । परमात्माके गुण-रूपके वर्णन इसमें किये जाते हैं- जैसे - **"जिनवर पूजा शिवतरु कंद....**

आतम चिदघन सहज विलासी, पामी सत् चिद् पद महानंद....." अ.प्र.पू.-ढाल-३

मालकौशः— शांतरस पोषक, गम्भीर प्रकृतिका यह राग मध्यरात्रिके समय गाया जाता है। कहीं कहीं पर कार्यक्रमके अंतमें-बधाईके रूपमें-भी गाया जाता है। प्रमुखतया समवसरण-स्थित श्री अरिहंत परमात्माकी देशना मालकौशमें ही प्रवाहित होती है।

"न्हवण करो जिनचंद, आनंद भर.....

आतम निर्मल सब अघ टारी, अरिहंत रूप अमंद....." अ.प्र.पू.-ढाल-१.

भैरवीके निकटके रागोमें सिंध-जंगला-कसूरीजंगला-झिंझोटी-जोगिया आदि राग माने जाते हैं। भैरवी गाते हुए तीव्र-मध्यमको पलट लेनेसे 'रामकली'बन जाता है। ये सभी राग पंजाब-राजस्थान या उत्तरी भारतमें अधिकतासे गाये जाते हैं। 'रामकली' प्रायः प्रातःकालमें गाया जाता है।

"सर्व मंगलमें पहलो मंगल, जिनवर तंत्र सु गायो...."नव.पू.१०

इनके अतिरिक्त कालिंगड़ा, जयजयवंती, धनाश्री, पीलू, बड़हंस, बिहाग, परज, बसंत, सोरठ, बरवा, आदि रागोंका भी मुक्त मनसे प्रयोग किया है । इन रागोंको आपने प्रमुखतया पंजाबी ठेका, दीपचंदी, कहरवा, दादरा, रूपक त्रिताल, जलदएकताल आदिके माध्यमसे पेश किया है ।

काव्योंकी रागोंके साथ गानेकी विभिन्न शैलियाँ होती है। एक शैलीमें एक राग अथवा एकसे अधिक राग भी गाये जा सकते हैं- जैसे ठुमरीमें पहाड़ी, खमाज, भैरवी, (जंगला) आदि राग गाये जाते हैं । श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने अपने पद्योमें मराठी-लावणी, गुजराती-गरबा, मुस्लिमोंकी-कव्वाली, पंजाबी-ठुमरी, उर्दू-ग़ज़ल, राजस्थानी-होरी-गुजरी आदि लोकसंगीतके भी विविध प्रयोग किये हैं-यथा-*लावणीः*— **एक-अनेक, सआदि-अनादि, अंतरहित जिनवर वानी ।**

निज आतम रूपे अज अमल, अखंडित सुख खानी...." श्रीनवपद पूजा-२

गरबा - **व्हाला भवि जइयो विमलगिरि भेटवा....**

अरे कांइ भेटिया भवदुःख जाय रे, अरे कांइ सेविया शिवसुख थाय रे....ह.लि.स्त. ५.

ठुमरी - **चलो सजनी जिन वंदनको, मधुबनमें पाप निकंदनको.....**

समेत शिखर पर प्रभुजी बिराजे, दरसन पाप निकंदनको.... ह.लि.स्त. ५०

कव्वाली - **"दंपति जोड़ी अधिक प्यारा, सुंदर वपु अति कर शिंगारा ।**

अंतकाल भई छार....लगाया दिल नेमिके लार...." ह.लि.स्त. २६.

ग़ज़ल - **"सरण लेहि प्रभु थारी, अब मैं, सरण लेहि प्रभु थारी....**

तिमिर मिथ्यातके दूर करणको, थे जाणो सुखकारी....." ह.लि.स्त. ७५

"सुखकी उपमा जगमें नहीं, तिण केवलज्ञानी शके न कही

जब सहज समाधिके रंग पगे, सिद्ध और नहीं तुं और नहीं ।".... न.पू.२

होरी-बसंत होरी-**"बंदे कछु करले कमाइ रे.....जाते नरभव सफल करा रे..बंदे कछु..श्रीनव.पू.-८**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरी - **"तें तेरा रूप न पाया रे अज्ञानी....**

माया प्रपंच ही जगतको मानी, फिर तिनमें ही भूलाया रे...." आ.वि.स्त. १०२.

इस प्रकार सम्राट सुरीश्वरजी श्री आत्मानंदजी म.साने सफल संगीतज्ञकी अदासे राग रागिनियोंका सफल प्रयोग किया है । मानो तत्कालीन समाजको प्रेरणा दे रहे हों कि संगीत ऐसी विधा है, जिससे इहलौकिक आनंदोदधिकी लहरोंका अनुभव होता है और पारलौकिक आत्मानंदके विशाल-अगाध रत्नाकरकी शांत-गंभीर-स्थिर स्थितिकी चिरंजीव प्राप्ति भी हो सकती है ।

निष्कर्षः– साहित्यकी काव्यविधा बिन्दुमें सिन्धुको समाविष्ट करनेकी क्षमता रखती है । सिद्धकवि उमड़ते-घुमड़ते अकथ्य भाव वारिधिकोदो-चार शब्दोमें या दोपंक्तियोंमें ही समाहित कर देता है । कवीश्वर श्री आत्मानंजी म.सा.ने भी अपनी पद्य रचनाओमें आध्यात्मिक-सांस्कृतिक-नैसर्गिक, दार्शनिक-सैद्धान्तिक-आगमिक, सगुण-निर्गुणादि ईश्वर प्रति सर्वस्व समर्पित दास्य या सख्य भक्ति-भावकी स्थूलसे लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म, ऐसी जज़बाती अनुभूतियोंको प्रस्तुत-अप्रस्तुत, अलंकार और छंद, प्रतीक और बिम्बादिके कसबसे सजाकर, विविध राग-रागिणियोंसे शृंगारित करते हुए अपने प्रातिभ काव्य-वैभवको लूंटाकर स्व-परकी निजानंद मस्तीकी आह्लादपूर्ण प्रसन्नताको प्रकट किया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिवमस्तु सर्व जगतः

पर्व तृतीय

श्री आत्मानंदजी महाराजजीके साहित्यका विश्वस्तरीय प्रभाव

'गोभिः प्रबोधयति विश्वशेषमेतत्,
सूरे ! त्वयि स्फुरिततेजसि लोकबन्धो !
मुच्यन्त एव भविनो घनकर्मबन्धै -
श्चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥"

प्रचंड ग्रीष्मकी भयंकर अग्नि ज्वालाओंसे तप्त प्रकृतिकी प्रशान्तता, हिमगिरि शृंगसे उमड-घुमडकर आनेवाली मेघावलिसे बरसती बौछारोमें समाहित हैं । वैसे ही विधिके विधान और प्रकृतिकी प्रेरणाकी अगम्यताके स्वरूपको कथित करनेवाले पुण्यात्माओंके अमृत सिंचन सांसारिक मोहकी मदहोशीमें या बेहोशीमें चैतन्यका संचार करते हैं ।

घनघोर मेघसे बरसता बरखाका जल अभेद्य भूमिको भेदकर, सुषुप्त धरा पर जीवन संचार करते हुए संस्कार बिना-उज्जड-धरतीको हरियाली रूप साडीसे सजाकर नवपल्लवित बसंत-सी प्रमुदित बनाता है, नदी-तालाब-सरोवरादिको छलछलाता है; और कोरी किताब जैसे शून्य आसमानको इन्द्र-धनुषी-आभाकी सजावट देकर शोभायमान बनाता है । जल-थल-नभ-सर्वत्र ही प्रसन्नताकी प्रभावना करनेवाले, सर्वदा अर्पणधर्मी, घटाटोप मेघ--न दिन देखते, न रात--कायाको निथार निथारकर आठों याम बरसते ही रहते हैं-मानो उन्होंने प्रण न ले रखा हों, कि स्वल्प समयमें ही सर्वत्र, सर्वकी--अवनिसे अंबर पर्यंतकी--संपूर्णतया कायापलट कर देनी है । कलका क्या विश्वास!? अंततः उन्हें तो अधिकतम उपकारकी तमन्नाको पूर्ण करते करते अनंतकाल-प्रवाहमें समा जाना है, और अपने पीछे छोड़ जाना है, वनोपवनोंको बहलानेवाली रंगरंगीली मौसमें, आह्लाद और पुलकितताके पुलिंदे !

वैसे ही विचक्षण और विलक्षण विभूतियाँ भी आध्यात्मिक प्रेरणाके पुण्यसंदेशको प्रसारने हेतु पृथ्वीतल पर पदार्पण करतीं हैं । **'शिवमस्तु सर्व जगतः'**के भाव लहराते हुए क्षमा-नम्रता-सरलता-निर्लोभतादिके जयकारोंके गुंजारवसे जन समाजके जीवनोद्यानको मुखरित करके, मानवभवके साफल्यको समाहित करनेवाली आराधनामय लताकुंजोंको, अनेकविध पुण्यपुष्पोंसे सजानेकी कर्मठता रूप, स्वजीवनसे अधिकाधिकतम परोपकार करते करते आत्मीय पुण्यप्रभाको प्रसारित करके, अनादि-अनंतकालीन स्वरूपवाले संसार प्रवाहमें अंतर्धान हो जाती है। रह जाती है केवल उन पुष्पोंकी सुवास, उस अस्ताचलके सूर्यकी आभा ।

मेघ और महात्मा--दोनों समस्वभावी-परार्थहेतु प्राणोत्सर्ग करनेवाले नयनगोखसे अमृतधारा बरसानेवाले, अन्यके दिलमें संजीवनीके सारतत्त्वको समा देनेवाले आधिभौतिक और आध्यात्मिक वैभवप्रदाता, श्री और सौंदर्यके स्रोत-विद्युल्लताकी चमक और श्रुतभास्करकी दमकसे सर्वत्र प्रभाव, प्रताप, प्रभविष्णुताके प्रवर्तक-मुमूर्षुमें जिजीविषा और दीन-हीनमें जिगीषाके प्रकटकर्ता होते हैं । विरल विभूति--पुण्यवान महात्मा--धर्म, समाज, देश, राष्ट्र और विश्वमें ऐहिक एवं पारलौकिक सुखास्वादके अनुभव कराते हुए विद्या और वैराग्यको उज्जवल करते हैं । इस पर भी जैन साधुका विशुद्ध वैराग्य--मोमके दांतसे लोहेके चने चबाने सदृश ! अतः ऐसी उत्कट और उच्चादर्शमय साधुता ही जैन साधुको विश्वके किसीभी धर्मके साधुसे परमोत्कृष्ट रूपमें प्रदर्शित करती है। उनका वैराग्य वासित व्यक्तित्व, विराट महार्णवके मोती-प्रापक मृत्युंजयका अहसास दिलाता है । जैन साधुके तप-त्याग, वैराग्य-विद्वत्ता, परके प्रति अप्रतिम कोमलता और स्वकर्मयुद्धमें पराकाष्ठाकी कठोरता, जीव-मात्रके प्रति हार्दिक प्रेम और सहानुभूति आदि आकर्षक गुणोंके संगमने अनेकानेक जैनेतर समाजको भी आकर्षित किया है, मानो उनके भुवनमोहक स्वभाव स्वरूप रेशमके धागेके बंधनोंमें उन्हें जकड़ न रखा हों ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन जीवनोपयोगी सिद्धान्त--जैन सिद्धान्तोंका, आचार-विचारोंका, जनजीवनोपयोगी एवं मंगलमय और आत्मकल्याणकारी प्रतिबोध-इतिहासमें अखंड रूपसे प्रवहमान होता रहा है । इन्हीं तथ्योंको **'श्री आत्मानंद जन्म शताब्दि स्मारक ग्रन्थ'**में प्रस्तुत किया गया है -

"The Jainism occupies an important place among the ancient religious of the world. Its philosophical tenets, ethical rules and theories of logic have a peculiar aspect of their own, which speak its antiquity and universality. In theory as well as in practise, Janism maintains a broad angle of vision and embraces in its fold all the living creatures desiring to attain emancipation. It lays down rules for the upliftment of all the living beings from the smallest insects down to the highly developed man. For the plain fact is that the gospel of Bhagwan Mahavira was expounded equally for all people without any distinction of caste or creed. In this sense Jainism can well claim to become a Universal religion. Its massage of "Ahinsa Parmodharm" (non violence) is a recognition of Universal brotherhood of not only man but also of all living creatures....

Jains have a philosophy of their own, which can solve all the knotty problems of this world more clearly than any other philosophy. This philosophy can be followed and practised at all times, at all places and under all circumstances, by all sorts of people, high or law, literate or illiterate..... Almost all the Jain Shastras bear testimony to the fact, That Jainism was universally practised by all kinds of people--- The Aryans and the Non Aryans..... All this above facts go to prove that Jainism is nothing but a Universal religion" [2]

यहाँ हमें अनुभूत होता है कि प्राचीनकालमें या अर्वाचीनकालमें उत्तम साहित्यकार साधुओंकी समाजसेवाने जैनधर्मको जीवंत-जागृत और ज्वलंत बनाये रखा है । उस परम्परामें एक कड़ी बनकर युक्त होनेवाले--साहित्यकार, साधु और समाजसेवी--त्रिवेणी संगमको प्राप्त और मानवताकी उच्च श्रेणि पर स्थित आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम. द्वारा विश्वको अनेकविध सेवायें--सदाचार और चारित्रके विद्वत्तापूर्ण संशोधन, स्पष्टीकरण और समर्थन रूपमें--प्राप्त हुई है ।

निरामय समष्टिका स्वप्न-- **"कीड़ा जरा सा, और पत्थरमें दर करें !**

इन्सान क्यों न दिले दिलबरमें घर करें !?

इस विचार-कर्णिकाको प्रसारित करनेवाला केवल तीन बीसियोंका--प्रगतिकी पराकाष्ठाको प्राप्त--जीवन; **प्रथममें आत्माराम, द्वितीयमें संत आत्मारामजी म. और तृतीयमें श्रेष्ठ संविज्ञ साधु 'आनंदविजय'से सुरीश्वर पदासीन श्री आत्मानंदजी (श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी) म. सा.।** अनेक प्रत्यवायोंके प्रतिरोध करके सच्ची आत्मश्रद्धाके मधुर फल प्राप्त उनका जीवन था; जिससे अनुभूत होते हैं--अखंड-वज्रांग-ब्रह्मचर्य पालनेसे, कदम कदम पर चमत्कार सर्जन; कर्णगोचर होता है,पाषाणमें भी पुष्पोंको पैदा करनेवाली-पुरुषार्थी-प्रचंड साधुताका निर्घोष; दृष्टिगोचर होती है, भीरु-निर्माल्य-और आडम्बर युक्त साधुताके उस युगमें महान-त्यागी-सत्यवीर और सम्यक् दृष्टि जोगंधरकी आत्मिक साधुता !- जिसके संबलसे आध्यात्मिक दारिद्र्यको दूर करनेवाली धार्मिकताकी उदार सखावत; हठाग्रही-एकान्तवादी-दिलोदिमागको पलट देनेवाला सर्व समन्वयवादी अनेकान्तवादका अभ्युदय; और अन्यकी समुन्नतिमें असूयादि छिद्रान्वेषी भावसे परदोष प्रकाशक-तेजोद्वेषिताको जलांजलि देनेवाले सहानुभूतिपूर्ण, जन जनके आत्मकल्याणकी वृत्ति-प्रवृत्ति आदि द्वारा जैनधर्मके दो महान और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तके--जीवमात्रके प्रति त्रिविध त्रिविध सद्भावक अहिंसा और अन्य धर्मके प्रति त्रिविध त्रिविध सद्भावक अनेकान्तवादके--आचरणकर्ता, परमोपकारी, अवधू आचार्य प्रवर श्रीआत्मानंदजीम.सा.ने जडवादमें डूबे जन-जीवनके उद्धार हेतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणमयी बीनकी स्वरलहरी पर झूमनेवाले जैनधर्माधारित सैद्धान्तिक साहित्यको झंकृत किया है; तो प्रवचनोंमें बहनेवाले कर्मनिर्जराके अनेकविध प्रवाहोंसे, शून्य-जड़वादियोंकी आत्मिक धराको सिंचन करते हुए उन्हें नव पल्लवित किया । "Swami Atmaramji Maharaj was a Sage and Seer. He could see through his penetrative eyes, the danger ahead. His preachings created a revolution in the community and generated vital energy for many a useful work. His efforts led to the resuscitation of Jain religion, art and literature about which very little was known before him."[3]

एकमें अनेक-अनेकमें एक–उनका 'एकमें अनेक और अनेकमें एक'की तासीरवाला भव्य-विशद-वैविध्यपूर्ण साहित्य शोभनीय बन पड़ा है । उसमें अंतर्निहित उनके व्यक्तित्वके भिन्न-भिन्न स्वरूप दर्शनसे पाठकगण आश्चर्यान्वित हो जाते हैं । जैसे-कभी अनुभूत होती है साहसिकता तो कभी शासकता; कभी तार्किकता और कभी तात्त्विकता, कभी कठोर सैद्धान्तिकता और कभी काव्यकी कमनीय सौंदर्यता, कभी अहिंसा हेतु निर्भीक सहनशीलता तो कभी अन्याय विरुद्ध संघर्ष, कभी भारतीय सांस्कृतिक चेतनाके लिए रूढ़ि परम्पराके विरुद्ध बुलंद वाक्धाराका प्रवाह और कभी जन साधारणकी अज्ञानताके लिए आक्रोशयुक्त अभिव्यक्ति, कहीं अध्यात्मकी गूंज तो कहीं फकीरीकी आह्लेक, कहीं विभाजित मानवताको एक जंजीरमें बांधनेवाली अनेकान्तिक दार्शनिकता तो कहीं प्रचंड़-प्रतापी-जातपाँतसे निर्मुक्त स्वैरविहारी-स्वतंत्र विचारधारा, कहीं विकसित वैराग्ययुक्त योगका अधिकार और कहीं वाणीके सामर्थ्यसे सत्यकी स्थापनाकी ललक, कहीं प्राचीन-प्रभाविक पूर्वाचार्योंकी आभाका अवधार दर्शित होता है, तो कहीं नूतन अन्वेक्षणोंमें वेष्टित अनेक सिद्धान्तोंके संरक्षणकर्ताकी अर्वाचीनता-विचक्षण-तीक्ष्ण दूरंदेशीता प्रदर्शित होती है ।

जनसमाजको लाभ-इसके अतिरिक्त उनके प्रत्यक्ष परिचयमें आनेवाले दिगम्बर-श्वेताम्बर-स्थानकवासी; थियोसोफिस्ट-वेदान्ती-आर्यसमाजी-ब्रह्मसमाजी; मुस्लिम-शीख-ईसाई आदि किसी भी धर्म-जाति-पंथ-कौम-देश या राष्ट्रका व्यक्ति हों; अपने मनकी अनेकविध बौद्धिक-तार्किक-शास्त्रीय-आध्यात्मिक-धार्मिक-नैतिक-आर्थिक-सांसारिक विषयक शंका-संशय-समस्याओंका संतोषप्रद-मनभावन समाधान पाकर निहाल हो जाता था । जंगली भील-डाकू हों या अनपढ़ आहिर; साहित्यका शिरताज़ हों या सल्तनतका–गुरुदेव सभीको समान रूपसे प्रेमका प्याला पीलाकर तृप्त करते थे, स्नेहकी सरवाणीमें स्नान करवाकर शांत एवं शुद्ध बनाते थे । परिणामतः इन हृदयस्पर्शी कल्याण कामनाके भावोंसे सर्वके दिल बाग-बाग हो जाते थे । विशेष रूपमें हिन्दु-जैन-बौद्ध धर्मोंके तात्त्विक भेदोंको निरूपित करनेके साथ ही साथ अनेकान्तके सहारे उनकी-परस्परकी विसंवादिताको समन्वयमें पलटनेके अद्भूत मार्गको प्रशस्त करनेवाले समर्थ सुरीश्वरजी जन-समाजको बुलंदीका बिगुल बजाकर एकताकी शक्तिको समझाकर, मानवमात्रको मुक्तिमार्गके पथिक बननेका आह्वान करते हैं । इसीमें ही उनके हृदयकी मानव-मानव प्रति अनुकंपाके दर्शन होते हैं । 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की छलकती भावना दृष्टव्य है -

"यह मेरा देश है, यह तुम्हारा–विचार,
संकुचित हृदयवाले व्यक्तियोंके होते हैं !
उदारचेताओंके लिए सारा विश्व ही एक कुटुम्ब है ।" -

श्री शशिभूषण शास्त्रीके विचारोंसे - "न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.का जीवन-उनके विचार तथा आचरण बहुत उच्च प्रकारके दिखाई देते हैं ..... आप एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे । साम्प्रदायिक संकीर्ण विचारोंका आपके विशाल हृदयमें वास नहीं था..... आपका उदेश्य जीव-मात्रका कल्याण करना था । सार्वभौम जैनधर्मकी शिराओंको समस्त संसारमें प्रचारित करना ही आपका ध्येय था । वे उन पथ प्रदर्शकोंमें से एक थे, जो समाज परिवर्तन और उन्नतिका मानचित्र स्थापित कर जाते हैं, जिसे संसारके मानवमात्रको कार्यान्वित करना है और स्व-पर--समस्तका कल्याण करना है ।"[4]

प्राचीनताके प्रेमी–पंच परमेष्ठिमें गुरुत्रयीके पदयोग्य–विशुद्ध साधु, सुविहित एवं कुल उपाध्याय प्रभाविक व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतार्थ आचार्य पदयोग्य–सुरीश्वरजीकी विचारधारा जितनी भव्य थी–आचरण उतना ही महान था । उन उत्तम विचारोंको अपनी उपदेशधारामें निरूपित करते हुए जीव स्वरूपकी प्ररूपणा द्वारा वर्तमान जीवविज्ञानकी अपूर्णता; पंचास्तिकाय, द्रव्य-पर्यायादिके परिचय करवाते हुए, वर्तमान भौतिकशास्त्रादि सर्व विज्ञानोंकी पा-पा पगली; चौदह राजलोक-द्वीप-समुद्रादिके स्वरूपको वर्णित करते हुए वर्तमान भूगोलकी अस्पष्टता; 'सूर्यप्रज्ञप्ति' आदि सूत्रोंके खगोलिक तथ्योंके साथ वर्तमानकालीन खगोलादिकी असमंजसता आदि अनेक विषयोंके साथसाथ प्रमुखतया 'परम अहिंसाके' उपलक्ष्यमें अन्य धर्मोंके 'दयाधर्मकी' तुलना करके जैनधर्मकी परापूर्वसे प्रवाहित उत्तमविद्याओंका-शाश्वत सिद्धान्तोंका और मानव समाजोपयोगी विचारश्रेणियोंका वर्णन करते अघाते नहीं थे । शास्त्राध्ययनकी *आवश्यकता*–सम्पूर्ण सत्यके संशोधकके विस्तृत-गहन-सापेक्षिक-समीक्षायुक्त अध्ययनके पीछे छीपा राज़ हमें **"चिकागो प्रश्नोत्तर**'में व्यक्त उच्चारणोंमें स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है–यथा–**"नाना प्रकारके धर्मशास्त्रोंका अवलोकन करनेकी आवश्यकता इसलिए हैं, क्योंकि, पक्षपात रहित होकर-मध्यस्थ भावसे सर्व मतोंके शास्त्रोंका अध्ययन करके तत्त्वविचार करनेसे जीवको सत्यमार्गकी प्राप्ति होती है ।"**[५]

इन्हीं उद्‌गारोंके लिए "श्री आत्मानंद जन्म शताब्दि स्मारक ग्रन्थमें" स्वतंत्र विचारधारा प्रकट की गई है-दृष्टव्य है–What a liberality of views ! What a mental poise and a carving for the truth! But what about our selves ? We know not our own religion, and our own faith is shaking for that reason. To study comparative religion and than to turn, by our sweet and intelligent persuasion, the non-believers into Jains would mere dream for us all"[६]

उनके हृदयमें केवल जैनधर्मकी उन्नति और जैन समाज-सुधारकी ही लगन या तडप थी, ऐसा नहीं था, लेकिन समस्त मानव जातको उन्नत देखनेकी उत्कट आकांक्षा थी । वे मानते थे कि, किसी मत या पंथके प्रचारमें ऐसे सत्य और ईमानदारी होने चाहिए, कि जिससे मानवताके व्यापक नियमोंकी उपेक्षा न हों अथवा विशाल मानव जातिके हितके प्रतिकूल कुछ भी न हों, लेकिन सबकुछ मनुष्य जातिके सुख व कल्याणको बढानेवाला ही हों-यथा-**"इसलिए सर्व मतवाले अपनी जाति, अपने मतमें दर्शाये अहितकारी कामोंको छोडकर अपने आपमें योग्यता प्रकट करके सद्‌धर्मके अधिकारी बनें । सर्व पशु-पक्षियों और मनुष्यों उपर मैत्री-भाव करें । देवगुरुकी परीक्षा करके यथार्थ धर्मकी प्राप्ति करें"**।[७] इन वाक्योंसे प्रस्फुटित होती है उनकी जीव मात्रके प्रति उदात्त और उदार कल्याण कामनाकी भावनायें ।

इन कल्याण कामनाओंमें अंतर्निहित उनकी विश्व वत्सलता, जैनधर्ममें आवश्यक अर्वाचीनयुगीन परिवर्तन और समस्त मानव जातको योग्य मार्गदर्शन देकर विश्वमें सुख-शांति स्थापित करनेकी विशाल दृष्टि निम्नांकित रूपमें दृश्यमान होती है ।- "Shree Vijayanand Suri was totally modern in his out look, and did not the evil customs of his day ..... He wished that the Jain society should march along wth the time, it should educate it self, organise it self and act and preach the doctrine of Ahimsa to every person. For Mr. V. R.Gandhi's efforts, at Chicago, Jainism would have been little known to the other religious minded people of the world. Now, western scholars come to India to study Jainism. Could we establish a grand research library, where these foreigners and our own scholars may be able to dip, deep into the ocean of our ancient literature and bring out for the world pearls of purest ray serene."[८]

उपरोक्त प्ररूपणामें सक्षम सुरीश्वरीजीके दो विरोधाभासी व्यक्तित्व–प्राचीनताके प्रेमी एवं अर्वाचीन अवधूका परिचय प्राप्त होता है । इस विलक्षणतामें जो असाधारणत्व और विस्मयता छिपी है, वह यह है कि, इसी विरोधाभासी व्यक्तित्वके कारण ही वे एक साथ-एक समय, एक स्थान पर पुरातन सौंदर्यको यथास्थित रखते हुए, उन्हीं तथ्योंको अद्यतन अवधारोमें ढालकर सजानेमें सफल हुए हैं । इसीके बल पर उन्होंने परस्पर धर्मोंके सद्‌भाव और जातीय एकताका बिगुल बजाकर एक और अखंड विश्वके एवं समुन्नत स्वाधीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्रके तथा करुणा सभर प्रेमभाव और तितिक्षा रूपी त्रिवेणीकी तरलतामें सूक्ष्म जंतुसे समस्त जन-जन पर्यंतके साथी बननेमें सफलता पायी थी ।

आचार्यश्रीजीका मिशन–उनकी पैनी दृष्टिमें सांस्कृतिक चैतन्यके अभावमें, भरपूर भोग विलासोंके संध्याकालीन मनमोहक रंगोंमें परमसुख एवं आनंदके आभासका चित्र झलकता था । तत्कालीन विभिन्न क्लिष्ट-कष्टदायी-कंकासी परिस्थितियोंमें, हिंसादि अनिष्ट मुक्त जीवन स्वप्नील कल्पनाओंसे भी परे था । अनेक रूढियों और प्राचीन रिवाजोंसे ग्रस्त समाजमें अज्ञानताके कारण दीन-हीन-दयनीय जीवनके सुधार और उद्धारकी अत्यावश्यकता थी। उनके ही शब्दोंमें–**"प्राणी-मैत्री, मानव-कल्याण, समाजोद्धार, राष्ट्रीय एकता और विश्व बंधुत्व–ये पंचामृत हैं, जो मानव समाजके स्वास्थ्यके लिए संजीवनी औषधि तुल्य हैं ।"**[९]–इन पंचामृतोंको कथित करनेवाले वचनामृत सत् वाणी स्वरूप भी है और सत्य स्वरूप भी । ये अमृतौषधियाँ हैं राजरोग या जीवलेवा बिमारियोंके लिए, जो जनजीवनकी स्वस्थताको कुरेद कुरेदकर विनष्ट कर रहीं हैं ।

समाजोद्धार और राष्ट्रीय एकता–उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें समाजोद्धारके लिए विशिष्ट अभिगमोंको दर्शाते हुए अनेकबार शादी-ब्याहोंमें होनेवाले फिज़ूल खर्च, भोजन समारंभोंके ठाठ और दहेज़ादिमें व्यय होनेवाले निरर्थक धनराशिको जरूरतमंदोंके लिए अर्पण करनेकी अपील की है । तो शादीकी योग्यताकी चर्चा करते हुए शादी करनेवाले दुलहा-दुलहिनकी उम्रादि योग्यताकी विशद प्ररूपणा की है । **"जैनागमोंमें तो "जोवणगमणुपत्ता" इति वचनात्, जब वर-कन्या यौवनको प्राप्त होवे तब ही विवाह करनेकी प्ररूपणा है । 'प्रवचन सारोद्धार'में लिखा है कि, सोलह वर्षकी स्त्री और पचीस वर्षका पुरुष-तिनके संयोगसे जो संतान उत्पन्न होवे, सो बलिष्ट होवे हैं इत्यादि मूलागमसे तो बाललग्नका और वृद्धके विवाहका निषेध सिद्ध होता है ।"**[१०]

होशियारपुर श्री जिनमंदिरकी प्रतिष्ठावसर पर अपने विचारोंको प्रस्तुत करते हुए आपने फरमाया था -**"बालविवाहकी प्रथा और परदेकी कुप्रथा मुस्लिम शासनकालमें प्रचलित हुई । इससे पहले इन दोनों बातोंको कोई नहीं जानता था । अब, वह समय व्यतीत हो चूका है । इसके साथ ही उन प्रथाओंको विदा कर देना उचित है । बालविवाह सर्वनाशका कारण हैं । इससे मस्तिष्क और शरीरका विकास रुक जाताहै । कई व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । जब तक वीर्य परिपक्व न हों, और पढ़ाई समाप्त न हों, तब तक उनका विवाह न करें ।"**[११]

सामान्यतया समाजके साधारण गृहस्थोंके लिए उनके दिलमें अपार करुणा थी । जीवन यापनके जटिल झमेलोंसे दूर रहकर अत्यन्त सरलतम जीवन बसर करनेके लिए उनका सदैव आग्रह रहता था। उनका संक्षिप्त सारभूत उपदेश यही था कि -**"अपने खर्चको हंमेशा आमदनीसे कम रखो, सच्चाई और ईमानदारीसे सब काम करो, किसीको यथासंभव दुःख न दो - यही धर्मका निचोड़ है ।"**[१२].

समस्त राष्ट्रीय जनजीवन पर दृष्टिपात करने पर आचार्य प्रवरश्रीने निदान किया था कि, अज्ञानता ही इन सर्व रूढ़ियोंकी बुनियाद है । अतः उन्होंने उनकी अज्ञानताके अंधकारको अदृश्य करनेवाले आदित्यके--साहित्य सृजन, प्रवचनधारा और स्वयंकी आचरणा रूपी–प्रकाशसे प्रकाशित करके ज्ञानोज्ज्वलता प्रदान करनेका भरसक प्रयत्न किया । शिक्षाका प्रचार होनेसे ही धार्मिक और व्यावहारिक उन्नति संभव हो सकती है–ऐसा सोचते हुए उन्होंने अपनी अंतिम क्षणोंमें भी अपने पट्टधर श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजीम.सा.को इस बातका परामर्श दिया था कि, अगर सरस्वती मंदिरकी स्थापना न हुई तो अबूध-अज्ञान-भोले समाजका बेहाल हो जायेगा; अतः मेरी यही कामना है कि, सरस्वती मंदिरोंकी स्थापना करके ज्ञानका प्रचार और प्रसार करना चाहिए । **"भारत देश आज तक अपनी संस्कृति और सभ्यताकी रक्षा किसके बल पर कर पाया है? - क्या आपने कभी सोचा है? ..... मुझे तो स्पष्ट कहना पड़ेगा कि वह बल हमारे ज्ञानका है, जो हमें अपने इतिहास-दर्शन-साहित्य आदिसे प्राप्त हुआ है ।..... यदि सच पूछा जाय तो इस जागृतिका प्रारम्भ न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.सा.से ही हुआ है । आपने समाजकी दशाको देखकर यह खूब विचार लिया था कि यदि यह दशा रही तो कुछ दिनों बाद न जाने क्या से क्या हो जाय ? फलतः समाजकी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागृतिके लिए शिक्षा-प्रचार, संगठन आदि कार्योंके लिए समाजका पथ प्रदर्शन किया ।"[१३]

श्री आत्मानंदजीम.सा.ने स्वयं भी ज्ञान-दानके लिए जीवनके अंतिम समय तक अनवरत साहित्य सृजन-कार्यको सक्रिय रूपमें जारी रखा । साथमें इस साहित्य सर्जनका माध्यम भी हिन्दी रखा । उन दिनों हिन्दी-खडीबोलीका आकार–रूप सज्जादि–नवसर्जनको प्राप्त हो रहा था । उन्होंने खड़ी बोली–हिन्दीके गद्य रूपकी प्रमार्जनामें अपना विशिष्ट योगदान दिया था । यद्यपि, उन दिनोंमें हिन्दीको राष्ट्रभाषाका बहुमान नहीं मिला था, लेकिन, हिन्दी भाषियोंकी बहुलताका अनुभव करते हुए उन्होंने हिन्दीमें रचना करनी उपयुक्त समझी, जो शीघ्र ही लोकभोग्य हो सके । इस प्रकार राष्ट्रीय एकताके बीज उनके जीवन व्यवहारमें भी हमें प्राप्त होते हैं । उनके प्रवचनोंका सूर भी यही था, **"भिन्न भिन्न जातियाँ और संप्रदाय सब एक ही वाटिकाके फूल हैं। कोई कारण नहीं कि उनके पारस्परिक संबंध विच्छिन्न रहें । याद रखो, आप तभी बलवान और दृढ़ बनोगे जब व्यर्थ मतभेद दूर करके परस्पर संगठन व ऐक्य स्थापित करोगे..... पारस्परिक एकतामें लाभ है और उसीमें शक्तिका रहस्य हैं ।"**[१४] अतः हम अनुभव कर सकते हैं कि श्री आत्मानंदजीम.सा. केवल धार्मिक नेता ही नहीं लेकिन समाजके उद्धारक और सुधारकोंके अग्रदूत थे, तो राष्ट्रीय एकताके उद्घोषक भी थे ।

प्राणी मैत्री–**"अप्पा सो परमप्पा"** विश्वके समस्त जीव जगतके प्रति आत्मीयताका भाव, निःस्वार्थपूर्ण सकल जीवराशिके प्रति कल्याण कामना ही प्राणी-मैत्री है । ऐसी 'प्राणी-मैत्री'के भाव केवल त्रिविध त्रिविध–संपूर्ण रूपेण-अहिंसामें समाहित है । **"मित्ती मे सव्व भूएसु"** की भावनाको चरितार्थ करके एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीवोंकी मैत्री-पूर्ण रक्षा करनेवाले जैन सिद्धान्तको विश्व व्यापक बनाने और सर्व जीवोंको अभय प्रदान करके स्वयंको नीड़रताकी प्राप्ति करानेवाली परस्परकी पूरकताको प्रस्तुत किया है । किसीभी जीवका घात होनेसे उस जीवसे वैर निर्माण होता है, पुनः वह वैरभावना परंपरासे विकसित होती जाती है । मरनेवाला जीव प्रबल शक्तिवान् बननेके पश्चात् परंपरित संचित वैर-भावके कारण कभी न कभी, कहीं न कहीं, किसी प्रकारसे संयोग-निमित्त प्राप्त होते ही हमारा घात करता है और वैर तृप्तिका अनुभव करता है, जो प्रायः तृप्ति न बनकर परम्परित वैर वसूलीकी तड़प बन जाता है । यही कारण है कि हमें सदा-सर्वसे इर रहा करता है ।

उपरोक्त 'अहिंसा' सिद्धान्तको स्पष्ट करते हुए जिनशासन उद्घोषणा करता है कि, जो जितना अहिंसक होगा वह उतना ही नीड़र होगा । अतः किसी भी जीवको–छोटे से छोटे या बडे से बडे जीवको घातसे-मृत्युसे बचाना ही स्वयंकी आत्माको घातसे बचानेकी ही प्रक्रिया स्वरूप है; जिसका विवेचन-प्ररूपणा भी विश्वशांति और विश्वसुखाकारीके बीज सदृश माना गया है । इसी उद्देश्यको लेकर श्री आत्मानंदजीम.सा.ने प्रायः अपने मुख्य सभी ग्रन्थोंमें ऐसी परिपूर्ण अहिंसाकी प्ररूपणा की है—'जैन तत्त्वादर्श'में धर्म-स्वरूपका वर्णन करते समय 'अहिंसा पालन'को समझाया है । 'नवतत्त्व संग्रह'में कर्मके बंध-आश्रव-निर्जरा तत्त्वकी प्ररूपणान्तर्गत "हिंसा-अहिंसा'का स्वरूप स्पष्ट किया है । 'अज्ञान तिमिर भास्कर'में वैदिकी हिंसाके हिंसक स्वरूपको स्पष्ट करते हुए उससे कैसे बचा जा सकता है, इसे दर्शित करवाते हुए 'अहिंसात्मक आत्मिक यज्ञ'के स्वरूपको प्रदर्शित किया है; जबकि 'तत्त्वनिर्णय प्रासाद'में 'अयोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका' और 'लोकतत्व निर्णय'के बालावबोधका विवरण प्रस्तुत करते हुए, एवं मनुष्यके 'सोलह संस्कार' वर्णनान्तर्गत अंतिम संस्कार वर्णनमें भी, जाने-अनजानेमें हुई हिंसाके लिए निंदा-गर्हादिकी विस्तृत प्ररूपणाका प्रयुंजन हुआ है । 'सम्यकत्व शल्योद्धार'में 'मुंहपत्ति-निर्णय'के विश्लेषण प्रसंगमें और 'चिकागो प्रश्नोत्तर'में सर्वधर्म समन्वयी–विश्वधर्मके स्वरूप वर्णनमें; तथा 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'में विभिन्न प्रश्नोत्तरांतर्गत हिंसा विषयक शंकाओं एवं समस्याओंके समाधान युक्त प्रत्युत्तरोमें अहिंसा विषयक विवेचन हुआ है । **"अगर संसारका मानव समाज अहिंसा तत्वको जान लें, उसके यथार्थ स्वरूपको पहिचान लें तो जगत की शान्ति भंग होनेका अवसर ही प्राप्त न हों, और न निर्बलों पर अत्याचार एवं अन्याय करनेका मौका मिले । अपने अनुचित**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थके लिए दूसरोंको कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है ..... जैनधर्मके प्रवर्तकोंने अहिंसाके अंग-प्रत्यंगका अतिसूक्ष्म और अति विशद विवेचन किया है; और यह सिद्ध किया है कि अहिंसाका परिपालन सभी परिस्थितियोंमें– क्या धार्मिक क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक एवं राष्ट्रीय–किया जा सकता है, उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती ..... जैनधर्मके सभी सिद्धान्त-आचार-विचार अहिंसा तत्त्वके ऊपर रचे गये हैं ..... जैनधर्मका अहिंसा तत्त्व स्थूल जगतके परे सूक्ष्म जगत तक जाता है .... इस धर्मके प्रवर्तकोंने इसका कथन मात्र ही नहीं किया है, बल्कि अपने जीवनमें व्यवहार्य एवं आचरणीय बनाया है । ..... सर्वदा "सत्त्वेषु मैत्री"की उत्कृष्ट भावनाको ध्यानमें रखनेवाले महाव्रतधारी साधु ही "अहिंसा"का पूर्णतः पालन कर सकते हैं ।"[१५]

इस अहिंसा रूप प्राणीमैत्रीको राष्ट्रीय-राजनैतिक-विश्वोपकारक सिद्ध करते हुए लिखते हैं - **"अहिंसा राष्ट्रकी पराधीनतामें कभी कारणभूत नहीं हो सकती, क्योंकि पराधीनताके साथ अहिंसाकी व्याप्ति नहीं है । प्रत्युत, अकुशल एवं अकर्मण्य राष्ट्रीय कर्मचारियोंसे देश परतंत्र हो जाता है ।"**[१६] **"गृहस्थ राष्ट्रीय एवं राजनैतिक कार्योंको अहिंसक रहकर भी भली प्रकार कर सकता है । बल्कि अहिंसक मनुष्य नीति एवं दक्षताके साथ कार्य करनेमें समर्थ होगा, जबकि हिंसक, उन कार्योंको अपने स्वार्थ एवं कुटिलतासे करेगा । अहिंसक सर्वदा प्रजाजनके हितके लिए अपने स्वार्थोंको ठुकरायेगा, दुष्टोंको निग्रह करेगा, साधुजनों पर अनुग्रह करेगा । ऐसी हालतमें अहिंसाको भीरुता-कायरताकी जननी कहना नितान्त गलत है ।"**[१७]

इस भावनाको आचार और विचारसे प्रचारित करनेवाले जैनसाधु प्राणीमात्रके मित्र हैं, और विश्वमें अनायास ही सम्मानित स्थान प्राप्त करते हैं । लेकिन तत्कालीन समाजकी दयनीय स्थिति, जो विशेषतः अज्ञानतासे ही प्रकट होकर पनपी और प्रसारित हुई, परिणामतः अनेक साधु स्वांगमें भटकते फकीर बाबाओं और चिलम-गांजेकी महफिलकी मौजें माननेवाले महंतादिकी पापलीलाओंको एवं उनसे फैलायी गई अव्यवस्थाको उद्घाटित करके साधुओंके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं - **"साधु उसीको होना चाहिए जो तन मात्र वस्त्र और भूख मात्र अन्न लें, शील पालें और लोगोंको हिंसा-झूठ-चोरी, कपट-दंभ-छल अन्यायी व्यापार, अनुचित प्रवृत्तियाँ आदिसे उपदेश द्वारा बचायें, नहीं तो साधु होनेसे लाभ नहीं ।"**[१८]

मानव-कल्याण और विश्व-बंधुत्व :–पंचामृत भावनाके अंतर्गत, मानव कल्याण और विश्व बंधुत्वकी भावनाको क्रियान्वित करने हेतु उन्होंने शताब्दी पूर्व अमरिकाके शहर चिकागोमें आयोजित 'विश्व धर्म परिषद'में श्रीयुत् वीरचंदजी गांधीको अपने प्रतिनिधिके रूपमें प्रेषित किये; जिन्होंने वहाँ मानव मात्रके जीवनोपयोगी–वैयक्तिक, नैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रगतिके अंतर्गत सभ्यताकी प्रगति और संस्कृतिमें सुधार करनेवाली मानवकी सुषुप्त कार्यशक्तियोंकी जागृतिकी प्रक्रिया प्रदान करनेवाले विचार सैद्धान्तिक रूपमें प्रस्तुत किये हैं ।

शारीरिक विकारोंकी द्योतक सभ्यता मानवको भौतिकताकी चकाचौंध दर्शाती है । व्यक्तिको पूर्णतया बहिर्मुख बना देती है, अतः उसे भौतिक या अपराविद्या कहा जा सकता है; किन्तु इसे स्वच्छ-शांत-सुष्ठु बनानेवाली प्रगतिकारक सभ्यताके अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक, नैतिक-राजनैतिक, वैज्ञानिक-कलात्मक-शिल्प स्थापत्य युक्त विविध कला-कौशलादिमें स्व-पर हितार्थ, नित्य नूतन आविष्कार और परिष्कार, संशोधन और सुधार, धार्मिक सिद्धान्तोंकी स्थिरता स्थापित करते हुए सात्विक गुणोंकी समृद्धिके लिए क्षमाशीलता-नम्रता-विनयशीलता-परोपकारिता-'स्वस्थ तनमें स्वस्थ मन'को समझानेवाली शैक्षणिकता आदिको समाविष्ट किया जा सकता है, जिससे उत्तम सुखाकारी युक्त उच्च जीवन स्तरकी प्राप्तिकी संभावना उद्भावित हों । ऐसी सभ्यतापूर्वक, सहिष्णुतासे समन्वय साधित करते हुए प्रत्येक सद्धर्मके प्रति सद्भाव (जिसकी जड़ जैनोंके अनेकान्तवादमें अंतर्निहित है) और उसी शृंखलाको विस्तीर्ण करते हुए अध्यात्मकी, आत्मीय (या आत्मिक) ज्ञानकी, और परंपरासे शाश्वत सुखकी प्राप्ति–इसे ही संस्कृतिमें सुधार रूप माना जा सकता है ।

संस्कृतिसे मानवकी आत्माका उत्थान-उत्कर्ष-अभ्युदय प्राप्त होता है, क्योंकि संस्कृति ही चिरंजीव होती है-सभ्यता परिवर्तनशील । अनेक सुसंस्कारोंसे सुसज्जित संस्कृति मानव चेतनाको पुष्ट करती है, और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंख्य काल तक पथ प्रदर्शन करके अनागत आपत्तिका सामना करनेका संबल प्रदान करते हुए आत्मिक धर्मोंकी अनूठी सामग्रियोंसे सम्पन्न बनाती है । संस्कृति वह होती है जो आचार-विचारोंकी, वाणी-वर्तनकी, तन-मनकी एकरूपता साधनेमें सहयोगी हों; जो जीवके स्वात्म व्यक्तित्वको विश्वके प्राणी-मात्रमें विलीन करनेमें या समष्टिमें समाहित करनेमें तन्मय बना दें—जैसे भक्त, भगवंत-भक्तिमें तन्मयता प्राप्त करते हैं । साथ ही 'अप्पा सो परमप्पा'के विशद दृष्टिकोणको आत्मसात करनेका गौरव प्रदान करें । शाश्वत आत्माका परिचय करानेवाली संस्कृति, जड़-भौतिक-सांसारिक सभ्यताको अपने रंगमें रंगकर सभ्यताके सुनहरे आलंबनोंका सत्य स्वरूप स्पष्ट करके आत्म कल्याणको अखत्यार करनेका आह्वान करती है । अतः मानवको अंतर्मुखी बनानेवाले इस संस्कृति सुधारको ही आध्यात्मिक अथवा पराविद्याका स्वरूप माना जा सकता है ।

संसारयात्राको सरलता बक्षनेवाली सभ्यता होती हैं, जबकि संस्कृति-दार्शनिक चिन्तन और आध्यात्मिक आदर्शों द्वारा धर्म एवं आत्माका पूर्णत्व और मोक्षादिका अन्वीक्षण करती है । अतएव हम अनुभव कर सकते हैं कि, बिना संस्कृतिकी सभ्यता 'बिन बादल बरखा' सदृश अथवा 'निष्प्राण मृतदेह' समान हैं; क्योंकि आत्माकी तरह अमर संस्कृति है और देहकी भाँति परिवर्तनशील सभ्यता है । एक संस्कृतिमें विभिन्न समयमें विभिन्न प्रकृति अनुसार सभ्यताका वैविध्य असंभव नहीं । संस्कृति रूप फुलवारी सात्त्विक गुणोपेत उत्तम सभ्यता रूप फूलोंसे शोभायमान बन सकती है; लेकिन अति उत्तम प्रकारकी भौतिकतासे संवारी गयी सभ्यता, संसार युक्त सांस्कृतिक सुवासके बिना व्यर्थ ही मानी जाती है-प्रायः नुकशानकारी भी हो सकती है ।

ऐसी सुवासित-चिरंजीव संस्कृतिको जीवंत रखनेवाले होते हैं दार्शनिक उपदेशक धर्मगुरु (१) समाज सुधारक-साहित्यकार-युग निर्माता (२) एवं सुचारू अर्थ व्यवस्थापक तथा राज्य व्यवस्थापक राजपुरुष (३) विविधलक्षी कला नियोजकादि । जो संस्कृति केवल ऋद्धि-समृद्धिको ही प्राधान्य देती हैं (जैसी पाश्चात्य संस्कृति) वह तूफानी समंदरमे बिना खेवैयाकी नाव सदृश आश्रितोंके साथ स्वयंकी सुरक्षाको खो देती है। इसे संस्कृति नहीं सभ्यताकी विकृति ही कह सकते हैं । सुसंस्कृतिका सबक है उत्तमोत्तम त्यागकी प्रधानता (जैसे पौर्वात्य संस्कृति)। पराकाष्ठाका परित्याग ही, आत्माकी अंतर्मुखताका उद्घाटन करके उसे परमात्मा स्वरूपकी प्राप्तिमें सहयोगी बनता है ।

ऐसे प्रगतिशील सभ्यता युक्त उत्तम संस्कृतिका समस्त विश्वमें प्रचार और प्रसार होनेसे भौतिक जड़वादकी जड़ें निर्मूल होकर विश्वको सर्जनात्मक, क्रियाशील, उत्तम आदर्श अध्यात्मकी प्राप्ति होगी और अशांति-भय-आतंकके घने बादलोंमें घिरि मानवताको इस आदित्यका आगमन पुनः प्रकाशित करके चमकायेगा॥ ऐसे उपदेशक साधुके विशिष्ट लक्षणोंको स्पष्ट करते हुए श्रीआत्मानंदजी म. लिखते हैं, **"धन्य धर्मरूपी धनके योग्य होनेसे मध्यस्थ, स्वपक्ष-परपक्ष में राग-द्वेष रहित, सत् भूतवादी-ऐसा जो होवे सो देशना-धर्मकथा करें।"**[१९] इन सुगुरुओंसे आत्मबोध प्राप्त होता है, समस्त जीवोंके प्रति मैत्री-प्रमोद-करुणादि भावोंका संचार हृदयकमलमें होनेसे प्रफुल्लितता छा जाती है । सच्चे अर्थमें इसी मानवतायुक्त जीवन मानव-कल्याण और विश्व-बंधुत्वकी नींव है ।

इस आत्मबोधकी तत्कालीन और वर्तमानकालीन युगमें क्या आवश्यकता है, इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- **"जिस प्राणीकुं आत्मबोध नहीं हुआ है, सो प्राणी यद्यपि मनुष्य देहवाला होने पर भी, शास्त्रकार-ज्ञानी पुरुष उन्हें शृंगपूंछसे रहित पशु ही कहते हैं; क्योंकि उसकी आहार, निद्रा, भय मैथुन आदि क्रिया पशु तुल्य ही होती है । जिस प्राणीकुं तत्त्ववृत्तिसे आत्मबोध हो जाता है, तिससे सिद्धिगतिकी प्राप्ति दूर नहीं है"।**[२०]

इस आत्मबोधकी प्राप्ति द्वारा मोक्षमार्ग पर एक-एक कदम बढ़ाते हुए इहलौकिक-पारलौकिक परंपरित सिद्धिगतिको स्वाधीन करनेके लिए सक्रिय होनेकी प्रेरणा और प्ररूपणा ही श्री जिनेश्वर भ.की प्रसादी है। उसके लिए मार्ग रूप आवश्यक आचरणा मुख्य रूपसे पांच प्रकारोमें विभाजित नियम—व्रत हैं । इन्हींसे वर्तमान विश्वकी सर्व समस्याओंका समाधान-संपूर्ण सुख, शांति, समृद्धि और सिद्धियाँ प्राप्तव्य हैं—जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अपरिग्रह' व्रत, अथवा परिग्रहके परिमाणका नियम कर लेनेसे व्यक्तिको संतोष गुणकी प्राप्ति होती है, जिससे मुड़ीवाद और गरीबीकी खाई समतल की जा सकती हैं; तो 'अहिंसा' व्रत (प्राणतिपात विरमण व्रत) के स्थूलसे या सर्वथा पालनसे जीवोंको निर्भयता मिलेगी । परिणामतः विश्व-युद्धके भयानक, त्रासदायक स्वप्न भी भूला दिये जा सकते हैं; विश्वकी अति विकट और उलझी हुई समस्या-जनसंख्या वृद्धि और भयंकर जीवलेवा बिमारियोंमें ढ़ाल बनकर संरक्षण दे सकता है–वीर्यरक्षाकारी, शक्ति प्रदाता–ब्रह्मचर्य पालनका व्रत-नियम ।

इस प्रकार अनेकानेक नियम-सिद्धान्त-अनुष्ठान, विचारधारायें और उच्चादर्शोंके प्रवर्तनसे कोई भी व्यक्ति जनसे जैन, और जैनसे जिन बन सकती है । इन्हीं विषयोंकी चर्चा-विचारणाओंको आचार्य प्रवरश्रीने, गीतार्थ पूर्वाचार्योंके शास्त्राधार रूप संबलके सहारे, विशिष्ट गुणकारी और स्वयंकी औपपातिक बुद्धि प्रतिभाके बल पर, अद्यतन रूपमें विश्वके जन समाजके लाभार्थ प्रस्तुत किया–विचारसे-(साहित्य रूपमें), वाणीसे (प्रवचन रूपमें), वर्तनसे (आचरण रूपमें) ।

जैन समाज पर ऋण -**"एक छत्र नायक हों गुरुवर, जैन संघके प्राण ।**
यशसे पूरित हुआ पंचनद, गुर्जर - राजस्थान ।"

पंचनदके ये महान ज्योतिर्धर जिसने समस्त संसारको अपनी करुणासिक्त भावनाओंसे प्रभावित किया था, उनकी जीवन-ज्योत जहाँसे प्रज्ज्वलित हुई, उस ज्ञान दीपक-ज्योत प्रदाता, जैनधर्म और जैन धर्मीको वे कैसे विस्मृत कर सकते हैं? उनके रोमरोममें-नसनसमें-खूनकी बूंदबूंदमें जैनत्वकी ज्वलंतता झलक रही थी।

"भक्तिव्याजवश दिया गया यदि, किया हलाहल पान ।
दातारका उपकार चुकाया, दे अमृतका दान ।।"

उनके विचारसे गुजरात और सौराष्ट्रकी संस्कारिता, धर्मप्रेम, भक्तिभाव, संस्कृति और समृद्धि एवं वीरभूमि पंजाबकी वीरता-दृढ़ता-सरलता-धर्मप्रेमादि गुणों द्वारा ही जैनधर्म एवं जैनसमाजका उत्कर्ष व उद्धार मुमकिन बन सकता है, तथा क्रान्ति और शान्ति, यांत्रिक और मांत्रिक, बौद्धिक और आस्थिक–इन विरोधाभासी शक्तियोंके समन्वयके बल पर ही जैन शासनका और उसके मूल सिद्धान्त-अहिंसा-सत्यवादितादिका जयजयकार संभवित है। उनके जीवनमें दृष्टिपात करनेसे उपलब्ध होता है, विचार-वाणी-वर्तनसे ओजस्वी क्रान्तिमय जीवन, जिसके भीतरमें अंतर्धान है शांतिकी तीव्र साधना ।

एक युग प्रवर्तककी हैसियतसे आपने सद्देव-सद्गुरु-सत्शास्त्रकी पूजा-सेवा-अध्ययन तथा अध्यापनका प्रबन्ध, जिनालय-उपाश्रय और पाठशालाओं द्वारा करके जैनसमाजके साधकोंमें सम्यक् दर्शन–सम्यक् ज्ञान-सम्यक् चारित्रका संपादन-संमार्जन-संवर्धन करवाकर उनके समकितकी शुद्धि करवायी और आत्म कल्याणके मार्गको प्रशस्त किया। आपकी ही कृपासे तत्कालीन समाजमें अर्हन् मतके प्रचार और प्रसारने, प्रभविष्णुताको प्राप्त की ।

ऐसा प्रतीत होता है कि, जिनशासनका जो अनुग्रह श्रीआत्मानंदजीकी आत्म-कल्याणकारी राहोंमें सन्नद्ध होनेके लिए प्रेरणा स्रोत बना था, मानों उन्होंने उसकी एवजीके रूपमें–उसकी प्रतिपूर्तिके उपाय रूप ही ये सर्व सेवाकार्य न किया हों ! अगर उन्हें परमोपकारी पालक जोधाशाहके घर जैन संतोंका संयोग न हुआ होता; अगर उन्होंने जैन शास्त्रोंका अध्ययन न किया होता; एकमात्र सत्यप्रेम-पूजारी बनकर जैनधर्मके प्रतिमा पूजन स्वरूपको उद्घाटित न किया होता, तो यह कीर्ति कीरिट उनके व्यक्तित्वको कैसे भूषित कर सकता! और आत्माको कर्मक्षयकी राहों पर, कर्म-मुक्ति मंज़िल प्रति हुई उनकी विजय यात्रा कैसे संभवित बन सकती? अतः हमें प्रतीत होता है कि, एक उत्तम-कृतज्ञ आत्माके स्वामी, श्रीआत्मानंदजी म. मानो उस ऋणसे उऋण होनेके लिए ही कटिबद्ध न हुए हों, ऐसे ही जैनधर्मकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए जीवनकी प्रत्येक पलको खर्च करके अपनी छोटी-सी जिंदगानीमें अद्भूत करतब दिखा गये । **"जैन समाज**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर तो एमनो अनहद उपकार हतो । जैन दर्शननी आसपास व्हेम अने आक्षेपोना घन वादल घेराई रह्या हता। साचा पंथ महाव्रतधारी श्रमणोना सिंहनाद संभळाता बंध थया हता । बराबर ए ज वखते आ पंजाबी सिंहे दर्शन शुद्धि अने चारित्र शुद्धिनी त्राड़ गर्जावी । मिथ्यात्व अने ढोंग, प्रपंच अने कृत्रिमता एकी साथे हाली उठ्या ।"[२१].

जैन समाजके धार्मिक-दार्शनिक, सामाजिक-व्यावहारिक-आर्थिक, शैक्षणिक-साहित्यिक-ऐतिहासिक–सर्व क्षेत्रोंके विकासके लिए आपने आजीवन अनवरत आयास किये । सर्वको अवलोकित किया, सर्वका अनुभव और अध्ययन किया-पर्यवेक्षण किया एवं प्रगतिके प्रबन्ध भी प्रदर्शित किये । उन्होंने एक सुविज्ञ वैद्य सदृश जैन समाजकी नाड़ परखी, रोगका अनुमान-अनुभव और निदान किया और औषधि भी निश्चित कर दी। जैनधर्मकी स्वस्थताके लिए अर्थात् जैनधर्मके संस्कारोंको सुदृढ़ और प्रौढ़ बनानेके लिए अपनी समस्त शक्ति आज़मा दी, फलतः जैन समाजकी गगनचुंबी कीर्ति पताका मुक्त मनसे लहराने लगी ।

धार्मिक–धार्मिक क्षेत्रान्तर्गत सद्धर्मकी प्ररूपणा, जैनधर्मकी अवहेलना करनेवाले जैनेतर वादियोंका खंड़न करते हुए उन्हें निरुत्तर करना, मूर्तिपूजाके प्राचीन आदर्शोंको पुनर्जीवित करके श्री जिन प्रतिमा, श्री जिनमंदिर निर्माण-जीर्णोद्धार-संरक्षण; जैनधर्मके महत्त्वको सिद्ध करते हुए, उसके प्रचार-प्रसारको प्रवर्धित करके जैन सिद्धान्तोंके प्रचारका व्याप विश्व-स्तरीय बनाना, साधु और श्रावक द्वारा आचरणीय धर्म स्वरूपका निरूपण आदिको समन्वित कर सकते हैं ।

जो धर्म सत् हों वह सद्धर्म अर्थात् जो शाश्वत हों वह सद्धर्म कहलाता है जिसमें अहिंसा-अमृषा-अस्तेय-अपरिग्रहादि व्रत-नियमोंका पालन, रत्नत्रयीकी आराधना-साधना और तत्त्वत्रयीके प्रति सम्यक् श्रद्धाका समन्वय किया जाता है । विशेष रूपमें "याज्ञिकी हिंसा"के समर्थक वैदिकादि धर्म, मूर्तिपूजा विरोधी स्थानकवासी, आर्यसमाजी, थियोसोफिस्टादि पंथ; उत्सूत्र प्ररूपक दिगम्बर-बौद्धादि मतवालोंके प्रति उनका आक्रोश भड़क उठा था -**"श्रीमान आत्मारामजी महाराज वादी हता । जेओओ आर्यसमाजीओ साथे, वेदांतीओ साथे तेमज स्थानकवासीओ साथे वाद करीने अनेकने निरुत्तर बनाव्या हता..... ते कालमां 'वादी वैताल' नी पदवीने लायक हता ।"**[२२]. उनके साथ वाद-प्रतिवाद और व्यक्तिगत चर्चाके रूपमें अनेक प्रकारसे युक्तियुक्त विचारणा एवं आत्म कल्याणकारी शुद्ध धर्माचरणकी प्ररूपणा करते हुए सत्य धर्मकी ओर आनेके लिए तथा सन्मार्गीय बननेके लिए निमंत्रण देते हुए अपने 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थका पर्यवसान करते हुए आप लिखते हैं, **"शुद्ध मार्ग गवेषक और सम्यक्त्वाभिलाषी प्राणियोंका मुख्य लक्षण यही है कि, शुद्ध देव-गुरु-धर्मको पिछानके उन शुद्ध देवादिका अंगीकरण और अशुद्ध देवादिका त्याग करना चाहिए ।"**

आपके प्रत्येक ग्रन्थ-प्रत्येक प्रवचन–आपके वाणी-वर्तनसे–निरंतर बहते रहते हैं सद्धर्मकी प्ररूपणाके नीर और असद्धर्मके प्रति अप्रसन्नता-अमर्षकी आँधी । आपने अनेक व्यक्तियोंसे विचार विमर्श–चर्चासभायें करके अनेकोंके दिलमें सत्य-शुद्ध धर्मकी ज्योत प्रज्ज्वलित की थी । जोधपुरमें स्वामी दयानंदजी और आचार्य प्रवरश्रीके मध्य चर्चा-सभाका आयोजन भी इसके उपलक्ष्यमें ही किया गया था । (यद्यपि श्री दयानंदजीके निधन हो जानेके कारण यह आयोजन साकार न हो सका ।) इस प्रकारकी विभिन्न चर्चाओंका ब्यौरा इस शोध प्रबन्धके अन्य पर्वोंमें विस्तृत रूपमें दिया गया है ।

श्री जिनप्रतिमा और श्री जिनमंदिरके समर्थन और उनके निर्माण या जीर्णोद्धारकी प्ररूपणा करते हुए तो उन्होंने जानकी बाजी लगा दी थी; स्वयंके सुख शांति या अन्य भयंकर खतरोंकी भी परवाह किये बिना ही दिन-रात एक किये थे । **"ते सर्व पंजाबना जुदा जुदा भागोमां अड़ग निश्चयथी घुम्या अने थोड़ा समयमां प्रबल विरोधनो झंझावात जोरशोरथी चालू, छतां नवुं क्षेत्र तैयार करी शक्या..... ज्यां स्थानकवासी अने आर्य-समाजिस्टोना भेरीनादो अहर्निश मुर्तिपूजा सामे संभळाइ रह्यां छे एवा क्षेत्रमां पुनः मूर्तिपूजननां मंडाण कर्यां, मूर्तिपूजा प्रत्ये प्रेम जगाड़यो, भावपूर्वक पूजा करवाने तत्पर श्रद्धालु समाज सरजाव्यो ।".....**[२३]

श्रावक-श्राविकाके कर्तव्यके रूपमें श्री जिन प्रतिमा-श्री जिनमंदिर निर्माण, जीर्णोद्धार एवं संरक्षण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमात्माकी अनेकविध पूजा- सेवादिके विधान; तथा साधु-साध्वीजीके लिए भी परमात्मा-दर्शन, भावपूजा–संवर्धन एवं संरक्षणके लिए प्रेरणा और प्रयत्न-आदिके शास्त्रोक्त संदर्भ देकर उस विधिमार्गके समर्थनमें बार-बार प्रवचन द्वारा मार्गदर्शन किया; साथ ही तद्विषयक पुष्टिके लिए साहित्य - सेवान्तर्गत अज्ञान तिमिर भास्कर, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर, तत्त्व निर्णय प्रासादादि अपने प्रमुख ग्रन्थोंमें इसका विशद विवेचन किया है; और 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थ तो पूर्णरूपेण मूर्तिपूजाके समर्थन संदर्भोंका मानो खजाना ही है । सम्पूर्ण ग्रन्थमें मूर्तिपूजाके लाभ, प्रकार, अधिकारी, शास्त्रीय मान्यतायें और परापूर्वता-प्राचीनतादिका निरूपण आगमिक व शास्त्रीय ग्रन्थाधारित ससंदर्भ स्पष्ट किये हैं । श्री कुंडलाकरजीके शब्दोमें -**"पंजाबमां बंध थएलां जिनालयोनां द्वार खोलावी पंजाबने पुनः वीर भूमिनुं नंदनवन बनाव्युं छे.-ते ज तेमनी शक्तिनुं माप छे."**२४. इसके साथ ही डॉ. अमरनाथ औदिचजीके भाव भी पठनीय है-'Before the advent of Atmaramji there was a strong tide against 'Murti Puja'... Murti Puja as a means of self-realisation had been almost lost sight of by majority of Jains in the Punjab. Besides the Christian missionaries the Brahma Samaj and the Arya Samaj were working against the time honoured idol worship..... Atmaramji realised the danger and fully appreciating the worth of Murti Puja rebelled against the then current tide..... To educate public opinion on the point of idol worship the toured through the Punjab, Marwar, Mewar, Gujarat and Kathiawar, and carried on a vigrous Propaganda in its favour by vigoros preaching".[२५]. "जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर" ग्रन्थमें मूर्तिपूजाका ध्येय स्पष्ट करते हुए आपने सुंदर तर्क पेश किया है–**"प्रतिमा बिना भगवंतका स्वरूप स्मरण नहीं हो सकता है ।..... हम प्रतिमाको पत्थर मानकर नहीं पूजते हैं, किन्तु तिस प्रतिमा द्वारा साक्षात् तीर्थंकर भगवंतकी पूजा-स्तुति करते हैं । जैसे सुंदर स्त्रीकी तसवीर देखनेसे असल स्त्रीका स्मरण होता है, तैसे ही जिनप्रतिमाके देखनेसे भक्तोंको असली तीर्थंकरका रूप स्मरण होकर जिनभक्ति करनेसे कल्याण होता है ।"**[२६].

इसके अतिरिक्त द्रव्य और भावपूजाका स्वरूप, द्रव्य पूजामें हिंसा-अहिंसा- कर्मक्षयका स्वरूप, संप्रति-कुमारपालादि राजाओंके श्री जिनमंदिर-श्री जिनप्रतिमादिके निर्माण-जीर्णोद्धारोंका वर्णन आदि विस्तृत विवेचना करते हुए मूर्तिपूजाको समाजमें परापूर्व-परम्परित-गौरवान्वित स्थान प्राप्त करवाया । अगर उन्होंने यह कार्य न किया होता तो विश्वमें मूर्तिपूजक जैनोंका स्थान कैसा होता उसकी कल्पना भी मुश्किल है ! श्री जिनमंदिर निर्माणकी आवश्यकताको स्वीकार करते हुए तद्विषयक पागलपनको-अतिरेकको हानिकारक माना है -**"जिस गांवके लोग धन हीन होवे, जिनमंदिर न बना सकें, और जिनमार्गके भक्त होवे, तिस जगे अवश्य जिनमंदिर कराना चाहिए ।"**[२७]. इस प्रकार किन श्रावकोंने कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे जिनमंदिर-प्रतिमा निर्माण करवाये, कैसे पूजा की-इसकी प्ररूपणा करते हुए जैन समाजके श्रावकोंको मूर्तिपूजाकी आवश्यकता समझायी।

"नभचुंबी देवालय जो हैं नगर नगर निर्माण,
तेरे सत्कार्योंके ये हैं साक्षीरूप प्रमाण ।।"

इस प्रकार समस्त पंजाबी जैन समाजकी काया पलट करनेके साथ साथ आपने राजस्थानमें विचरण करके जोधपुरादि ग्राम-नगरोंके अनेक ओसवाल- पोरवालोंको उनके मूल स्वधर्म-जो श्री रत्नशेखर सूरिम.सा.ने उन्हें सिखाया था-उस मूर्तिपूजक श्वेताम्बर जैनधर्ममें स्थिर किये । "आज **मारवाडके शहरोंमें ही नहीं, पर छोटे-बड़े ग्रामोंमें भी जैन मूर्तिपूजक समाज दृष्टिगोचर हो रही है यह आपश्रीके जबरदस्त उपदेशका ही प्रभाव है ।"**[२८]. मारवाड़-मेवाड़- गुजरातादिके अनेक जिनमंदिर मुस्लिम युगमें भग्न हुए थे या काल प्रभावसे जीर्ण हुए थे, उनके जीर्णोद्धारकी प्रेरणा करके उनकी भी कायापलट की। **"जिनबिम्बका पूजन मूर्तिपूजा है, और मूर्तिपूजा पंच महाव्रतका खंडन होनेमें कारणभूत है-यह जो भ्रम फैला हुआ था, सो आपने दूर करके जिन-बिम्बका पूजन मूर्तिपूजा नहीं है, ध्येय पूजा है–यह बात आपने श्रावकोंको समझा दी । आपने कई चैत्यालयोंका**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीर्णोद्धार करवाया । कईं जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा की; और संगीताधारित काव्यमय पूजायें रचकर प्रतिमा पूजनमें रुचि पैदा की ।"[२९]. यह बिलकुल स्वाभाविक ही है कि जिस सत्य संशोधनके पीछे अपना जीवन पूर्ण रूपसे समर्पित किया-उस सत्यके-मूर्तिपूजाके प्रचार, प्रसार और प्रवर्धनमें भी सर्वस्व ही समर्पित कर दें । जैनधर्मी समाजके लिए यह उनका महत्तम योगदान था । **"A large scale to celebrate the Centenary of the birth of Shree Atmaramji M. S. in gratitude of the good, he did to humanity and the benefits he confferred on Jain community by bringing to light the hidden treasures of Jain literature and laying strong and deep foundation of reforms, promulgation of Jainism far and wide."**[30]

जैनधर्मके अति महत्त्वाकांक्षी सुरीश्वरजीके हृदयकमलमें, जैनधर्मकी उत्तमोत्तम योग्यताके अनुरूप उसके विश्वस्तरीय प्रचार-प्रसारके व्यापका गुंजन निरंतर होता रहता था, और उसे मूर्त रूप देनेके लिए अनेकविध-भरसक प्रयास कर रहे थे; जिसके अंतर्गत विश्वोपयोगी तात्त्विक सारभूत सैद्धान्तिक प्ररूपणायुक्त ग्रन्थ रचनायें, कईं योरपीय-अमरिकी-जर्मनादि विदेशी विद्वानोंकी सैद्धान्तिक या अन्य प्रकारकी समस्याओंका या शंकाओंका समाधान पत्र द्वारा, या परस्पर चर्चा स्वरूपमें करना, विश्व-धर्म-परिषदमें श्रीयुत वीरचंदजी गांधीको, अधिकांश जैन समाजके विरोधके प्रत्युत, चिकागो भेजकर विदेशमें जैनधर्म विषयक भ्रामक एवं गलत प्रचार जालका विराम करवाना–आदि दृष्टिगोचर होते हैं ।

"जर्मन अमरिका तक फैला तेरा कीर्ति वितान ।
विद्वत्ता पर मुग्ध हो गए होर्नले से विद्वान ।।"

"सत्य धर्मनो फेलावो ए तेमनी अंतरेच्छा हती ।"..... "महाराजश्रीनी ए दीर्धदर्शिताए पाश्चिमात्य प्रजामां जैनधर्म प्रत्ये जिज्ञासा जन्मावी ।"..... "स्वामी विवेकानंद जेम वेदान्तनी फिलसूफीने प्रकाशमां लावनार हता तेम जैनदर्शननां सिद्धान्तो रजु करनार तरीके मर्हुम वीरचंदभाईने मोकलवामां श्रीमद् आत्मारामजी म.सा. निमित्तभूत हतां ।"[३१].

जैन शासनमें साधु और श्रावक-उपलक्षणसे साध्वी और श्राविका भी-को आत्मकल्याणके लिए आचरणीय, आराधनीय, और साधनीय-आचार एवं आराधनाओंका भी उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें विश्लेषण युक्त विवरण दिया है, जिसके अंतर्गत चतुर्विध संघको सम्यक्त्व सहित देशविरति या सर्वविरतिधर्म कैसे उपास्य है, और सुख-शांतिसे निर्दोष जीवनयापन और परंपरा मोक्षसाधन है, दर्शाये हैं । **"Another important reform, he undertook, was to improve the character of Sadhu as well as laymen. He purified the order of monks and urged them to aquire knowledge."**[३२] ..... **"जन्म-मरणादि संसार भ्रमण रूप दुःखसे छूटने वास्ते साधु और श्रावकको पूर्वोक्त धर्म (देशविरति और सर्वविरति) करना चाहिए ।"**[३३] एक जैन साधुत्व अंगीकृत व्यक्ति जिस कोटिके उपकार कर सकती है, ठीक वैसे ही श्रीमद् आत्मानंदजीम.सा.ने भी धार्मिक दृष्टि बिंदुसे यथाशक्य उपाय करके जैनधर्मी समाजकी गहरी निंद भगाकर उसे जागृत करनेमें महद् योगदान किया था ।

दार्शनिकः--जैन दर्शनके स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, कर्मवाद, षट्द्रव्य, नवतत्त्व, चौदह राजलोक, चौदहगुणस्थानक स्वरूप - आदि प्रायः सर्व दार्शनिक सिद्धान्तोंका आचार्य प्रवरश्रीने अपने ग्रन्थोंमें विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। नवतत्त्वके लिए तो स्वतंत्र ग्रन्थका ही निर्माण किया है, तो कर्म स्वरूपादिका विवेचन जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व निर्णय प्रासाद, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर, आदि ग्रन्थोंमें विभिन्न परिप्रेक्ष्यमें किया गया है- **"जैन सिद्धान्तोना जिज्ञासुने आ एक ज ग्रन्थमांथी (जैन तत्त्वादर्श) एटली सामग्री पूरी पड़े छे के तेमांथी तेने जैन दर्शननुं सारामां सारुं सर्वोत्कृष्ट दर्शन थई शके छे ते निःसंदेह छे..... आ प्रवीण ग्रन्थकारे आखा विश्वनी प्रवृत्तिथी सिद्ध करी बताव्युं छे के आर्हत् धर्मनी भावना पुरातनी छे ने ईतरवादियोना धर्मनी भावनानुं स्वरूप खुल्लुं करी जैनधर्मनां तत्त्वो सर्वोपरि होवानुं साबित करी आप्युं छे..... 'ईसाई-मत-समीक्षा' मां**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वरने जगत्कर्ता न मानवावाळा जैनोने धन-दोलत-उच्चपदवी वि. क्यांथी मळे छे अने मानवावाळा ईसाइयो बहुलताए दुःखी केम छे ?–तेनुं पृथक्करण करी कर्मनी थिअरी बहु सारी रीते समजावी छे।"[३५]

इन प्ररूपणाओंके बल पर उन्होंने अबुध जैन समाजको जागृत करते हुए जैन दर्शनकी उत्कृष्टता, महत्ता और जीवनमें आवश्यकताको समझाया-**"जैन दर्शननां मौलिक तत्त्वोनो, एनी प्राचीनता पुरवार करनारी नोंधोनो अने प्रतिदिन आचरणमां उतरी रहेली करणीओनो टूंकमां यथार्थ खयाल आपतो ए ग्रन्थ साचे ज 'तत्व निर्णयनो प्रासाद' अर्थात् महेल रूप छे । 'जैन तत्त्वादर्श' वांचतां ज प्रभु श्रीमहावीरना सिद्धान्तोनुं रहस्य खडुं थाय छे ।"**[३५]

अनेकान्त और स्याद्वादके निरूपणके सहारे ईश्वरके जगत्कर्तृत्वका, अद्वैत ब्रह्मका, जीव-कर्म-संसार-मोक्षादिकी अनादि अनंत स्थितिका, नय और प्रमाण एवं सर्व नयवादोंके सम्यक् सम्वयका–आदि अनेकानेक विषयोंकी प्ररूपणा सैद्धान्तिक, बौद्धिक और तात्त्विक युक्तियुक्त तर्क द्वारा जन समाजके समक्ष पेश की है । इस प्रकार आत्मा और परमात्माके स्वरूपको नय-प्रमाणसे समझाकर अंधश्रद्धा और वहमादिको दूर करके सत्य एवं शुद्ध रूप परमात्मा पूजन, कर्म-पुरुषार्थादि पांच निमित्त कारणोंके समवायसे सृष्टि संचालनादिकी प्ररूपणा की है-**"आत्मा क्या है ? परलोक क्या है ? विश्व क्या है ? ईश्वर है कि नहीं ? आदि समस्याओंको सुलझानेकी कोशिश सभी दर्शनोंने की हैं । जैन दर्शनने भी इस विषयमें दुनियाको बहुत कुछ दिया है, अधिकारके साथ, अपने समयके अनुसार, वैज्ञानिक दृष्टिसे दिया है ।"**[३६]

यह उनका ही प्रभाव है कि सर्वधर्मके दार्शनिक सिद्धान्तोंके प्रहारोंसे जैन दर्शनको मुक्ति प्राप्त हुई है। उसके अपने सामर्थ्य, स्वायत्तता और सर्वोत्तमताका अनुभव जैन-जैनेतर सबको हुआ है - **"जब मैंने आत्मानंद महाराजके ग्रन्थ देखें और उनके वाचनसे जब प्रतीत हुआ कि जैनधर्मके स्याद्वाद या अनेकान्तवादमें द्वैताद्वैत, क्षणिक-शाश्वतवाद-आदि सभी द्वंद्वोका समन्वय किया है । जब देखा कि, रत्नत्रयमें ज्ञान, उपासना तथा क्रियाकांड-इन तीनों मोक्षमार्गोंकी आवश्यकता एक साथ बतलायी है; पंच परमेष्ठिके ध्येय स्वरूप ईश्वर जैन-धर्ममें होते हुए भी ईश्वर सृष्टिकर्ता-का अभाव है, तब मैं उस पर लट्टु हो गया । तबसे आज तक जिनवाणी पर मेरी श्रद्धा कायम है और कायम रहेगी ।"**[३७]

इस प्रकार जैन दर्शनके इस महान दार्शनिकके ऋण स्वीकारते हुए और अपनी भक्ति प्रकट करते हुए श्री चैतन्यदासजी श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं-"All of us should pay homage to him as a great scholar, thinker and philosopher the friend of humanity."[३८]

सामाजिक– **"धारा जन्म जगत दुःख टारा,**
जैन जातिका पतन निवारा,
बही स्नेहकी मधु-रस धारा,
प्रेम पयस्विनी प्रगटी, डूबे पाप ताप दुष्काम ..... तुमको लाखों प्रणाम ।"

यह वह समय था, जब जैन जगतमें जातीय और साम्प्रदायिक विद्वेषकी प्रचुरतासे व्युत्पन्न प्राचीरोंने सामाजिक एकताको खंड़-खंड़ कर दिया था । समाजमेंसे मानवता मानों मर चूकी थी, अज्ञानता भर चूकी थी; समाज हैरान था-परेशान था विह्वल था । सामाजिक-राजकीय-नैतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त शीघ्रतासे, बेमर्याद-सीमातीत रूपमें बरबादीकी ओर पैर पसार रही थीं । सभीको अपने अस्तित्वकी सलामतीकी आशंका थीं । चार-पांच सदियोंके लगातार मुस्लिम-ईसाइयोंके दोहरे आक्रमणोंने शिक्षा-संस्कार-संस्कृतिकी तबाही की थी–मानो उस पर ताले लग चूके थे। परिणामतः सामाजिक कुरूढ़ियाँ-अराजकता और अनिश्चितताके तनावमें सारा समाज उलझा हुआ था। अमर और तात्त्विक सामाजिक प्राणशक्ति जैसे आच्छादित हो चूकी थी, जिसे भीषण झंझावातोंने घेरकर प्रकम्पित कर दिया था, और जो स्वयंके अस्तित्वके लिए तड़प रही थी। मुस्लिम सम्राटोंके त्रास, अंग्रेजोंके षड़यंत्रोंके जाल और उससे आर्थिक-व्यापारिक- औद्योगिक शोषण, लोर्ड मेकोलेके अंग्रेजी शिक्षणके परिणाम रूप सांस्कृतिक और धार्मिक भ्रष्टता एवं अराष्ट्रीयता तथा बर्बरताका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसार, पश्चिमी चकाचौंधके चक्करमें विवेक-शून्यता, आर्यसमाजी-ब्रह्मसमाजी-सीख आदिका भी जोरोंसे-प्रचंड प्रभावादिने समाजको दिग्भ्रांत कर दिया था । ऐसेमें एक कोनेसे एक भीड़-भंजकके करुणा सभर नयनोंसे अमृतधारा सदृश स्नेह- सरिता फूट पडनेको मानो लालायित हो रही थी । "He saw that true Jainism was lost in hoary antiquity. The indepedence of character, wide outlook beyond death, tolerance for all differences of opinion and thought, had all been smothered under the dust and storm, bigorty and persecution of the rules and the political struggle of the people for existence"[३९] इन परिस्थितियोंका आकलन मुनिराज श्री चरण विजयजी म. के शब्दोंमें - **"सर्व दर्शन निष्णात् श्रीआत्मारामजी म. सा. आ वीसमी सदीना एक समर्थ महान विप्लववादी तरीके मशहूर हता । अनेक वहेमो, गतानुगतिकता अने संकुचितताओ पोतपोताना अड्डाओ जमावीने समाजमां बेठा हता, अनेक अनिष्ट, रिवाजो- मान्यताओ-पोताना अचल आसनो बिछावीने बेठा हता; अनेक प्राणशोषक अने खराब रूढ़ियो पोतानुं दैर्ध्य साम्राज्य निःशंकतया प्रवर्तावी रही हती, तेवा घोर अंधकार समयमां श्री आत्मारामजी म. कोईनी पण परवा कर्या सिवाय शुद्ध सनातन मार्गनी सिंहगर्जना करी-ए बधाने एकले हाथे विदारी नांख्यां; समाजमां पुनः नवचेतन रेडयुं । ए सिवाय समाजमां अनेक अंधाधूंधीनी कुप्रवृत्तिओ चाली रही हती, तेनो रदीओ सशास्त्र प्रमाणथी आपी जनताने पोताना कर्तव्य सन्मुख आणी ।"**[४०]

आपके दीर्घ-दर्शी चक्षुपटल समक्ष जो चित्र अंकित था, उससे आपने स्पष्ट निश्चय कर लिया था कि अगर समाजको इन सबसे ऊपर उठाना है—उनकी दीन हीन हालातसे उनका उद्धार करना है; उनका यथार्थ स्वरूप उन्हें पुनर्प्राप्त करवाना है—गहरी निंदमें सोनेवाले इस समाजमें जागृति लानी है तो बिगुल बजाने होंगे ज्ञान गाथाओंके; ढ़ोल पीटने होंगे, पुरातन विद्वद् अस्मिताओंके; गर्जना करनी होगी शिक्षा प्रचार-प्रसार और उसके प्रताप-प्रभावकी । मंज़िल निश्चित हुई, मार्ग निर्धारित किया और लक्ष्य प्राप्ति हेतु उस गरीब निवाज़ने उस ओर कदम बढ़ाये । उनके इन्हीं खयालातका एहसास हमें श्री मथुरदासजीके वाणी विलासमें प्राप्त होते है-यथा-**"शिक्षाकी उन्नतिको जैन समाजके अभ्युत्थानका प्रबल साधन समझते हुए ही प. पू. श्रीमद्विजयानंद सूरिजीम.के हृदयमें एक विशाल शिक्षण संस्था खोलनेकी भावना उदित हुई थी ..... शिक्षण संस्थायें और विशाल सरस्वती भवनकी स्थापना, जैनधर्मके साहित्यिक, ऐतिहासिक तत्त्वोंकी खोज (संशोधन), उत्तमोत्तम ग्रन्थ-पत्र-पत्रिकायें आदिका प्रकाशन, जैन समाजकी कुरूढ़ियोंका निवारण, पारस्परिक संघका संगठन दृढ़ करना- - आदि जैन समाजकी उन्नतिके लिए परमावश्यक बातें है । धीमान् एवं श्रीमान् इन बातोंकी ओर ध्यान देकर जैन समाजको सबल बनायेंगें ।"**[४१]

श्री आत्मानंदजी म.सा. अपने इन विचारोंको प्रवाहित करके व्यवहारमें उसके प्रत्यक्षीकरणके लिए कृतनिश्चयी थे । सत्य-सुधारक इस महारथीका अंगद पाँव तत्कालीन विरोध- बवंड़रों या समाजमेंसे होनेवाले सामान्य आंधी-तूफानोंसे चलित होनेवाले नहीं थे । उन्होंने विविध प्रसंगोपात अपनी प्रावचनीय उपदेशधारा, कमनीय कलमसे आविर्भूत जैन तत्त्वादर्श, अज्ञान तिमिर भास्कर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर, तत्त्व निर्णय प्रासादादि ग्रन्थालेखनादि विविध प्रचार-प्रसारके माध्यम द्वारा समाजके वहम-अंधविश्वास-कुरूढ़ि-परम्परायें-भ्रान्तिजन्य जड़तादिके उन्मूलन हेतु जनप्रवाहसे विरुद्ध दिशाकी ओर प्रचंड पुरुषार्थ प्रारम्भ किया । तत्कालीन जन मानस-प्रवाहको सूक्ष्म एवं पारदर्शी दृष्टिसे तीक्ष्ण विचारधारासे मूल्यांकित करनेवाले महामहिम-समयज्ञ संतने, अपने वज्रमय-कार्यदक्ष-दृढ़ मनोबलसे समाजको इन गूढ़ गह्वरोंसे उबारनेके लिए पथ प्रदर्शित किया और स्वयंके स्थितप्रज्ञ आचरणोंसे ऐसे समतारसको बहाया कि उन परंपरित रूढ़ियोंके विनाशकारी झंझावातसे उत्पन्न प्रकोप रूप विरोधके बादल अपने आप बिखर गये । इतना ही नहीं जन समाजने उनके सामने सर झुका दिया ।

"There was strength, firmness and gentleness, in his voice. He was regular in his habits, for sighted and liberal in views ..... He advised inter-dining and inter-cast mar-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

riages between different sects and sub-sects of Jains ..... As a result of his preachings many Hindus, Muslims and Sikhs gave up meat eating, hunting and wine-drinking..... His message to mankind was to follow truth unflinchingly lead an active life duty and do to others as they wish to be done by."[४२]

इस प्रकार बाल विवाह, विधवा विवाह, आंतर्जातीय विवाह, फिजूल खर्चवाले भोजन समारंभ, साधर्मिक वात्सल्य, क्षुल्लक मतभेद या विचारभेदोंके कारण होनेवाले जैनकौमके विभाजन, अज्ञानता-धार्मिक और व्यावहारिक निरक्षरता-पर्दाप्रथा आदि अनेकविध तत्कालीन कुरूढ़ियोंको हटा कर समाजोत्कर्ष हेतु उन्होंने डटकर प्रयत्न किये। समाजमें विभिन्न जातियोंमें जो अलगाव दृष्टि-गोचर होता था, उसके प्रति आपको सख्त नफरत थी । उनके विचारसे -**"जितने मनुष्य जैनधर्म पालते हों, उन सर्वके साथ अपने भाईसे भी अधिक प्यार करना चाहिए ..... इस कालकी जैनधर्मको पालनेवाली सर्व जातियाँ श्री महावीरसे ७० वर्ष पीछे और वि. सं. १५७५ साल तकके जैनाचार्योंने बनायी हैं । तिनसे पहिलां चारों ही वर्ण जैनधर्म पालते थे, उस समयमें जातियाँ नहीं थीं ..... जो अपनी जातिको उत्तम मानते हैं, वह केवल अज्ञानसे रूढ़ि चली है ..... जातिका गर्व करनेवाले जन्मांतरमें नीच जाति पायेंगे । ..... अब भी कोई समर्थ पुरुष सर्व जातियोंको एकठी करें तो क्या विरोध है ?"[४३]**

तत्कालीन युगकी वह मानो आवश्यकता थी, जो दार्शनिक चिन्तन और धार्मिक प्रवचनके साथ कदम मिलाते हुए इहलौकिक उलझनोंकोभी सुलझाये; दलित-पीड़ीत वर्गके सुधार-परिष्कार करनेके लिए अतीतके इतिहास और धर्माख्यानोंके संबलके सहारे नूतन दृष्टिकोणको पेश करें । **"जैन समाजमें वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सामाजिक कुरीतियोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया । और उन्हें दूर करनेके लिए प्रशस्त मार्ग दिखाया । ..... उपरोक्त सब बातोंसे प्रकट है कि वे अपने युगके धार्मिक नेता ही नहीं बल्कि समाज सुधारके अग्रदूत थे । उन्होंने समाजमें फैली कुरीतियोंका मूलोच्छेद करनेके लिए भरसक प्रयत्न किये ।"[४४]**

व्यवहारिक:--तत्कालीन समाजमें व्यावहारिक रीति-नीतियोमें भी परिष्कारकी आवश्यकताको अनुभूत करते हुए उन्होंने एलान किया कि, तीर्थंकर परमात्माका श्रद्धालु--उनका भजनीक या पूजक--कोई भी हों वह अपना धर्मबंधु है, उसके साथ मतभेद रखना, ऊँच-नीचका व्यवहार रखना यह अत्यंत अयोग्य है । जैसे पंचमहाव्रत अंगीकरण पश्चात् नूतन दीक्षित साधु, सर्व साधु समाजमें एक समान अधिकार पाता है--समान व्यवहार पाता है, वैसे ही जैनधर्म स्वीकारने पर वे नूतन जैन भी सर्व जैनके समान बन जाते हैं । उनके साथ रोटी-बेटीके व्यवहारमें भेद रखना अनुचित ही है ।- **"पारस्परिक एकतामें ही लाभ है और उसीमें शक्तिका रहस्य है । स्मरण रहें शास्त्राकारोंने श्री संघका पद बहुत उच्च किया है । श्री संघके सामने प्रत्येकको मस्तक झुका देना चाहिए ।"[४५]**

इसके अतिरिक्त शादी-ब्याहके फिज़ूल खर्च, दीक्षा-प्रतिष्ठादि धार्मिक प्रसंगो पर अथवा गुर्वादिके वंदनार्थ आये आगंतुक-स्वधर्मी भाइयोंके भोजन-प्रबन्धमें सादगी और फिज़ूल खर्च त्याग, प्रासंगिक लेन-देनमें आडंबरोंका त्याग-आदिके बारेमें आप बारबार अपने प्रवचनोंमें एवं ग्रन्थोंमें परामर्श देते रहे हैं । अमृतसरकी प्रतिष्ठावसर पर पू.श्री आत्मानंदजी म.सा.ने तजुर्बा किया कि, इन प्रसंगों पर ठाठ-बाटका यह तरीका साधनहीन भाइयोंके लिए सोचनीय परिस्थिति निर्मित कर सकता है । इससे धार्मिक उत्सवोंके समय स्वधर्मीके प्रबन्ध करनेमें वे स्वयंको अशक्त मानकर संकोच करेंगे, और उन लाभोंसे वंचित रह जायेंगे । अतः उन्होंने श्री संघको चेतावनी देते हुए कुछ प्रस्ताव पारित करवाये-यथा- **"(१) श्री गुरुदेवोंके दर्शनार्थीके आतिथ्य सत्कार प्रेमपूर्वक दैनिक-सादा भोजनसे करना । (२) प्रतिष्ठादि अवसर पर तीन दिन (प्रतिदिन) केवल एक समय मिठाई परोसना-शेष सादा भोजन। (३) दीक्षादि प्रसंगों पर एक दिन, एक समय ही मिठाई-शेष सादा भोजन (४) साधु-साध्वीके स्वर्गवास अवसर पर सादा भोजन देना (५) प्रसंगोंमें रिश्तेदारोंसे लेन-देन प्रथा बंद करना । इसके अतिरिक्त विवाहादि प्रसंग पर खर्च कम करना-बरातियोंकी संख्या कम करना आदि ।"[४६]**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन-शासन सेवाके उस सच्चे भेखधारी द्वारा प्रेरित और प्रतिबोधित-जैन सिद्धान्तोंमें निपुणता प्राप्त करके "विश्व-सर्वधर्म परिषद"में जैनधर्मके प्रतिनिधि रूपमें जाकर जैन तत्त्वके और सिद्धांतके स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद, निश्चयनय और व्यवहारनय, प्रतिमा पूजनके रहस्यादि अनेक विषयक पाश्चात्य विश्वके अज्ञानांधकारसे बंध पड़लोंको खोलकर अपनी तीव्र मेधा तथा बुद्धि प्रतिभाके चमकारसे जैनधर्मकी दीप्र ज्योत-प्रभाको प्रकाशित करनेवाले; डंकेकी चोट पर जैनधर्मको गौरवान्वित बनानेवाले श्री वीरचंदजी गांधी, बार.एट.लॉ.-को, जब बम्बई जैसे सुधारक और स्वातंत्र्य प्रेमी शहरके जैन समाजके कुछ सदस्योंने, केवल परदेशगमनकी परंपराके निषेधात्मक दस्तूरको पकड़कर जैनसंघ बाहर करनेका निश्चय किया, उस समय भाविके भीतरमें दृष्टिपात करनेवाली वेधक नज़रसे दृष्ट दृश्यको आपने जिस अंदाज़से प्रस्तुत किया और श्री संघके उस विरोधको नीरव किया यह भी ज्ञातव्य है–**"याद रखना, धर्मके वास्ते श्रीयुत गांधी तो समुद्र पार-अमरिका, चिकागो धर्म परिषदमें गया है, मगर एक समय थोड़े ही अरसेमें ऐसा आवेगा कि, अपने मौज-शौकके लिए, ऐश आरामके वास्ते, व्यापार रोजगारके लिए समुद्र पार-विलायत आदि देशोमें जावेंगें उस वक्त किस किसको संघ बाहर करोगे?"**[४७]

इस प्रकार एक मत प्रवाह चला आता था कि, सूत्रागमको न कोई छाप सकते हैं न छपवा सकते हैं, न उन छापने-छपवानेवालोंकी अनुमोदना हो सकती है । न कोई श्रावक-गृहस्थ उनका अभ्यास कर सकता है । ज्वार सदृश इस लोकप्रवाहसे विरुद्ध दिशामें उस महापुरुषने प्रतिघोष दिया । डॉ. हॉर्नले जैसे विदेशी संशोधकों और जिज्ञासुओंकी उन सूत्रागम विषयक शंका-समस्याओंका समाधान देकर जैनधर्मकी प्रभावनाकी पुड़ियाँ वितरित की थीं । इनके ऋणको याद करके उन विद्वानोंने भरपेट प्रशंसा पुष्पोंसे उन्हें सम्मानित किया था **(जिसका जिक्र इस शोध प्रबन्धमें अन्यत्र अंकित किया गया है ।)**

स्वातंत्र्य सेनानी सुरीश्वरजीने अपने एक पत्रमें तत्कालीन साधु समाजमें प्रचलित मान्यता–'श्रीभगवती सूत्र'के योगोद्वहन किये बिना कोई भी साधु नूतन दीक्षितको छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान नहीं कर सकते हैं–इसकी असंगतता और जड़ताको किस प्रकार विश्लेषित किया है, और उसे किस प्रकार अर्वाचीन मोड़ दिया है, यह अनुमोदनीय-प्रशंसनीय एवं ज्ञातव्य है । अपनी कुछ न्यूनताओंको प्रकट करनेके पश्चात् वे लिखते हैं–**"इत्यादि भगवंतकी बहुत आज्ञाओंका मैं विराधक हूँ ! इस वास्ते मैं तो जिनराजके चरणोंका सरण ही अपने उद्धारका कारण समझता हूँ । बाकी भगवंतकी आज्ञा तो निकटसंसारी जीव ही पूरी (पूर्ण रूपेण) पाल सकते हैं..... थोड़े दिनोंसे जो कोई रूढ़ि चलती करी है, तिसको मैं तपगच्छकी समाचारी नहीं मानता हूँ, और पूर्वाचार्योंके पुस्तक देखनेसे यह भी सिद्ध होता है कि, योग वहनेकी रीति एक सरिखी अविच्छिन्न नहीं चली आयी है ..... जैसी जैसी द्रव्यक्षेत्रादिकी सामग्री मिलती है, तैसी तैसी प्रवृत्ति होती है । रूढ़ि पकड़के बैठे रहना यह सुज्ञोंका काम नहीं है ।"**[४८] वस्तुतः ये न्यूनतायें भी उनकी अपनी नहीं, तत्कालीन समाजकी-श्री संघकी अव्यवस्था और अराजकताके कारण व्याप्त थीं–सर्व साधु समाजकी थीं; और उसके प्रति आचार्यश्रीजीके दिलमें तीव्र वेदना भी थी, अतः उन्होंने 'जिनाज्ञा'को ही अपने उद्धारका कारण माना है। एक क्रान्तिकारी सुधारक विचारधारी सदृश, उन्होंने रूढ़ियोंके सुधारकी ओर अपना संवेदन उद्घोषित किया। इन्हींसे उनकी स्वच्छंद नहीं–स्वतंत्र विचारधाराकी शीतलता-शुद्धता प्रस्फुटित होती है ।

वास्तविक रूपमें साधु हों या श्रावक, जैन हों या जैनेतर–मानवमात्रके लिए शुद्ध व्यवहार ही हितकारी है-इसकी परम आवश्यकताका स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते हैं-**"व्यवहार शुद्धि जो है सो ही धर्मका मूल है; जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धन भी शुद्ध है, जिसका धन शुद्ध है उसका अन्न शुद्ध हैं, जिसका अन्न (आहार) शुद्ध है उसकी देह और वृत्ति शुद्ध हैं, जिसकी देह और वृत्ति शुद्ध है वह धर्मके योग्य है। जो व्यवहार शुद्धि न पाले, व्यापार शुद्ध न करें, वह धर्मकी निंदा करनेसे स्व-परको दुर्लभ बोधि करते हैं।"**[४९] व्यवहार और अर्थका अतीव निकट, संबंध होता है, अतः गुरुदेवके अर्थक्षेत्रान्तर्गत उपकार भी दृष्टव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्थिकः–जैनधर्मका वैशिष्ट्य उसकी अपनी असाधारण सिद्धान्त प्रणालीके बल पर चमकता है । तदनुसार किसी भी व्यक्तिको जीवनमें करणीय चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–माने गये हैं । इनमें आदि-अंतके दो पुरुषार्थ अध्यात्मके स्तंभ है, तो मध्यके दो भौतिकताके आधार । फिर भी धर्मके साथ अर्थको और मोक्षके साथ कामको जोड़कर विशिष्ट प्रणालीका सृजन जैनधर्म द्वारा हुआ है । इन युग्म द्वयसे यह सिद्ध करनेका प्रयास हुआ है कि अर्थ (धन) प्राप्ति भी बिना धर्म अशक्य है, एवं धार्मिक भावनाकी शून्यतामें प्राप्त धनलाभ आत्माका एकान्तिक शत्रु बन बैठता है । तो मोक्षके साथ कामका युगल शिक्षा देता है कि, विश्वमें कमनीय काम (ईच्छा-कामना-वासना) केवल एक ही होना चाहिए–महज़ मोक्ष प्राप्ति--अतिरिक्त मोक्षके, किसीभी प्रकारकी कामना जीवात्माके लिए संसार वृद्धि और अंततः परंपरासे दुःख वृद्धिका हेतु बन जाती है । मोक्ष प्राप्तिके पुरुषार्थमें ही सर्व एषणाओं-अपेक्षाओं और आशाओंका संतुलन स्थित होता है । अतः अध्यात्म और भौतिकता, निश्चय-व्यवहार-दोनों एक आत्मासे संलग्न परस्पर पूरक है ।

इस प्रकार अर्थप्राप्तिमें धर्मको अवलंबन रूप दर्शाते हुए धर्मोपदेशकोंने अर्थकी आवश्यकताके साथ क्षुल्लकताको भी प्रदर्शित कर दिया है । धन-प्राप्तिके लिए जैनधर्मशास्त्रों द्वारा लक्ष्मण-रेखा खिंची गई है।

केवल 'वैभव' नहीं लेकिन 'न्याय सम्पन्न वैभव' प्राप्तिको गृहस्थ धर्मका प्रमुखगुण फरमाया गया है।

उसीको लक्ष्य करते हुए आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा."जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके नवम परिच्छेदमें अर्थार्जनके उपायोंका विस्तृत विवरण देते हुए लिखते हैं, -**"सच्चा श्रावक निर्लोभी और पक्षपात रहित होना चाहिए ..... अधिक धनप्राप्ति होने पर भी अभिमान न करें और धनहानि होने पर खेद न करें; न धर्मकरणीमें आलस्य करें-क्योंकि, जन्म जन्मांतरके पुण्य-पापोदयसे संपदा-विपदा आती है, इस वास्ते धैर्यका आलम्बन श्रेष्ठ है ..... दुर्भिक्षमें अन्नका अधिक मोल न लें, अधिक व्याज न लें, किसीका गीरा पड़ा धन न लें, खोटा तोल-माप, न्यूनाधिक वाणिज्य, भेल-संभेल, अनुचित मोल या व्याजादि न लें, दूसरोंका व्यापार भंग न करें, परवंचकपना वर्जे, जूठ सर्वथा न बोलें, न्यायसे धनोपार्जन करें ।"**[५०] 'न्याय सम्पन्न वैभव' प्राप्तिसे श्रावक अधर्म-राजद्रोह-लोकविरुद्धतासे बचकर पाप-बंधसे त्राण उपलब्ध करता है ।

विश्व व्याप्त अर्थव्यवस्थामें पारस्परिक समानताके लिए 'न्याय संपन्न वैभव'के साथसाथ, दान भावना अर्थात् धन-त्याग-वृत्तिका उपदेश देते हुए आपने कहा कि -**"जद लाभ हो जावे, तदा चिंतानुसार मनोरथ सफल करें; क्योंकि व्यापारका फल है धन होना, अरु धन होनेका फल है धर्ममें धन लगाना, नहींतो व्यापार करना-सो नरक, तिर्यंच गतिका कारण है । जो धर्ममें खरचे वो धर्म-धन, जो धर्ममें न खर्चे, वो पापधन कहा है । ..... इस वास्ते नित्य प्रत्ये स्वधनको दानादि धर्ममें लगाना चाहिए ।"**[५१]

पाश्चात्य देशोंके धनाढ्य और धनहीन, राय और रंकके मध्य जो अनमिट फासला दिखाई देता है, उसे मिटानेकी जितनी कोशिशें होती हैं मानो उतनी ही तीव्रतासे बढ़ता जाता है । जिसका असर शनैःशनैः पूर्वके देशोमें भी फैलने लगा है । उस कशमकशका उपाय जैनधर्मानुसार गहन एवं विशद चिंतनधाराके प्रवासी परम करुणामय श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने अपने चिंतन सीकरोंमें प्रतिबिम्बित किया है। उन्होंने दर्शाया कि, हमारी अंतस्तलकी गहराईसे स्वस्थ समाज रचनाकी झंकारें-पुकारें-गर्जनायें उठें; समाजकी हर व्यक्तिको योग्यतानुसार समान अधिकार मिले; सभीको जीवनयापन योग्य प्राथमिक आवश्यकतायें साहजिक सरलतासे प्राप्त हो सकें और सभी आत्मकल्याण कर सकें-यही हमारा कर्तव्य है । उनकी दीन-हीन-क्षीण-निर्माल्य मनोदशा, उन्हें निष्पाप जीवनसे विमुख करेगी । यही समझो कि, उनको ऊपर उठाकर आप स्वयंको गिरनेसे बचा रहे हों । उनको दान देकर, आप निजात्माको लाभान्वित कर रहे हों । अगर साधर्मिक बंधुको गले न लगाया, तो किसी अन्यके प्रति आपके दिलमें स्नेह सरिता कैसे बहेगी ? **"जिस गांवके लोग धनहीन होवे और श्रावकका पुत्र धनहीन होवे, तिसको किसीके रोजगारमें लगाकर तीसके कुटुंबका पोषण हों तैसे करें । जिस काममें सिदत हों उसमें मदद करना–स्वामी वात्सल्य है ।"**[५२]

इसके साथही दान किस प्रकार, कैसे पात्रको, किस विधिसे देना अभीष्ट है उसे स्पष्ट करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए आपने फरमाया कि, -**"किसी लाचार गरीब पर दया करके उसे खानेको भोजन या पहननेको वस्त्र देना--अनुकंपा दान कहलाता है । ऐसे दानका फल हमेशां शुभ होता है, किंतु.....प्रायः भिखारियोंका रूप अंदर कुछ और बाहर कुछ होता है, वे साधुके वेशमें धोखा-चालाकी करते हैं, अपने पास स्त्रियाँ रखते हैं, व्यभिचार करते हैं, मांस-मदिराका त्याग नहीं करते, चरस-गांजा आदि उडाते हैं । तरह तरहके स्वांग बनाकर लोगोंको लूंटते हैं । चरित्रसे पतीत ऐसे लोगोंको भीख देना कुपात्र-दान है । इससे लाभके स्थान पर हानि होती है। ..... अगर कुछ देना हों तो विवेकपूर्वक तसल्ली करके अपने सामने खाना खिलायें ।"**[५३]

इस प्रकार अर्थप्राप्ति और दान एवं साधर्मिक (स्वधर्मी) वात्सल्य आदिको धर्मकरणीके रूपमें समझाते हुए जैनधर्मकी विश्व बंधुत्वकी भाननाका भी परिचय करवाया है, तो दूसरी ओर उन निर्धन या कम भाग्यवानोंको भी उनका जीवन-राह प्रदर्शित करते हुए नसीहत दी है कि अपने खर्चको हमेशां आमदनीसे कम रखो, सच्चाई और ईमानदारीसे जीवन-यापन करो उसीमें स्वमान व कल्याणका रहस्य है ।

शैक्षणिकः–प्राचीनकालसे आज तकके अनुभवोंको नज़र-पट पर उपस्थित करने पर तजुर्बा यही मिलता है कि, किसी भी देश-जाति-धर्मकी संस्कृति और सभ्यताकी रक्षा केवल उसके ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिकादि परिबलोंसे निसृत ज्ञानगंगाके प्रवाहोंसे ही मुमकिन है । जब वह ज्ञानगंगा रुख बदलती है, पतली पड़ती है-या सूख जाती है तब उसका अस्तित्व खतरेसे खाली नहीं । मुस्लिमोंके अत्यंत आक्रामक धर्मोन्मादका भी भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिरोध हो सका, यह केवल ज्ञानदशाके ही बल पर, आस्थाके स्थिरत्वसे हुआ । उनके द्वारा एक मंदिर भग्न होने पर अन्य अनेक मंदिरोंका निर्माण होता था, क्योंकि ज्ञान-भास्करका आलोक फैला हुआ था-आस्था अड़ोल थी । किन्तु, निरन्तर उन आक्रमणोंके कारण समस्त भारतवर्षमें राजकीय अव्यवस्था हो गई । साथ ही शासकोंकी स्वार्थांधता-क्रूरता-हवसकी लालसादिके कारण नैतिक पतन और परस्परकी ईर्ष्या-द्वेष-विलासिताके व्यामोहसे व्याप्त वातावरणमें आर्थिक असंतुलनका व्याप अपनी चरमसीमा पर पहुँचा था । ऐसे अवसरोमें ज्ञान-विज्ञान या कला-कौशलका पोषण ठप होना स्वाभाविक था । सर्वका ध्यान स्व-सलामतीकी ओर केन्द्रित था । सर्वत्र जानमालकी सुरक्षा-जीवनयापनके साधन जुटानेकी समस्या, सामाजिक मान-प्रतिष्ठादिके संरक्षणादिके लिए प्रत्येक व्यक्ति संघर्षरत था, और उनमें ही स्वयंकी तन-मन-धनकी समस्त शक्तियाँ व्यय हो रही थीं । ऐसेमें ज्ञान-विज्ञान-कला या धर्म-ध्यानकी ओर दृष्टिक्षेप करना या उसका खयाल आना भी दुरूह था । लेकिन....

समय सतत परिवर्तनशील होता है । कालचक्र अरहट्ट सदृश ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपरकी ओर चक्रित होता रहता है । अतः विश्वके उस शाश्वत सत्यानुसार राजकीय परिस्थितियोंने पलटा खाया, जिसका असर सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक हालातों पर हुआ । एक नूतन लहर आयी और उन उत्तापोंसे उबारनेवाले राहकी अलप-झलप दिखा गई । इससे धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें भी चैतन्यका संचार हुआ, सुषुप्तावस्थाका त्याग करके कईं धर्मनेताओंने भी समाजकी अगवानी की । वे अपनी सुदूरदर्शी पैनी दृष्टिसे अनुभव कर रहे थे–*समाजकी संस्कारिता और धार्मिकताकी रीढ़ केवल ज्ञानालंबनसे ही वज्रतुल्य बनती है*-जिससे जनजीवनसे धर्मकी अव्यवच्छिन्नता स्थायी बनती है। "विद्ययाऽमृतमश्नुते" अथवा "सा विद्या या विमुक्तये"- अर्थात् विद्यासे अमरता प्राप्त होती है अथवा विद्या वही है जो हमें विविध अनुचित बंधनोंसे विशेष रूपमें मुक्ति दिलाती है । उपनिषदके इन वाक्योंसे विद्याका स्थान जनजीवनमें किस प्रकारसे उपयुक्तता रखता है–यह स्पष्ट ही है । विद्यासे ही विवेक जागृत होता है । मनुष्यको पशुओंकी तुल्यतासे ऊपर उठानेवाली ताक़त-शिक्षा शक्ति ही है । सभ्य मानवसमाजका मेरूदंड़ बननेकी क्षमता सुयोग्य शिक्षा-स्तंभमें ही निहित है ।

जैन समाजकी ज्ञानके प्रति लापरवाही; विद्यार्जनमें प्रमाद-आलस्य-अनुद्यमको देखकर आचार्य प्रवरश्री आत्मानंदजीकी तड़पती आत्मासे पुकार उठ पड़ती थी । अहमदाबादके श्री संघ समक्ष एक बार अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए आपने फर्माया था-**"यहाँ संघमें हर प्रकारकी सुख संपन्नता है, जन संख्या भी पर्याप्त**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, शास्त्र भंड़ार मौजूद है, किंतु अफसोस, लाभ उठानेवाला कोई नहीं.....सबको साथ मिलकर जैन साहित्यकी रक्षा करनी चाहिए, पाठशालायें खोलनी चाहिए, जिनसे नवयुवक शिक्षा प्राप्त कर सकें । क्या ही अच्छा हों कि व्यर्थमें पड़ी संपत्ति मंदिरोंके जीर्णोद्धार तथा शिक्षा-प्रचारमें लगायी जायें ।"[५४]

शिक्षागुटि-संजिवनी बूटी-व्यक्तिको अमरता प्रदान करती है । यही कारण है कि मानव-बालको जीवनके प्रभातकालमें इल्मके आदित्यके प्रकाशसे देदीप्यमान-कान्तिवान् बनाना आवश्यक माना गया है । शिक्षासे ही विवेक-चक्षुओंका उद्घाटन होनेसे विचारशील विश्वके आलोकित प्रांगणमें शिक्षित मानव स्व-पर, शुभंकर-आत्म कल्याणके साथ-साथ अखिल विश्वकल्याणके लिए कदम उठा सकता है । यह स्वीकार्य है कि उनके रूप विभिन्न हो सकते हैं, लेकिन उसके मूल अस्तित्वका इन्कार नहीं किया जा सकता । अथवा ऐसा इन्कार करना यह भारतीय संस्कृतिके साथ सरासर अन्याय है । मि. हंटरके शब्दों पर गौर करें - **"इतिहासके सभी युगोमें भारतवर्षमें राज्य प्रबन्ध अथवा राज्यकी सहायताके बिना ही किसी न किसी प्रकारकी लोकप्रिय शिक्षा-विधिका प्रचार था । भारतीयोंने मौखिक परंपरा और हस्तलिखित शास्त्रों द्वारा विश्वमें अद्वितीय और उच्च कोटिके साहित्यको सुरक्षित रखा । ..... शिक्षा प्रचारका कार्यभार प्रायः लोगोंके कंधों पर ही था।"**[५५]

अध्ययन अद्वितीय आर्ट है । शिल्पी (अध्यापक) के कुशल हाथों छैनीके कसबका कमाल होता है कि वह कुरूप-अनघड़ पत्थर (निरक्षर बालक), शिक्षाकी सुंदरता प्राप्त होनेसे स्वरूपवान् प्रतिमाकी सुरतसे सजकर समाजके नयनोंका कल्याणकारी तारक बन जाता है । **"वस्तुतः सच्ची शिक्षा ही एक ऐसा अमोघ अस्त्र है, जिससे बौद्धिक दासता और नैतिक भ्रष्टाचार दूर किये जा सकते हैं । मुमुक्षु, ज्ञानपथका पथिक बनकर ही भौतिक बंधन तोड़ सकता है ।"**[५६] श्री आत्मानंदजीम.सा.के अभिप्रायसे साधु संस्थामें व्याप्त शिथिलाचार भी इसी अज्ञानताका कटु परिपाक है । शास्त्र विहित पांच प्रहरके स्वाध्यायके प्रति व्यग्रचित्त, आगमाध्ययनसे विमुख, षट्दर्शनादिकी अभिज्ञतामें उदासीन-ये साधु जैनाचारके अमूल्य सिद्धान्तोंसे अज्ञात और जैनेतर व्यवहारोंसे अनभिज्ञ रह जाते हैं। उनके प्रमादाचरणसे वे समाजके लिए भारभूत बन बैठते हैं । कभी कभी उनका यहाँ तक पतन हो जाता है कि चारित्रसे भी पतीत हो जाते हैं । उनको रोकनेका फर्ज़-सही राह पर लानेका कर्तव्य साधुओं (गुरुओं)के साथ साथ गंभीर-समझदार गृहस्थका भी है । लेकिन उन आचार-व्यवहारके नियमोंसे अज्ञात साधु व श्रावक समाज यह कर्तव्यपालन कैसे कर सकता है ? अतः ऐसे शिक्षा-प्रचारकी ही महती आवश्यकता है । लेकिन तत्कालीन शैक्षणिक परिबलके व्यापने इस कर्तव्य पालनकी राहको श्रावकोंके लिए अत्यधिक दुर्गम बना दिया है ।

ब्रिटिश राज्यकालमें मेकोलेकी शिक्षण-प्रणालीने धार्मिक–आचार-विचार–व्यवहार–समस्तको छिन्नभिन्न कर दिया है; मानो उनका अस्तित्व ही नेस्त-नाबूद होने चला है । अतिरिक्त ईसाई धर्मके अन्य सभी धर्मोंको निर्माल्य-अनघड़-बर्बर; और साहित्यको कल्पना तरंगोकी गपसप या स्वप्निल-पौराणिक कहानियाँ प्रमाणित करनेकी भरसक कोशिशें हुईं । उन पाश्चात्यों द्वारा पौर्वात्य–जो कुछ भी है पुराना-कुत्सित और संस्कारहीन माना गया । आत्मा-परमात्मा-धर्म-कर्म-पुनर्जन्म-प्रतिमापूजन आदिको केवल अर्थशून्य बकवास घोषित किया गया। उन पाश्चात्य संस्कारोंके कारण अश्रद्धा और नास्तिकताकी आंधी एवं स्वछंदता-स्वार्थ-उच्छृंखलताके तुफानोंने आध्यात्मिकता युक्त पौर्वात्य धार्मिकताका ध्वंस कर दिया । इस शिक्षणविधिने भारतीयोंका दिमाग उलटा दिया । हितचिंतक गुरुवर श्री आत्मानंदजी म.के शब्दोमें -**"विदित होवे कि संप्रतिकालमें कितनेक लोग सांसारिक विद्याका अभ्यास करके अपने आपको सर्वसे अधिक अकलवंत मानने लग जाते हैं..... और कितनेक तो नास्तिक ही बन जाते हैं।"**[५७]

ऐसे शिक्षणका अन्यथा और परिणाम क्या हो सकता है, जब उनकी नीति ही गुलामोत्पादनकी थी! ई.स. १८३६में मेकोलेके, अपने पिताको लिखे हुए एक पत्रमें इसके आसार प्राप्त होते हैं– **"हमारी शिक्षाका हिन्दूओं पर आश्चर्योत्पादक असर हुआ है, और कोई भी हिन्दू, जिसने इस शिक्षाको ग्रहण किया है,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने धार्मिक तत्त्वोंका श्रद्धालु तथा भक्त नहीं रहता..... मेरा विश्वास है कि, हमारी शिक्षा पद्धतिको लोगोंने कुछ और अपनाया तो अबसे करीब तीस वर्ष पश्चात् बंगालके प्रतिष्ठित परिवारोमें एक भी व्यक्ति मूर्तिपूजक न रहेगा..... अर्थात् हमें अपनी चरमसीमा तक ऐसा भगीरथ प्रयत्न करना चाहिए कि हम अपने करोंड़ों शासित भारतीयोंके बीच एक ऐसा समुदाय तैयार करें जो हमारी बात उन तक पहुँचा सकें । वह समुदाय रक्त-रंग और जन्मसे तो भारतीय होगा किंतु रुचि-विचार-भाषा और बुद्धिके दृष्टिकोणसे अंग्रेज ।"[५७] मेकोलेके इन भविष्य कथनोंको भोले भारतीयोंने संपूर्ण सत्य सिद्ध कर दिखाया है । *"उच्च विचार और सादा जीवन"* के भारतीय जीवन-धारा प्रवाहको इस शिक्षण पद्धतिने छिन्न-भिन्न ही कर दिया, जिसके विषाक्त फल वर्तमानयुगमें अधिकाधिक तीव्रतासे अपना विपाक प्रदर्शित कर रहे हैं।

इन परिस्थितियोंमें आचार्य प्रवरश्रीके विचारसे व्यावहारिक शिक्षाके साथ धार्मिक शिक्षाका और धार्मिक शिक्षाके साथ व्यावहारिक शिक्षाका होना अत्यंत उपयोगी है । दोनों एक ही पक्षीके दो पंख समान है; समाजके लिए दोनोंका समन्वय ही विशिष्ट उपकारक और उपयोगी बन सकता है । केवल धार्मिक शिक्षासे गृहस्थ जीवन दुष्कर होगा और केवल व्यावहारिक शिक्षा स्वार्थ-उच्छृंखलता-स्वच्छंदता और नास्तिकता लायेगी। दोनोंके सामंजस्यसे मनुष्य अपनी आजीविका ईमानदारीसे अर्जित करेगा -**"विद्या वह जो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करें अर्थात् अध्ययन करें । अनपढ़ पग-पगमें पराभव पाता है, अरु विद्यवान् विदेशमें भी माननीय होता है। इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला सिखनी चाहिए । क्या जाने क्षेत्र-कालके विशेषसे किस कलासे आजीविका करनी पड़े। जब सर्व कला सिखनेमें असमर्थ हों, तब जिस कलासे सुखपूर्वक निर्वाह हों और परलोकमें सद्गति हों वह कला सिखें ।"**[५९]

परमोपकारी उन तारक गुरुवर्यने अपनी पैनी नज़रसे भांप लिया था कि, ऐसी तत्कालीन, हानिकारक शिक्षाका प्रतिकार करनेके लिए केवल एक ही रामबाण उपाय है—धर्मकी श्रद्धाका दृढ़ीकरण, जिसके लिए आज़मानी होगी गुरुकुल शिक्षण प्रणाली; जो विद्यार्थीको पतीत पावन जीवनके लिए पवित्रता, स्वावलंबन, उच्च विचार और सादा रहन-सहनादिसे पुष्ट सामर्थ्यशाली शांति-समता, पराये अपराधके प्रति क्षमा-प्रदाता सहनशील उदारता, विशिष्ट चारित्रिक गठन, स्वमानकी सुरक्षा एवं गौरव, उत्तमोत्तम धार्मिकता, परमोपकारक सामाजिकता, धीरता-वीरता-गंभीरतादि गुण प्रस्रवा शैक्षणिकता और स्वतंत्र सदाशयी आर्थिक स्थिरता प्रदान करनेकी क्षमता रखती है; जो वर्तमान विषैले शिक्षणसे मुक्त करवाकर भावि भारतके कर्णधारोंको जीवन विषयक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें पोषक बनकर महान उपकारक बन सकती है ।

अतः अपने जीवनकी अंतिम सांस पर्यंत-सर्व जीवराशिसे अंतिम क्षमापनादि करके जीवन-किताबको समापन करते करते भी उनकी वाणीसे उनके कृपावंत हृदय कमल स्थित खयाल पुष्पोंकी सुरभि प्रसारित हुई है -*"वल्लभ ! लुधियानेवाली बात याद है न ! .... उसका पूरा पूरा ध्यान रखना । ज्ञानके बिना लोग धर्मको नहीं समझ पावेंगे ।"*[६०] (लुधियाना शहरमें एक बार एक क्षत्रिय भक्त द्वारा समाजको शिक्षित बनानेके लिए सरस्वती मंदिरोंकी स्थापना करनेके सूचन पर उन्होंने फर्माया था कि श्रावकोंकी श्रद्धा स्थिर करनेवाले श्रीजिनमंदिरोंकी आवश्यकताकी पूर्ति करीब करीब हो गई हैं और अब जीवनके उत्तरार्धमें शरीरने साथ दिया तो ज्ञानयज्ञकी ओर पुरुषार्थ करनेके लिए कटिबद्ध बनना है । लेकिन अपनी अंतरेच्छाको साकार स्वरूप देनेके पूर्व ही कालचक्रके घूमने पर उनकी ख्वाहीश अधूरी रही । इस बातकी ओर इंगित करते हुए उन्होंने इसे अंतिम अंतरेच्छाके रूपमें प्रदर्शित करते हुए प्रिय प्रशिष्य श्री वल्लभविजयजीको सरस्वती मंदिर स्थापित करके—ज्ञानयज्ञ प्रारम्भ करके—समाजको ज्ञान-प्रदानके लिए एलर्ट किया ।)

उनके विचारसे ऐसे उपयुक्त शिक्षा प्रबन्धके लिए यथोचित क्षेत्र पंजाबमें केवल गुजरांवालां ही था। यही कारण था कि वे सनखतराके श्री जिनमंदिरजीकी प्रतिष्ठा करवानेके पश्चात् तुरंत गुजरांवालां पहुँचे। लेकिन, आपकी मनोकामनाको कार्यान्वित करनेवाला सूर्योदय आप न देख सकें । अपना अपूर्ण कार्य पूर्ण करनेका कार्यभार श्रीमद्विजय वल्लभसुरीश्वरजीको सुपुर्द किया, जो उन परम गुरुभक्त पट्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावकने परिपूर्ण निष्ठाके साथ निभाया । आज अनेक स्थानों पर गुरुकुल-विद्यालय-कॉलेज-पुस्तकालय-पाठशालायें-ज्ञानभंड़ारादि शिक्षण संस्थायें विद्यमान हैं, ये उन्हींके विचारोंका मूर्तरूप हैं । इसे सिद्ध करते हैं ये शब्द –**"यद्यपि गुरुदेवने पंजाबमें बहुतसे मंदिर निर्माण करवाये, तथापि उन्हें उतने ही कार्यमात्रसे संतोष न था, उनके हृदयमें इन मंदिरोंके पूजारी पैदा करनेकी भावना थी । उनके दिलमें एक कसक थी–प्रबल ईच्छा थी, कि इनके साथ कई सरस्वती मंदिर भी स्थापित किये जाये और उन्हें विशाल (विश्व) विद्यापीठ बनाकर समाजका कल्याण किया जाय । जब तक ज्ञानका प्रचार न किया जायेगा तब तक किया हुआ कार्य स्थायी नहीं रह सकता ..... गुरुदेवके नाम पर कई शिक्षण संस्थायें, कई पुस्तक प्रचारक संस्थायें, कई पुस्तकालय-ज्ञानभंड़ारादि स्थापित हुए, जिनका संक्षिप्त परिचय पाठकोंको इस लेखमें मिलेगा ।"**[६१]

आचार्य प्रवरश्री आत्मानंदजीकी भावनाके परिपाक स्वरूप सरस्वती मंदिर ऐसे होने चाहिए कि जिसमें केवल श्रद्धायुक्त धार्मिकता न होकर ऐतिहासिकता-वैज्ञानिकता या अन्वेक्षिकताका आलोक भी हों, जिससे जैन सिद्धान्तोंके अध्ययन और अनुसंधानके लिए विश्वस्तरीय कार्य फलक पर एक आदर्श संस्थामें देश-विदेशके जैन-जैनेतर-प्रौढ़ एवं अनुभवी विद्वान विशिष्ट परिशीलन करते हुए मानव जीवनकी पेचीदी समस्याओंको सुलझानेका सौभाग्य प्राप्त करें । सम्यक् (सच्चा) ज्ञान ही जीवन है, प्रशस्त प्रकाश रूप है, अतः हमारे जीवनके दौरेमें हमें सशक्त बनानेवाली एवं अन्य जाति-समाज या राष्ट्रके मुकाबलेमें स्थिर बनाये रखनेका सामर्थ्य प्रदान करते हुए धर्मज्ञानसे विभूषित करनेवाली जातीय शिक्षण संस्थाओंकी अत्यावश्यकता हैं । इन्हीं तथ्योंको प्रस्फुटित कर्ता श्री मथुरदासजीके भाव देखें -**"शिक्षाकी उन्नतिको जैन समाजके अभ्युत्थानका प्रबल साधन समझते हुए ही प.पू.न्यायांभोनिधि स्वर्गीय आचार्य श्री विजयानंद सुरीश्वरजीम.के हृदयमें एक विशाल शिक्षण संस्था खोलनेकी भावना उदित हुई थी । विद्वद्वर्य श्रीमद्विजय वल्लभ सूरिजी म.ने अपने गुरुवरकी भावनाको क्रियात्मक रूप देनेके लिए श्री आत्मानंद जैन गुरुकुल-पंजाब, गुजरांवालांकी स्थापना की थी । ..... पू. आचार्यश्रीजीकी शिक्षाप्रियता केवल इस संस्थासे विदित नहीं होती है, बल्कि श्री महावीर विद्यालय, श्री पार्श्वनाथ विद्यालय, अनेक गुरुकुल-बालाश्रमादि अनेक संस्थायें स्थापित करके आपश्रीने जैन समाजके उत्थानके अत्यावश्यक साधन–शिक्षाका विशेष प्रचार किया है ।"**[६२]

इन विविधलक्षी सरस्वती मंदिरोंके अतिरिक्त उन्होंने शिक्षाके क्षेत्रमें अत्यंत महत्वपूर्ण नूतन ज्ञानभंड़ार-पुस्तकालयोंकी स्थापनायें, प्राचीन ज्ञानभंड़ारोंके पुनरुद्धारके कार्य (उसके लिए आर्थिक योगदान-शिक्षण निधि फंड़-आदिकी योजनायें), जीर्ण-शीर्ण फिर भी महत्वपूर्ण ऐसे ताड़पत्रीय एवं अन्य प्राचीन-उत्तम-अलभ्य ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ तैयार करवानेके कार्यको भी गतिशील किया । श्री बनारसीदासजी जैनकी श्रद्धांजलि-सुमनकी झलक देखें -**"एक विद्वानका कथन है कि सच्ची युनिवर्सिटी** अथवा रिसर्च **इन्स्टीट्यूटके प्राण तो पुस्तक-संग्रह है । महाराजजी भी इस विचारसे सहमत प्रतीत होते हैं, क्योंकि गुजरांवालां नगरमें जहाँ वे सरस्वती मंदिर खोलनेके भाव रखते थे, वहाँ पं.बेलीराम मिश्रजी सं. १९३१से शास्त्रोंकी प्रतिलिपि करने पर नियुक्त थे । प्रतिलिपिका यह कार्य बीस वर्ष तक चलता रहा । इसके अतिरिक्त पुस्तक भंडारको पूर्ण रूप देनेके लिए महाराजजीने सैंकड़ों प्राचीन लिखित और नवीन मुद्रित प्रतियाँ गुजरात-मारवाड़से पंजाब भिजवाईं । इनके साथ पंजाबके यतियोंके ज्ञानभंड़ार भी मिले । इस प्रकार म.सा.ने पंजाबमें पूर्ण रूपेण पुस्तक संग्रह कर दिया था ।"**[६३] इन अनेकविध कार्योंमें अपना श्रेष्ठतम योगदान सुरीश्वरजीने जीवनपर्यंत दिया । हम यह कह सकते हैं कि उनका आद्योपांत जीवन–जीवनका प्रत्येक पल-शिक्षाके आदान प्रदानसे ही संलग्न था ।

वह समय था, जब शिक्षणक्षेत्रमें अन्वेषिकी दृष्टिने प्रवेश कर दिया था । तुलनात्मक, ऐतिहासिक अनुसंधानोंका साम्राज्य संसारभरमें फैला हुआ था । **"प्राचीनकालथी चाल्या आवता धर्म तरफ जोवानी** अनेक **दृष्टिओ होय छे । आजना जमानामां ऐतिहासिक दृष्टि प्रधानपद भोगवे छे ।"**[६४]

"आपणो युग संशोधननो छे । घणुं बधुं साहित्य दटायेलुं पडयुं छे । तेने शोधी काढ़ी तेमांथी मळता ज्ञानने प्रकट करवानी जगत समक्ष धरवानी पण एक मज़ा छे । तो क्षीर-नीर विवेचन दृष्टि केळवी परंपरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वीकृत के मान्य गणाता तथ्योमां ज्यां, जे कांई मिश्रण के परिवर्तन थयेलुं मालूम पड़े त्यां तेना यथार्थ तत्व-तथ्य सुधी पहोंचवानी दिशामां यथामति उद्यम करवो, ए पण एक अनेरो बौद्धिक विहार बनी रहे तेम छे ।"[६५]

ऐसे समयमें युग प्रवर्तक श्री आत्मानंदजीके ज्ञान सरोवरमें उस संशोधन क्षेत्र फलकको संभालकर और सम्मार्जित कर-संवर्धित करनेवाले पुंडरिक पद्म विकस्वर हो चूके थे । उनके प्रत्येक ग्रन्थोंमें हमें उनकी उस विचक्षण-विलक्षण, परिमार्जनसे अंकित अन्वेक्षिकाका अनुभव प्राप्त होता है । इनके *'बृहत् नवतत्त्व संग्रह, जैन तत्त्वादर्श, चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२, अज्ञान तिमिर भास्कर, तत्त्व निर्णय प्रासाद'* आदि ग्रन्थोंमें हमें उनकी अनुसंधान दृष्टिकी शक्तिकी अमिताभ आभाका स्पष्ट रूपेण परिचय प्राप्त होता है । इन्हीं गुण सौरभसे आकर्षित स्वदेशीय और विदेशीय-अनेक विद्वद्वर्य भ्रमरोंका गुंजन इनके इर्द-गिर्द सुनायी देता था-यथा-बेवर, जेकोबी, व्हूलर, पीटर्सन, होर्नले आदि । इन सभीमें से उनके ज्ञानोद्यानकी खुश्बूका यथेष्ट-सर्वाधिक आस्वाद डॉ. हॉर्नलेने लिया था । उनके ज्ञानके आदान-प्रदानका संग्रह-जो पत्र व्यवहार रूपमें हुआ था, उन पत्रोंका संकलन प्रश्नोत्तर रूपमें-*('प्रश्नोत्तर संग्रह', प्रका. श्री जैन आत्म-वीर-सभा, भावनगर)* नामक पुस्तकमें किया गया है । डॉ. हॉर्नले उनके आगमिक ज्ञान और प्रत्युत्तरोंकी सर्वांग परिपूर्णता-विषयलक्षिता-तर्कबद्ध सुरेखता एवं अविलंब नियमितितासे अत्यन्त प्रभावित हुए, परिणामतः अपना संशोधित और अनुवादित आगम ग्रंथ "उपासक दशांग-सूत्र" को उन उपकारीके पाद-पद्मों पर प्रशस्ति गान सहित समर्पित किया । इस तरह निर्विवाद है कि, तत्कालीन-अर्वाचीन युगकी आधुनिकताके साथ उस युगमें कदम मिलानेवाले वे अनुपमेय आचार्य प्रवर थे ।

वाचकवर्य श्रीउमास्वातिजीम. विरचित 'श्रीतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' अनुसार मोक्षमार्गका प्रथम अंग है स.दर्शन अर्थात् सत्यके प्रति संपूर्ण श्रद्धा, सम्यक् दृष्टिबिन्दु अथवा श्री अरिहंत परमात्माके प्रति अविहड़ आस्था; और दूसरा है ज्ञान । तो श्रुतकेवली श्री शय्यंभव सुरीश्वरजीके 'श्री दसवैकालिक सूत्र' अनुसार 'पढमं नाणं तओ दया'-प्रथम ज्ञान बादमें दयाका आचरण करना उपयुक्त है, क्योंकि, बिना ज्ञान दया पालना असंभव-सा बन जाता है । अतः यह सिद्ध है कि ज्ञानका माहात्म्य जैन संस्कृतिमें अति प्राचीन कालसे अपनी चरम सीमा पर स्थित था और अर्वाचीन कालमें भी है । जैनधर्मके ऐसे उत्तमोत्तम ज्ञानराशिकी परम्पराका निर्वाहक साहित्य भी उतना ही समृद्ध है । संसार व्यवहारके विश्व प्रसिद्ध-प्रत्येक विषयक ज्ञानकी परिपूर्णतासे सुसम्पन्न जैन वाङ्मयके विषयमें जितना भी कहें अपर्याप्त ही है । आज भी जैन साहित्यमें निरूपित कईं विषय ऐसे भी हैं जिनके विषयमें आधुनिक विज्ञान या वैज्ञानिक और विद्वान विश्लेषक या संशोधकोंकी पहूँच नहीं-जिसके लिए केवल आधिभौतिक अन्विक्षण अपर्याप्त माने जाते हैं, जहाँ केवल आध्यात्मिक आराधना ही एक मात्र तदबीर हो सकती है–ऐसे उत्तमोत्तम साहित्यके अत्यंत दयनीय हालातका चित्रण करते हुए श्री अमरनाथजी औदीचजी लिखते हैं -**"The community altogether lost sight of this spiritual wealth, with the result that most of the literature was on the verge of being eaten up by vermins. Due to lack of attention several valuable manuscripts on palmleaves had been destroyed by white-ants, while some had become almost indecipherable."**[६६]

आचार्य प्रवरश्री आत्मानंदजीम.सा.ने स्वयं अपने "अज्ञान तिमिर भास्कर" ग्रन्थमें इस दुर्दशाको वर्णित करते हुए लिखा है **"मुसलमानोंके राज्यमें लाखों पुस्तकें जला दीं गईं और जो कुछ शास्त्र बचे हैं, वे भंड़ारोंमें बंद कर दिये गए हैं-जिनमें पड़े पड़े गल गये हैं, जो बचे हैं वे भी दो-तीन सौ वर्षमें गल जायेंगे-"**

इस अवस्थाको ज्ञानके प्रति संपूर्ण समर्पित-नेकदिल हृदय कैसे सह सकता है ? उनकी तड़पती आत्मासे कसक उठी और कमर बांधकर वे उठ खड़े हुए । उनकी अनुभवी निगाहोंने उस परिस्थितिका ताग लिया और कागज़-कलमके-दो पंखोंके-सहारे उस ज्ञानपंछीने ज्ञान-गगनमें स्वैर विहारका प्रारंभ किया। उनकी प्रत्येक उडानसे नित्य नूतन लक्ष्योंकी प्राप्ति होने लगीं । उनकी त्रिविध साहित्यिक सेवायें–संरक्षण-संमार्जन-संवर्धन–जैन समाजके लिए सूचक, समयोचित और सार्थक सिद्ध हुई हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संरक्षण और संमार्जन–इनके अंतर्गत उनके द्वारा किये गए कार्योंका प्रारूप निम्नांकित है । जो ज्ञानभंड़ार भूमिगृहोंमें-आलमारियों-सन्दूकोंमें बंद पड़े थे; आक्रामकोंके भय दूर होने पर भी दीर्घकालीन प्रमाद-आलस्य और अज्ञानताके कारण आध्यात्मिक समृद्धिको निहारनेवाले नयनपट बंध होनेसे ज्ञान प्रकाशका असर नहीं होता था, न किसीको कुछ सुझता था । पूर्वजोंकी उस अमूल्य साहित्यिक संपत्तिको अज्ञान जैनोंने कंजूसकी तरह कैद कर रखा था । यह समां था जब व्यक्तिके, उस ज्ञान-निधिके दर्शन करनेके प्रस्तावको भी शंकित नज़रोंके बाणोंसे घायल कर दिया जाता था । **'Atmaramji prevailed upon the people to take the books out of the cellars and to let him inspect their conditon.....every effort was made by him to have them copied out where possible. In some cases the books were repaired or rebounded and regular libraries were started for their proper care & upkeep. He deputed some of his disciples to prepare lists of this literature for futher reference.'**[६७]

आचार्य प्रवरश्री ऐसी जाज्वल्यमान प्रतिभाके स्वामी थे कि समस्त जैन जाति उनके एक इशारे पर सर्वस्व न्योच्छावर करनेको तत्पर थी । अतः उस प्रतापी प्रभावका ही परिणाम था कि उन्होंने जैन संघोंके आधिपत्यवाले बहुमूल्य ज्ञानार्णवको, उनके प्रमुख सदस्योंको समझाकर और वैयक्तिक ज्ञानभंडारोंमें स्थित ज्ञानराशिके लिए उनके स्वामी–प्रत्येक व्यक्तियोंको समझाकर–उन सभीके अधिकारमें रहें उन आगमिक एवं शास्त्रीय कोषागारोंको खुलवा दिये । उनके विचारसे ज्ञानोद्यानकी सुरभि किवाडोंमें बंद कर देनेसे नष्ट हो जाती है–सुगंध दुर्गंधमें पलट जाती है–उद्यान उजड़ जाता है; उसे जितना भी खुला रखा जाय-उसकी सुवास वितरित की जाय, वह अधिकाधिक प्रफुल्लित और महकदार बनता है ।

उन भंड़ारोंको खुलवाकर उन्होंने उनका निरीक्षण किया । कईं अलभ्य-अत्युपयोगी-अमूल्य ग्रंथोंकी प्रतिलिपियाँ करवायीं । कोई भी व्यक्ति अंदाज़ा लगा सकती है कि गुजरांवालांमें केवल पं.श्री बेलीराम मिश्रजीने ही बीस साल पर्यंत प्रतिलिपियाँ करनेका कार्य किया । अतः बीस वर्षोंमें कितनी प्रतिलिपियाँ की होगी ! ऐसे ही अन्य स्थलोंमें अन्य व्यक्तियोंके पास और अपने शिष्य-प्रशिष्योंके पास भी कईं ग्रंथोंकी प्रतिलिपियोंका कार्य करवाया । बिस्मार पुस्तकें और पोथियोंकी मरम्मत करवायीं और अनेक प्रकारसे हिफ़ाजतपूर्ण उनको सुरक्षित स्थानोंमें रखा गया । उनके यथोचित उपयोगके लिए उन पुस्तकें–हस्तलिखित या मुद्रित या ताड़पत्रीय–प्रतियोंकी सूचि तैयार करवाकर ज्ञानभंडारों व पुस्तकालयोंको व्यवस्थित किया या करवाया ।

ज्ञान-यज्ञ रूप इस जीर्णोद्धारके कार्यके लिए आर्थिक सहायता हेतु सबको प्रेरित किया, साथ ही साथ उसके पठन-मनन-निदिध्यासन करनेवाले जनसमूह और जैन संघको भी अनुप्राणित करते हुए साहित्य रसिक बनानेको यथाशक्य प्रयास किये जिसके अंतर्गत प्रमुख रूपसे प्राचीन भाषायें एवं लिपियोंके अध्ययन-अध्यापन और संस्करणके लिए विशिष्ट कार्य किये गये । आगम प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्य विजयजीम.ने उनकी उन शक्तियोंको प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि -"**स्वर्गवासी गुरुदेवना ज्ञानभंडारमां तेमना स्वहस्ते संशोधित अनेक ग्रन्थों छे । तेमां 'सन्मति तर्क' शास्त्रनी हस्तलिखित प्रतिने ए गुरुदेवे पोते वांचीने सुधारेली छे, जे सुधारेला पाठोने मुद्रित 'सन्मति तर्क'ना संपादकोए तेमनी टिप्पणीमां ठेकठेकाणे स्थान आप्युं छे ..... पंजाब देशमां आजे स्थान स्थानमां स्वर्गवासी गुरुदेवना वसावेला विशाल ज्ञानभंड़ारो छे, जेमां सारभूत ग्रन्थोनो संग्रह करवा गुरुदेवे अथाग प्रयत्न कर्यो छे । महोपाध्याय श्री यशोविजयजी गणिजी कृत 'पातंजल योगदर्शन'-टीका, 'अनेकान्त व्यवस्था' जेवा अलभ्य-दुर्लभ्य प्रासाद ग्रन्थोनी नकलो आ भंड़ारमां विद्यमान छे जे बीजे क्यांय जोवामां आवती नथी । स्वर्गवासी गुरुदेवे विहार दरम्यान ग्राम ग्रामना ज्ञानभंड़ारोनी बारीकाइथी तपास करी अलभ्य ग्रन्थोना ज्यांथी मळी आव्या त्यांथी उतारा कराव्या छे । तेनाथी तेमनी अपूर्व साहित्य-परीक्षक सूक्ष्मेक्षिकानो परिचय थाय छे ।**"[६८]

इसके अतिरिक्त जैन साहित्यके प्रचार-प्रसार और अनुवाद-अनुसंधानादि कार्यमें भी हार्दिक दिलचश्पीके साथ सक्रिय मार्गदर्शन दिये और स्वयं भी कदम बढ़ाये । जैन परंपरानुसार आगम-अध्ययन योगोद्वाहक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु ही कर सकता है । लेकिन कुछ पुर्वानुसंधानोंके संदर्भके बल पर इस गतानुगतिकताको रुखसत देकर वे .स्वयं भी बिना योगोद्वहन आगम-सूत्रादिके अध्येता एवं अध्यापक भी बने और पाश्चात्य-पौर्वात्य सभी जिज्ञासु विद्वानोंको उन रहस्योंसे परिचित बनवाकर उनके अध्ययनमें सहयोगी बने, जिससे अनेकोंको जैन साहित्यके अध्ययनमें प्रोत्साहन मिला । इस प्रकार हमारे इस विहंगावलोकनसे प्रतीत होता है कि सूरिवर्य श्री आत्मानंदजी म.ने जैन साहित्यके संरक्षण और संमार्जनके प्रति किस कदर पुरुषार्थ किया था। और अब हम निरूपित करते हैं उनके साहित्य संवर्धनको, जिसके लिए उनका समूचा जीवन समर्पित था ।

संवर्धनः—तत्त्व और तथ्य गवेषक-तलस्पर्शी जिज्ञासु एवं तर्कबद्ध शिष्ट आलोचककी प्रतिभा सम्पन्न सुरीश्वरजीकी हृद्तंत्रीकी झंकारने संरक्षण और संमार्जनसे ही तसल्ली न मानकर उस बीनको तीव्र और उच्च झनझनाहटसे निनादित संवर्धनमें कृतार्थता मानी । उत्तम पुरुष वह होता है जो पैतृक सम्पत्तिको वृद्धिगत करें । सूरि सम्राट श्री आत्मानंदजीम.सा.ने इस तथ्यको सिद्ध कर दिखाया । स्वयंने गणधर रचित आगम-शास्त्र एवं गीतार्थ पूर्वाचार्य विरचित विविध विषयक ग्रन्थोंका साद्यंत अध्ययन किया—पंचांगीके सहारे पठन-मनन किया और सत्य गवेषक दृष्टिसे उनका परीक्षण करते हुए उस चिंतन-मननके रवैयेसे किये गये बिलोडनसे प्राप्त नवनीतको लोकभोग्य बनाने हेतु सरलतम प्रविधिसे प्रस्तुत करनेकी कोशिश की । उनकी ग्रन्थ रचनाओंके सूक्ष्म अभ्याससे प्रतिफलित होती है, अनेक आगमशास्त्र एवं जैन-जैनेतर ग्रन्थोंके संदर्भोंसे उनकी बहुश्रुतता, विशाल और गहन अध्ययन, वस्तु विवेचनाकी गंभीरता, पदार्थोंके वर्गीकृत संग्रह, सर्वधर्मका सर्वदेशीय अध्ययन तथा उससे निष्पन्न प्रखर पांडित्य! सुव्यवस्थारूढ समर्थ सुक्रान्तिकारत्व और चिंतन स्वातंत्र्य ! उनके ग्रन्थोंके अध्ययनसे अध्येताको बिना आगमके अभ्यास ही अनेक आगमिक गूढ, सैद्धान्तिक तथ्योंका सार सरलतया प्राप्त होता है । उनका धाराबद्ध प्रवाहित प्रवचन हों या अंतरंग भावावेगबद्ध भाषामें आलेखन हों, श्रोता या पाठक, आबाल-वृद्ध या विद्वान हों समान रूपसे उसका उपभोक्ता बन सकता था । उनकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वकी प्रतिपादक विवेचना शैली ऐसी मनोहर थी कि छोटा बालक उसे उसी भावसे समझ सकता है, जिस भावसे एक विद्वान; अनेक साक्षर एवं तत्त्व-गवेषक मंत्रमुग्ध बनकर उसका आस्वाद लेते रहते थे और अधुना भी ले रहे हैं ।

अप्रमत्त आत्मानंदजी म.के नित्य नूतन साहित्य सर्जनकी भाव लहरी पर नर्तन होता रहता था-वैदिक साहित्यका अध्ययन, श्रुतियाँ-उपनिषद-पुराणादिका पठन, इतिहासका अवलोकन, स्व-पर समयके दर्शनको लक्षित किया हुआ चिंतन-मनन; जिनसे निःसृत हुआ युक्तियुक्त अनेकान्तवाद एवं स्याद्वादका मनमोहक आलेखन; जैनधर्मकी दार्शनिकता, सैद्धान्तिकता, क्रिया-कर्मठता; मूर्तिपूजा और अहिंसक आत्मिक यज्ञकी सिद्धिमें प्राचीन शास्त्र और अर्वाचीन तर्कबद्ध उहापोह ।

इस क्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण-यथोचित-लाभदायी जो कार्य हुआ, वह है हिन्दी भाषामें साहित्य सर्जन! वह युग था पांडित्य प्रदर्शनका ! उन दिनोंमें गद्य रचनायें होती थीं प्रायः संस्कृत या प्राकृतमें और पद्य रचनायें प्रायः प्रादेशिक भाषाओंमें—विशेषकर ब्रजभाषामें ऐसे वातावरणमें संस्कृत-प्राकृतके एक प्रखर-सिद्धहस्त विद्वानका खड़ीबोली-हिन्दी भाषामें साहित्य सर्जन करना—जिसका साहित्यिक स्वरूप भी डाँवाडोल था-अपने आपमें आश्चर्योत्पादक या अनहोनी घटना थी ! लेकिन आचार्य प्रवरश्री आम्रतरु सदृश जितने उच्च कोटिके विद्वान थे उतने ही नम्र और भावुक भी थे । उनके परमोपकारी अंतरात्माके निर्मल आकाशमें चमकते चंद्रकी चांदनीमे सभीको सराबोर कर देनेकी उनकी ख्वाहिश थी । वे चाहते थे कि जिनशासनके जिन सिद्धान्तोंको पूर्वाचार्योंने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-मागधी-अर्धमागधी आदि अनेकानेक प्राचीन भाषाओमें निबद्ध किया है, उसे उन भाषाके अवबोधसे अबुध-सामान्य जन-जन तक पहुँचाया जाय; उनके अंतरंग एवं वास्तविक मर्मको उन सरल और भद्र परिणामी, जिज्ञासुओंको समझाया जाय; भ. श्रीमहावीरके सत्य राहसे उन्हें परिचित करवाया जाय—जिनसे उनकी सम्यक् श्रद्धा सत्य धर्मके प्रति स्थिर बनें । उन दिनों अधिकतर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाजकी मातृभाषा-जनभाषा-हिन्दी थी, उस स्वभाषामें ही सही, उन्हें जैनधर्मके तत्त्वज्ञ बनाया जांय । अतः उन तत्त्वगवेषक-समर्थ विद्वद्वर्यने अपनी उस अदम्य भावनाको मूर्तरूप देना प्रारम्भ किया । उन्होंने अनेकविध विषयोंका अनेक ग्रन्थ रचना करके उद्‌घाटन किया, जो जैन-जैनेतर, गंवार या विद्वान, तत्वज्ञ-मर्मज्ञ या अल्पज्ञ-सभीके लिए समान उपस्कर्ता सिद्ध हुई ।

"जिस प्रकार मनुष्यकी बुद्धि और चारित्रका तेज़ उसके नेत्रोमें प्रकाशित होता है, उसी प्रकार आत्मारामजी म.के अभ्यास, परिश्रम और प्रतिभाका आलोक आपको उनके देदीप्यमान ग्रन्थोंमें दृष्टिगोचर होगा । ये ग्रन्थ ही मौन रहते हुए भी हंमेशाके लिए अमर रहनेवाली आत्मारामजी महाराजकी जीवित प्रतिमायें हैं । ये ही ग्रन्थ उस महापुरुषकी आत्माके तेजको आज भी अक्षर रूपमें एकत्र किये हुए हैं।"[६९]

प्रत्येक साहित्यिक कृति तत्कालीन अवस्थाका परिचय देनेके साथसाथ उसके रचयिताकी अंतरंग आत्माका अभिज्ञापन करवाती है । उनमें छलकती भावनायें-दर्पणतुल्य-साहित्यकारके व्यक्तित्वके महद् अंशको यथार्थ रूपमें चित्रित करती है । श्री आत्मानंदजीम.का साहित्य भी उनके कीर्तिकलशको अमरत्व प्रदान करनेवाले अमृतकुंभ तुल्य है । उनके ग्रन्थोंमें 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह', 'अज्ञान तिमिर भास्कर' और 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' जैसी विद्वद्‌भोग्य रचनायें; 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर', 'जैन धर्मका स्वरूप', 'जैन मत वृक्षादि' जन साधारण योग्य रचनायें, 'जैन तत्त्वादर्श' जैसी 'जैनगीता' समान सर्वांगिण उपयुक्त रचना और 'चिकागो प्रश्नोत्तर' जैसी विश्व-स्तरीय रचनाओंका विविध रंगी इन्द्रधनुषी सुशोभन है; तो विषय वैविध्य, दार्शनिक, वैचित्र्य, विषय निरूपण करनेवाली शैलीका वैविध्य भी अपनी अलप-झलप दिखा जाते हैं । उनके ग्रन्थोमें ईसाई-बौद्ध, वैष्णवादि हिन्दू धर्म-शीखादि ईतर धर्मोके धर्मग्रन्थोंके सूक्ष्म अध्ययन और परिशीलन पश्चात् उनमें प्ररूपित असंगत प्ररूपणाओंका खंड़न किया है । अतः उनके साहित्यकी शैलीमें विषय प्रतिपादक शैली, खंडन-मंडनात्मक शैली (जिसमें संवादात्मक शैलीका भी उपयोग हुआ है ।), आलोचनात्मक शैली आदिका विषयानुरूप वैविध्य दृष्टिगोचर होता है ।

'*नामूलं लिख्यते किंचित्*'-इस सिद्धान्तका उन्होंने पूर्णतया पालन किया है । उनके साहित्यकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता ही यह है कि उनकी कृतियोंका, उनमें निरूपित विषयोंका आधार उनका सर्वांगिण-विशद अध्ययन, और उन प्राचीन शास्त्र एवं ग्रन्थोंके अकाट्य प्रमाणोंको सशक्त तर्कबद्ध रूपमें प्रस्तुतिकरण। बालजीवोंके लिए प्रारम्भिक-सरलतम शैलीमें विषय आलेखन करनेके पश्चात् विद्वद्वर्ग एवं जिज्ञासु संशोधकोंके लिए विवरित विषयके विस्तृत अध्ययन हेतु अन्य सहायक ग्रन्थोंकी ओर इंगित करते हैं । परिणामतः **"उनकी सरल शैली, सुबोध उदाहरण और आकर्षक वर्णनसे गूढ़ विषयको समझनेमें भी कठिनाई नहीं होती और जिज्ञासु संशोधक भी अपनी जिज्ञासा पूर्ण कर सकते हैं । उनके साहित्यसे विद्वानोंकी क्षुधा भी तृप्त होती है और साधारण पाठकोंकी ज्ञान-पिपासा भी शान्त हो जाती है । उनकी युक्तियाँ बालक भी समझ सकता है ।"**[७०]

उनकी कलमने विशेषतः दार्शनिक, धार्मिक, एवं सैद्धान्तिक विषयोंका विवरण एवं विश्लेषण किया है, जो सामान्यतया अत्यन्त कठिन और शुष्क, गहन और मस्तिष्ककी कवायत स्वरूप माने गये हैं, फिर भी उनकी लचकदार-मधुर शैलीके कारण उनकी कृतियाँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं; जिनकी दो-दो, पांच-पांच आवृत्तियाँ हुईं । जिनसे प्रतिबोधित होकर कई जैनेतर साक्षर भी जैनधर्मके प्रति आस्थावान्, बने।

जो एक बार पढना प्रारम्भ करें, वह उसे समाप्त करने पर्यंत उसे छोड़नेका मन नहीं करता, और एक बार पढ लेनेके बाद बार-बार पढ़नेको ललचाता है । किसी उपन्यास, तुल्य लोकप्रियता तत्कालीन समाजमें ऐसे दार्शनिक ग्रन्थोंको प्राप्त होना वाकइ अपने आपमें विस्मयकारी घटना थी ।

इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओमें भौगोलिक-भूस्तरशास्त्रीय-खगोलिक-वैज्ञानिक (जीवविज्ञान, पदार्थविज्ञानादि), मनोवैज्ञानिक-पुरातत्त्व-ऐतिहासिक तथ्योंकी प्ररूपणायें भी तत्कालीन नूतन संशोधन और आविष्कारोंके आधार पर हुई हैं; जिनकी जानकारी उन्होंने पाश्चात्य विद्वानोंके ग्रन्थों, निवेदनों, पत्र-पत्रिकाओंके लेखों, पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाईसे प्राप्त शिलालेखादि द्वारा प्राप्त की थी । वे अंग्रेजी भाषासे अनभिज्ञ थे, लेकिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके ज्ञाता द्वारा उससे परिचय प्राप्त करके तद्विषयक जानकारी प्राप्त कर लेते थे । उस पर चिंतन-मनन-परिशीलन करके सारासारके विवेकयुक्त समीक्षा भी करते थे, और निष्कर्ष रूपमें जैन मान्यता एवं सिद्धान्तोंके साथ तुलनात्मक रूपमें युक्तियुक्त वैज्ञानिक, ढंगसे निरूपण करते थे । मथुराके कंकाली टीलेकी खुदाईसे प्राप्त जैनधर्मकी समृद्धि और गौरवको प्रसिद्ध करनेवाली हकीकतसे परिचित उन महानुभावको बौद्ध पुरातत्त्व संबंधी अनुसंधानोंका बी ज्ञान था । अपने 'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थमें आपने लिखा है–**"अंग्रेजोने सांचीके स्तूपको खुदवाया, उसमेंसे मौद्गलायन और सारिपुत्रकी हकीकत निकली है, और उस डिब्बेके ऊपर इन दोनोंके नाम पालि अक्षरमें खुदे हुए हैं ।"**[७१]

तत्पश्चात् जन. कनिंगहामने मथुरामें श्री महावीरकी मूर्ति प्राप्त की, उसे 'इतिहास तिमिर नाशक'के कर्ताने दो हजार वर्ष पुरानी मानी है इस तथ्यको गलत-भ्रमणा सिद्ध करते हुए स्पष्टीकरण दिया है -**"श्री महावीरकी प्रतिमा पर लेख है वह पालि हर्फोमें हैं, जो ढ़ाई हज़ार वर्ष पहिलां जैनमतमें लिखी जाती थी ..... अगर उनकी समझमें ऐसा होवे कि श्री महावीर अर्हंतकी मूर्ति श्री महावीरसे पीछे बनी होवेगी इस वास्ते दो हज़ार वर्षके लगभग पुरानी है–यह अनुमान गलत है क्योंकि श्री ऋषभदेवके वखतसें ही होनहार तीर्थंकारोंकी प्रतिमा बनानी शुरू हो गयी थीं–ऐसा जैन शास्त्रमें लिखते हैं । इस कालमें भी राणीजीके उदयपुरमें भावि उत्सर्पिणीमें होनहार प्रथम पद्मनाभ तीर्थंकरकी मूर्ति व मंदिर विद्यमान हैं । अतः वह मूर्ति बहुत पुरानी है ।"**[७२] इस प्रकार हमें उनकी सूक्ष्म विवेचन शैलीका परिचय मिलता है । जैनधर्म विषयक अद्यतन समाचारोंसे भी वे वाकिफ होते रहते थे । जिसका ब्यौरा हमें इससे आगे भी इसी ग्रन्थमें स्थान स्थान पर मिलता है ।

उनकी रचनाओंके तलस्पर्शी अध्ययनसे ज्ञात होता है कि अपनी कृतियोंको शब्ददेह देते वक्त भी उनके दिलमें अवश्य कईं निश्चित धारणायें रहती होगीं, जिनका जिक्र उन्होंने स्वयं भी कुछ स्थानों पर दिया है।-यथा-'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थ-प्रथम खंड, श्री दयानंदजीके मुख्य ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश'के प्रत्युत्तरमें; 'सम्यकत्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थ स्थानकवासी साधु श्री जेठमलजीके 'समकितसार'के प्रत्युत्तरमें 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' ग्रन्थ श्री रत्नविजयजी और श्री धनविजयजीकी तीन स्तुतिकी उत्सूत्र प्ररूपणाके प्रत्युत्तरमें, 'ईसाई-मत-समीक्षा' ग्रन्थ 'जैन-मत समीक्षा'के प्रत्युत्तरमें; 'चिकागो प्रश्नोत्तर' ग्रन्थ सर्व धर्म परिषद-चिकागो (अमरिका) की विनतीके उपलक्ष्यमें उनको प्रेषित करने हेतु; 'जैन तत्त्वादर्श' और 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' संस्कृत-प्राकृतसे अनभिज्ञ बाल जीवोंकी जिज्ञासा-पूर्ति हेतु और उन्हें जिनशासनके सिद्धान्तोंका परिचय करवानेके लिए; 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' नूतन शिक्षा प्राप्त युवकोंको जैनधर्मका सामान्य परिचय प्राप्त करवानेके लिए; चौबीस जिन स्तवनावली' अपने शिष्यकी ईच्छा तृप्तिके कारण एवं विविध पूजा-स्तवन-सज्झाय-पदादिका आलेखन अंतरतममें बिराजित भगवद् भक्तिके प्रस्फूटन स्वरूप की गई है, जिसमें कभी समर्पण भाव, कभी उलाहना तो कभी करुणा सभर परमात्म प्राप्तिका तलसाट, कभी सिद्धान्तोंका रहस्य तो कभी सुंदर वर्णनोंका चित्रण मिलता है ।

इन वैविध्यपूर्ण वाङ्मय निर्माणके अन्य प्रयोजनोका स्वरूप निम्नांकित हो सकता हैं, जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता । -यथा–अन्य धर्मोंकी तुलनामें जैनधर्मके सच्चे स्वरूपको उसकी सर्वोपरिताके साथ ऐतिहासिक, आगमिक आदि प्रमाणों द्वारा वैज्ञानिक एवं आन्वेक्षिक दृष्टिसे सदाशयी-अकाट्य तार्किकताके सहारे, उनसे अनभिज्ञोंके सम्मुख प्रस्तुत करना । तत्कालीन युगमें विश्वके जिज्ञासु पंड़ितोंमें, नाममात्रके विद्वानों द्वारा जैनधर्म विषयक बेबुनियाद प्रसारित की गई अनेक तरहकी गलतफहमियोंको उनके सत् एवं सत्य स्वरूपको प्रकट करके उन भ्रान्तियोंका नीरसन करना; साथ ही साथ जैनधर्म पर लगाये जानेवाले हास्यास्पद आक्षेपों तथा अन्यायी आक्रमणोंको युक्तियुक्त नय-प्रमाणोंके अवलंबनसे खंड़ित करना-उन असत्य अंधकारको सत्यके सूर्यप्रकाशसे विदार कर नष्ट करना; निश्चय और व्यवहार मार्गकी–दोनोंकी जीवनमें आवश्यकताको प्रतिपादित करना; मेकोलेकी अभिनव शिक्षा प्रणालीसे धर्म विमुख और उद्दंड या विश्रृंखल बने हुए युवावर्गको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निजी-आध्यात्मिक संस्कृतिका विकस्वर बाग और पाश्चात्य संस्कृतिकी आगका परिचय करवाना; साथ ही दोनोंकी तुलना पेश करके यथार्थ और उचित मार्ग पर स्थिर करते हुए अपने आध्यात्मिक ज्ञान सरोवरमें स्नान करनेके लिए युवापीढ़ीको आकृष्ट करना । जैनधर्मका प्रचार समस्त विश्वमें करके-करवाके भगवान महावीरके पंचामृत रूप पंचाचारसे सारे संसारके मानवमात्रको लाभान्वित करना । सगुण-निर्गुण भक्तिकी यथोचित-यथावसर उपयुक्तताको प्रदर्शित करना ही प्रायः उनको अभिप्रेत था और जिसमें उनको सफलता भी प्राप्त हुई थी ।

इस प्रकार यह साहित्य सृजन यात्रा सं.१९२७ से प्रारम्भ होकर अविरत गतिसे दिन-प्रतिदिन प्रगति करते करते उनके जीवनके अंतिम समय तक-सं.१९५३ तक-चलती रही, जब उनके प्राणोंने देह त्यागा, तब उनके हाथोंसे कलम छूटी । विश्व कल्याणकारी आचार्य प्रवरश्री हिन्दी भाषाके जैन वाङ्मय विश्वके प्रथम साहित्यकारके रूपमें प्रसिद्ध हुए । हिन्दी साहित्यके इतिहासमें गिने-चुने जैन साहित्य और साहित्यकारोंका उल्लेख मिलता है जिनमें श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.का नाम भी चर्चित हुआ है जो आधुनिक कालके जैनाचार्यों एवं श्री जैनसंघके लिए गौरवकी बात है । आधुनिक खड़ीबोली हिन्दीमें गद्य-पद्य रचना करनेकी परम्पराकी नींव उन्होंने डाली जिन पर अद्यावधि अनेकविध रचनाओंके रूप-रंग और रस हमें आह्लाद प्रदान कर रहें हैं-हमारा ज्ञानवर्धन कर रहे हैं ।

ऐतिहासिकता पर सर्चलाइटः—इतिहास होता है प्राचीनकालकी तवारिख—भूतकालीन प्रसंगोंको साक्षिभावसे निरखते-परखते उनको वर्तमानकालमें आस्वाद्य बनानेवाला पुराख्यान । यही कारण है कि इतिहासका माहात्म्य प्राचीनकालसे अर्वाचीनकाल पर्यंत अक्षुण्ण रूपमें अविच्छिन्नता सहित अनवरत गतिसे प्रवाहित होता रहा है-यथा-श्रीभद्रबाहु स्वामीने कल्पसूत्रमें इसकी महत्ताको इस प्रकार वर्णित किया है - **सेवि य णं दारए उमुक्कबालभावे विण्णाय परिणयमिते जोव्वणगमणुपत्ते रिउव्वेअ-जउवेअ-सामवेअ-अथव्वणवेअ-इतिहास पंचपमाणं णिघटुं छट्टठाणं संगोवंगाणं ..... सपरिणिट्ठिए भविस्सइ ।**"[७३] अर्थात् भद्रबाहु स्वामीने भी ब्राह्मण कुलानुसार चारवेदोंके बाद ज्ञातव्य विषयके निरूपणमें पांचवें क्रम पर इतिहासका जिक्र किया है जो जनजीवनमें इतिहासकी अत्यन्त उपयोगिताको ही स्पष्ट करता है ।

इतिहासकी अहमियतको 'राजतरंगिनी'—हिन्दी अनुवाद—की प्रस्तावनामें पं. नंदकिशोरजी शर्माने बड़े रोचक ढंगसे प्रस्तुत किया है, जिसे संक्षेपमें इस प्रकार पेश कर सकते हैं-यथा-**"इतिहाससे तद्तद् देशोंका अस्तित्व-गौरव-आचार-विचार-प्रकृति-धर्मादि जाना जाता है । इतिहासको दृष्टि समक्ष रखकर राजा प्रजापालनमें समर्थ, मंत्रीवर्ग सन्मति प्रदानकी क्षमतायुक्त और प्रजा स्वधर्म व कर्तव्यपालनमें दत्त-चित्त बन सकते हैं । इतिहास अंधकार युगको आलोक प्रदाता और देदीप्यमान वर्तमानका मार्गदर्शक होता है, क्योंकि उसीसे मनुष्य क्या था, क्या हैं, क्या होगा—का अंदाज़ लगाया जा सकता है । इतिहास लक्ष्म्यांधोंके लिए ज्ञानांजनशलाका, राजसी सन्निपातकी घोर निद्रामें सोनेवालोंके लिए चंद्रोदय रस, रोगीके लिए राजवैद्य, घमंड़ी हकूमतदारोंके लिए परलोककी याद दिलवानेवाले विश्वकर्मा, रिश्वतखोरोंके लिए कालभैरव, अन्यायी शासकोंके लिए महारूद्र, बुद्धिमान राजाओंका सन्मार्ग रहनुमा सद्गुरु, राजनीतिज्ञोंका जीवन, पुरातत्व वेत्ताओंका सर्वस्व, कवियोंकी चातुरीका मूलस्रोत, राजाओंकी कीर्ति चंद्रिकाका चंद्र और बहुरत्ना वसुंधराके कालगर्भमें लुप्त नररत्नोंके विशिष्ट चरित्रोंका उद्घाटक सूर्य समान है । अंततः यही कह सकते हैं कि इतिहास एक अनगिनत प्रभाव रखनेवाला अनुपम चिंतामणी रत्न है ।"**

लेकिन मध्ययुगमें-मुस्लिम शासनकाल दरम्यान उस रत्न पर प्रमादाचरणके फलस्वरूप अज्ञानतावश मिट्टी छा गई थी। पुनःकाल परिवर्तनसे स्वातंत्र्य संग्राम युगमें उस रत्नका चमकार दृष्टिपथ पर फैलने लगा था । प्राचीन संदर्भोंके ऐतिहासिक आविष्कारोंने दृष्टि परिवर्तन करवानेमें अपना प्रमुख योगदान दिया । उस युगके प्रभातकालमें बालरविकी प्रभाका प्रसार शनैःशनैः फैल रहा था, जब श्रीआत्मानंदजी म. अपने उत्तरदायित्वको निभाते हुए कदम कदम पर जिनशासनकी स्वर्णिम आभाको चमका रहे थे । यह बात उनकी सूक्ष्म प्रज्ञाके परिघसे परे न थी, कि, तत्कालीन ऐतिहासिक अनुसंधानोंके युगमें जैन वाङ्मयको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसा मोड़ देना यथोचित होगा । उनके प्रभावशाली व्यक्तित्वके रंगका करतब अपना रंग जमा रहा था। जैन साहित्यके-जैनधर्मके परंपरागत इतिहासके अमूल्य निधिसे जन सामान्यकी अपरिचितता और अनभ्यस्तता स्पष्ट थे । उस धूमिल और धुंधले माहोलमें उन्होंने अपने संविज्ञ संयम जीवनके प्रथम ग्रंथराज *'जैन तत्त्वादर्श'* में उन बातोंको प्रकाशित किया। प्रथम परिच्छेदमें ही चौबीस तीर्थंकरोंके विषयमें अनेकविध अवबोधका तालिका द्वारा बोध करवाया है, तो सप्तम परिच्छेदमें जैनधर्मके भौगोलिकादि अनेक विषयोंकी प्ररूपणाओंमें की गई शंकाओंका उचित समाधान करते हुए जैन सिद्धान्तोंका पुस्तकारूढ होनेका वर्णनादि प्रस्तुत किया है । अंतिम एकादश और द्वादश-दोनों परिच्छेदमें भ.श्री ऋषभदेवसे भ.श्री महावीर स्वामी पर्यंत और भ.महावीर स्वामीके शासनकी पट्ट परंपराका सम्पूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया है ।

"जैन मत वृक्ष" कृति पूर्ण रूपेण अपने आपमें एक अनूठी ऐतिहासिक रचना है जिसमें जैनधर्मका प्रारम्भ, प्रथमसे चरम तीर्थंकरोंका इतिवृत्त, जैनेतर दर्शनोंकी उत्पत्ति एवं व्याप्तिकी रूपरेखायें, त्रेसंठ शलाका पुरुषोंके उल्लेख, अनेक प्रभावक आचार्यों एवं महापुरुषोंकी विशिष्टतायें, भ.महावीरके शासनमें आर्य देशोंके शासक राजाओंकी परंपरा आदिका अनुपम चित्रण किया गया है । इस प्रकारके वृक्षाकार चित्रपट स्वरूपकी अनूठी कलात्मकताके कारण वह अपने आपमें अपूर्व एवं अद्वितीय कृति है ।

"अज्ञान तिमिर भास्कर" के द्वितिय खंड़में भी जैनोंके प्राचीन इतिहासान्तर्गत सात कुलकरादिसे लेकर गुजरता हुआ इतिवृत्त श्री ऋषभदेव, उनके पुत्र द्वारा चार आर्यवेद रचना, परवर्तीकालीन मनःकल्पित नूतन वेद रचना, मनुस्मृति आदि श्रुतियाँ-स्मृतियाँ-उपनिषदादि रचनाकाल वर्णन, हिंसक यज्ञोंके प्रतिपादन करनेवाले वेदमंत्रोंके आविर्भाव, तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी भ.के पश्चात् मौद्गलायन-सारिपुत्र-आनंदादिके उल्लेख करते हुए भ.महावीर पर्यंत पहुँचता है। भ. महावीर स्वामीके पूर्वके समयके धर्मशास्त्र न मिलनेसे जैनधर्म भ.महावीर जितना ही-२५०० वर्ष ही-प्राचीन है-इस मान्यताका नीरसन करनेके लिए पृ. १७४ में वे लिखते हैं -**"जैन तीर्थंकर पूर्वजन्ममें बीस कृत्य (बीस स्थानक तप) करनेसे 'तीर्थंकर नामकर्म'-नामक पुण्य प्रकृति उपार्जित करता है । उस पुण्य प्रकृतिके सुफल भोगनेके लिए तीर्थंकरके पुण्योदयवाले जन्ममें धर्मोपदेश द्वारा धर्मतीर्थ प्रवर्तन करते हैं । जब वर्तमान तीर्थंकरका तीर्थ प्रवर्तमान होता है, तब उनके धर्मोपदेशानुसार शास्त्र-प्ररूपणा (द्वादशांगी आदिकी रचना) होती है-जिनमें सैद्धान्तिक तथ्योंमें पूर्व तीर्थंकरोंसे कोई भी मतभेद नहीं-और पूर्वके तीर्थंकरोंके शास्त्रोंका समापन कर दिया जाता है । इस परंपराके कारण अनादिकालीन जैनधर्मके सिद्धान्त शास्त्र, केवल ढ़ाई हज़ार वर्ष ही प्राचीन प्राप्त होते हैं ।"** इस प्रकार द्रव्यानुयोग और गणितानुयोगके सर्व विषय वे ही रहते हैं, केवल कथानुयोग और चरणकरणानुयोगमें वैविध्य पाया जाता है ।

'तत्त्व निर्णय प्रासाद' में भी पूर्वार्धमें पूर्वाचार्योंके संस्कृत ग्रन्थोंका सरल बालावबोध, वेद-स्मृति-पुराणादिमें निरूपित परस्पर विरोधी सृष्टि-सर्जनकी की गई प्ररूपणाकी समीक्षा, वेदकी अपौरुषेयताकी समीक्षा, 'गायत्री मंत्र'के जैन-जैनेतर मताश्रयी अर्थ वैचित्र्य और जैन शास्त्राधारित सोलह संस्कार वर्णन किया है । लेकिन उत्तरार्धके अंतिम पांच स्तम्भोंमें जैनधर्मकी प्राचीनताकी सिद्धिके लिए वेदपाठ, वेदसंहिता, महाभारत-पुराण-आरण्यकादि धार्मिक ग्रन्थ एवं व्याकरण-तर्कशास्त्रादि इतर ग्रन्थोंके उद्धरण; जैनधर्मकी बौद्धधर्मसे प्राचीनता और स्वतंत्रता-आदिकी ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा सिद्धि की है- जिसके अंतर्गत विशद साहित्यिक ग्रन्थ प्रमाणोंके अतिरिक्त आधुनिक संशोधनाधारित योरपीय विद्वानों हर्मन जेकोबी, मेक्समूलरादिकी रचनायें एवं मथुरादि स्थानोंकी खुदाईसे प्राप्त प्राचीन प्रतिमाओं पर लिखे शिलालेख-ताड़पत्रीय ग्रन्थोंके प्रमाण-तत्कालीन वर्तमानपत्र-पत्रिकायें आदिके लेखोंको समाहित किया जा सकता है । चौतीसवें स्तम्भमें बाबू शिवप्रसाद सितारे हिंद-जैसे मेकोले-शिक्षणप्राप्त आधुनिक पंडितोंके मनमें, जैन शास्त्रोंमें वर्णित प्राचीनतर कालकी विशिष्ट बातें-मनुष्यकी ऊँचाई-आयु-बुद्धि-बलादिकी उत्कृष्टता, जैन भूगोलानुसार वर्तमान भूगोलकी असमंजसता, पृथ्वी-सूर्य-चंद्रादि खगोल विषयक प्ररूपणायें आदि-के बारेमें जो शंकायें मचल रहीं थीं, उनका भी पृ.६२५ से ६३५ तक विस्तृत भूस्तर शास्त्रीय संशोधन (जमीनकी खुदाईसे प्राप्त कुछ अस्थि पिंजरादि), पत्र-पत्रिकाओंके लेख,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण और कुछ युक्तियुक्त तर्काधारित नीरसन किया है ।

इसके अतिरिक्त 'जैन-धर्म-विषयक प्रश्नोत्तर', 'ईसाई-मत-समीक्षा' आदि भी अनेकविध ऐतिहासिक तथ्योंसे सजे हुए ग्रन्थ हैं । इन ऐतिहासिक तथ्योंके उद्‌घाटन करनेवाली रचनाओंसे हमें तद्विषयक उनका अत्यन्त विशाल अध्ययन और मौलिक-विद्वत्तायुक्त चिंतनका एहसास मिलता है । युक्तियुक्त-शास्त्रीय-ऐतिहासिक प्रमाणोंकी टंकशाल तुल्य आचार्य प्रवरश्रीके सदृश शायद ही अन्य किसी व्यक्तिको हम ढूंढ सकें । श्री विनयचंदजीके शब्दोंमें -'**All his life he passed in doing service to the community by writing useful works, giving sermons, collecting manuscripts, studying scriptures and sacred books, ... teaching his desciples and doing all he could do for the uplift and betterment of the society for which he dedicated his life.**"[७४]

निष्कर्ष-(विविध विषयोंकी अभिज्ञता)–

इस प्रकार आचार्य प्रवरश्री आत्मानंदजीम.सा.के साहित्यका जैन समाज और जनसमाज अर्थात् समस्त संसारके जैनेतर जिज्ञासुओंकी दृष्टिसे अचिन्त्य-उपेक्षित निधिके रूपमें मूल्यांकन करते हुए हम कह सकते हैं कि उन्होंने जन-जीवनोपयोगी विषयोंका चयन करके साहित्य रचा अथवा यह भी सत्य है कि उन्होंने जो कुछ भी रचनायें आगमाधारित या पूर्वाचार्योंके ग्रन्थाधारित की, वे जन जीवनको अनायास ही उपयोगी सिद्ध हुईं हैं । क्योंकि, लोक जीवन स्पर्शी विविध विषयोंके प्रायः सर्वांगीण निरूपण करते हुए उससे उनका प्रतापी प्रभुत्व ही सिद्ध होता है । उनका प्रमुख प्रयोजन ही यही था कि जैन साहित्यका विविधरंगी और विविधलक्षी प्रकाश समस्त विश्वमें फैले और 'सवि जीव करूं शासन रसिक'की भावनाके साथ समस्त जीव जगत उससे लाभान्वित हों । अंतमें श्री पृथ्वीराजजीके शब्दोंमें–**"यदि आप श्री आत्मानंदजी म.का वास्तविक रूप जानना चाहते हैं, उनकी अंतरात्माकी सच्ची और स्पष्ट झांकिका दर्शन करना चाहते हैं, तो वह आपको उनके ग्रंथोंमें ही हो सकते हैं..... विविध दृष्टिकोणसे उनका साहित्य पठनीय है । जैन आचार, जैन विचार, जैन इतिहास, जैन क्रियाकांड आदि सभी ज्ञातव्य विषयों पर उन्होंने तुलनात्मक प्रकाश डाला है । ..... जैन साहित्य रूपी गगनके प्रकाशमान नक्षत्रोंमें श्री आत्मारामजी म.का नाम अमर होगा ।"**[७५]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं ॐ नमः

पर्व चतुर्थ

श्री आत्मानंदजी म.की महान विभूतियोंसे तुलना

"जैनेन्द्र दर्शन समुद्रसुधाकराय ।
सिद्धान्तसार कमल-भमरोपमाय ।
अज्ञानसुप्तजन जागरणारुणाय ।
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय ।"[१]

प्रास्ताविक–भारतीय संस्कृतिसे श्रेष्ठताकी सुवास इसलिए आती है कि उसमें आचारशुद्धि और चारित्र विशुद्धि द्वारा द्रव्य-क्षेत्र-भावादिकी पवित्रता और पात्रताके पुष्प गुच्छ प्राप्त होते हैं । राजकीय, सामाजिक एवं धार्मिक विषम परिस्थितियोंमें जैन धर्मगुरुओंने स्वकर्तव्यको निभाते हुए अपना करिश्मा दिखाया, जिसके अंतर्गत अन्य उपायोंके साथसाथ धर्मरक्षाके उपाय हेतु राज्यके कर्णधार-शासक राजवीओंके हृदय परिवर्तन करवाके उन्हें धार्मिकताकी ओर मोड़कर उनके अनेक प्रकारके जुल्मों-पीडन-शोषणादिसे प्रजाको बचाया । श्री हेमचंद्राचार्यजीने महाराजा कुमारपालको धार्मिक बनाया, तो युगप्रधानाचार्य श्रीविजय हीरसुरीश्वरजी म.की प्रतिभाके प्रभावने अकबर जैसे शहनशाहोंको यहाँ तक प्रभावित किया, कि सम्राटने सुरीश्वरजीको बहुमानपूर्वक आमंत्रित करके धर्मवाणी श्रवण करवानेके लिए विज्ञप्ति की । उनके धर्मोपदेश श्रवणके परिणाम स्वरूप भयंकर हिंसक-शिकारशौकिया-मांसाहारी, उस मुगल बादशाहने अपने राज्यमें विभिन्न पर्व दिनोंमें कुल मिलाकर वर्षमें छमासके लिए हिंसा पर सर्वथा पाबंदी लगायी और स्वयं भी मांसाहारका त्याग किया । 'जिजिया वेरा' आदि कर भी माफ करवाये (प्रभावक चरित्राधारित) ।

मुस्लिमोंके अनुवर्ति-ईसाइयोंने भी भारतीय संस्कृतिको उजाड़नेमें कोई कसर नहीं छोड़ी थी । वे तो मुस्लिमोंसे भी दो कदम आगे थे । मुस्लिमोंने केवल मंदिर तोड़े थे, मनको वे मोड़ नहीं सके थे; लेकिन ईसाइयोंने नूतन आविष्कारों और वैज्ञानिक शिक्षण पद्धतिके पर्देके पीछे अपनी नास्तिक संस्कृतिको उद्धारनेवाली शिक्षाको लादकर भारतीयोंकी आस्तिक और विनयप्रधान संस्कृतिके सर्वनाशके बीज जनमानस-भूमिमें वपन करनेका प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप भौतिकता युक्त नास्तिकताके घटाटोप वृक्षके विषैले फल अद्यावधि भारतीय प्रजा भोग रही है ।

श्री आत्मानंदजी म. के साहित्य पर अन्य साहित्यकारोंका प्रभावः–ऐसे अंधाधूंध मध्यकालमें भी जैन विद्वानों द्वारा साहित्य रचनाका प्रवाह रुका नहीं था । हाँ थोडा-सा अवरुद्ध अवश्य हुआ था । लेकिन उन दिनोंमें भी मृत्युको महोत्सव बनानेवाली जैनधर्म-संस्कृतिके आत्मिक ज्ञानके आलोकसे अद्‌भूत उज्ज्वलता प्राप्त साधु समाजने अपनी ज्ञान यात्राको निरंतर अग्रेसर रखा था । जैनधर्माधारित कथायें एवं अन्य साहित्यिक रचनायें दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं उपदेशादिको लक्षित किये हुए हैं । उसीके परिप्रेक्ष्यमें श्री दिनेशजीने जो आक्षेप किये हैं-**"उधर जैनधर्म पौराणिक आख्यानोंको नये ढंगसे गढ़कर जनताकी आस्था पर नया प्रभाव जमा रहा था । वैष्णवोंकी धार्मिक कथायें जैन कथायें बनती जा रहीं थीं ।"[२]** यह शायद उनके जैन साहित्यके परापूर्वकी श्रेष्ठ परम्पराकी अनभिज्ञताकी सूचक हैं । इस मान्यताको निराधार प्रमाणित करनेवाले अनेक प्रमाण विद्यमान हैं । यहाँ केवल "जैन रामायण" विषयक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जो कहानी बहुचर्चित एवं लोकप्रिय भी है । **"जैन संस्कृति हिंदु संस्कृतिका विद्रोही बालक है–इस मान्यताके कारण जैन संस्कृतिके बारेमें जैनेतर विद्वानोंमें अज्ञान बढ़ता जा रहा है । आधुनिक अनुसंधानोंने इसे गलत सिद्ध करने पर भी जैन संस्कृतिकी उपेक्षा दूर नहीं हुई हैं..... हमें यह भी सोचना चाहिए कि, रामकथा केवल वैदिक परंपराकी ही मात्र कथा नहीं है..... जैन रामायणको समझनेके लिए आवश्यक धैर्यका अभाव और जैनधर्म विषयक अज्ञानके कारण ही उत्तेजना बढ़नेसे इसके अध्ययनकी उपेक्षा की जाती है ।"[३]** यहाँ इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखमें इसके अतिरिक्त गुजरातके प्रखर साहित्यकार प्रह्लाद चंद्रशेखर दीवानजीका अभिप्राय भी महत्त्वपूर्ण है, साथमें अन्य अनेक विद्वानोंके विचारोंको प्रस्तुत करके इस अज्ञानमूलक मान्यताका नीरसन करनेका सफल प्रयत्न डॉ. शान्तिलाल शाहने 'श्री महावीर शासन' पत्रिकामें किया है ।

जैन साहित्य परंपरामें चार अनुयोगाधारित रचनायें प्राप्त होती हैं, जिनमें चतुर्थ कथानुयोग अंतर्गत साधिक लक्ष प्रमाण कहानियाँ निरूपित की गई हैं, जो भ.महावीर स्वामीके समयसे–२५०० वर्ष पूर्वसे- और कईं तो इससे भी पूर्वके भ.श्री पार्श्वनाथजी और भ.श्री नेमिनाथजी आदि तीर्थंकारोंके समयसे प्रवर्तमान हैं । कईं चरित्र-कथायें लाखों वर्ष पूर्व-अत्यन्त प्राचीनकालमें घटित हुईं–दर्शायी गई हैं । उन्हींके आधार पर परवर्ती साहित्यकारोंने अपनी लेखिनियोंका कसब प्रदर्शित किया है । **"जिनशासनके मूलागमों (पैंतालीस)में 'ज्ञाताधर्मकथा', 'उपासकदशा', 'अनुत्तरोववाइयो' आदिको द्वादशांगीके अंगभूत आगम रूप स्थान प्राप्त होनेसे कथा साहित्यको मानो प्राज्ञ पुरुषोंने उत्तम सौभाग्य प्रदान किया है । भव्यात्माओंके उपकारक अनुयोग चतुष्टयमें चतुर्थ अनुयोग-धर्मकथानुयोग अपना विशिष्ट स्थान रखता है । अतः जैन कथा साहित्य जैसा ठोस कथा साहित्य अन्यत्र दुलर्भ है"**[४] इस विषयमें विशेष संशोधन आवकार्य है ।

*साहित्यिक रचनायें और रचयिताओंकी परंपरायें:–*जैन साहित्यके प्रति दृष्टिक्षेप करने पर हमें आश्चर्यजनक रचनाओंकी प्राप्ति होती हैं । जैन परंपरामें ऐसे अनेक महापुरुष हुए जिन्होंने समाजमें धार्मिक प्रभावनाओंके साथ साथ साहित्यिक क्षेत्रमें भी अपना महद् योगदान दिया । जिनमें प्राचीन कालमें विशेषतया उल्लेखनीय हैं–*जैनागमनिधि संरक्षक, देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण*–(जिन्होंने क्षत-विक्षत आगमोंको चिरकाल पर्यंत स्थायी स्वरूप प्रदान हेतु श्रुतज्ञानको पुस्तकारूढ़ करके और करवाके भव्य साहित्यिक योगदान दिया); *सरस्वती कंठाभरण श्रीमद् सिद्धसेन दिवाकर सुरीश्वरजी*–(जिन्होंने बत्तीस 'द्वात्रिंशिकायें', 'सन्मति तर्क', 'श्री कल्याण मंदिर स्तोत्र' आदि अनेक विद्वद्भोग्य साहित्यिक कृतियोंकी रचना की); *श्री मानतुंग सूरीश्वरजी म.*–(जिन्होंने श्रीभक्तामर स्तोत्र, मुक्तिमंदिर, श्रीनमिउण (भयहर) स्तोत्र आदि मंत्रगर्भित-विशिष्ट काव्य-लक्षण युक्त रचनायें की); *श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी*–(जिन्होंने विभिन्न विषयक १४४४ ग्रन्थोंकी रचना करके अपना पांडित्य एवं प्रभुत्व सिद्ध किया है); *नवांगी टीकाकार श्रीअभयदेव सूरि*–(जिन्होंने आगमोंके नव अंग-उपांग आगमादिकी वृत्तियाँ-टीका, श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीके ग्रन्थोंकी टीकायें, प्रज्ञापना तृतीयपद संग्रहणी, जयतिहुअण स्तोत्र, पंच निर्ग्रंथी प्रकरणादि एवं छ कर्मग्रन्थ सवृत्तिभाष्यादि ग्रन्थोंकी रचना की); *कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्य*-(जिन्होंने विविध ग्रन्थ स्थित सार्ध तीन कोटि श्लोक प्रमाण साहित्यकी रचना की); *श्री आर्यरक्षितसूरिजी*-(जिन्होंने अंगो-पांगके मूल आगम ग्रंथोंका विश्लेषण करके द्रव्यादि अनुयोग चतुष्टयकी व्यवस्था की, जिसका चतुर्थ अनुयोग कथानुयोग है)। परवर्तीकालमें (मुगल शासकों के समयमें) ऐसे प्रभावकोंमें *जगद्गुरु श्रीविजयहीर सुरीश्वरजी म., श्रीविजय सेनसुरीश्वरजी म., महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म.* जैसे धुरंधर-महारथी-विद्वानों-सरस्वती पुत्रोंकी कलमके कमाल हमारे दृष्टिपथ पर आते हैं; तो *श्री आनन्दघनजी, श्रीपद्मविजयजी, श्री वीरविजयजी, श्रीरूपविजयजी, श्रीचिदानंदजी* आदि महाकवियों जैसी भक्ति परायण हस्तियोंके कलनिनादके मधुर अनुभवोंसे आत्मिक परितोष प्राप्त कर सकते हैं । तत्पश्चात् हिन्दी साहित्यके आधुनिक कालके कगार पर नज़र फैलायें तो दर्शित होता है, चिहुं ओरसे त्रास-पीड़ा-और आतंकमें दबी-फंसी मानसिक चेतनाओंको उजागर करनेवाले एवं युगकी आवश्यकतानुसार जन-जीवनमें जागृतिके बिगुल बजानेवाली सुधारक विचारधाराके प्रवाहक महापुरुष–*भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और श्रीदयानंद सरस्वतीजीके समकालीन* दृढ़ मनोबली, निश्चयात्मक लक्ष्य सिद्धि हेतु अप्रतिम अध्यवसायी, प्रकांड पांडित्य युक्त विचक्षण विद्वद्वर्य **श्री आत्मानंदजी महाराजजीका विशिष्ट व्यक्तित्व ।**

जैन शासनके इतिहासको अगर वाचा प्रदान की जाय तो उसकी सरगमके सूरमें हम सुन सकते हैं पुण्यवंत श्रमणवर्गके तीर्थंकर प्ररूपित सुविशुद्ध प्ररूपणाकी पहचान करानेवाली सुरीली झंकार; अगर उसे दृष्टि प्राप्त हो जाय तो दर्शित होगा उस दृष्टिसे दृष्ट उन भव्यात्माओंके तेजोमय अंतरात्माके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामर्थ्यसे प्रकाशित दिव्य ज्योतिका अंबार । सामान्यतः साहित्य सृजनका विशिष्ट प्रयोजन जन-मनको ज्ञान-विज्ञानके, श्रद्धा-भक्तिके और उत्तम चारित्रिक कार्य कलापोंसे लाभान्वित करना होता है, जिसका स्वस्थ-स्पष्ट-संपूर्ण स्वाद हमें आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमें प्राप्त होता है । समतल षड्रस भोजन समान उनके जीवविज्ञान-आत्मविज्ञान-कर्मविज्ञान-पुद्गलादिको अनुलक्षित भौतिकविज्ञान-जड, चेतनादिके स्वभावादिके परिप्रेक्ष्यमें विकस्वर मनोविज्ञान-विश्व रचना प्ररूपित भूगोल, खगोल, भूस्तर शास्त्रादि और अतीतको उजागर करनेवाला इतिहासादि विषयक वैविध्यपूर्ण साहित्यको आस्वाद्य करनेवाले क्षुधातुर जिज्ञासुको परितृप्तिकी डकार आये बिना नहीं रहती ।

जैन साहित्यिक रचना शैली–जैन संस्कृतिकी आप्त परम्परानुसार - **'नामूलं लिख्यते किंचित्'**- के न्यायाधारित जो भी साहित्यिक रचनायें हुईं उनमें पूर्वाचार्योंके अनुग्रहको ही अग्रसर करके स्वयंकी लघुता प्रकट करना ही अभीष्ट माना गया है । यही कारण है कि अन्य दर्शनोंमें जो प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यके आमूल परिवर्तन दर्शित होता है, ऐसे परिवर्तनोंका जैन साहित्यमें अंश भी नहीं है - **"आज भी पूर्वापरके अनेकानेक ग्रन्थोंका वाचन-मनन करके ग्रन्थरचनाका कार्य चलता ही रहा है । हिन्दी भाषामें ऐसे निर्माण कार्य पू. श्रीआत्मारामजी महाराजने अंतिम शतकमें बड़े पैमाने पर किया ।"**[५]

जैन साहित्य रचनाकी परंपराका निरीक्षण करते हुए ज्ञात होता है कि अनादिकालीन अनंत तीर्थंकर भगवंतोंके देशना-प्रवाहको ही भ. श्रीऋषभदेवसे भ. श्रीमहावीर स्वामी पर्यंत सभी तीर्थंकरोंने प्रवाहित किया । उसे श्रवण करके गणधर भगवंतोंने उन्हें सूत्रबद्ध किया; तत्पश्चात् शिष्य-प्रशिष्योंकी अध्ययन परम्परासे उसका संरक्षण और यथोचित संस्करण हुआ अनुप्रेक्षा और स्वाध्याय द्वारा अक्षुण्ण रूपमें प्रवहमान उन विपुल ज्ञानराशिको पतितकाल प्रभावसे प्राप्त अकालादि परिबलोंके कारण व्याघात पहुँचा । अध्ययन प्रक्रिया अस्तव्यस्त होनेसे वह ज्ञानराशि विस्मृत बनने लगी । अतः उसकी सुरक्षा हेतु श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजीने उस कंठस्थ ज्ञानराशिको ग्रंथस्थ किया । तत्पश्चात् आर्यरक्षित सूरिजीने उसे ही अधिक सरल बनाने हेतु पृथक् अनुयोग व्यवस्था की । अनेक गीतार्थ पूर्वाचार्योंने उस ज्ञानराशिको अधिकाधिक स्पष्ट एवं सरल बनाने हेतु उन्हींकी निर्युक्तियाँ-चूर्णियाँ-भाष्य-टीकायें आदिके रूपमें साहित्य निर्माण किया । अंततः वर्तमानमें उपलब्ध जैन साहित्य अपने मूल रूपको निभाते हुए नये परिवेशमें संवर्धित-व्याख्यायित-सरलतम रूप लिये हमें प्राप्त हो रहा है । आचार्य प्रवर श्रीआत्मानंदजी म.ने भी अपनी साहित्यिक रचनाओंमें अनेकानेक संदर्भ ग्रन्थोंका आधार प्रदर्शित करते हुए उसी परम्पराका निर्वाह किया है । अतः यह स्पष्ट और स्वाभाविक ही है कि उनकी रचनाओंमें पूर्वाचार्योंके साहित्यका प्रभाव दृष्टिगत हों ।

आपकी रचनाओमें श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म., श्रीहेमचंद्राचार्यजी म. आदि पूर्वाचार्योंकी रचनाका बालावबोध (अनुवाद सहित विवरण) हैं, तो भ. श्रीऋषभदेव द्वारा प्रवर्तीत सांसारिक व्यवहारोंको लक्ष्य करके मनुष्यके जन्मसे मृत्यु तकके संस्कार-सोलह संस्कारोंका-स्वरूपादि श्री वर्धमान सूरि कृत 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित विवरण जनहितार्थ किया गया है । वेद चतुष्टय एवं मनुस्मृति-महाभारत-उपनिषद-पुराणादिकी एकान्तिक प्ररूपणायें, हिंसक या वैषयिक प्ररूपणायें आदिका, ईश्वर जगतकर्तृत्वका आदि अनेक तथ्योंका खंडन-मंडनात्मक फिरभी रसात्मक साहित्यिक शैलीमें विश्लेषण किया है । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीम. एवं महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म. सदृश नय-प्रमाणोंकी तर्कबद्धता और परमतवादियोंका सैद्धान्तिक खंडन एवं स्वमतका मंड़न दृष्टि गोचर होता है। उसी प्रकार उनकी पद्यरचनाओंमें पद-स्तवन-सज्झायादि काव्य प्रकारों में श्रीआनन्दघनजी म. एवं श्रीचिदानंदजी म. आदिकी यौगिक मस्ती है, तो तुलसी आदिका सम्पूर्ण समर्पण भाव छलकता है । वैसे ही पूजादि काव्यशैली में पं. श्रीवीरविजयजी म. आदिके समान भक्तिभाव (द्रव्यभक्तिके साथ भावभक्तिका तुल्य सामंजस्य) निखर आया है। यहाँ अब उन सभी महानुभावोंके परिप्रेक्ष्यमें आचार्य प्रवर श्रीआत्मानंदजी म.के व्यक्तित्व और कृतित्वका परिशीलन करवानेका प्रयास किया जा रहा है।

सूरि पुरंदर श्री हरिभद्रजी म.सा. और सूरि सम्राट श्री आत्मानंदजी म.सा.---

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदार दिल, शिशु सम सरल, विनम्र; ज्ञानोपासनाकी प्राणवान प्रतिमा और जीवंत-जंगम ज्ञानपीठ; जिनशासन प्रभावक-प्रखरवादी-समर्थ टीकाकार-उत्तमोत्तम १४४४ तेजस्वी ग्रन्थरत्नोंके प्रणेता; महत्तरा याकिनी सूनु श्रीमद् हरिभद्र सुरीश्वरजी महाराजा जीवनकी पूर्वावस्थामें चित्रकूट नरेश-'जितारि'के मान्य राजपुरोहित थे, जिनका चौदह ब्राह्मण-विद्याओं पर पूर्ण आधिपत्य था ।[६] शास्त्र विशारदोंके साथ शास्त्रार्थ करनेकी सदैव तत्परता और किसी भी तत्व-पदार्थकी अनभिज्ञताको दूर करनेकी तीव्र जिज्ञासा-वृत्तिवाले, सत्यके उपासक उस पुराण-पारंगत एवं वेदज्ञ पंड़ितकी प्रतिज्ञा थी कि, 'स्वयंकी सर्वज्ञ-तुल्य प्रातिभ-बुद्धिके परिघसे बाहर अगर कोई शब्दावली-वाक्य या श्लोकका अर्थ निकल आयें, तब उस प्रतापी प्राज्ञसे उसको जिज्ञासु भावसे समझकर उसका शिष्यत्व स्वीकार करेंगें ।' इस प्रतिज्ञाने ही उन्हें जिनशासनका पल्ला पकड़ा दिया और अत्युत्तमोत्तम आगमशास्त्रोंके अध्येता बनाकर समर्थ साहित्य सर्जनके काबिल बना दिया । वैसे तो जिनशासनमें विभिन्न समयमें होनेवाले 'हरिभद्र'-ऐसे समान अभिधा सूचक आठ आचार्य भगवंतोंका निर्देश मिलता है, लेकिन यहाँ हमें 'भवविरह' या 'विरहांक' तखल्लुसके साथ प्रसिद्ध या 'महत्तरा याकिनी सूनु' उपनामवाले हरिभद्र सूरिजी ही अभिप्रेत है । -यथा-

"जो इच्छइ भवविरहं, 'भवविरहं' को न वंदए सुयणो ?"[७]

जैनधर्मके पूर्व और उत्तरकालीन इतिहासके सीमास्तंभ-विद्वद्वर्य श्री हरिभद्रजी भट्ट 'पिर्वगुई' नामक ब्रह्मपुरीके निवासी पिता-शंकरजी भट्ट और माता-गंगाके अपत्य; विद्याधर कुल-तिलकायमान श्री जिनदत्तसूरि (गच्छनायक श्रीजिनभद्रसूरि)के शासन प्रभावक शिष्य; और हंस परमहंस (अथवा कथावलीके अनुसार जिनभद्र और वीरभद्र) जैसे उत्तम शिष्योंके गुरु थे ।[८] (जीनवकाल-वि.सं ७५७ से ८२७) उन्होंने की हुई गुप्त प्रतिज्ञाके पालनके लिए जैन श्रमणत्व स्वीकार करके स्व-पर कल्याणके अनेक कार्य किये, जिनमें साहित्य सृजनाका योगदान एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ जाता है । इस साहित्य सृजनकी पार्श्वभूमिमें बड़ा दर्दनाक, 'अहिंसा परमोधर्म'के सार्थक्यको सिद्ध करनेवाला-गुरु द्वारा करुणार्द्र प्रतिबोध-क्षमाके साथ प्रायश्चित प्रदान करनेवाली जैन परिपाटी और सर्व दर्शनोमें जैनदर्शनकी श्रेष्ठताको प्रमाणित करनेवाला–उनके प्रिय शिष्य हंस और परमहंसके बलिदान; बौद्धोंको वादमें जीतकर उनके नाशका संकल्प एवं गुरु श्रीजिनदत्त सूरि म.द्वारा यथावसर-यथोचित सारण-वारणादि करके हरिभद्र सुरीश्वरजी म.की मोहतंद्राको तोड़कर प्रायश्चित्तके रूपमें १४४४ ग्रन्थ सृजनके प्रायश्चित्तको प्रदान करनेवाला वाकया जुड़ा हुआ है ।

सत्योपासनाके राही:–महापुरुषोमें एक अपूर्व कल्पकत्व होता है, जिसके सहारे वे स्वयंको अनन्तता और सत्यके घनिष्ठ संपर्कमें जोड़ सकते हैं । क्षुल्लक तथ्योंमें भी प्रच्छन्न रहे हुए गूढ़ भेदोंको भी वे अनूठी कल्पना शक्तिके बलपर नूतन ढ़ंगसे सोच सकते हैं । सत्यके उपासक और गवेषक–दोनों तेजस्वी रत्न इसी महान गुणके कारण प्रभावक कोटिमें स्वयंको रख सके हैं । सूरि-पुरंदर श्रीहरिभद्रजी और सूरि-सम्राट श्रीआत्मानंदजी–दोनों जैनेतर जाति और कुलके वंशज थे-एक थे राजपुरोहित और दूसरे थे ब्रह्म क्षत्रिय–दोनोंके वंशगत कार्यक्षेत्र भिन्न थे, लेकिन सत्योपासना गुणाश्रयी दोनोमें अभिन्नता थी । दोनोंही सत्यके शोधक-सत्यके उपासक-सत्यके संरक्षक थे । सत्यके राहपर सर्वस्व न्यौच्छावर करनेमें शूरवीर थे। श्रीहरिभद्रजीने जैन साध्वीवर्याके मुखसे पठित गाथा श्रवण की ।-

"चक्की दुगं हरि पणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की ।
केसव चक्की केसव, दु चक्की केसी च चक्की य ॥"[९]

बारबार उच्चरित उस गाथाके मर्मको, एड़ि-चोटीका जोर लगाने पर भी, न समझ सकें । अतः अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे समझानेवाले जैन श्रमण गुरुका शिष्यत्व अंगीकार करके सत्योपासनाका ज्वलंत उदाहरण छोड़ गये । (जो बात समझमें न आयें उसे काल्पनिक-गप्प या मिथ्या ठहरा देना अथवा प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित लेकिन केवली-प्ररूपित तत्त्वको अन्य प्रकारके आक्षेपोंसे मढ़ देनेवाले थोथे विद्वानोंके लिए ऐसी सत्योपासना और साहसिकता अनुमोदनीय और अनुकरणीय है ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठीक उसी प्रकार श्री आत्मानंदजी म.ने भी सत्य गवेषणामें न जाने कहाँ कहाँ-पंजाबसे आग्रा तक-पैदल पर्यटन किया; व्याकरण-काव्य-कोष-न्यायादिका विशद अध्ययन किया; अनेक विद्वानोंसे-विशेषतः श्रीरत्नचंद्रजी म.से-संपर्क करके विचार विमर्श किया और स्थानकवासी मतको 'मिथ्या' सिद्ध होते ही उसे त्याग दिया साथ ही अन्य भव्यात्माओंको उसकी त्याज्यता समझा कर उनका भी उद्धार किया । एकने राजसी ठाठबाठ-राजसन्मान और राज-पुरोहित जैसा प्रतिष्ठित पद-गृह और परिवारादिका उत्सर्ग किया तो एकने सम्प्रदायगत आदरणीय वात्सल्य, पांडित्य युक्त प्रतिष्ठित सम्मान, प्रिय गुर्वादिकी स्नेह युक्त निश्राको जलांजलि देकर और भावि विघ्नोंका निरादर करके मूर्तिपूजक श्वेताम्बर संवेगी साधु जीवन अपनाया । *गुणानुरागः*--जब राजपुरोहित श्रीहरिभद्रजीकी राहमें उन्मत्त हाथी दनादन भागता हुआ आ रहा था-लोगोंमें भाग दौड़ मच गयी थी तब ये **"हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरे"**- इस लोकोक्तिमें श्रद्धावान् पंडितजी भी प्राणरक्षाको प्रमुखता देते हुए जैनमंदिरमें ही घूस गये । वहाँ श्री जिनेश्वर देवकी प्रतिमाको देखकर उपहास हेतु श्लोक बनाकर गाने लगे कि- **"वपुरेव तवाचष्टे स्पष्ट मिष्टान्न भोजनम्"**- वे ही हरिभद्र विवेक-चक्षुके उद्घाटित होते ही, जैन साध्वीजीसे श्रवण किये श्लोकके स्पष्ट अर्थघटन हेतु आचार्यश्रीजीके पास-जैन उपाश्रयमें जाते समय उसी जिनमंदिरमें पुनः प्रवेश करते हैं, तब वह श्रीजिनबिम्बके दर्शन होते ही नतमस्तक होकर गाने लगे- **"वपुरेव तवाचष्टे भगवन् ! वीतरागताम् !"**- अतः स्पष्ट है कि अज्ञानवश किये हुए अपराधके लिए भी उन्होंने क्षमाप्रार्थना करके गलती सुधारनेमें संकोचका अनुभव नहीं किया । इतना ही नहीं, जैनाचार्यके गौरववंत पदासीन होनेके पश्चात् भी शिष्य मोहके जालमें फंसकर बौद्धोंके साथ वाद करके उन्हें परास्त करके उनके संहारके लिए उद्यत हुएको, जब गुरु म.सत्पथ प्रदर्शित करते हैं तब भी उनके चरणोमें शिशु सदृश सरलतासे क्षमायाचना करनेमें झिझकते नहीं है । देव-गुरु और धर्मके प्रति भी कैसी गुणानुरागिता । श्री जिनशासनकी प्राप्ति करवानेमें निमित्तभूत महत्तराजीको निरंतर याद करते हुए अपना परिचय 'महत्तरा याकिनी सूनु'के रूपमें देनेमें गौरवका अनुभव करते हैं । श्री जिनागमोंके प्रति अपनी सन्निष्ठता प्रकट करते हुए लिखते हैं-**"हा ! अणाहा कहं हुंता, जइ ण हुंतो जिनागमो !"**-

वैसे ही पूर्वावस्थाके ढूंढक साधु-मूर्तिपूजाके तीव्र विरोधी श्रीआत्मानंदजी म.सा.भी गुणानुरागिता और गुणग्राहिताके कारण मूर्तिपूजाकी सत् सत्यताका प्रमाण पाते ही मूर्तिपूजाका मंडन करनेमें एवं उस वक्त भावुक भक्तोंके समक्ष स्वंकी पूर्वकी भ्रामक धारणाओंको उद्घाटित करनेमें भी कभी क्षोभित नहीं हुए ।

श्रीहरिभद्रजीके पास परम्परागत वैदिक दर्शनका पांडित्य-विरासतमें प्राप्त संपत्ति थी, जबकि श्रीआत्मारामजीकी पैतृक संपत्ति थी क्षात्रतेजयुक्त साहसिकता व पराक्रम एवं आगमिक प्राज्ञताकी प्राप्तिको हेतुभूत थे तीव्रमेधासे किया गया अध्ययन और अनुशीलन । दोनों ही, संविज्ञ मुनि जीवन ग्रहण करनेके पश्चात् अपने पूर्वगत पांडित्य-शास्त्रविशारदता-विद्वत्ताको पुण्यहीन मूर्खोंके मिथ्याभ्रम ही मानने लगे थे क्योंकि दोनों की विचारधारा एकान्तिकताकी कूपमंडूकतासे निकल कर स्याद्वादी समुद्रकी सतह पर नर्तन कर रही थीं । श्रीहरिभद्रजीको जैनधर्मकी अत्युत्कृष्टतम त्रिविध-त्रिविध अहिंसा पालन, अनन्य-विशिष्ट विरतिधर्म, महान विवेकयुक्त-गंभीर रहस्यमय-अध्यात्मसे परिपूर्ण प्रतिक्रमणादि योगानुष्ठान, पंचाचार पालनकी अद्भूत विशिष्टता और उसके पालनमें स्खलना पात्रको योग्य प्रायश्चित्तसे शुद्धिका विस्तृत विश्लेषण; परमात्माका अलौकिक भव्यतम स्वरूप, अष्टकर्मका महाविज्ञान, आत्मिक उत्थानके लिए चौदह गुणस्थानकोंकी श्रेणियाँ, स्याद्वाद-अनेकान्तवादादि अपूर्व आगमिक सिद्धान्तों और उसकी प्ररूपणाके पूर्वापर अविरुद्ध टंकशाली वचन, चारित्रिक एवं आत्मिक पराक्रमी पूर्व महापुरुषोंका गुण-वैभववान इतिहास, अनुपमेय तीर्थधाम--आदिको प्राप्त करके अहोभावपूर्ण धन्यताका अनुभव हो रहा था । तो ढूंढक मतको परित्याग-कर्ता श्रीमद् आत्मारामजी म.सा. द्रव्य और भावभक्ति युक्त पूजा विधान, परमात्माकी प्रशमरससे शोभित-वीतरागताकी प्रतिमूर्तिके अवलम्बन युक्त सालंबन आत्मध्यान, जिन प्रतिमा और जिनागमोंकी अविच्छिन्न परम्परा और पवित्रता-भव्य प्राचीनता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तारक तत्त्वज्ञान-जिनोपदिष्ट शुद्ध क्रिया, प्रविधियाँ और अनुष्ठानादिको देखकर मचल गये थे । श्री शत्रुंजय (पालीताना) तीर्थाधिराज श्री आदिश्वरजीकी अनुपमेय, जाज्वल्यमान, तेजस्वी प्रतिमाके प्रथम दर्शनसे ही उनकी अंतरात्मासे आनंदोदधि बहने लगा-जिसमें निश्चयात्मक निश्चलता थी-**"अब तो पार भये हम साधो, श्री सिद्धाचल दर्श करी रे ...."**

दोनों विद्वत्ताके साथ विनय-विवेककी मूर्ति थे । दोनों ही जन्मसे जैनेतर होने परभी उन सूरि-पुंगवोंद्वारा जिनशासनकी महती प्रभावना हुई । उनके समयमें जिनशासनका सूर्य पूर्णरूपेण-देदीप्यमान बनकर धर्मजगतको प्रकाशित कर रहा था । दोनोंने तत्कालीन वादियोंको आगमिक एवं सैद्धान्तिक प्रमाणोंके आधार पर अकाट्य तार्किक शक्तिसे जीतकर जिनशासनको गौरवान्वित बनाया था । श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.ने जिस वादशक्तिसे बौद्ध राजाको अभिभूत करते हुए प्रतिबोधित करके जैनधर्मी बनाया, वैसी ही अजेयवादिताके बलसे श्री आत्मानंदजी म.सा.ने बीकानेर दरबार, लिम्बड़ीके राजा, आर्यसमाजी मतमें दृढ़ आस्थावान् जोधपुर नरेश और उनके भाई आदिको एवं अन्य अनेक जैनेतर कौमोंके सदस्योंको जैन-जैनेतर धर्मशास्त्रोंके संदर्भयुक्त चर्चासे प्रभावित किया था । दोनोंकी साहित्यिक प्रतिभाको प्रकटकर्ता परवर्तीयों द्वारा अनुमोदनीय पुष्प परागका परिमल सर्वत्र प्रसारित हुआ हैं - यथा-

"भद्दं सिरि हरि भद्दस्स, सूरिणो जस्स भुवण रंगम्मि ।
वाणी विसट्ट रस-भाव-मंथरा नच्चाए सुइरं ।।"[१०]
"यथास्थितार्हन्मतवस्तुवेदिने, निराकृताशेष विपक्षवादिने ।
विदग्धमध्यास्थनृमूढताऽरये, नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्र सूरये ।।"-मुनि यक्षदेव
"येषां गिरं समुपजीव्य सुसिद्ध विद्यामस्मीन् सुखेन गहनेऽपि पथि प्रवृत्तः ।"[११]

श्रीआत्मानंदजी म.की भी देश-विदेशके जैन-जैनेतर विद्वानों द्वारा की गई प्रशस्तियाँ इस शोध प्रबन्धमें अन्यत्र स्थान स्थान पर उद्धृत की गईं हैं, अतः पुनरावृत्ति उचित नहीं ।

आचार्यद्वयकी विषम विलक्षणतायें:–उपरोक्त अनेक समस्याओंके साथ दोनोंकी कुछ वैषम्य विशिष्टतायें भी दृष्टव्य हैं । (१) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा. एकान्तवादी-जैनेतर (वैदिक) दर्शनके पक्षपाती होनेसे जैनधर्म-जैनोंके विरोधी थे और श्रीआत्मारामजी लौंका-लवजी द्वारा प्रवर्तीत जैनाभास मतमें दीक्षित, प्रतिमा-पूजनके विरोधी थे (२) अन्योंकों पांडित्यसे पराजित करनेवाले श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.को शिष्योंके कारण प्रकर्ष प्रकोप भावने परास्त करके भयंकर मानसिक हिंसा करनेमें प्रवृत्त किया; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने क्रोधादि कषायोंको क्लान्त कर दिया था, अतः आभ्यन्तर शत्रुंजय आचार्यश्री कैसे भी विकट कष्ट-परिषद-उपसर्ग आने पर भी क्षमा-ढालसे सम्यक् रूपसे सह लेते थे । **"तेओश्रीना आत्मामां कोई दिवस उग्रता के क्रोध विगेरेनी रेखा पण देखाती न हती ।"[१२]** (३) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.का साहित्य संस्कृत और प्राकृतमें रचा गया है और श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने अपना साहित्य तत्कालीन लोकभाषा हिन्दीमें प्रस्तुत किया है । (४) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.ने शिष्य संततिकी मृत्युके शोक निवारण हेतु ज्ञान (ग्रन्थ) संततिको प्रधानता दी, और विक्रम साहित्य सृजन करके अमर संतति निर्माण द्वारा स्व-पर कल्याण किया; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने साहित्य संतति और विशाल शिष्य समुदाय-दोनोंके सहयोगसे युग परिवर्तनकारी सीमातीत समाज सेवा की, जिनमें स्व-पर कल्याण भावना निहित ही थी। (५) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.ने आगम शास्त्रों पर वृत्तियाँ रची हैं जिनमें अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र, जीवाजीवाभिगमसूत्र, दसवैकालिक सूत्र, नंदीसूत्र, पिंडनिर्युक्ति, प्रज्ञापना सूत्र आदि मुख्य हैं। श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने पूर्वाचार्य रचित ग्रन्थों पर बालावबोध लिखे हैं जिनमें 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थान्तर्गत श्रीहरिभद्र सूरि कृत 'लोकतत्त्वनिर्णय' श्रीहेमचंद्राचार्य विरचित 'महादेव स्तोत्र' और 'वीर द्वात्रिंशिका याने अयोग व्यवच्छेद' आदि प्रमुख रूपसे हैं ।

साहित्यविदोंके साहित्यका निरीक्षण:–'षोडशक प्रकरण-सद्धर्म देशना'- ई.स.१९४९-ग्रन्थ की श्री हीरालाल कापडिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखित प्रस्तावनानुसार १४४४ ग्रन्थके रचयिता-विक्रम साहित्य सर्जक श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीके १०२ मान्य ग्रन्थके नाम अद्यावधि प्राप्त हुए हैं, जिनमें उनके द्वारा दी गई टिप्पणी अनुसार कईं ग्रन्थोंकी विशेष जानकारी प्राप्तव्य हैं और कईं ग्रन्थ अभी अनिर्णित अवस्थामें हैं । अतः उन्होंने 'समरादित्य महाकथा'के गुर्जरानुवाद, अनुवादक आ.श्री हेमसागर सूरिजी, ई.स.१९६६-के ग्रन्थके पुरोवचनमें इस महान साहित्यकारकी पचास अधिकृत कृतियोंका जिक्र किया है, जिनमें आठ आगमिक साहित्य विषयक और शेष अनागमिक (स्वतंत्र रचना, वृत्ति, टीका या अवचूरिके रूपमें) प्रकरण स्वरूप कृतियोंके नामोल्लेख किये हैं । श्रीहरिभद्र सूरिजीके साहित्य पर प्रकाश डालते हुए श्रीविजय भुवनभानु सूरि म.के उद्‌गार अनुशीलनीय हैं -"**उन्होंने जिनागम शास्त्रोंका अध्ययन करके ऐसे एकसे बढ़कर एक शास्त्रोंका निर्माण किया हैं, कि, अगर आज वे सर्व शास्त्र लभ्य होते तो हम केवल उनके ही शास्त्र साहित्यसे ज्ञानार्णव बन जाते ! वर्तमानमें उपलब्ध शास्त्र हैं, वे भी उन्हें महपुरुषकी विरल विभूतिकी कक्षामें रखनेके काबिल हैं ..... उनके मौलिक शास्त्र रचनाके अतिरिक्त आगम विवेचनाके वचन भी टंकशाली-प्रभावशाली माने जाते हैं, अतः उनके वचनोंका परवर्तियोंने संदर्भके रूपमें उपयोग किया है ।**"[९३]

इस प्रकार श्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी जो साहित्यिक रचनायें की, उनके लिए *'सूरिशतक काव्य-१३* में लिखा है - "**उपदेश ही देते न थे, वे ग्रन्थकर्ता भी रहे ।**

भर्ता रहे बुध वृन्दके, त्रयताप हर्ता भी रहे ।।"

इनकी रचनाओमें खंड़न-मंड़नात्मक शैली प्रयोग प्राप्त होते हैं, जिसमें वाद-प्रतिवादके तर्कमें उग्रता भी झलकती है । वादीके तर्कको तोड़-मरोड़कर फैंक देनेमें मस्त शूरवीरकी अहिंसक तर्कशक्ति परमतवादीके साथ समभाव और सौजन्यपूर्ण व्यवहार-वर्तनकी झाँकि दिखाकर उदार सत्याग्रहीकी सामर्थ्यका परिचय दिखा जाती है । वे लिखते हैं-"**परतीर्थियोंके साथ उचित व्यवहार करें, उनको उचित दान दें, उनका मान-सम्मान करें । परमतवाला किसी कष्टमें पड़ा हों, तब उसका उद्धार करें और उसके उचित-आवश्यक कार्यको पूरा कर देवें ।**"[९३A]

उनके पद्योंके विषयमें मोतीचंदजी कापड़ियाका मंतव्य है, "**उनके पद्योमें असाधारण वाक्य रचना शक्ति-साहजिक (प्राकृतिक) सरलता, मधुर उन्माद, आंतरवेदना और साध्य सामीप्य छलकते हैं जिससे कहीं पर भी लघु पार्थिवता या रसक्षति रूप अधोगामित्व आने नहीं पाया ।**"[९४]

श्री आत्मानंदजीके ग्रन्थ प्रायः स्वतंत्र रचना रूप ही है । 'लोकतत्त्व निर्णय', 'महादेव स्तोत्र', और 'द्वात्रिंशिका' के बालावबोध एवं 'गायत्रीमंत्र' का सार्थ विवेचनादि उनके 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थान्तर्गत तथा 'ध्यान शतक' आधारित कुछ-सवैया इकतीसा-छंदमें लिखे गये पद्य उनके 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थान्तर्गत लिखे गये हैं, अर्थात् ये रचनायें भी उनके स्वतंत्र ग्रन्थके एक अध्याय या प्रकरणके रूपमें हैं । इन रचनाओमें तेरह कृतियाँ गद्यमें और सात रचनायें–(पूजा-प्रकारकी) एवं अन्य पद-स्तवन-सज्झायादि फूटकल रचनायें पद्यमें हैं । इनके अतिरिक्त 'सन्मति तर्क' आदि अनेक न्याय विषयक एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थोंके संशोधन भी उन्होंने किये हैं, कईं ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करवायीं–ये सारा साहित्य उनके ज्ञानभंड़ारोमें सुरक्षित था जो आज भी श्री विजयवल्लभ शिक्षणनिधि-दिल्हीमें सुरक्षित रखा गया है ।

दोनों मुनिपुंगवोंके ग्रन्थोंके प्रतिपादित विषय पूर्णतः धार्मिक और दार्शनिक ही है । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.की भाषा शैली, विद्वद्‌भोग्य, सूत्रशैली (समासशैली) युक्त है, जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने इस क्लिष्ट और नीरस विषयको अत्यन्त सरल-सुबोध और बुद्धिगम्य शैलीमें प्ररूपित करके इसे सहज-बालमानस युक्त बना दिया है ।-यथा-'ललित विस्तरा' ग्रन्थमें 'शक्रस्तव' सूत्रके 'जिअभयाणं' पदकी विशिष्ट व्याखा करते हुए श्रीहरिभद्रसूरि म. लिखते हैं - **तत्र हि क्षेत्रज्ञाः परम ब्रह्मविस्फुलिंगकल्पाः, तेषां च ततः पृथग्भावे न ब्रह्मसत्तात् एव कश्चिदपरो हेतुरिति सा तल्लयेऽपि तथाविधैव । तद्वदेव भूयः पृथक्त्वापत्तिः। एवं हि भूयो भवभावेन न सर्वथा जितभयत्वम् । सहज भवभाव व्यवच्छित्तौ तु तत्तत्स्वभावतया भवत्युक्तवत् शक्तिरूपेणापि**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वथा भयपरिक्षय इति निरूपचरितमेतत्।"

यहाँ अद्वैतमतवादियोंकी मान्य मुक्ति (परम ब्रह्ममें लयत्व) का खंडन करके मोक्ष स्वरूपकी तात्विकताका विश्लेषण किया गया है । उसी अद्वैतवादियोंकी मुक्तिके विषयमें श्रीआत्मानंदजी म.सा. द्वारा की गई प्ररूपणा दृष्टव्य है-**"परब्रह्म, सब दोष और गुणोंसे रहित मोक्ष स्वरूप है । ..... तथा फेर दयानंदजी लिखते हैं, मुक्तिस्थान परमेश्वर ही है अन्य कोई मुक्तिस्थान नहीं है । जैसे आकाश सर्वव्यापी है तैसे ही ईश्वर मुक्तिस्थान रूप सर्व जगें व्यापक है, तिसमें मुक्त लोग स्वच्छंदतासे चलते-उडते फिरते है, तो हम पूछते हैं कि मुक्तलोग सर्वकामसे पूर्ण हैं तो उनको देश-देशांतर जानेसे क्या प्रयोनन ?**[१५]

इस प्रकार दोनोंकी लेखन शैलीके वैषम्यका प्रमुख कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ हैं । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.का समय ही विद्वत्ता और पांडित्यका था जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.के समयका साहित्य जनसामान्यका प्रतिनिधित्व करता था; अतः श्री हरिभद्रजी म.की रचनायें तत्कालीन विद्वानोंकी प्राज्ञताकी कसौटी बन सकी थीं और श्रीआत्मानंदजीकी कृतियाँ भी लोकभोग्य होनेसे अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी हैं । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.के साहित्यमें आगमिक, न्याय विषयक, तात्त्विक, यौगिक, आचार प्ररूपक, उपदेश प्रधान, भक्तिपरक, कथा साहित्य और अन्य प्रकीर्णक प्रकरणादि विभिन्न साहित्यिक विधाओंके दर्शन होते हैं; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.की. कृतियोंमें भी आगमिक, न्याय विषयक (तत्कालीन मिथ्यामतोंका युक्तियुक्त-नय प्रमाणाधारित तर्कबद्ध खंडन-मंडन निरूपण), ऐतिहासिक, खगोलिक, भौगोलिक, भूस्तरशास्त्रीय, विश्व-स्तरीय जीवविज्ञान-कर्मविज्ञान, गुणस्थानक (श्रेणियाँ) आदिके स्वरूप, ध्यान विषयक, आचार विषयक अनेक प्ररूपणायें वर्तमान युगकी अपेक्षासे वर्णित हैं । श्रीआत्मानंदजीके साहित्यमें तत्कालीन समाजकी आवश्यकतानुसार जीवोपयोगी और जीवनोपयोगी तत्त्व और पदार्थोंका प्ररूपण ही प्रमुखतः हुआ है अतः कथासाहित्यका अवतरण नहीं हुआ । यद्यपि उनके प्रवचनोमें उन विषयोंको सरलतासे प्रस्तुत करने हेतु अनेक कथाओंका उल्लेख होता था, जो उनके पद्यबद्ध पूजा साहित्यसे विदित होता है ।

(१) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म.के 'धर्मसंग्रहणी' ग्रन्थमें भव्य वाद-प्रतिवाद (संवादशैली) द्वारा जिनमतकी विशिष्टता, सर्वांग सम्पूर्णता और सर्वथा शुद्धताका निरूपण हुआ है; वैसे ही श्री जिनमत प्ररूपणाका मंडन श्रीआत्मानंदजी म.के 'अज्ञान तिमिर भास्कर', 'सम्यक्त्व शल्योद्धार', 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' आदि ग्रन्थोंमें वेदादिके संदर्भसे अभेद्य तर्कबद्धतासे किया गया है । (२) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीके 'उपदेशपद'में जिनाज्ञा और गुर्वाज्ञाका महत्त्व, भवनिर्वेद, मोक्षाभिलाषा-आदिका; और 'पंचवस्तुक'में साधु जीवनकी योग्यता-उत्सर्ग, अपवाद मार्ग-साधुचर्या-आदिका; एवं 'अष्टक'में सुदेव-सुगुरु-सुधर्म योग्य विविध बत्तीस विषयोंका वर्णन बत्तीस अष्टकोंमें किया गया है । इन विषयोंका प्रायः वैसा ही स्वरूप श्री आत्मानंदजी म.सा.के 'जैन तत्त्वादर्श', 'तत्त्व निर्णय प्रासाद', 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' आदि ग्रन्थोंमें हमें प्राप्त होता है । (३) 'षोडशक'में प्रणिधानादि पांच अंग और जिनबिम्ब-निर्माण एवं प्रतिष्ठापनादिके विधान तथा 'विंशति विंशिकामें लोकधर्मसे मोक्षपर्यंत मार्गमें आत्म संशोधनके राहका निरूपण; 'पंचाशक'में सम्यक्त्व-बारहव्रत-द्रव्य और भावस्तव एवं श्रावकके दैनंदिन जीवन व्यवहार; 'धर्मबिन्दु'में गृहस्थके सामान्य और विशेष धर्म व साधुके सापेक्ष और निरपेक्ष यतिधर्म, आत्म साधनाका क्रमिक मार्गादिका जैसा वर्णन और विश्लेषण किया है, ठीक उसी प्रकार पूर्वाचार्योंके ग्रन्थाधारित श्रीआत्मानंदजी म.ने भी जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व निर्णय प्रासाद, जैनधर्मका स्वरूपादिमें किया है । अनेकान्तजयपताका, षड्दर्शन समुच्चय, अनेकान्तवाद प्रवेश, लोकतत्त्व निर्णय जैसी कृतियोंमें प्ररूपित न्याय विषयक सैद्धान्तिक प्ररूपणाओंका व्यवहार रूप हमें श्रीआत्मानंदजीकी वादिभंजक शैलीमें 'अज्ञान तिमिर भास्कर', 'चिकागो प्रश्नोत्तर' आदिमें प्राप्त होता है । साथ ही 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थान्तर्गत चतुर्थ एवं पंचम स्तम्भमें 'लोकतत्त्व निर्णय'का बालावबोध प्रस्तुत करके श्रीहरिभद्रजीके चरण चिह्नों पर चलनेवाले अनुगामीके रूपमें स्वयंको सिद्ध किया है । महत्तरा याकिनी सूनुके 'ललित विस्तरा'में निरूपित अरिहंत स्वरूपके दर्शन और सांख्य-वैदिक-बौद्धादि एकान्तिक दर्शनोंके खंडनका भास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमें श्रीआत्मानंदजीम.के 'जैन तत्त्वादर्श' ग्रन्थके द्वितीय परिच्छेदमें प्राप्त होता है ।

साहित्यमनीषी श्रीहरिभद्र सुरीश्वजी म.सा.का वैविध्यपूर्ण-अजीबोगरीब-प्रातिभ पांडित्यपूर्ण-विलक्षण वाङ्मयके सामने श्रीआत्मानंदजीका साहित्य परिमाणापेक्षया बाल सदृश भासित होता है, लेकिन, शेरका बच्चा शेर ही होता है–वैसे ही गुण समृद्धिमें श्री आत्मानंदजी म.सा., श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.के अनुज या अपत्यके रूपमें हमें प्रत्यक्ष होते हैं ।

महामहोपाध्य श्रीमद् यशोविजयजी म.सा. और संविज्ञ आद्याचार्य श्रीमद् आत्मानंदजी म.सा.:---

परिचय–इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठोंसे बहता कलकल निनाद और हमारे कर्णपटलको आकृष्ट करनेवाले ये मधुर-मंजुल स्वरगान है महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.सा.के, वाग्देवी श्रीसरस्वतीकी श्रेष्ठ प्रसादी और शुद्ध साधुता अर्थात् ज्ञान और क्रियाके सुभग समन्वयी संगीतका । सामान्यतः विशेषणसे विशेष्य (व्यक्ति) की विशिष्टताका उभार होता है, लेकिन, श्रीयशोविजयजी म.के लिए जैसे विशेष्यसे विशेषणकी विलक्षणता छलकती है । विशेषण है 'उपाध्यायजी'–विशेष्य है श्री'यशोविजयजी' । 'उपाध्यायजी' शब्दोच्चारसे विद्वज्जगतमें श्रीयशोविजयजी म.की स्मृति उठती है; मानो विशेषण विशेष्यका पर्याय-सा बन गया है । ऐसे **विरल विभूतिः** जिनशासनके **अनन्य प्रभावक** और आत्महित साधक; नम्रता और लघुलावण्यसे शोभित **ओजस्वी व्यक्तित्वधारी**; ज्ञानभक्त और गुरुभक्त; षड्दर्शनवेत्ता-महान दार्शनिक; मैथिल-तार्किक श्रीउदयन और श्रीगंगेशके द्वारा अवतारित नव्यन्यायकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणात्मक विचारधाराको जैन दर्शनमें सजानेवाले-**जैन नव्यन्यायके पिता** समान आद्यविद्वान; विद्याधाम काशीकी कीर्ति-पताकाकी सुरक्षा हेतु स्याद्वाद-अनेकान्तवादका कवच धारण करके प्रखर विद्वान संन्यासीके पड़कारको झेलकर उसे वादमें पराजित करते हुए, जैन दर्शन विरोधी ब्राह्मण विद्वद् पंडितवर्यों द्वारा **'न्याय विशारद' बिरुद प्रापक श्रेष्ठ श्रमण;** निश्चयवादी श्री बनारसीदासजीको अकाट्य तर्कयुक्तियोंसे हराकर, व्यवहार नयकी स्थापना करके श्री आग्रा संघसे उनके सिद्धान्तका बहिष्कार करवानेवाले **अनुपम तार्किक शिरोमणि न्यायाचार्य;** महोबतखानादि अहमदाबादके सर्वजनोंको अवधान प्रयोगोंसे प्रसन्नताके पारावारमें निमज्जन करानेवाले **सहस्त्रावधानी-असाधारण तेजस्वी धीमान;** ज्ञानप्रवाहको अमरत्व प्रदान करनेके लक्ष्यसे अल्पज्ञ-विशेषज्ञ, या साक्षर-निरक्षर, साधु या संसारीके ज्ञानार्जनकी सुलभता हेतु संस्कृत-प्राकृत, गुजराती, हिन्दी आदि विविध भाषाओमें आगम-तत्त्वज्ञान-अनेकांत, तर्क-न्याय, साहित्य-अलंकार-छंद, योग-अध्यात्म, चारित्र-आचार-उपदेशादि विभिन्न विषयोंको खंडनात्मक-मंडनात्मक-समन्वयात्मक शैलीमें गद्य-पद्य-संवादादि विलक्षण वाङ्मय रूप **सैंकड़ो ग्रन्थोंके सृजनहार**–जिनमें दो लक्ष श्लोक प्रमाण केवल न्याय विषयक सौ ग्रन्थ थे–और जिनको अहमदाबादमें श्री विजयप्रभ सुरीश्वरजी द्वारा वि.सं.१७१८में उपाध्याय पद प्रदान किया गया, ऐसे **महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.सा.ने** सत्रहवींशतीकी निशा एवं अठारहवीं शतीकी उषाको अपनी अनूठी आभा और ज्ञानालोकसे अलंकृत किया था । देवी सरस्वतीके उस नर अवतारके वचन टंकशाली और उनके प्रमाण-वाक्य साक्षात् आगमावतार ! उन्हें आधुनिक युगके अनेक विषयोंके Ph.D. अथवा कलिकालके श्रुतकेवली कहें तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी ।

जीवनतथ्यः–उनके गुणानुवादको प्रकाशित करनेवाली उनकी यशःपूरित अक्षरदेह जाज्वल्यमान रूपमें विद्यमान है । हाँलाकि उनका स्थूल जीवनवृत्त प्रामाणिक रूपसे प्राप्त करानेवाले माध्यमोंकी अत्यल्पता अखरती है, फिर भी उनके समकालीन श्रीकान्तिविजयजी म.के काव्य-'सुजस वेलिभास'-प्रमुख रूपसे सहायक बन सकता है; तो थोड़ा-बहुत आधार महाराजा कर्णदेवका वि.सं.१७४० के ताम्रपत्रसे. मिल जाता है और शेष अभावको पूर्णता बक्षती है कुछ अनुश्रुतियाँ । वैसे तो उनके साहित्य-सृजन-प्रवाहकी भी पूर्ण रूपेण प्राप्ति अद्यावधि नहीं हो सकी है । जितनी उपलब्ध है, वह भी अत्यल्प है । उनके अनुपलब्ध अमूल्य साहित्यके लिए संशोधन हो रहा है जो प्रशंसनीय एवं अनुमोदनीय है ।

ताम्रपत्रके आधार पर हम कह सकते हैं कि इनका जन्म गुजरातके पाटण शहरके पास छोटे-'कनोडा'-ग्राममें वि.सं.१६८०में हुआ था ।[१६] 'भास'के आधारसे इस विषयमें व्यवस्थित-विशिष्ट जानकारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त होती है-यथा-पिता 'नारायण श्रेष्ठि' और माता 'सौभाग दे' के जीवनोद्यानके पुंडरिक पुष्प-सम-बाल जसवंतने माता पिताके संस्कार-सुधाका पान करके, सद्गुरुओंकी अमीय कृपावृष्टिमें स्नान करके और जन्मांतरके ज्ञानावरणीय कर्मके अद्भूत क्षयोपशमके कारण सरस्वतीके वरदानकी त्रिवेणी संगमसे पवित्र प्रखरता प्राप्त करानेवाली दिव्य दीक्षा आठ सालकी लघुवयमें ही पाटणमें स्वीकार करके वि.सं.१६८८में श्रीनयविजयजी म.सा.का शिष्यत्व अंगीकार किया । इस प्रकार विरागका चिराग प्रकट होने पर अब एक ही परिवारका प्रकाश दीप, जसवंत (अनगढ पत्थर) से पावन प्रातिभ प्रतिमा बननेका सौभाग्य प्राप्त करते हुए विश्वोद्योत करनेवाले श्रीयशोविजयजी म.सा.के गौरवको प्राप्त हुए ।

जगद्गुरु श्री हीर सुरीश्वरजी म.सा.के विशद ज्ञानप्रवाहमें, उनके परवर्तीकालमें जो क्षीणता आयी थी, उसे श्रीमद् यशोविजयजी म.सा.ने पुनः वेगवान बनाया । गंभीर-सर्वतोमुखी-क्षिप्रग्राही-अलौकिक ऋतंभरा प्रज्ञाके स्वामी श्रीयशोविजयजी म.सा. दस-बारह वर्षोमें तो गुजरातमें लब्ध विविध विषयक वाङ्मयके अनेक आकर ग्रन्थराशिके पारगामी बन गये । उस ज्ञान-प्रासादके कलशरूप 'अवधान कला'की सिद्धि भी उस सरस्वती पुत्र-कुमारश्रमणने अतयल्प प्रयासमें सिद्ध कर ली । उसी ज्ञानालोक परिवेशमें थोड़े परवर्तीकालकी ओर दृष्टिक्षेप करनेसे अप्रतीम मेधाके स्वामी श्रीआत्मानंदजी म.सा.की जलहल ज्योति हमारे नेत्रयुगलको प्रकाशित करती है, जिन्होंने केवल छ वर्षके दीक्षापर्यायमें ही स्थानकवासी मान्य सकलागम पारगामीत्व प्राप्त करके विद्वज्जगत्में अपनी श्रेष्ठताको सिद्ध किया था । तत्पश्चात पाँच-छ वर्ष पर्यंत उसके रहस्यको-आगमके हार्दको प्राप्त करनेके लिए उन्होंने व्याकरण-न्याय षड्दर्शनादिका अभ्यास करते हुए अनेक विद्वान एवं पंड़ितोंके संपर्क करके चर्चा रूप विचार-विमर्श एवं अध्ययन-मनन किया था ।

दोनोंकी तुल्यातुल्यता:-(१) श्रीयशोविजयजी म.के प्रकृष्ट पुण्य प्रतापसे उनको ज्ञान-संपादनके लिए कहीं बाहर भटकना नहीं पड़ा था जबकि श्रीआत्मानंदजीम.ने दीक्षा लेनेके पश्चात् ज्ञानार्जनके लिए पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थानादिके कोने कोनेको छान लिया था; और अत्यन्त परिश्रम पूर्वक खंत और धैर्यसे ज्ञान प्राप्ति की । (२) श्रीयशोविजयजीको नैसर्गिक रूपसे ही सत्य राहकी प्राप्ति हुई थी जबकि श्रीआत्मानंदजी म.को स्वयंके प्रज्ञाघटमें, ज्ञानाध्ययन-मनन-चिंतन रूप रवैयेसे बिलोड़न करते करते तारतम्य रूप नवनीत प्राप्त हुआ था । (३) श्रीयशोविजयजी म.को कदम कदम पर सर्वत्र-सर्वदा-गुरुदेव श्रीनयविजयजी म., धनजी सूरा जैसे श्रावकादि सर्वकी ओरसे उष्मापूर्ण सहयोग अपने आप मिलता रहा, जबकि श्रीआत्मानंदजी म.को सर्वत्र-सर्वदा विरोधका मुकाबला करते करते आगे बढ़ना पड़ा फलतः श्रीयशोविजयजी म. षड्दर्शनकी (न्याय शास्त्रयुक्त) सर्वोच्च शिक्षा प्राप्तिके लिए श्रीनयविजयजी म.के साथ काशी और आग्रा तक पहुँच सके और अपनी बुद्धि प्रतिभाके चमकार प्रकट कर सके । जबकि, श्रीआत्मारामजी म.को आग्रामें अध्ययन करवानेवाले पंडितवर्य श्रीरतनचंद्रजी म.का योग प्राप्त हुआ, उसी वक्त उस अमूल्य लाभसे वंचित होकर गुर्वाज्ञा प्राप्त होते ही विहार करना पड़ा जिससे ज्ञानप्राप्तिका पूर्ण रूपेण लाभ न मिल सका । (४) श्रीयशोविजयजी म.के मुख्य गच्छनायक श्रीदेवसूरिजी म.ने उनके गुरु श्री नयविजयजीम.को उनके उत्कृष्ट जीवनकी स्वस्थ परिपालनाका आदेश दिया था, जिससे उनके ज्ञान-यज्ञको शीघ्र सफलता प्राप्त हुई जबकि श्रीआत्मानंदजी म.के मुख्य नायक पूज्य अमरिसंहजीने उनकी विकास राहमें कदम कदम पर रोड़े अटकानेका ही कार्य किया था ।

इन समस्त परिस्थितियोंने श्रीआत्मारामजीकी शक्तिके योग्य विकासमें रुकावटें डाली अतः योग्यता होने पर भी उनका योग्य विकास न हो सका । उनका जीवन संघर्षकी अगनज्वालाओंसे घिरा रहा था। शायद वे ही अगन ज्वालाओंने उनके स्वर्णिम व्यक्तित्वकी कसौटी करके उन्हें अत्यधिक शुद्धता और पवित्रताकी चमक अर्पित की । परिणाम स्वरूप संविज्ञ शाखाके ढ़ाई सौ वर्षसे रिक्त पड़े हुए आचार्य पदके गौरवको गौरवान्वित बनानेका उत्कृष्ट लाभ तत्कालीन भारतीय जैन समाजने उन्हें दिया; जो महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजीको न मिल सका था **ऐसा भी माना जाता है कि उनके समयमें एक ही आचार्य गच्छाधिपतिकी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंपरा थी और श्री विजयप्रभ सुरीश्वरजी म.सा. उस समय आचार्यपदारूढ थे, अतः योग्यता होने पर भी उन्हें आचार्य पद प्राप्त नहीं हुआ था ।[19] (५) श्री यशोविजय जी म. जन्मजात जैन थे, अतः उन्हें जैनत्वके संस्कार स्वतः प्राप्त थे जबकि श्रीआत्मानंदजी म. ब्रह्म-क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे जिनकी परवरिश स्थानकवासी परिवेशमें हुई, अतः कठिन प्रयास और स्वबुद्धि प्रतिभाके परिपाक रूप शुद्ध संस्कार प्राप्ति हुई (६) श्री यशोविजयजी म.ने सरस्वती वरदानसे वाद–साहित्य सृजन–व्याख्यानादि क्षेत्रमें सिद्धि प्राप्त की और जिनशासनकी महती प्रभावना की जबकि इन सभीके लिए श्री आत्मानंदजीम.ने कर्तव्यनिष्ठा और निरंतर-कठोर-परिश्रमसे निष्पन्न स्वपुण्योदयके सामर्थ्यके सहारे स्वर्णिम सिद्धि हांसिल की (७) फिर भी श्रीमद् यशोविजयजी म. का शिष्य-प्रशिष्य परिवार अति विशाल नहीं था, अतः उनकी सर्व सिद्ध प्रवृत्तियाँ उन तक ही सिमित रहीं । यहाँ तककी उनकी साहित्यिक कृतियोंमेंसे अधिकतर कृतियाँ वर्तमानमें समाजके दृष्टिपथसे ओझल हैं । जबकि श्री आत्मानंदजी म.सा.का विशाल शिष्य परिवार द्वारा उनके देहविलय पश्चात् उनके उदात्त साहित्य सर्जनको एवं उनके जीवनकार्यों रूप मिशनको उनके बाद भी कार्यान्वित रखा गया उनका परिष्कार एवं परिवर्धन हुआ जिनके सुस्वादु फल अद्यावधि जैन समाजको मिल रहा है।

प्रभावकोंके हृदयमें साम्यताः–इन वैषम्योंके साथ साथ उन दोनों महानुभावोंमें जो साम्यता परिलक्षित होती है, उसका कुछ दिग्दर्शन इस प्रकार करवाया जा सकता है -(१) दोनों शासनसेवीयोंने बाल्यकालमें दीक्षा लेते ही ज्ञानार्णवमें अवगाहन करना ही अपना जीवन लक्ष्य बनाया था । (२) दोनों सत्यके समर्थ समर्थक-सत्यपथके पथिक थे । सत्यके लिए दोनोंने बहुत कुछ सहन किया । जिसके अंतर्गत श्रीयशोविजयजी म.सा.ने श्रीपं.सत्यविजयजी गणिजीके साथ मिलकर जो क्रियोद्धारका कार्य किया वह झलकता है, तो श्रीआत्मानंदजी म.ने सत्यपथकी पहचान होनेके पश्चात् अपने साथियोंके साथ उसी सत्यराह-संविज्ञ साधुताके साधक बननेका सौभाग्य जीवनकी अन्तिम बीसीमें प्राप्त करके जिनशासनको गौरवान्वित और उन्नत मस्तिष्क बनानेके भगीरथ प्रयत्न किये । (३) दोनोंकी अद्वितीय तर्कबद्ध एवं वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक व्याख्यान शैलीकी मधुर सुवासने धूम मचा दी थी; जो उनमें स्थित, पर्षदाको पागल बना देनेवाली-भुवनमोहिनी गिराका करिश्मा था । एक बार उनके प्रवचनोंका अमीय पान करनेवालोंके कर्णपटलको अन्यत्र कहींसे तृप्ति न होती थी । (४) दोनों ही जिनशासनकी आन थे और शान थे; जिन्होंने जिनशासन सेवामें ही सर्वस्व समर्पित कर दिया था । (५) दोनों महानवादी और तार्किकशिरोमणि थे । श्रीयशोविजयजी म.सा.ने चर्चा सभामें विद्वान संन्यासीको परास्त किया था तो निश्चयवादी बनारसीदासजी आदिको चूप किया था; वैसे ही श्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी निश्चयवादी श्रीशांतिसागरजी और कोरे अध्यात्मवादी हुक्ममुनि आदि अनेक जैन-जैनेतरोंसे लोहा लेकर उनकी बजती बंसरीको मूक किया था।

साहित्यिक तुलनाः–इस प्रकार उनके अनूठे व्यक्तित्वके सत्यं-शिवं-सुंदरम् सरोवर सलीलमें स्नान करके अब हम उनके साहित्य दर्पण समक्ष नज़र फैलायें, जहाँ उन वाग्देवीके सपूतोंकी कलम द्वारा सृजित साहित्य शृंगारका असबाब आलमको भूषित कर रहा है । ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी कल्लोलिनीके कगार पर शासन प्रभावनाके थाल भरकर सर्वको आकर्षित कर रही दोनोंकी मधुर लेखिनी जैन साहित्यको मुखरित कर रही है । (१) दोनोंने उनमें विविध विषयक वाङ्मयके रूपमें इन्द्रधनुषी आभाको चित्रित करनेका आयास किया है; फिर भी दोनोंने प्रमुखता न्यायको दी है । यही कारण है कि एक 'न्यायाचार्य' और 'न्याय विशारद' बने हैं तो एकको 'न्यायाम्भोनिधि' और 'स्व-पर सिद्धान्तोदधि पारगामी'की प्रख्याति प्राप्त हुई है। (२) वाचकवर्य श्रीउमास्वातिजी म., श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी म., श्रीमल्लवादी सूरिजी म., श्रीजिनभद्र क्षमाश्रमणजी म., श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म., श्रीहेमचंद्राचार्यजी म. आदि अपने अनेक पुरोगामी आचार्य भगवंतोंके प्रति दोनोंने खुलकर अपनी भक्ति प्रदर्शित की है । (३) दोनोंने अपने ग्रंथोंमें पतंजलिके योगशास्त्र, और भगवद्गीता या महाभारत जैसे जैनेतर ग्रन्थोंके संदर्भ प्रस्तुत करके अपनी दार्शनिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समन्विता और अद्‌भूत पांड़ित्यके दर्शन करवाये हैं । (४) ये सर्वतोमुखी प्रतिभाके स्वामियोंने अपनी सृजन-सलीलामें साहित्यके योग और आचार, आगम और न्याय, धर्म और इतिहासादि नूतन-पुरातन सभी विषय-निर्झरोंको समाहित किया है । (५) हाँ, इतना अवश्य, स्पष्ट झलकता है कि, उपाध्यायजीका विशेष प्रदान गद्यापेक्षया पद्य (श्लोक बद्ध) कृतियोंमें हुआ है, जबकि आचार्य प्रवरश्रीने पद्यापेक्षया गद्यमें अधिक योगदान दिया है; जिसमें विशेष हेतुभूत तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियोंकी प्रभावक पृष्ठभूमिको मान सकते हैं । (६) वादकलामें और न्यायशास्त्र निर्माणमें पूर्वपक्षके स्थापनमें (इतर दर्शनकी पूर्वभूमिका प्रस्तुत करते हुए) उस पक्षकारके साथ तादात्म्य भावसे जिस भाँति श्री यशोविजयजीम.सा. दृष्टिपथ पर आते हैं, उतनी प्रभावकता श्रीआत्मानंदजी म. प्रदर्शित नहीं कर सके हैं ! फिर भी उत्तरपक्षमें जैन दार्शनिक सिद्धान्त स्थापनके समय दोनोंका पांडित्य समान रूपसे झलकता है । (७) दोनोंने वेदांतियों, वैशेषिकों, नैयायिकों, मीमांसकों या बौद्धों आदि सभी एकान्तवादी दर्शनोंकी कड़ी समालोचना की है, तो उनके प्रमाणित सत्य सिद्धान्तोंकी प्रशस्ति करके जैन श्रमणोंकी गुणग्राहिता प्रकट की है । अतएव उनकी यह उद्‌घोषणा सर्वधर्मके प्रति विशाल एवं उदार दृष्टिबिंदुको उद्‌घोषित करती प्रत्यक्ष होती है -

'पक्षपातो न मे वीरो, न द्वेषः कपिलादिषु
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ।।'[१८].

अर्थात् "जैनागमोंका स्वीकार और परसिद्धान्तोंका इन्कार हम किसी रागद्वेषके कारण नहीं प्रत्युत युक्तियुक्त प्रतिपादनके बल पर करते हैं । अतः उसमें राग-द्वेषका तनिक इंगिताकार भी दृष्टिगत न होगा।" (८) श्रीयशोविजयजी म.सा.ने पंड़ितजन और प्राकृतजनोंके लिए एक ही विषयकी भिन्न भिन्न भाषामें विभिन्न कृति रचना द्वारा उद्‌भावना की है, जबकि श्रीआत्मानंदजी म.ने समन्वयी दृष्टिकोणको नयनपटल पर स्थापित करते हुए सर्वके लिए एक ही कृतिमें, अनेक विषयोंको अनूठे सामंजस्यसे सजाया है-यथा- लूंपकादि मूर्तिपूजा विरोधियोंके करतूतोंसे दोनोंका पुण्यप्रकोप भडक उठा था, अतः श्रीयशोविजयजी म.ने 'प्रतिमा शतक' और 'प्रतिमा पूजन न्याय' जैसी अकाट्य ग्रन्थ-रचनासे शासन रखवाली करनेकी पूर्ण कोशिश की; तथा कुमति मदन गालन रूप '१५० गाथाके श्री महावीर स्वामीके स्तवन' में प्राकृतजनोंके लिए 'प्रतिमा पूजन' की चार निक्षेपासे सिद्धि करते हुए प्रथमढालमें ही आगमिक प्रमाण पेश किया है-

"श्री अनुयोग दुवारे भाख्या, चार निक्षेपा सार.....
चार सत्य..... ठाणांगे निरधार रे जिनजी !"(२)

और श्री आवश्यक सूत्रानुसार - **"चौविसत्थयमांहि निक्षेपा, नाम-द्रव्य दोय भावुं,**
काउसग्ग आलावे ठवणा, भाव ते सघले ल्यावुं रे जिनजी....."(४)

द्वितीयढालमें भी -**"तुझ आणा मुज मन वसी, जिहां जिन प्रतिमा सुविचार लाल रे,**
रायपसेणी सूत्रमां, सूरयाभ तणो अधिकार लाल रे....." (९)

इस प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, औपपातिक सूत्र, ज्ञाता सूत्र, भगवती सूत्र, प्रथम और षष्ठम् अंगादि अनेक आंगोपांगके संदर्भ प्रस्तुत किये हैं । उसी प्रकार श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने 'सम्यक्त्व शलयोद्धार' ग्रन्थमें श्रीजिन-प्रतिमा पूजनकी आगमाधारित अकाट्य तर्कोंसे सिद्धि करके जैन समाज पर महदुपकार किया है, साथ ही साथ मूर्तिपूजा उत्थापकोंकी कड़ी आलोचना करके उनको खामोश किया है और उनके आत्म-कल्याणका मार्ग चिह्नित किया है -**इस ग्रन्थमें भी प्रायः जिन प्रतिमा संबंधी सविस्तर विवेचन शास्त्रानुसार किया है । इसवास्ते स्थानकवासी-ढूंढक लोगोंको बहुत नम्रतासे विनती की जाती है कि हे प्रिय मित्रो ! जैन शास्त्रोंके प्रमाणोंसे, प्राचीन लेखोंके प्रमाणोंसे, प्राचीन जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओंके प्रमाणोंसे, अन्य मतियोंके प्रमाणोंसे तथा अंग्रेज विद्वानोंके प्रमाणोंसे-इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि प्रत्येक जैनी जिन प्रतिमाको मानते और वंदना नमस्कार, पूजा-सेवा-भक्ति करते थे, तो फेर तुम लोग किस वास्ते हठ पकड़के जिनप्रतिमाका निषेध करते हो ? इस वास्ते हठको छोड़कर श्रावकोंको श्रीजिन-प्रतिमा पूजनेका निषेध**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत करो, जिससे तुमारा और तुमारे श्रावकोंका कलयाण होवे ।"[१९].

श्रीयशोविजयजी म.ने १२५ गाथाके नयविचार गर्भित "श्रीसिमंधर जिन स्तवन"में शुद्ध देशना स्वरूप, आत्मतत्त्व और स्वरूप परिचय, निश्चय और व्यवहार नयकी जीवनमें समन्विति, द्रव्य और भावरूप प्रभु-भक्ति एवं जिन-पूजा द्वारा कर्म निर्जराका स्वरूप वर्णित करते हुए ग्यारहवी ढालमें गाया है -

"कुमति इम सकल दूरे करी, धारिये धर्मनी रीत रे,
हारिये नवि प्रभु बल थकी, पामिये जगतमां जीतरे.... स्वामी सिमंधरा ! तूं जयो..."(११४)
"मुज होजो चित्त शुभभावथी, भव-भव ताहरी सेव रे,
याचिये कोड़ि यतने करी, एह तुज आगले देव रे.... स्वामी सिमंधरा ! तूं जयो...."(१२४)

उसी प्रकार श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने भी इस विषयमें अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं -

"ज्ञान वचन पूजारस छायो, नाश कष्ट भविजन मन भायो
यूं जिन मूरति रंग देख, दुरगति मेरी खुट गयी रे....
कुमति मेरी मिट गयी रे, आज श्री शंखेश्वर दरस देख...."[२०].

सिद्धान्त विचार रहस्य गर्भित ३५० गाथाके श्रीसिमंधर स्वामीजीके स्तवनमें श्रीयशोविजयजी म.सा.ने धर्मरूप रत्नत्रयीके योग्य पात्रके लक्षणोंको आलेखित करते हुए जो चित्र अंकित किया है तदन्तर्गत सूत्रविरोधी तीर्थोत्थापक अथवा जैन कुलमें जन्म होनेसे ही अपना उद्धार माननेवाले; गुरुकुल त्यागकर स्वच्छंद उग्रविहार या प्रखर रत्नत्रयीके आराधक अथवा वर्तमानकालमें आगमानुसार 'गीतार्थोंके अभावमें निपुणमति एकल विहारी हो सकता है'–इसके आधार पर स्वच्छंद एकल विहारी; अकेले ज्ञानसे ही या केवल क्रियामें डूब जानेसे ही मोक्षप्राप्तिके समर्थक; केवल सैद्धान्तिक अहिंसा पालनमें ही धर्माराधना माननेवाले अथवा केवल 'सूत्रों'को मानकर पंचांगी रूप 'अर्थ'के लोपक-स्थानकवासी आदि एकान्तवादियोंकी प्ररूपणा करके उन्हें हितशिक्षा देते हुए भावश्रावकके लक्षण दर्शाते हैं -

"एकवीस गुण जेणे लहया, जे निज मर्यादामां रह्या
तेह भावश्रावकता लहे, तस लक्षण ए प्रभु तुं कहे ।"- ढाल-१२.१.

तत्पश्चात् भावसाधुके सात लक्षणका विवरण ढाल-१४में देते हुए उस पथके पथिक मुनिवरकी धन्यताकी बिरुदावली ललकारते हैं - **"भोग पंक त्यजी ऊपर बेठो, पंकज परे जे न्यारा**
सिंह परे निज विक्रम शूरा, त्रिभुवन जन आधारा....
धन ते मुनिवरा रे, जे चाले समभावे..... ढाल - १५.२.

और अंतमें शुद्ध निश्चयनय और शुद्धव्यवहार नय–ज्ञान और क्रियादिका स्वरूप एवं तपगच्छके पूर्व परंपरित 'निर्ग्रंथादि' छ नामोंका इतिवृत्त फरमाते हुए अंतमें जिनशासनके प्रति बहुमानयुक्त समर्पण भाव प्रकट करते हुए लिखते हैं -

"आज जिनभाण तुज एक मुज शिर धरुं, अवरनी वाणी नवि काने सुणिये ।
सर्व दर्शन तणुं मूल तुज शासने, तेणे ते एक सुविवेक थुणिये ।".....

जैसे श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.ने भी फरमाया है कि - **"जैन दर्शन रूपी समुद्रमें सर्व नदियाँ (सर्व दर्शन) समा जाते हैं, लेकिन किसी एक नदीमें समुद्र दृष्टिगत नहीं हो सकता ।"** ठीक उसी प्रकार श्रीयशोविजयजी म.ने भी सर्व दर्शनोंका जैन दर्शनमें होना सिद्ध किया है । परिणामतः **"तुज वचनराग सुखसागर हुं गणुं, सकल सुर मनुज सुख एक बिंदु"** कहकर जिनशासनके सिद्धान्तोंकी सर्वोत्कृष्टता दर्शायी है । श्रीआत्मानंदजीम.को भी अन्य दर्शनोंसे इसलिए द्वेष नहीं है कि किसी भी दर्शनसे उनका पक्षपात नहीं है । अतः उनकी एकमात्र भावना है–

"तुझ किरपा भई नाथ एक मुझ भावना, जिन आज्ञा परमाण और नहीं गावना ।
पक्षपात नहीं लेस द्वेष किनसुं करुं, ए ही स्वभाव जिणंद सदा मनमें धरुं ।।"[२१].

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्त जब भगवंतकी भक्तिमें तदाकर हो जाता है तो उस श्री जिनेश्वर देवकी कृपावर्षासे सर्व विटंबनायें और आपदायें दूर हो जाती है एवं संपदायें अपने आप आन मिलती हैं । दोनों विनित भक्त उस कृपासिंधुके दो बिंदुके लिए विनंती करते है - श्री यशोविजयजी म. पाप प्रनाशकको कहते हैं -

"तुं वसे जो प्रभु हर्षभर हियडले, तो सकल पापना बंध तूटे
उगते गगन सूरयतणे मंडले, दह दिशि जिम तिमिर पड़ल फूटे"-(ढाल१७-३)

श्रीआत्मानंदजी म.जीको सांवले सलुणे शंखेश्वरकी शरण ग्रहण करके अपेक्षित है–

"हम तो काल पंचम वस आये, तुमारो शरण जिनेश नाम.....
मोरी बैयां तो पकर शंखेश शाम....."[२२].

दोनोंकी समर्पित भक्तिमें विनती करते समयकी दृढ़ श्रद्धा भी दर्शनीय है जिससे भगवंत मानो उन भक्तोंकी मुट्ठीमें बंद है । पू. श्रीयशोविजयजी म.का विश्वास–

"आज जिनराज मुझ कार्य सिद्धां सवे, विनती माहरी चित्त धारी
मार्ग जो में लह्यो तुज कृपा रस थकी, तो हुई संपदा प्रकट सारी ।"(ढाल१७-१)

श्रीआत्मारामजी म. भी अखूट आस्थाके साथ अपने भवभंजन भगवंत श्रीमहावीर स्वामीकी चरणरेणुमें लोटते हुए अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करते हुए गुनगुनाते हैं–

"चरणकमलकी रेणुमें रे, हुं लोटूं जगदीश; अंहि न छोडुं तब लगे रे, न करे निज सम ईश।
आतमराम तूं माहरो रे,त्रिशलानंदन वीर,ज्ञान दिवाकर जग जयोरे,भंजन भवदुःख भीर जिणंद शुं प्रीत लागी रे.[२३]

सर्व आस्तिक दर्शनोंमें भगवद् भक्तिके विशिष्ट निरूपण हुए हैं, जिसके दो प्रकार हैं–एक सकाम और दूसरी निष्काम । प्रथममें भक्तिके बदलेमें भक्तके दिलमें कुछ न कुछ प्राप्त करनेकी अभिलाषा होती है जबकि द्वितीय भगवद्गीतानुसार निष्काम भक्ति, बिना फलकी अपेक्षा केवल कर्म करना है । लेकिन धैर्यसे परिक्षण करें तब यह स्पष्ट होता है कि बिना उद्देश्यके कार्य हो ही नहीं सकता । अतः जैन दर्शनानुसार भगवद्-भक्तिके फल स्वरूप 'कुछ' तो प्राप्त करना ही है, जिससे अनन्त दुःखमय भवभ्रमण नष्ट हो जाय और शाश्वत सुख प्राप्त हो जाय और जिसकी प्राप्त्यानन्तर आत्मा आप ही निष्काम बन जाये । अतः श्रीयशोविजयजी म.सा. अपने चतुर सुजाण साहिब चंद्रप्रभ स्वामीको कहते हैं

"सेवा जाणो दासनी रे, देश्यो फल निर्वाण....[२४]

इसी भावको श्रीआत्मानंदजी म. आनंददायक श्रीमहावीर स्वामी समक्ष प्रकट करते हुए गाते हैं -

"रंभा-रमण, सुरिंद, पदचक्री, वांछुं हुं नहीं निःकामी ।
आतमराम आनंदरस पूरण, दो मुक्ति सुखधामी....."[२५]

दोनोंके समग्र साहित्यकी साम्यता और वैषम्यताके अनुशीलनमें अग्रगामी होते हुए हमें यह अनुभव होता है कि श्रीयशोविजयजी म.सा.ने अनेक ढालों युक्त बृहत् स्तवन रचनाओंमें शासनके मूल्यवान-उच्च और गुढ़ सिद्धान्तोंकों कैद किया है, तो श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने उन्हींको फूटकल–छोटे-छोटे स्तवनोंमें और विशेषतया गद्य साहित्य द्वारा अपनी अछूती विशिष्ट शैलीसे प्रकट किया है । श्री आत्मानंदजी म.ने पूजाके विविध प्रकारों और अन्य आराधनामय विषयों पर आधारित पूजा साहित्य एवं पदादिकी रचना करके महत् लोकोपकार किया है । दोनोंने अपनी पद्यकृतियोंको विशिष्ट राग-रागिणीसे सजाकर सूर-मंदिरके साजोंमें संगीतकी फूंक भरी है, जिन्हें गाते या सुनते हुए हृदय वीणाके तार झंकृत हो उठते हैं; भावुक हृदय उस बहते हुए भाव प्रवाहों पर डोलने लगता है–उसमें डूबने लगता है ।

उनके पद्यकी एक और विशिष्टता यह है कि काव्यके अंगरूप अलंकार आयोजना और प्रतीक-नियोजनाका निर्वाह स्वस्थतापूर्वक करके उसमें एक अनूठी थिरकन-चैतन्य प्रकट किया है । श्रीयशोविजयजी म.सा.के पद्य कहीं कहीं पर कथनात्मक प्रस्तार और पदार्थ-विशेषणादिकी सूचिमात्र रूपमें या कभी उपमा दृष्टान्तकी पुनरुक्तियोंके कारण बोझिल या नीरस बने हैं लेकिन उनमें निहित वैविध्यपूर्ण विशालता, भावार्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मार्मिक पंक्तियाँ, वाणी वैचित्र्य और स्वरूप वैविध्य; कहीं परभाव-हिंडोले पर खेलती हृदयोर्मियाँ तो कहीं गहन -रहस्यमय-तात्त्विक और आत्मिक अनुभूतियोंकी धारासे शोभित समतोल-सात्त्विक दृष्टिसे अत्यन्त प्रशंसनीय बन गये हैं । श्रीआत्मानंदजीम.की पद्य रचनाओमें उन्हीं काव्यांगोंके ताने-बानेकी नक्काशी सौंदर्यता बक्षती है, और सहसा फूटकर सहज रूपमें प्रवाहित अंतरकी अप्रतीम अनुभूतियाँ आह्लादित करती रहती है । उनकी विषय वैविध्यता सिमित होने परभी प्रयुक्त विषय या भावोंका पिष्टपेषण प्रायः नहीं हुआ । पूजाकाव्योंमें तो उनकी न्यौच्छावरी भावोदधिमें हिलोरें उत्पन्न करती हैं. ।

इसके अतिरिक्त गद्य साहित्य विषयक तुल्यता अवगाहने पर निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि श्रीयशोविजयजी म.सा.की भाषा पांडित्यपूर्ण-विद्वज्जनोंके मनमयूरको नर्तन करवानेके काबिल है, जिनमें विशेष रूपसे पूर्वाचार्य रचित उत्तम सूत्र ग्रन्थोंकी टीका या वृत्तियोंका निर्माण हुआ है; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.की भाषा सरल-सहज-लोकभोग्य फिर भी संस्कृत तत्सम शब्दोंकी बहुलताके कारण सुधी शास्त्रज्ञोंके मनको भी रंजन करवानेमें सक्षम है । कभी विषयानुकूल गहन गंभीर बननेवाली गिरा सामान्यतः सुगम सुबोधदायी प्रवहमान स्वरूप धारण किये हुए जन-मनको प्रसन्न करती है । श्रीयशोविजयजी म.सा.ने अपने ग्रन्थोंमें स्वतंत्र रूपसे न्याय विषयक सैद्धान्तिक साहित्य–जिनमें नव्य न्याय प्रमुख है–की प्ररूपणा की है, जबकि श्री आत्मानंदजी म.सा.ने उन प्ररूपणाओंको व्यवहारमें इतर दर्शनके साथ कैसे घटित करवायी जा सकती है उनके प्रायोगिक प्रसंगोंका विवरण दिया है । दोनोंके आत्मविचार और आगम रहस्य–अध्यात्म-योग और ध्यान; साधु-श्रावक योग्य गुण चर्चायें-और-भावनायें; कर्म और आत्मिक प्रगति प्रदर्शक गुणस्थानक स्वरूप; तत्त्वत्रयी और रत्नत्रयीकी प्ररूपणा–आदिमें उनकी उत्तम श्रुतोपासना और अध्यात्म योग साधना छलकती है। ऐसी स्वतंत्र रचनाओंके अतिरिक्त दोनोंने अमूल्य और अलब्ध प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ की हैं और पूर्वाचार्य कृत ग्रन्थोंमें संशोधन भी किये हैं ।

कहाँ कहाँ तक गिनाये ! इन दोनों महामनीषियोंकी प्राज्ञताको शब्दोंके घेरेमें बांधनेका यह तो एक क्षुल्लक प्रयत्न किया गया है । उनका जितना विशद उतना ही गहन; हिमगिरिशृंगोंसे भी उन्नत, प्रांजल एवं प्रातीभ पांड़ित्यको इस विहंगावलोकनमें परिपूर्ण न्याय न मिलना ही स्वाभाविक है । यह तो उन मेधावी और प्रतापी सरस्वती सुपुत्रोंको पुष्पांजलिके पुष्पकी पंखुड़ी सदृश भावार्पण है । उनके अमर साहित्यकी गिर्वाण गाथायें ही स्वयं उस यशोगानका आत्मानंद प्रदान करनेमें सामर्थ्य रख सकती है । यहाँ तो केवल गिने-चूने रसके छिंटें ही प्रस्तुति पा सके हैं जिससे रसधाराके तीव्र वेगवान निर्झरकी कल्पना प्राप्त हों और उसके परिशीलनमें प्रवृत्ति हों यही स्तुत्य कर्तव्यकी यादको सतेज करनेका उद्योग किया गया है ।

<u>अध्यात्मयोगी श्रीआनंदघनजी म.सा. तथा युगवीर आचार्य श्रीआत्मानंदजी म.सा.</u>---

"अब हम अमर भये न मरेंगे" के गायक श्रीआनंदघनजी म.सा. अर्थात् अंतरतम आत्माके अणु-परमाणुमें व्याप्त अंतर्यामीका तेजपूंज स्वरूप । आत्मवाणी-आत्मोद्योत-आत्म-प्रतिष्ठा रूप आध्यात्मिक आनंद या मस्तीमें मस्त श्रीलाभानंदजीसे उत्तरोत्तर अध्यात्मके चरमोत्कर्षके बोध प्रापक बननेवाले योगीराज श्रीआनंदघनजी म.नाम और उपनाम–दोनोंको सार्थकता प्रदान करनेवाले अथवा 'यथा नाम तथा गुण' उक्तिको चरितार्थ करनेवाले आध्यात्मिक जीवनके जाज्वल्मान ज्योतिपूंज थे । इनकी सातोंधातु–दशों प्राण–पांच इन्द्रिय और मन–प्रत्येक रोम-रोममें, खूनकी बूंदबूंदमें अर्थात् तन-मन-आत्मा सर्वस्वमें अस्थिमज्जावत् अहर्निश बहती थी परमात्म भक्तिकी पावनी गंगोत्री ।

<u>जीवनतथ्यः</u>–**"संत आनंदघनका जन्म स्थान-समय-नाम, माता-पिता-परिवार, दीक्षा स्थान-समय-गुरु परंपरा-संप्रदाय, देहविलय-स्थान, समय आदिके बारेमें अंतिम निर्णायक ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं होते हैं । विद्वानोंमें इस सम्बन्धमें मत वैभिन्न एवं विवाद हैं ।**[२६] जैन साधु प्रायः अपनी पूर्वावस्था (गृहस्थावस्था)का नाम-गोत्र स्थान-समयादिकी उपेक्षा करते हैं । अपनी कृतियोंमें प्रायः गुरु परंपराको उल्लिखित करते हैं । श्रीआनंदघनजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

म.की. पूर्वावस्थाका-जन्म-स्थान, माता-पितादिका निर्देश न उन्होंने स्वयं किया है और न उनके समकालीन किसी अन्य साहित्कारने ही तत्संबंधी जिक्र किया है । अतः उनके संबंधमें अंतःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य-दोनोंका अभाव है । हमारे सामने उनका साहित्य रूपी यशोदेह जो विद्यमान है वही उनकी केवल गुणगाथाको प्रकाशमान कर सकता है । इनकी कृतियोंके आधार पर आ.श्रीबुद्धिसागर सुरीश्वरजी म.सा., नटवरलाल व्यास, मोहनलाल दलीचंद देसाई, मनसुखलाल रवजीभाई, अगरचंदजी नाहटा, अंबाशंकर नागर, मोतीचंदजी कापड़िया, डॉ. वासुदेवसिंह, क्षितिमोहनसेनादि अनेक विद्वानोंने अपने अपने अभिप्राय प्रस्तुत किये हैं; लेकिन इन सभीमें विशिष्ट स्थान रखनेवाला निश्चित ऐतिहासिक तथ्योंको स्पष्ट उल्लिखित कर्ता **"श्री सम्मेत शिखरजी तीर्थनां ढालियाँ"-संपादक आ.श्रीमद् पद्मसूरिजी म.-** का संदर्भ अधिक उपयुक्त और सत्यसे अधिक निकट लगता है कि **"श्री आनंदघनजी म., पं. श्री सत्यविजयजी गणिके लघुभ्राता थे और बडे भाईके साथ उन्होंने भी तपागच्छके क्रियोद्धारमें योगदान दिया था ।"**[२७] आचार्य प्रवरश्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी अपने **"जैन तत्त्वादर्श"** के उत्तरार्धमें पृ. ५८१. में लिखा है कि–**"श्री सत्यविजयजी गणिजी क्रियोद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ बहुत वर्ष लग वनवासमें रहें और बड़ी तपस्या-योगाभ्यासादि करा"** ।

अतः इन पूर्वोल्लिखित तथ्योंको ध्यानमें रखते हुए निष्कर्ष रूपमें यह कहा जा सकता है कि **पं.श्री सत्यविजयजीका जन्म वि.सं. १६५६ में लाड़लूंके दुग्गड़ गोत्रीय शा.वीरचंद ओसवालकी पत्नी वीरमदेवीकी रत्नकुक्षिसे हुआ था ।**[२८] इस आधार पर हम श्रीआनंदघनजी म.की जीवनीके स्थूल तथ्योंको प्रायः इस रूपमें निर्णित कर सकते हैं–श्रीआनंदघनजी म.का जन्म प्रायः वि.सं.१६६०के आसपास लाडलूंमें दुग्गड़ गोत्रीय वीरचंदजीके घर माता वीरमदेवीके लघुपुत्रके रूपमें हुआ होगा । प्रायः बडे भ्राता श्रीसत्यविजयजी गणिजीके साथ वे भी तपगच्छमें शायद श्रीविजयदेवसूरिजीकी परंपरामें दीक्षित हुए होंगे । उनकी रचनायें-विशेषतः श्रीसुविधिनाथ जिन स्तवन और श्री नमिनाथ जिन स्तवनके अध्ययनोपरान्त हम निर्विवाद रूपसे उनको श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परंपराके श्रेष्ठ साधु मान सकते हैं । उनका देहोत्सर्ग प्रायः मेड़ता शहरमें वि.सं.१९३१के आसपासके समयमें हुआ होगा, जहाँ उनका समाधि स्थल बना हुआ है ।

अध्यात्मरसके महानंदको प्रवाहित करनेमें सामर्थ्यवान्, अद्‌भूत अध्यात्म मूर्ति, स्वभाव रमणताके लक्ष्यसे अत्यन्त जागृतावस्थाके लिए आत्मिक शक्तियोंको उजागर करनेवाले-त्यागी-वैरागी-स्वदेह ममत्वके त्यागी-वनविहारी उत्तम कोटिके संत-बिना गच्छकी निश्रा, निवृत्तिमार्ग परायण श्रीमद् आनंदघनजी म.के अंतरमें एक ही तड़प या एक ही तलप अथवा एक ही ललक थी–'आत्माके साथ लगे हुए इस अनादिकालीन कर्म संयोगसे किसविध मुक्त हुआ जा सके ?'

अनेक आक्षेपकर्ताओंको उदार दिलसे क्षमा प्रदाता सच्चे क्षमाश्रमणकी आंतरिक वैराग्य भावना और करुणा भावनामें, अन्य साधुओंके शिथिलाचारादि संयोगोंने आगमें घीका कार्य किया । वे परिस्थितियाँ उन भावोंकी वृद्धिके निमित्त बनीं; उनकी निःसंगताके परिणाम अधिक वेगवान बने; परिणामतः वे वितंड़ावाद-फिजूल चर्चायें, विकथायें और गृहस्थके निरर्थक अधिक परिचयसे-स्पृहासे विमुख होने लगे । केवल क्षुधादि शमन या अत्यल्प अन्य जीवनावश्कताओंकी पूर्ति हेतु ही गृहस्थके संपर्कमें आते थे अन्यथा आत्माको वैराग्यभावसे भावित करते हुए, मंदकषायी बनकर मोहमल्लोंको हरानेमें आत्म सामर्थ्यको स्फूरायमान करनेसे अप्रमत्त चारित्र भाव द्वारा अंतर्मुख बनकर आत्मगुण विचारणासे अध्यात्मके अभिनव आत्मानुभूतियोंका अनुभव करते रहते थे । ये अनुभवज्ञाता अवधू महात्मा मानो शनैः शनैः उन अनुभूतियोंके अक्षयनिधि बनते गये। अखंडानंदकी मस्तीमें मस्त उस योगीश्वरकी बस एक ही लगन थी- एक ही रटण था - **"निरंजन यार, मोहे कैसे मिलेंगें ?"** उस अकल-यार की तलाशमें जन्म-जरा-देह-मृत्यु आदिसे अहंत्व-ममत्व-भयत्वकी वृत्तिको हटाकर; बाह्य जगतका ध्यान व भान भूलकर आंतर्ध्यान दशामें-शरीरधारी होने पर भी अशरीरी तुल्य भावमें निःसंग दशामें निमज्जन करनेवाले स्वात्माके सच्चे आशिक थे । अतः आत्म दर्शनमें सहायकके अतिरिक्त अन्य सब कुछ, उनकी आत्मोपासना और परमात्म प्राकट्यकी अनूठी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विजयानंदजी के हस्ताक्षर

॥ अर्हंनमः॥ एकसाहिबअंगरेजने विलायतकों लिखायाकि एकऋग्वेदसंहितासनाप्यकापुस्तक साधजैनमुनिआत्मारामजीकों सरकारनेनेटदा खलनेनाचाहिये सोपुस्तकतोलमें ३५सेरपका है सोसरकारने गवरनरजनरलकीओ अंजटसाहिबकीमारफत मुझकों जोधपुरमेंमिलादे यहबात सत्यहै

२ नवीनसाधयोंकोषडीदीक्षादीनीहै सोकिसशास्त्रानुसारे गुजरातमेंतोनगवतीनायोगवहनाहोवे सोदीक्षादेवेहै इतिशम्॥

उत्तर मैंपामरजीवनगवंतकीसमूलंआज्ञाआराधनहीसक्ताहूं दिक्षातोमैंनेसमाचारीकीरीतीसें दीनीहै परंतुनगवतीकायोगतोमैंनेनहीवहनाहै यहमेरेमेंन्यूनताहै औरविनायोगवहनामैंनग वतीप्रमुखशास्त्रोच्चारमानमेंवाचताहूं शिष्योंकों वाचनादेताहूं यहइसरीन्यूनताहै २ और योग तोवहनापरंशास्त्रनहीपढादेरीतीपूर्वकतिसकोंमै गणिमानतारदाहूं यहतीसरीन्यूनताहै ३ और किसिनीगछकीसमाचारीमेंमैंनेनहीदेखादेकि गणिगणिकोंगणिपददेवे परंतु आचार्यगणिप ददेवेऐसालेखसर्वपूर्वाचार्योंकीसमाचारीयोमेंहै परंमैंतापूर्वोक्तरीतीवालेकोंगणिमानतारदाहूं य हभन्यूनताहै।

संवोधप्रकरणमेंश्रीहरिभद्रसूरिजीनें लिखाहैकिजो परियहधारीअणाचारीपासत्थे आदिकेपास जोको इ योगतथाउपधानादिकिया गुरुबुद्धिसेंवहैं तिस कीसर्वकियानिफलहै उलटा वोहयोगोपधानादि कीकियाकरणेवालेकुं प्रायश्चित्तके योग्यहै अर्था त्उसकोंप्रायश्चित्तलेनाचाहियै गाथा॥ वंदणनमंस णाईजोगुवहणाइतप्पुरोविहियं गुरुबुद्धिएविहलं सव्वपवित्तनुगंवा॥९३॥ मैंनेतो ऐसेयोकेआगेयोगवहनेवालोंकीकियासफलमानीथी यहन्यूनताहै। आचार्यउपाध्यायप्रवर्त्तकस्थविरगणिपएवांचोपुरुषजिसगछमेंनहोवे सोगछवेश्यासमानहै समकक्षरूपरलकादरनेवालासोगछहै औरजोजीवाकोंसंसारसमुद्रकोहेउहै ऐसेगछमें रूविद्यितसाधकोंएकमऊत्तमाचनीवसनानचाहिये। जेकरसामान्यसाधहोवे परंतु र्वोक्तपांचोगुणिननहोवेतो गदहेमेरदनाअछा हे। गाथा जछनपंचइमेविनछिगणेसोकुपछिसारिछो समत्तरयणदरणे नचाणनवत्तमणसीलो ए५ तछनमुकुत्तमित्तं वसियवंरूविहिएहिंसाधूहिं जइसामाल्लमुणिणो नगुणिणोतनवरंगेहं॥९६॥ इनगाथार्थानुसारमेंनहीवहनकरनाहूं औरतपगछादिगछोकेसाधयोंको चोरपल्लीसमानगछऔरसाधयोंकों चोरासमानननहीमानताहूं यहन्यूनताहै

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

अदम्य उद्यतताके नीचे दब जाता था । उनकी रुचि तो केवल सूक्ष्मतम आत्म स्वरूपके दर्शन और समग्र जीवसृष्टिके साथ एकरूपता - **"अप्पा सो परमप्पा"** अथवा **"मित्तिमे सव्व भूएसु"** की उदात्त भावनाको जीवनमें साकार बनानेके पुरुषार्थमें ही थी ।

अनूठी अध्यात्म शक्ति और निर्मल चारित्रके प्रभावसे निष्पन्न गुप्त लब्धि-शक्तियाँ प्राप्त होने पर भी उनका उपयोग केवल निरहंकार और लोकेषणा-मानप्रतिष्ठादिसे दूर निर्लिप्तभावसे एक मात्र शासनसेवा-प्रभावनाके लिए ही करनेवाले अनुभव ज्ञानीका जिनशासनके प्रति अविहड़ राग अनुमोदनीय था । वे अपने समकालीन मुनिवृंदको अमूल्य परामर्श देते रहते थे । उस प्रशम निर्झरकी बूंदें प्राप्त करनेवाले भाग्यवानोमें प्रमुख रूपसे श्रीज्ञानविमल जी.म., श्रीसत्यविजयजी गणि, महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म.आदि थे । उनकी अद्‌भूत व्याख्यान कलाका जिक्र होते ही कर्ण-पटल पर उठते हैं वे स्वर जो'श्रीदसवैकालिक' सूत्रके प्रथम श्लोक (मंगलाचरण) पर छमास पर्यंत विवेचन स्वरूप तरंगित हुए थे । उनके सरल-मिलनसार-करुणार्द्र हृदयसे विरागकी वाणी बजती थी जिनमें संदेशके स्वर थे *"मोहसुभटको जितनेके लिए यह साधु वेश–धर्मवीरका बाना–धारण किया है अतः उस मोह सुभटके अधीन बनानेवाले भौतिक देहके एक भी अणु-परमाणु मात्र पर भी ममत्वभाव लक्ष्य प्राप्तिमें विघ्नरूप बन सकता है ।"*

उनके पुण्य प्रकर्षसे प्राप्त लब्धियोंसे निष्पन्न अनेक चमत्कारोंका प्रतिफलन उनके जीवन परिवेशमें व्याप्त विभिन्न अनुश्रुतियोंसे होता है-यथा-(१) साधुजनोंको परेशानकर्ता बादशाहके बेटेको अपनी वचनसिद्धिसे केवल 'खड़ा रह' कहकर स्तंभित कर दिया था, पुनः बादशाहकी प्रार्थनासे व्युत्पन्न करुणाभावसे उसे 'चलेगा' बोलकर पुनः गतिमान भी कर दिया था । (२) मित्रकी स्वर्णरससिद्ध कूपिकाको पटककर तोड़ देने पर उनके शिष्यकी नाराजगीको दूर करनेके लिए संकल्प मात्रसे पेशाब भी सुवर्णरस-सिद्धरसायन-बन सकता है; वह प्रयोग दर्शाकर चमत्कृत कर दिया था । वैसे ही श्री आत्मानंदजी म.सा.ने बिकानेरमें एक लड़केको, जिसके परिवारवाले दीक्षाग्रहणके लिए इन्कार कर रहे थे, संकल्प बल पर उनकी मनोगत भावनायें पलटकर सर्व सम्मतिसे ठाठबाठसे दीक्षा करवायी थी ।[२९] (३) एक बार ज्वरके पुद्‌गलोंको अपने कपड़ेमें उतारकर आगंतुकोंको धर्मदेशना श्रवण करवायी, पश्चात् पुनः वह कपड़ा पहनकर ज्वरके परमाणु शरीरमें स्थापन कर दिये । (४) अक्षीण लब्धिके बलपर श्राविका धनवंती द्वारा प्रत्येक घड़ोंमें एक एक सिक्का ड़ालकर उपर कपड़ा लपेटकर मनचाहे (लखलूंट) सिक्के निकलवा कर राजाको दान दिलवाया था। (५) जोधपूरके महाराजा-महारानीके मध्य मनमेल करवानेमें निःस्पृहतासे मुंहसे निकला वचन सिद्ध हो गया था (६) सती होनेके लिए जा रही शेठकी बेटीको प्रतिबोध करके आत्म स्वभावमें स्थिर किया । (७) राजाकी दो विधवा बेटियोंका शोक सान्त्वना देकर दूर करवाके धर्ममें स्थिर किया । (८) मारवाड़के गरीब वणिकके लोहेके बाटको स्वर्णमय बनाकर उसकी निर्धनता दूर करके उपकार किया था । श्री आत्मानंदजी म.के जीवनमें भी ऐसी घटनायें घटित हुईं थीं जिनका जिक्र इस शोधप्रबन्धमें अन्यत्र किया ही है ।

श्रीआनंदघनजी म. और श्रीआत्मानंदजी म. मध्य-तुल्यातुल्यताः–(१) प्रथम दृष्टिमें ही उन दोनों महानुभावोंमें नामसे ही तुल्यता हमें प्रसन्नता प्रदान करती है । दोनोंके नाम आनंद, काम आनंद, दोनों है धाम आनंद-यथा-आनंघनजी म.के राग जयजयवंतीमें रचे गये अपने पदमें 'आनंदघन'का जो गुंजन सुनायी देता है, वाकइ आह्लादकारी है -

"मेरे प्राण आनंदघन, तान आनंदघन
मात आनंदघन, तात आनंदघन, गात आनंदघन, जात आनंदघन;
राज आनंदघन, काज आनंदघन, साज आनंदघन, लाज आनंदघन;
आभ आनंदघन, गाभ आनंदघन, नाभ आनंदघन, लाभ आनंदघन" .....[३०]

श्रीआत्मानंदजी म.श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ जिन सतवनमें गाते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"श्याम मेघ सम पासजी निरखी, आतम आनंद शिखी जिम हरखी
आनंद रस पूरण सुख देखी आनंद पूरण आतमराम.....
अनघ अमल अज चिद्घनराशि, आनंदघन प्रभु आतमराम
तोरी छबि मनोहारी संखेश शाम .....

(२) दोनों ही विश्वशांति-विश्व मैत्री और विश्व बंधुत्वकी भावनाको प्रवाहित करनेवाले समन्वयकारी संत थे । (३) आत्माराधनालीन, अद्भूत आराधक, समदर्शी, समताके साधक–आगमोंके अभिज्ञाता–श्रेष्ठ दार्शनिक-षड्दर्शनवेत्ता-सम्यक्त्वयुक्त रत्नत्रयीके प्रखर प्रतिपादक–उन दोनोंकी रचनाओमें भी भक्तियोग-ज्ञानयोग-समर्पणयोगकी त्रिवेणीका प्रवाह विशेषतः स्तवनोमें सम्यक् रूपसे प्रवाहित हुआ है । (४) दोनोंने अपने समकालीन साथियोंको योग्य मार्गदर्शन दिया था । हाँलाकि श्रीआनंदघनजीने विशेषतः बनमें निवासित होकर उच्च अध्यात्म योगकी साधना की थी, जबकि श्रीआत्मानंदजी म.ने गुरु और गच्छकी निश्रामें श्रीचतुर्विध संघके मध्य निवास करके श्री संघको सत्यपथका पथिक बनाया था । (५) श्री आनंदघनजीम.ने अपनी उत्तरावस्थामें गच्छकी निश्राको त्यागकर आत्मानुभूति प्राप्त करके जीवन धन्य बनाया था और उन्हीं अनुभूतियोंको जिन काव्यकलापोंसे सजाया था, वे जन समाजके शृंगार बनकर अमरता प्राप्त कर गये; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.ने सत्यके साक्षात्कार पश्चात् उत्सूत्राचारी ढूंढक पंथका त्याग करके संविज्ञ समाचारीको गले लगानेमें अपना गौरव समझा था । उन्होंने जिस सत्यका साक्षात्कार किया था, उसे अपने प्रवचनों और लेखिनीके माध्यमसे प्रतिमा-पूजन विरोधियोंको बखूबी समझाया था और जैन समाज-विशेष रूपसे पंजाब, राजस्थानका उद्धार किया, जो इतिहासकी अमरगाथा बन गया । (६) दोनोंकी सामर्थ्यवान आत्मासे मानव जन्मके साफल्य सूचित हेतुओंके अजस्र प्रेरणा स्रोत प्रवाहित होते रहे थे, जिनमें उन्होंने अपने कर्ममलको प्रक्षालित करके स्वयंकी आत्माको भी पावन बनाया था । (७) श्रीआनंदघनजी म.की वाणी वाङ्मय रूपमें सिमित है, लेकिन अगाध और अथाह-अत्यन्त गंभीर और विशद अर्थसभर है जैसे पाताल कूपका पानी । कहीं कहीं तो एक एक पद्य इतना अवबोध समेटे हुए हैं कि उससे एक एक ग्रन्थकी रचना हो सकती है। अद्यावधि प्राप्त साहित्यमें केवल दो कृतियाँ -**'श्री आनंदघन जिन चौबीसी'** और **'श्री आनंदघन पद बहोत्तरी'** प्राप्य है; जो अनेक रागरागिणियोंमें बद्ध विविध भावापन्न पद्य रूप ही है । जबकि श्रीआत्मानंदजी म.का वाङ्मय विहार विभिन्न विषयोंकी अनेक कुंजगलियोंसे गुजरता हुआ आत्म शीतलता प्राप्त करवाता है । उनके बीसियों ग्रंथ-प्रमाण विशद साहित्यने गद्य और पद्यके विविध प्रकारों द्वारा अध्यात्म-भक्ति, आगमिक-दार्शनिक-ऐतिहासिक-वैज्ञानिक–आचरणा विषयक आदि विभिन्न विषयोंको अपनेमें समेट लिया है । (८) दोनोंने व्यक्तिकी सुषुप्त चेतनाको झकझोरनेमें सामर्थ्यवान् फिरभी सरल एवं भाववाही-तत्त्वबोधदायी और मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी होनेसे लोकप्रिय अमर रचनाओंके अमूल्य-वैभविक विरासतकी समाजको भेंट की है। (९) दोनोंकी कृतियोंसे झंकृत होता है जिनेश्वरके अचिन्त्य सामर्थ्यके विराट स्वरूपका निरूपण और उत्कृष्ट जिनभक्तिके अंतरोद्गारके साथ साथ महा महिमावान-प्रतिभावान-उदात्त आत्मभावोंका चित्रण-जिसके लिए श्रीआनंदघनजी म.के श्री विमलनाथजी जिन स्तवनके भाव विशेष रूपसे दृष्टव्य है -

"विमल जिन दीठां लोयण आज ! मारां सिद्धयाँ वांछित काज.....
समरथ साहिब तूं धणी रे, पाम्यो परम उदार
धिंगधणी माथे कियो, कुण गंजे नर खेट.....
मन विसरामी वालहोरे, आतमचो आधार..... विमल जिन.....
अमिय भरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोय
शांत सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय..... विमलजिन..."[३१]

इस प्रकार संपूर्ण स्तवन रचनामें, भक्ति रस लबालब भरा हुआ है । ऐसे ही अन्य-ऋषभजिनादि स्तवनों और पदोंसे भी ऐसे भावोंके अनुभव होते हैं । उसी तरह श्रीआत्मानंदजी म.सा.की रचनाओंमें उन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावोंको कहीं ढूंढनेके लिए जाना नहीं पड़ता-अनेक रचनाओमें हम उसका आस्वाद कर सकते हैं-यथा-

"तेरो दरस मन भायो चरम जिन तेरो दरस मन भायो ।
वरसीदान दे रोरतावारी, संयम राज्य उपायो.....
दीन-हीनता कबुयन तेरे, सत् चित् आनंद रायो..... चरम...
हुं बालक शरणागत तेरो, मुझको क्युं विसरायो ?
तेरे विरहसे हुं दुःख पामुं, कर मुझ आतमरायो.... चरम"...[३२]
"करुणा रस भर नयन कचोरे, अमृत रस बरसावे
वदनचंद चकोर ज्यूं, निरखी, तनमन अति उलसावेजी"..... [३३]
"अर जिनेश्वर चंद सखी मोने देखण दे.... गत कलिमल दुःख धंद....
त्रिभुवन नयनानंद..... मोह तिमिर भयो अमंद.... सखी मोने..."[३४]

दोनों कविराजोंने अमूर्त भावोंका नाटकीय ढंगसे मानवीयकरण किया है, जो उनके पद्योंकी अछूती आभा है-यथा-श्रीआनंदघनजीकी रचनाओंमें देह नगरके राजवी चेतनजीकी, 'रतनागरकी जाई'-समुद्रकी बेटी समता प्रमुख रानी और ममता, माया, मोहनी, तृष्णा, कुबुद्धि आदि उसकी अन्य रानियोंकी कहानी उनके विभिन्न पदोंसे झलकती है । समता या ममता-कुमता-तृष्णा-कुबुद्धि-सुबुद्धि-चेतन-(समताके भाई और चेतनके मित्र रूप) अनुभव और विवेक-राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, कपट (आदि कुमतिका परिवार); सरलता-मृदुता-संतोष-श्रद्धा-इन्द्रिय-जयादि (सुमतिके स्वजन) आदि अमूर्त भावोंका मानवाकार रूपमें जीवन-व्यवहारके प्रत्यक्ष संघर्ष–संवाद-युद्ध-डराना-समझाना आदिका–जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है - समताके विरहको प्रकट करते हैं - **"निसि अंधियारी मोहि हसे रे, तारे दांत दिखाई**
भादो कादो मैं कियो प्यारे, आंसूअन धार बहायी....."[३५]

अतः विरहिणी समतारानी तृष्णा और कुबुद्धिको कोसती हुई चेतनजीको निजघर आनेके लिए मनुहार करती है -

"तृष्णा रांड भांडकी जाई, कहा घर करे सवारो.....
कुलटा कुटिल कुबुद्धि संग खेलके, अपनी पत क्यूं हारो...
'आनंदघन' समता घर आवे, वाजे जित नगारो...."[३६]

फिर भी जब चेतनजी मानते नहीं है और घर आते नहीं है, तब अपनी सखी श्रद्धासे उनके हाल पूछती है। उस पर श्रद्धा उसे धीर बंधाते हुए चेतनजीके हाल कहती है -

"चउगति महल न छारि ही हो, कैसे आत भरतार !
खानो न पीनो न इन बातो में हो, हसत भान न कहा हाड;
ममता खाट परे रमे हो, और निंदे दिनरात; लैनो न देनो इन कथा हो, भा रही आवत जात ।
कहे सरधा सुन सामिनि हो, एतो न कीजे खेदां; हेरे हेरे प्रभु आवही हो, वदे आनंदघन भेद...."[३७]

अब समता रानी अपने भाई 'विवेक'को, मोहनीके परिवारमें फंसे चेतनजीके हाल सुनाकर अपना दुःख जताती है और अपने मित्रको उस राहसे वर्जकर वापस लानेकी विनती करती है -

"विवेकी वीरा सह्यो न परे, वरजो क्यूं न आपके मित्त.....
कहाँ निगोड़ी मोहीनी हो, मोहत लाल गमार; वाके पर 'मिथ्या'सुता हो, रीझ पड़े कहा यार।
क्रोध-मान बेटा भये दो, देत चपेटालोक; लोभ जमाई माया सुता हो, एक चढ्यो पर मोक"...[३८]

आखिर सभीके समझाये चेतनजी अवसर प्राप्त करके अध्यात्म योग धरके समताके घर आकर उसे वादा करते हैं - **"मेरी तूं मेरी तूं काहे डरे री, कहे चेतन समता सुनि आखर"** इस प्रकार श्रीआनंदघनजीके चेतनजी आत्म कल्याणके सही राह पर आते हैं । वैसे ही श्री आत्मानंदजी म.ने भी समता-कुमता (सुमति-कुमति) के साथ प्रीतका जोड़-तोड़–आध्यात्मिक योगको–व्यवहार प्रतीकोंसे आलेखित किया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआत्मानंदजीके चेतनजीको (**जो "जार मार ममता दृढंगन राग-स्निग्ध अभ्यंग" करनेवाले, "राग-द्वेषकी रखवाली" से रक्षित "सघन भववनकी जंजीरोमें" जकड़े हुए "वामारस (स्त्री)के पास (बंधन)" में फंसे, "मोहकर्मकी जड़ो"से जकड़े हुए, "क्रोध-मान-ममता"की चहुंकन (चौटे) पर चढनेवाले हैं-उनको**) सचेत कर दिया है और "जिनेश्वरजीका चेरा" बनाकर सावधान कर दिया है-यथा-

"पूरण ब्रह्म जिनेन्द्रकी वाणी, करणरंध्रमें शब्द पर्यो रे....
अनुभवरस भरी छिनकमें उड़यो, आतमराम आनंद भर्यो रे...
अब क्यूं पास परो मन हंसा..... तुम चेरे जिननाथ खरे रे..."[३९].

यही कारण है कि श्रीआत्मानंदजीके चेतनजीको यह दृढ़ आस्था हो गई है कि -**"जब कुमति टरे और सुमति वरे... तुं और नहीं मैं और नहीं..."** अतः कुमतिके कारण स्वयंके जो हाल-हवाल हुए है उससे वे **"प्रीति शुं भांगी रे कुमति...."** कुमतिका त्याग करते हैं, और आत्म हितकारी सुमतिसे प्रीत जोड़ते हैं- **"प्रीति लागी रे सुमति शुं प्रीति लागी.....**

सोऽहं सोऽहं रटि रटना रे, छांडयो परगुन रूप,
नट ज्यूं सांग उतारीने रे, प्रगट्यो आतम भूप..... "[४०]

जैन दर्शनमें अगम-निगमके-दार्शनिक या कर्मविज्ञानादिके रहस्योंको संख्यावाचक प्रतीकों द्वारा वर्णित करनेकी परम्परा दृष्टिगोचर होती है । इस परंपराका इन दोनों कवीश्वरोंने अनेक स्थानों पर उपयोग किया है-यथा-सुबुद्धि और कुबुद्धि द्वारा खेली जानेवाली चतुर्गति चौपटका संख्यावाचक प्रतीकों द्वारा श्री आनंदघनजीने जो चित्रण किया है वह अद्‌भूत है ।

"पाँच तले है दुआ भाई, छक्का तले है एका
सब मिल होत बराबर लेखा, यह विवेक गिनवेका"[४१]

अर्थात् कुबुद्धि द्वारा-हिंसा, मृषा, स्तेय, मैथुन, परिग्रह रूप-पांच आश्रवके नीचे करण-करावण रूप दो दाने अर्थात् सात मिलकर और छजीव निकायके मर्दनरूप एक असंयमसे (दोनों ओरसे समानरूप से) सात गतिमें–एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रि, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, नरक, मनुष्य और देव-परिभ्रमण करना पड़ता है, जो चेतनकी हार रूप है । जबकि पांच इन्द्रिय और राग-द्वेष–दोके विजयसे एवं काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर रूप षड्‌रिपु पर विजय प्राप्त करके एक मनोनिग्रह द्वारा आत्म संयम रूप परम साध्य प्राप्त करके उन सात गतियोंका नाश कर सकते हैं अथवा प्रथम पाँच गुण स्थानक और अप्रमत्त सर्वविरति गुणस्थानक छ दाने प्राप्त करके शेष ६ और ८ से १३–सात गुणस्थानक (सातदाना) प्राप्त कर्ता साधक तेरहवें गुण स्थानक पर स्थिर होकर एक दाना रूप अघाती कर्मोंको जीत (क्षय) करके चतुर्दश गुणस्थानक–अयोगी दशा प्राप्त करके चेतन साध्य दशाको प्राप्त कर लेता है। इसीतरह श्रीआत्मानंदजी म.के भी संख्यावाचक प्रतीक उल्लेखनीय हैं उन्होंने श्री नवपदजीकी पूजामें चतुर्थ श्रीउपाध्यायजी-गुरु भगवंतके लक्षण लक्षित किये हैं -**"पंच वर्ग वर्गित गुण चंग... दसविध यतिधर्म धरी अंग.... धार ब्रह्म नवगुप्ति संग...."**[४२] उसी प्रकार बीस स्थानक पूजामें श्री आचार्यपदधारीके वर्णनमें भी **"पंच प्रस्थान, आठ प्रमाद, चार अनुयोग, सात विकथा"** आदिका संख्यात्मक प्रतीकों द्वारा विवरण दिया गया है । तो दसवीं पूजामें विनय-गुणोंके विविध प्रतीकोंको दर्शाया गया है-यथा-

"पांच भेद दस तेरसा, बावन, छासठ मान...."[४३]

सामान्यतः मनको मर्कटका रूप दिया गया है तो कहींकहीं उसे पवन झकोरे या वृक्षपत्र जैसा चंचल वर्णित किया है । मनके भेदको समझानेके लिए कठोर तपस्वी, महाज्ञानी और धुरंधर प्रतिभावान भी अपनी असामर्थ्यता प्रकट करते हैं । आत्मलीन अध्यात्म योगीराज श्रीआनंदघनजीम. और श्रीआत्मानंदजी म.भी उसके प्रति अपने अनुभूत सत्योंको प्रकट करते हुए, उसे वश करनेवाले प्रभुसे आह्वान करते हैं-उस मनको वशमें लानेके लिए–सहायकके रूपमें,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मनडुं किम ही न बाजे, हो कुथुंजिन !...

"मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं, ते आगमथी मति आणुं

आनंदघन ! प्रभु ! माहरुं आणो, तो साचुं करी जाणुं.... हो कुंथुं...."[४४]

श्रीआत्मानंदजी म.सा. इस मनके वशमें आनेवाले आत्माने क्या क्या बरदास्त किया उसका चित्र उपस्थित करते हुए मनको शिक्षा देते हैं -

"समझ समझ वश कर मन इंद्री, परगुण संगी न हो रे, सयाना....

इनहीके वश सुद्ध बुद्ध नासी, महानंद रूप भूलाता

सांग धार जग नटवत् नाच्यो, माच्यो पर गुन गाता....वशकर...."[४५]

अन्य दर्शनकी मान्यता प्राप्त देव-देवीके विषयासक्त रूपका जो चित्रण उनके साहित्यमें मिलता है उनके प्रतिवाद रूप इन दोनों विद्वद्वर्योंने श्री अरिहंतके अविकारी-निर्मल-त्रिभुवनमें उद्योतकारी, अद्वितीय एवं अनूठे रूप-स्वरूपका वर्णन किया है । श्रीआनंदघनजीके वामानंदन-प्रभु पार्श्वनाथजी का वर्णन है -

"प्रभु तो सम अवर न कोई खलकमें ।

हरिहर ब्रह्मा विगूते सोते, मदन जीत्यों तें पलकमें....,

ज्यों जल जगमें अगन बूजावत, बडवानल सो पीये पलकमें....

आनंदघन प्रभु ! वामाके नंदन, तेरी हाम न होत हलकमें.... प्रभु...."[४६]

श्रीआत्मानंदजी म. श्रीमल्लिनाथ जिनेश्वरकी द्युति और कांतिको शब्द देह देते हैं–यथा -

"सुचि तनु कांति, टरी अघ भ्रान्ति; मदन मर्यो तुम करम नीकंद ।

जयजय निर्मल अघहर ज्योति; द्योति त्रिभुवन निर्मल चंद..... मल्लि जिन ! दर्शन नयनानंद...."[४७]

षड्दर्शनके प्राज्ञ साधकोंने जैन सिद्धान्तोंके प्रचार-प्रसारके लिए साहित्यको ही माध्यम बनाया था। जिसमें पूर्वाचार्योंकी विचारधारका भी उनको प्रचूर मात्रामें सहयोग रहा है। श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीके 'जैन दर्शन समुद्र और इतर दर्शन-नदियोंके रूपकको श्रीआनंदघनजी म.ने श्रीनमिनाथ भगवंतके स्तवनमें प्ररूपित करके षड्दर्शनके समन्वयको **जिन दर्शनमें - विशेषतः जिनेश्वरके अंगरूप**–किसविध पेश किया है यह दृष्टव्य है -

"षड्दर्शन जिन अंग भणीजे, न्याय षडंग जो साधे रे;

नमि जिनवरना चरण उपासक, षड् दर्शन आराधे रे....

(यहाँ जिनेश्वरके दो पैर सांख्य और योग; दो बाहु-सुगत और मीमांसक; कूख लोकायतिक (चार्वाक) और मस्तक-जैनदर्शन रूप वर्णित करके) -

"जिनवरमां सघळां दरिसन छे, दरिसनमां जिनवर भजना रे;

सागरमां सघळी तटिनी सही, तटिनीमां सागर भजना रे;

"चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति, वृत्ति परंपर अनुभव रे;

समय पुरुषनां अंग कह्यां ए, जे छेदे ते दुर्भव रे"... और अंतमें इस श्रद्धाको अचल रखने हेतु गाते है - **"ते माटे ऊभो कर जोडी, जिनवर आगळ कहिये रे;**

समय चरण सेवा शुद्ध देखो, जेम आनंदघन लहिये रे...."[४८]

उसी तरह श्रीआत्मानंदजी म.सा.भी जैन दर्शनकी श्रद्धाको दृढ़ीभूत करते हुए जैन पंचांगी (निर्युक्ति आदि)के लोपकको मनुष्यजन्म हारकर संसारकी ओर भागनेवाले दर्शाते हैं -

"समय सिद्धान्तना अंग साचा सबी, सुगुरु प्रसादथी पार पावे ।

दर्शन ज्ञान चरित करी संयुता, दाहकर कर्मको मोख जावे ।

जैन पंचांगीकी रीति भांजी सबी, कुगुरु तरंग मन रंग भावे ।

ते नरा ज्ञानको अंश नहीं आपनो हार नर देह संसार धावे ।"[४९]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि स्वाश्रित-अनुभवगम्य-निजानंदकी मस्त यौगिकता और विशुद्ध-निरुपाधिक-सादि अनंत भाववाले परमात्म प्रेमकी स्वर लहरियाँ छलकानेवाले अवधू श्री आनंदघनजीकी कृतियोंकी थाह पाना अथवा उसे कलमबद्ध करनेकी चेष्टा करना, यह समुद्रकी विशालताको बाँह फैलाकर प्रदर्शित करनेवाली बाल चेष्टा सदृश है; तो श्रीआत्मानंदजीके पांडित्यपूर्ण भक्तियोग अर्थात् ज्ञान और भक्तिका एक साथ-समान रूपसे समन्वय भी लेखिनीकी क्षमतासे परे ही है या केवल अनुभवगम्य ही है। इन दोनों साधकोंकी अध्यात्म योग युक्त आत्मिक खुमारीकी स्पर्शनाका संगीत कर्म और धर्म–परमात्म भक्ति और शक्ति-सिद्धान्त और साधनादि विभिन्न विषयोंको झंकृत कर गई हैं ।

श्रीचिदानंदजी म.सा. और श्रीआत्मानंदजी म.सा.:–

परिचय–संतजन व्यवहारातीत-धर्मातीत और साम्प्रदायिक सीमातीत होते हैं; साथ ही निःसंग, निर्लेप और निस्पृही-आत्मालीन आराधक, सिद्धिके साधक, और उत्कृष्ट उपासक; आत्मिक ज्ञान-ध्यान-कल्याणमें निमग्न होनेसे यह अति संभाव्य है कि, वे अपने बाह्य व्यक्तित्वकी पहचान, गच्छ या गुरु परंपराका इतिवृत्त या प्रशंसनीय प्रशस्तियोंसे ऊपर उठे हुए होते हैं । उनके चरण चिह्न होते हैं उनका वाङ्मय और उनकी परिचायक गुणगाथायें होती हैं, उनकी गीर्वाण गिरा–प्रवचनधारा या मधुर वाणी विलास । यहाँ एक ऐसे ही अध्यात्म प्रेमीका परिचय प्रस्तुत है ।

जीवन तथ्यः– मुनिराज श्रीकर्पूरविजयजीने, 'श्री चिदानंदजी (कर्पूरचंदजी) कृत संग्रह भा-२' की भूमिका; 'शासन प्रभावक श्रमण भगवंतो', संपा.श्रीनंदलाल देवलूकजी, पृ.२७०; और 'कलिकाल कल्पतरु',ले.श्रीजवाहरचंद्र पटनी पृ.२८३–इन सभी ग्रन्थोंके आधार पर हम श्रीचिदानंदजी म.के जीवन वृत्तांतको इस प्रकार आलेखित कर सकते हैं - **"श्रीकर्पूरचंदजी अपरनाम श्री चिदानंदजी म. बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे । श्रीआनंदघनजी म.की भाँति वे अध्यात्म शास्त्र रसिक और कुशल कविराज थे । वे महर्षि तीर्थस्थानोंमें सुविशेषतः निवास करते थे । श्रीशत्रुंजय और श्रीगीरनार तीर्थकी कुछ गुफायें और स्थान उनके नामसे अद्यावधि विख्यात हैं । उनका देहावसान श्री सम्मेत शिखरजी पर हुआ-ऐसी जनश्रुति है । वे एकाकी अवधूत अलिप्त रहना ही अधिक पसंद करते थे; और जहाँ तक हो सके लोक परिचयसे निवृत्त रहते थे । वे इतना सरल-अकिंचनसम-लघुतामयी जीवन जीते थे कि किसीको उनके अत्यन्त उत्तम ज्ञान और सिद्धि सम्पन्नताका अहसास भी नहीं होता था । अगर काकतालीय न्यायसे अनायास ही किसीको ज्ञात हो जाय, तब वे उस स्थानको त्याग कर अन्यत्र विहार कर जाते थे । उनकी लघुताने मानो प्रभुताके उच्चतम शिखरको छू लिया था । उन मनमौजी अध्यात्म योगी महापुरुषका विहार स्थल गुजरात-महाराष्ट्र-मालवा-राजस्थान-यू.पी. बिहार-बंगाल-पावापुरी-समेत शिखरजी भारतभरके अन्य तीर्थस्थानोंमें माना जाता है; तो वाराणसी आपका शिक्षा-स्थान माना जाता है । इस प्रकार उनके नश्वर देहका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है।"**

इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्धमें अन्य संशोधनोंके आधार पर भी 'श्रीचिदानंद ग्रन्थावलि' पुस्तककी प्रस्तावना-पृ.७से१४में श्रीभंवरलालजी नाहटाने उनके जीवनकी विशिष्ट रूपरेखाका सहज भास दिया है, तदनुसार पालीतानामें प्रतिलिपित प्रतानुसार श्रीचिदानंदजी खरतर गच्छके चतुर्थ दादासाहब श्रीजिनचंद्र सूरिजीकी पट्ट परंपराके श्रीपूज्योंकी परंपराके उपाध्याय श्रीरामविजयजीकी परंपरामें काशीवाले श्रीनढ़ाजीके शिष्य चुन्नीजी म.के शिष्य श्रीकर्पूरचंदजी (कल्याण चारित्र) उपनाम-श्रीचिदानंदजी म.के नामसे प्रसिद्ध थे। तीनों–गुरु, शिष्य, प्रशिष्य–आदर्श, त्यागी, वैरागी और आत्मिक आराधक थे । इतनी सूक्ष्म गवेषणा और अन्वीक्षणके बावजूद भी, वे उनके जन्म स्थान, समय, नाम, वंश-कुलादि (गृहस्थावस्थाके) या दीक्षा स्थान-समय आदिके बोधसे अबोध ही रहे हैं । इनकी रचनाओंसे व्यक्त होनेवाली विद्वत्तासे इतना कह सकते हैं कि, वे दार्शनिक एवं आगमिक ज्ञानके गंभीर अध्येता और अध्यात्म-योगादिकी गहन साधनारत अलगारी आत्मा थे। अद्यावधि प्राप्त उनकी रचनाओंमें 'प्रश्नोत्तर माला'-वि.सं.१९०६–को अंतिम रचना मानी जा सकती है । क्योंकि उन्होंने अपनी जन्मादि घटना सदृश अपनी कृतियोंके आविर्भावको भी गुप्त रखना ही उचित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझा होगा, अथवा उस ओर उनका लक्ष्य ही नहीं रहा होगा । अतः केवल चार कृतियोंके रचनाकाल "गोड़ी पार्श्वनाथ स्तवन"-१९०४, "स्वरोदय ज्ञान"-१९०५ और "दयाछत्तीसी" एवं "प्रश्नोत्तरमाला"-१९०६-प्राप्त होते हैं ।

देहविलयः--वि.सं.१९१८में अंचलगच्छीय श्रीभावसागरजीके शिष्यश्री रत्न परीक्षकजी द्वारा रचित 'श्री सिद्धगिरि तीर्थमाला' में उनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है -

"श्री चिदानंद चित्तमां वसे, अमर अमर पद होय....
"श्री चिदानंद गुरु धर्माचारय अनुभव श्रद्धा छायो,
सिद्धगिरिनी तलहटीए वांदी, चरण शुं प्रेम लगायो ।"[५०]

इन प्रमाणोंसे हम यह अंदाज़ा लगा सकते हैं कि आपका देहान्त वि.सं.१९१८ के एक दो साल पश्चात्-लोक प्रवादानुसार-श्रीसमेतशिखरजीमें होना संभवित है । श्रीसहजानंदजी म.-जिन्होंने शिखरजीकी उनके नामसे प्रसिद्ध उस गुफामें ध्यानस्थ दशामें सं.२०१० में उनका साक्षात्कार किया था, तदनुसार उनकी देह-यष्टि श्रीमोहनलालजी म.से साम्यता रखती है ।[५१]. श्रीमद् राजचंद्रजी उनके साधनारत उदात्त जीवनके लिए अपना अभिप्राय देते हैं -**"वे प्रायः मध्यम अप्रमत्त दशामें रहते थे ।"**[५२]

इस प्रकार उनके क्षर देह संबंधी प्रस्तुतीकरणके पश्चात् अब उनके अक्षरदेहसे परिचय प्राप्त करें जिसने उनको अमरत्व प्रदान किया । अंतर संवेदनाओंकी पृथुलताको लक्ष्यमें रखते हुए उनकी चरम परिणतिको आत्मरतिमें परिणत करनेवाले उनके स्वान्तः सुखाय वाङ्मयके अंतरालकी गवेषणा करनेसे, उनमें अनायास ही अलंकार, छंद, प्रतीक, मानवीकरण, हरियाली (उलटबाँसी) राग-रागिणिके विभिन्न प्रवाहोंसे आप्लावित हृदयग्र.ही रस-प्रवाहसे पाठक भावित और प्रभावित हो जाता है, क्योंकि उन्होंने लिखनेके अभिप्रायसे आयासपूर्वक कुछ भी नहीं लिखा है । जो सहज स्फूर्त होकर शब्दोमें प्रस्फुट हुआ, वही उनके चिन्तनका एकदेशीय प्रतिनिधि हो गया है । मानो वे शब्द परिग्रहसे भी मुक्त रहना चाहते हों, अतः उनका स्वयं लिखित कोई पुस्तक या खरड़ा कहीं भी नहीं मिलता है । जो कुछ मिलता है, वह अन्य व्यक्तियोंके संरक्षण और संगुंफनका ही परिणाम है । यही कारण है कि हम यह कह सकते हैं कि स्वान्तःसुखाय रची गई रचनायें किसी भी प्रचार-प्रसारके दृष्टिबिन्दु विहिन थीं ।

तुल्यातुल्यताः--दोनों संत प्रायः समकालीन थे श्रीचिदानंदजी म.का देहविलय वि.सं.१९२०में प्रायः माना जाता है जबकि श्रीआत्मानंदजी म.का १९५२ । लेकिन, एककी जीवनचर्या ही ऐसी थी कि उनके विषयमें आज उनके अक्षरदेहके अतिरिक्त प्रायः ठोस प्रमाणित तथ्य प्राप्त नहीं होते हैं, उनकी नश्वर जीवनचर्याके विषयमें लेखिनी मौन है; जबकि दूसरेके जीवनके प्रायः प्रत्येक प्रमुख प्रसंगों पर उनके उत्तराधिकारी शिष्यवर्गने पर्याप्त प्रकाश प्रवाहित किया है । अतः तुल्यातुल्यताके प्रसंगमें हम उनके केवल वाङ्मय पर ही विचार विमर्श कर सकते हैं, जिसे इस प्रकारसे तुलित किया जा सकता है ।– (१) दोनों विद्वान महाकवियोंने अपने काव्योमें सरल-अर्थगौरवयुक्त और हृदयंगम बनानेवाले भावोंका चित्रण किया है । श्रीचिदानंदजी म.का प्रायः पूर्ण साहित्य पद्यमें प्राप्त होता है, जबकि श्रीआत्मानंदजी म.का साहित्यका महदंश गद्यबद्ध है, फिरभी बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी आचार्य प्रवरश्रीने पद्यको भी पूर्ण न्याय दिया है । (२) दोनोंके काव्योमें विषय वैविध्यकी दृष्टिसे देखें तो उनके साहित्य नभांचलमें इन्द्रधनुषी आभा सदृश अध्यात्म चिंतन और योगसाधना, जैन दार्शनिकता और जैनागमिक सिद्धान्त एवं जिनभक्तिके विविध स्वरूप,–आत्मसमर्पण आदिकी प्ररूपणा प्राप्त होती है । (३) दोनोंके काव्योमें अगाध कल्पनाशक्ति, अपूर्व अलंकार आयोजन, अद्‌भूत प्रतीक योजनायें, अमूर्तभावोंका मानवीयकरणादिकी संतुलनयुक्त सजावट काव्य सौंदर्यकी आभाको प्राणवान् बनाती है । (४) दोनोंके पद्योमें विविध राग-रागिणीकी नियोजना गायक और श्रोताको मंत्रमुग्ध-एवं तदाकार बनानेकी क्षमता रखती है । अतः उन्हें सभी अच्छी तरह गाकर निजानंद मस्तीके रसास्वादनका आनंद लूट सकते हैं । (५) दोनोंके पद्य–स्तवन, सज्झाय, पदादि प्रगीत काव्य प्रकारोंमें समाहित किये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गये है । श्री चिदानंदजी म.के पूजा काव्यके विषयमें श्रीभंवरलालजी नाहटाने अपना अन्वेक्षिक अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त किया है - **"हमें एक सत्रहभेदी पूजा उपलब्ध है, पर इस समय हमारे पास न होनेसे प्रकाशित नहीं कर सके ।"**[५३] लेकिन इसका अन्यत्र कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है; जबकि श्री आत्मानंदजी म.सा.की पाँच पद्य कृतियाँ पूजा प्रकारकी प्राप्त होती हैं । (६) श्री चिदानंजी म.सा.की **'स्वरोदय ज्ञान'** कृति श्वासोच्छ्वासके नियमन और उनके शुभाशुभ परिणामोंका परिचय देती है, तो श्री आत्मानंदजी म.सा.ने उसी विषयकी प्ररूपणा अपने **"जैन तत्त्वादर्श"** ग्रन्थमें नवम परिच्छेदके प्रारम्भमें प्रस्तुत की है यथा -

"स्वरका उदय पिछाणिए, अतिही थिर चित धार, ताथी शुभाशुभ कीजिए, भावि वस्तु विचार ।।"[५४]

"तत्त्वज्ञ श्रावकको तत्त्वविचार करना चाहिए, जो पांच है - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश।.... पांच तत्त्वोंकी पहचान–नासिकाकी पवन ऊँची जावे तब अग्नि तत्त्व, नीचे जावे तब-जल तत्त्व, तिर्छी जावे तो वायु, सुधी तिर्छी जावे तो पृथ्वी और नासिकाके अंदर बहे बाहर न निकले तब आकाश तत्त्व जानना..."[५५] **इत्यादि** अत्यन्त विस्तृत स्वर विचार प्ररूपित किये हैं । (७) श्री चिदानंदजी द्वारा अपनी रचनाओंको लिपिबद्ध न करनेके कारण उनकी रचनाओमें, विशेषतः फूटकलं पदोमें अन्य लोकगीतादि या अन्य कवियोंकी रचनाओंका मिश्रण हो गया है; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.की प्रत्येक रचना प्रमाणित रूपमें उनकी अपनी ही है । उन दोनोंकी कृतियोंमें अंतर्निहित भावोंका अनुशीलन करने पर कुछ दृश्य नजरमें आते हैं उसे इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है । यथा–ऊंकार प्रणवमंत्र-बीजमंत्र माना गया है अतः सर्वदर्शनमें उसका माहात्म्य स्वमत कल्पनासे किया गया है । वैसे ही ऊँकारको जैन दर्शनमें आराधनाके प्रमुख केन्द्र रूप पंच परमेष्ठिको समन्वित् करनेवाले मंगलकारी-कल्याणमयी बीजमंत्रके रूपमें आराधित किया जाता है; जिनका दोनों कवीश्वरोंने यथोचित वर्णन 'सवैया इकतीसा' छंदमें अपनी अपनी कृतियोंके मंगलाचरण रूपमें किया है-यथा-

"ॐकार अगम अपार प्रवचनसार, महाबीज पंच पद गरभित जाणीए"....[५६].

"ॐ नीत पंचमीत, समर समर चीत, अजर अमर हीत, नीत चीत धरिए,
सूरि उज्झा, मुनि पुज्जा, जानत अरथ गुज्जा, मनमथ मथन कथन सुं न ठरिए ।
बार आठ षटतीस पणबीस सातबीस शतअठ गुण ईश माल बीच करिए ।
एसो विभु ॐकार बावन वरण सार, आतम आधार पार, तार मोक्ष वरिए ।"[५७]

'अहिंसा परमोधर्म' स्वरूप जैनधर्ममें अभयदान प्रधान जीवदयाका अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकृत है । यहाँ तक उपदिष्ट है कि प्राण न्यौछावर करके भी उसकी पालना-कर्तव्य समझा गया है । उस जीवदयाके प्रमुख आठ भेद माने गये हैं - जिसे श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने अपने स्तवनमें इस प्रकार गुंफित किया है - **"दरव, भाव, स्वदया मन आणो, पर, सरूप, अनुबंधो रे;**
व्यवहारी, निहचे, गिन लीजो, पालो करम न बंधो रे...भविकजन...
"षट्काया रक्षा दिल ठानी, निज आतम समझानी रे,
पुद्गलिक सुख कारज करणी, स्वरूप दया कही ज्ञानी रे...भविकजन..."[५८]

जबकि श्री चिदानंदजी म.ने अपनी 'दया छत्तीसी' रचनामें स्वरूप दया और अनुबंध दयाका विशेष रूपमें वर्णन किया है और निष्कर्ष रूपमें विवेकसे ही दयाका महत्त्व स्थापित किया है-श्लोक-२२ । आगे चलकर 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की विचारधाराको ठोस प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं कि रुधिरका रंग रुधिरसे साफ नहीं हो सकता, वैसे ही हिंसासे व्युत्पन्न पापकी निर्मलता दया रूपी निर्मल नीरसे धोनेसे ही हो सकती है । बिना भावदयाका कायक्लेश-कष्ट-रूप क्रियाकी निष्फलताका निरूपण करते हुए मोह प्रपंचका चित्रणभी करके अंतमें दया-नाव द्वारा भवपार होनेके स्वरूपको वर्णित किया है -

"दया रूपी तरणी विवेक पतवार जामें; दुविध सुतप रूप खेवट लगाइये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दांडा ये चतुर चार, कीजिए शुं अघवार; मालिम सुमन ताकुं तुरत जगाइये ।
फल शुभ ध्यान मन ताणके तैयार कीजे; शुभ परिणाम केरी तोप ज्युं दगाइये ।
चिदानंद प्यारे ! ऐसी नावमें सवार होय; मोहमयी सरिताकुं वेग पार पाइये ।।"[५९]

इस विश्वकी सर्व वस्तुएँ नाशवंत है । हमारा जीवन भी क्षणभंगुर है । किस पल सजा-सजाया उपवन उजड़ जायेगा कोई भरोसा नहीं । दार्शनिकोंने भी इस विनश्वरताको सिद्धान्तोंमें बांधा है तो साहित्यिकोंने अपनी कल्पना-पंखों पर चढ़ाया है । जीवन व्यवहारमें भी हम उसका अनुभव कदम कदम पर करते हैं । उसीको निर्दिष्ट करते हुए उपकारी गुरु भगवंतोने हमें सावधान करते हुए इसका चित्रण किया है । श्री चिदानंदजीके शब्दोमें -

"छीजत छीन छीन आउखो, अंजलि जल जिम मीत; काल चक्र माथे भमत, सोवत कहा अभीत ।"
तन-धन-जोबन कारिमा, संध्या रंग समान, सकल पदारथ जगतमें, सुपन रूप चित्तजान ।"[६०]

अनेक भोगमें विलसित कायाकी माया करने पर भी अंतमें क्या हाल हुआ, उसका चित्रण श्रीआत्मानंदजी म.के शब्दोमें -

"रंग बदरंग लाल मुगता कनक जाल पाग धरी लाल राचे ताल तानमें
छिनक तमासा करी, सुपनेसी रीत धरी, ऐसे वीरलाय जैसे बादल विहानमें.....
"योवन पतंग रंग, छीनकमें होत भंग, सजन सनेहि संग विजके-सा जमको....
"काची काया मायाके भरोसे भमियो तुं बहु नाना दुःख पाया, काया जात तोह छोरके...."[६१]

जैन दर्शनानुसार यह अस्थिर संसार केवल पुद्गलका प्रपंच जाल है और आत्मा उससे एकदम भिन्न निर्मल स्वरूपी उन नाटकीय रंगोंसे विमुक्त है । लेकिन कर्म पुद्गलोंसे वेष्टित उसमें क्षीर-नीरवत्, दधि-नेह या अभ्र-मेहवत् एकमेक हो चूका है । उसे सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र, तप-जप-ध्यानादिके प्रयोगसे शुद्ध किया जा सकता है । उस उपदेशामृतका आस्वाद कराते हुए श्रीचिदानंदजी म.को सुनिये -

"सुअप्पा ! आप विचारो रे, पर पक्ष नेह निवारो रे...

यहाँ कनक-उत्पल, दूध-घृत, तिल-तेल, कुसुम-सुवास, काष्ट-अग्नि आदिको क्षीर-नीरको भिन्न करनेवाले हंस सदृश भेद-ज्ञान युक्त दृष्टि प्राप्त होने पर क्या होता है?-

"अजकुलवासी केहरी रे, लेख्यो जिम निज रूप
चिदानंद तिम तुम हु प्यारे, अनुभवो शुद्ध स्वरूप..."[६२]

श्रीआत्मानंदजी म. बारह भावनामें **'अन्यत्व भावना'को** प्ररूपित करते हुए यह बात स्पष्ट करते हैं कि, जब आत्मा क्षीर-नीरवत् कर्म पुद्गलकी माया छोड़ता है तब स्व स्वरूपको प्राप्त कर लेता है।

"आतम सरूप धाया, पुग्गलकी छोर माया, आपने सदन आया, पाया सब भिन्न है ।"[६३]

इस पुद्गलकी अद्भूत मायाका चित्रण श्रीचिदानंदजी म.ने अपनी *'पुद्गल गीता'* कृतिमें स्पष्ट करके आत्माकी (चेतनकी) बेहाली और पुद्गल-संग त्यागसे साध्य प्राप्तिको वर्णित किया है ।

"पुद्गल पिंड लोलुपी चेतन,जगमें रांक कहावे; पुद्गल नेह निवार, पलकमें, जगपति बिरुद धरावे ।"....[६४]

इस प्रकार पुद्गलकी माया (अनित्यता) समझनेके पश्चात् जीवको धन-कण-कंचन-कामिनिका मोह नहीं रहता । उस सरिता सदृश सरकनेवाली संपत्तिका सदुपयोग करके उसे सफल बनानेका उपदेश श्रीचिदानंदजी म. देते हैं -

"धन अरु धाम सहु पडयो ही रहेगो नर, धारके धरामेंतु तो खाली हाथ जावेगो,
दान अरु पुण्य निज करथी न कर्यो कछु, होयके जमाई कोई दूसरो ही खावेगो ।
कूड अरु कपट करी, पापबंध कीनो तात, धार नरकादि दुःख तेरो प्राण पावेगो;
पुण्य बिना दूसरो न होयगो सखाई तब, हाथ मल मल माखी जिम पसतावेगो ।"[६५]

श्रीआत्मारामजी म. अपने चेतनको उपदेश देते हुए सावधान करते हैं कि अठारह पापस्थानक सेवन करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते जो रिद्धि सिद्धि प्राप्त की है, उसे अगर धर्मकार्यमें न लगाकर जमीनमें गाड़ा या दुरुपयोग किया तो वह संपत्तिका उपभोग तो अन्य करेंगें और वे पाप तेरे सिर चढ़ेंगें । मृत्यु पश्चात् दान देनेके लिए तुझे कोई न कहेगा ।

"रिद्धि सिद्धि ऐसे जरी, खोदके पातार धरी, करथी न दान करी हरि हर लहेगो.....
जौंलों मित आन पान तौंलों कर कर दान, वसेहुं मसान फेर कौन दे दे कहेगो....."[६६]

सामान्यतः प्रिय पदार्थ सुहावना और सुंदर ही लगता है । भक्त भी जब संसारकी अनित्यता, पुद्गलके खेल और आत्माकी अमरता परख लेता है, उसे शाश्वत परमतत्त्व परमात्मासे प्रीति हो जाती है और अपने प्रभुके अलौकिक रूप दर्शनसे नयनोंकी धन्यताके अनुभवके स्वर बरबस फूट पड़ते हैं-यथा-

"अंखियाँ सफल भई, अलि, निरखत नेमि जिणंद....

कैसे है नेमि जिणंद ?-"पद्मासनमें शोभित, सुर-नर-इंद्रको मोहनेवाले, घुंघराली-अनुपम-अलख, मुख-पूनम चंद, नयन-कमलदल, शुकमुख नासा, अधर बिंब, दंतपंक्ति-कुंद कली, कम्बु ग्रीवा, भुजा कमलनाल, हृदय-विशाल थाल, कटि-केसरी, नाभि-सरोवर खंद..... "चिदानंद आनंद मूरति ए शिवा देवी नंद..."[६७]

श्रीआत्मानंदजी म.के श्रीविमलनाथ भगवंतके पद्मसम चरण-सरोज और नीके-नयणका वर्णन भी आकर्षक है-

"पद्म राग सम चरण करण अति सोहे नीके, तरुण अरुण सित नयण वयण अमृत रस नीके ।
वदन चंद ज्यूं सोम मदन सुख माने जीके, तुझ भक्ति विन नाथ रंग पतंग ज्यूं फीके-"[६८]

जब जीव पुद्गलकी माया त्यागता है तो अपने आप ही परमात्म भक्तिके चोलमजीठ रंगमें रंग जाता है । ऐसे रंगसे रंगी आत्मा मिट जाय-मरजाय-खत्म हो जाय, साथ नहीं छोड़ती । श्रीचिदानंदजी म.का दिल जिन चरणोंमें कैसा लगा है ! -

"लाग्या नेह जिन चरण हमारा, जिम चकोर चित चंद पियारा...

जैसे कुरंगके मनमें नाद (संगीत), मेघमें चातकका स्नेह, दीपक पर पतंगका हेत, जलमें मीनकी मग्नता, हंसका आधार मानसरोवर,चोरको अंधेरी रात,मोरकी थिरकन-गर्जता मेघ,केतकी पुष्पमें भ्रमर क्रेद रहता है वैसे-

"जाका चित्त जिहां थिरता माने, ताका मरम तो तेहि ज जाने ।
जिन भक्ति हिर्देमें ठान, चिदानंद मन आनंद आने ।"[६९]

इसी तरह श्रीआत्मानंदजी म.भी श्रीअनंतनाथजी भ.से 'नीकी प्रीति' जोड़ते है और अपनी प्रीतको प्रकृति और व्यवहारके अनेक प्रतीकोंके साथ मूल्यांकित करके प्रभुको 'सिर सेहरो' और 'हियडानो हार' बनाते हैं-

"जिम पदमनी मन पिउ वसै, निर्धनीया हो मन धनकी प्रीत ।
मधुकर केतकी मन वसे, जिम साजन हो विरही जन चीत ।।
करसन मेघ अषाढ़ ज्यूं, निज वाछड़ हो सुरभि जिम प्रेम ।
साहिब अनंत जिणंद शुं, मुझ लागी हो, भक्ति मन तेम ।।...."[७०]

कविराज श्रीचिदानंदजीम. परमात्म भक्तिमें ओतप्रोत, भगवंतसे ऐसी आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं कि जैसे स्वजन सदृश उपालम्भ देते हुए श्रीनेमिनाथजीके साथ विपत्तिमें साथ-सहयोग देनेवाली विरलताका संधान करते हैं -

"मोह महा मद छाकथी, हुं छकियो हो, नहीं शुद्धि लगार,
उचित सही इण अवसरे, सेवकनी हो, करवी संभाल ।
मोह गया जो तारशो, तिण वेला हो कहो कुण उपकार,
सुख वेला सज्जन घणा, दुःखवेला हो विरला संसार ।।"[७१]

श्रीआत्मारामजी म. भी अंतर आशा विश्रामधाम श्रीपरमात्माको उत्तमजनकी रीति जताते हुए मुर्ख-बालक-निंदक-अपराधीको भवपार उतारकर, अजरामर पद प्रदान करनेके लिए श्रीआदिनाथको विनती करते हैं -

"तुम बिन तारक कोई न दिसे,होवे तुमकुं क्युं कहिये,इह दिलमें ठानी, तारके सेवक, जगमें जस लहिये।....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवगुण मानी परिहरस्यो तो,आदि गुणी जग को कहिये;जो गुणी जन तारे,तो तेरी अधिकता क्या कहिये?"[७२] श्रीचिदानंदजी म. परमपद प्राप्तिके लिए स.ज्ञान रूप सुमति द्वारा प्रियचेतन (आत्मा) को परघर जानेवाले के हालात सुना कर आत्माको 'कुमति-नेह-निवारके' शिवपुरका राज्य लेनेके लिए अनुनय करते हैं -

"पिया ! पर घर मत जावो रे... करी करुणा महाराज ।
कुल मरजाद लोपके रे, जे जन परघर जाय; तिणकुं उभयलोक सुण प्यारे, रंचक शोभा नाय... पिया...
घर अपने बालम कहो रे,कोन वस्तुकी खोट। फोकट तद किम लीजिए प्यारे,शीश भरमकी पोट.. पिया.."[७३]

श्री आत्मानंदजी म.भी श्री ऋषभदेवको करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि "आप मेरे मन मर्कट को कुछ सीख दो जिससे वह समताके रंगमें रंग जाय और आत्मकल्याणमें लग जाय -

"मन मर्कट कुं शिखो, निजघर आवेजी म्हारा राज रे कांइ !
समता रंग रंगावेजी म्हारा राज रे, रिखबजी थाने... मनरी..."[७४]

इन सबके निष्कर्ष रूप आतम घटमें अनुभव ज्योत जगनेसे कुमताका संग तोड, सुमतासे सगाई जोड, प्रभुचरणोमें अचलत्व प्राप्तकर्ता आत्माका चित्रण श्रीचिदानंदजी म.करते हैं -

"अनुभव ज्योति जगी है, हिये अमारे बे, कुमता कुटिल कहा अब करि हो, सुमता अमारी सगी है
मोह मिथ्यात्व निकट नवि आवे, भव परिणति ज्युं पगी है
'चिदानंद' चित्त प्रभुके भजनमें, अनुपम अचल लगी है...."[७५]

श्रीआत्मनंदजी म.के 'सुज्ञानी'ने भी इंद्रिय और चंचल-मन वशकरके, दुर्नय मिटाकर स्याद्वादामृत पिया है

"तें तेरा रूप कुं पाया सुज्ञानी.....
सुगुरु, सुदेव, सुधर्म रस भीनो, मिथ्या मत छिटकाया रे....
धार महाव्रत समरस लीनो, सुमति गुप्ति सुभाया रे...
आत्मानंदी अजर अमर तुं सत्चिद् आनंद राया रे...."[७६]

<u>श्रीरामभक्त संत तुलसीदासजी और श्रीजिनचरणोपासक श्रीआत्मानंदजी म.सा.</u>:—

साहित्यिक कलाकार और भगवद् भक्तके दुहरे व्यक्तित्वके समवायी स्वामीके जीवनगत अनुभवाधारित सृजनराशिमें विविध जीवन दृष्टियोंकी धूपछाँव और विचारोंमें विकासशील परिवर्तनके संबंधका परिशीलन करने पर एकांगी आदर्शवादसे महाकाव्यात्मक भव्यता एवं आध्यात्मिक उन्मेषमें मर्यादा पुरुषोत्तमके रूप स्वरूपयुक्त महत् ललित रचनाओंके उपवनसे गुजरते गुजरते आदर्शसे यथार्थ, उल्लाससे गांभीर्य, महाकाव्यात्मकतासे वेणु प्रगीतात्मक— पद, कवित्त, सवैया रूप-वैयक्तिकताकी ओर चरण बढ़ानेवाले; समष्टिसे व्यक्तिकी ओर, 'मानस'से 'कवितावली'के वैयक्तिक, अंतर्भुक्त भावनाओं और अनुभावोंको प्ररूपित करनेवाले, लोकमंगलमय गीतोंको स्वर देकर यथार्थकी ठोस भूमि पर लाकर श्रीरामके उस मंगलकारी, नूतन बोधात्मक स्वरूपको गुंजरित करनेवाले परमपद दायक-मंगल विधायक-परमप्रेयान् नर—रामको उभारनेवाले संत, परमभक्त चूडामणि-महान काव्यकार, फिरभी सामान्यता लिए रामभक्तिके दैन्य-दास्य रूपधारी, सर्वांग संपूर्ण समर्पित रामचरण किंकर श्री तुलसीदासजीका व्यक्तित्व ताज्जुबमय विलक्षणता संजोये हुए है ।

<u>जीवन तथ्य</u>:— सामान्यतः आंतर्व्यक्तित्व, जितना ऊपर उठा हुआ होता है, व्यक्ति स्वनाम-कामसे उतना ही निर्लिप्त भाव रखने लगता है । उन भौतिक मोह-विजयियोंके जीवनवृत्त अतीतके गर्भरूप रहस्यमय बन जाते हैं । अतः उन तथ्योंके लिए हमें जनश्रुति आदि बहिर्साक्ष्य और वाङ्मयरूप अंतर्साक्ष्य पर निर्भर रहना होता है । गोस्वामीजीके बारेमें भी यही सत्य सामने आता है । इनके जन्मके लिए बाह्य प्रमाणाधारित बेनीमाधवदास और महात्मा रघुबरदासजी कृत उनकी जीवनी अनुसार उनका जन्म सं.१५५४ श्रा.शु.७ दर्शाया है; जबकि पं.रामगुलाम द्विवेदी, सरजोर्ज ग्रियर्सन एवं आ.रामचंद्र शुक्लादि विद्वानोंके अनुसार वे सं.१५८९में राजापुरमें जन्मे थे, जो अंतः साक्ष्याधारित अधिक युक्तियुक्त माना जा सकता है। लाला सीताराम, गौरीशंकर द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी और डॉ. रामदत्त भारद्वाज—'सोरों'को उनका जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान मानते हैं ।

उनके माता-पिता और बाल्यावस्थाके लिए यह मान्यता है कि, उनके पिता श्रीआत्माराम दुबे और माता हुलसी-पत्यौजा दुबे-थे । जबकि 'तुलसी-चरित' अनुसार उनकी पितृ परंपरा है– परशुराम मिश्रके पुत्र 'शंकर'के पुत्र 'रुद्रनाथ'के पुत्र 'मुरारि'के पुत्र तुलाराम– तुलसीदासजी हुए ।[७७] तुलसीजीके गुरुका नाम नरहरिदास था । उन्होंने निम्नांकित शब्दोमें 'नर रूप हरि' को वंदनाकी है -

"बन्दउं गुरु पदपंकज कृपासिंधु नर रूप हरि"[७८]

गोस्वामीजीका विवाह भारद्वाज गोत्रके ब्राह्मण श्री दिनबंधु पाठककी बेटी-रत्नावलीसे हुआ था । पत्नीमें अत्यन्त आसक्त तुलसीको एक बार मायके गई हुई पत्नीके पीछे पीछे जाने पर पत्नीसे मधुर भर्त्सना मिली - **"लाज न आवत आपको दौरे आयेहु साथ, धिक् धिक् ऐसे प्रेमको कहा कहहु मैं नाथ ।"** और आगे परमात्म प्रीतिकी ओर मोड़ देते हुए कहती है - **"अस्थिचर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति, होती जो श्री राम महं होति न तो भवभीति"** । इन वचनोंके प्रत्याघातसे जागृत विवेकने उन्हें श्रीरामकी परमभक्तिरस सरितामें स्नान करनेका मार्ग प्रशस्त किया और राम भक्ति प्रदर्शित करनेवाले विशद वाङ्मयकी रचनाकी ओर उन्मुख किये ।[७९]

साहित्यकारके जीवन प्रसंगोंका उनके साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है । जन्मते ही माता-पितासे त्याज्य इस अनाथ और अभागे बालकके भाग्यमें ब्रह्माने भी कुछ भलाई नहीं लिखी - **"मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधि हू न लिखि कुछ भाल भलाई।"**[८०] अतः वह मुंहसे 'रामनाम' बोलता था, टूकटाक मांगकर खाता था **(हनुमान बाहुक-४०)** कंगाल हालतमें रोटीके टूकडेके लिए दर-दर डोलनेवाले इस 'रामबोला'को केवल चार दाना चनेकी प्राप्ति पर इतनी प्रसन्नता होती थी मानो उसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-चार फल प्राप्त हुए हों **(कवितावली-७/७३)** रामबोलाकी ओर देखकर दुःखको भी दुःख होता था **(विनय पत्रिका-२२७)** । रामकथा गायनने ही उसे किसी तरह जिंदा रखा । **"तुलसीकी बौद्धिक उपलब्धि सीमित थी । अतः लोकजीवन, लोक परंपरा और लोकचित्तके धरातल पर उसके भावुक हृदयकी थिरकन बजती रहती थी ।"**[८१] **जबकि डॉ. नगेन्द्रजीके अनुसार "विनय पत्रिका आदि अंतःसाक्ष्यके आधार पर पिता द्वारा छोड़ दिये जाने पर बाबा नरहरिदासजीने इनका पालन पोषण किया और ज्ञान-भक्तिकी शिक्षा-दीक्षा भी दी ।"**[८२] श्रीआत्मानंदजी म.सा.को भी बचपनमें हार्दिक-वात्सल्यता और स्नेहमय सरोवर तुल्य माता-पिताने अतीव मज़बूरीमें बेटेके उज्जवल भविष्यके लिए, निरुपाय बनकर, अपने मित्र जोधाशाहजीके सुपुर्द किया था, जहाँ उन्हें बड़े इत्मिनान और गौरवयुक्त-योग्य परवरिश और धर्म-संस्कार एवं ज्ञानार्जनकी सुविधा मिली । फल स्वरूप किशोरावस्थामें ही वैराग्यमय संस्कारोंसे वासित होकर उन्होंने साधुवृत्ति स्वीकारी । वहाँ परभी ज्ञान-पिपासाको तृप्त करनेका यथायोग्य सुअवसर उन्होंने प्राप्त किया । अतः उनकी रचनाओंमें हमें वह बौद्धिक, दार्शनिक ज्ञान विहारका अनुभव मिलता है जो सच्चे ज्ञानीकी परख करवानेको पर्याप्त है । इस प्रकार तुलसीका वैराग्य मोह या दुःखगर्भित बना और श्रीआत्मानंदजी म.का ज्ञानगर्भित ।

परिणाम यह हुआ कि **"कालांतरमें इन्द्रिय दमन करने, कुत्सित दरिद्रता झेलने, सर्वस्व त्याग देने और भक्ति रसका प्रचार करनेके बाद भी जब तुलसी पर धूर्त, कुसाज करनेवाला, दगाबाज, महादुष्ट और कुजातिका होनेके लांछन लगते हैं (कवितावली-७/१०६-१०८), तब वे तिलमिला उठते हैं..... उनके पौराणिक पुनर्जागरणके महान स्वप्न लड़खड़ा जाते हैं ।**[८३] काशीके ठग और चोरोंसे सताये जाने पर वे अनुभव करते हैं कि 'मेरा मन ऊँचा है, रुचि भी ऊँची है, लेकिन भाग्य अत्यन्त नीचा है । उन्हें आश्चर्य होता है कि भगवंतके नेकदिल भक्त होने पर भी उन्हें ये त्रिताप क्यों भोगने पड़ते हैं ?.... राम-हनुमान-शंकरादिसे क्या नहीं हो सकता ? **(ह.बा.-४४)** फिर भी नजर पथ पर परिणाम शून्यता प्राप्त होनेसे **"उनके जीवन पर्यंतके श्रद्धा-विश्वासके आगे एक गूढ प्रश्न चिह्न लग जाता है । इसके बाद तुलसीका व्यक्तित्व और कृतित्व ज्ञात नहीं होता है ।"**[८४]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलसीदासजीकी यह उलझन व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत है; जिनके परमात्मा होते तो है सृष्टिसृष्टा-सर्वशक्तिमान-सर्वेसर्वा-कल्पना सृष्टिके इष्टदेव लेकिन उनके दुःख दर्दोंके हर्ता नहीं बन सकते, उनकी वास्तविकतामें कोई चमत्कारी जादू नहीं कर सकते और उसे परिवर्तीत नहीं कर सकते हैं; क्योंकि जैन दर्शनानुसार परमेश्वर सृष्टा नहीं केवल दृष्टा होता है । जैन दर्शनका कर्मवाद इन उलझी गुत्थियोंको सुलझाकर समझाता है कि प्रभुकी प्रीति और भक्ति कर्मनाशमें केवल निमित्त बनती है । ईश्वर तो वीतराग है-न किसीसे प्रेम न किसीसे द्वेष, न किसीको तारना न किसीको ताड़ना– वे कुछ भी नहीं करते हैं क्योंकि वे निरागी और कृतकृत्य हैं । श्रीआत्मानंदजी म.के जीवनमें भी अनेकबार कठिनाइयाँ आयीं। आयुके अंतिम समयमें आहार-पानीके अप्राप्ति रूप संकटसे जीवलेवा बिमारीने आ घेरा, फिर भी उनकी आस्था पर कोई संकट नहीं आया । निश्चल-दृढ़ आस्थासे स्वस्थता-समभाव और अर्हनके प्रति शरणागत भावसे, सकल जीवराशिसे क्षमापना प्रार्थना और मैत्री भावनाकी उद्घोषणाके साथ अंतर्लीन-ध्यानस्थावस्थामें देहत्याग करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । इससे स्पष्ट है कि यदि साधक जैन दर्शनके प्रति ज्ञान गुम्फित श्रद्धा सम्पन्न है, तब साधनाकी स्थिरता-साधकभाव-सर्वदा अडोल रहता है । दुःख-दर्द-आधि-व्याधि-उपाधि युक्त जीवनके अनहोने किसी भी मोड़ पर वह आत्माको धैर्य प्रदान करते हुए तन-मनके परितापको प्रशांत बना सकता है ।

दोनोंकी परमात्माकी प्रीति और भक्ति ही उन्हें संत कोटिमें स्थापित करनेको काबिल हुई है। दोनोंकी अनन्य सेवा उनके स्वामीसे किस प्रकार फल-प्राप्तिकी श्रद्धा प्रतिष्ठित करवाती है-दृष्टव्य हैं, रामशरणमें आकर ही 'सनाथ' होनावाले तुलसी, लक्ष्मी भी जिनकी प्रसन्नता चाहती है ऐसे रामको छोड़ कर अन्यत्र याचना करनेसे क्या होता है उसका वर्णन इन शब्दोमें करते हैं-

"....ताकी कहाय, कहैं तुलसी, तू लजाहि न मांगत कूकुर कौर हि।
जानकी जीवनको जन हवै जरि जाऊ सो जीह जो जांचत और हि।।"[८५]

श्रीआत्मानंदजी म.सा.की भी अपने अक्षय भंड़ारी दीनानाथसे याचना श्रोतव्य हैं-यथा-

"प्रभुजी नहीं तो चिंतित दायक, लायक सौ न कहाय
त्रिभुवन कल्पतरु में जाच्यो, कहो किम निष्फल थाय।"[८६]

दोनोंकी अटल-अचल-अखंड आस्था- **"दोष दुःख दारिद दलैया, दीनबंधु राम।**
तुलसी न दूसरो दया निधान दुनीमें....(कवितावलि-७.२१)
"जिन और न दाता कोय-अभय, अखेद, अभेद नो, जिनराया रे ....
जिन, सगरे देव निहार, कौन हरे मुझ कैद नो, जिनराया रे ....
त्रिभुवन पूरणचंद...." (चतु.जिनस्त.१०)

मध्यकालीन वाङ्.मयकी भक्तिधारामें प्रवाहित होनेवाले दो प्रवाह-निर्गुण और सगुणकी परस्पर पूरकता और प्रमाणिकताका आलेखन करते हुए 'दोहावलि'में दोनोंका सम्बन्ध स्पष्ट किया है -

"ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुण कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास"-(२५१)
"अंक अगुन अखर, सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
खोएँ राखें आपु भले, तुलसी चारु विचार।।"(२५२)

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म अंक (१,२,३) समान है और सगुण ब्रह्म अक्षर (शब्द) सदृश। अंकोंको शब्दोमें लिख देनेसे कभी भ्रमकी उपस्थिति या बध-घटकी संभावना नहीं रहती, प्रत्युत वह अधिक प्रमाणिक माना जा सकता है। इसी प्रकार श्रीआत्मानंदजी म.सा.भी पक्ष-कदाग्रहको छोड़कर संसार पार करवानेवाले आनंद रूपको धारण करनेकी सीख देते हैं-

"पक्ष कदाग्रह मूल नहीं तानियो, जानियो जैन मत सुध सारो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासंसार थकी नीकली करत आनंद निज रूप धारो।"

संपूर्ण जैनमत-स्वरूप जान लेनेसे उन सगुण-निर्गुणके कदाग्रह-पक्षापक्षीके मूलका ही नाश हो जाता है और स्वरूप रमणताका आनंद उभरता रहता है।

सगुण-निर्गुण सदृश सैद्धान्तिक धाराओमें द्वैत और अद्वैतकी तरंगें झुलती रहती हैं। कई विद्वानोंने भक्तिके लिए द्वैत भावका होना अनिवार्य माना है क्योंकि भजन-भक्ति आदि परमात्माको भिन्न मान कर ही की जाती है। जब आत्मा-परमात्माका अद्वैत होगा तो कौन किसकी भक्ति करेगा? वही भक्तिकी लहर तुलसीके अंतरतार झंकृत कर देती है-

"प्रन करि हौं हठि आज तैं, रामद्वार पार्यो हौं।

'तू मेरो' यह बिनु कहै, उठि हौं न जनम भरि; प्रभुकी सौं करि निबर्यो हौं।।"....

श्रीआत्मानंदजीके भी वैसे ही भाव- **"मुख बोल जरा, यह कह दे खरा; तूं और नहीं मैं और नहीं**

"तुं नाथ मेरा, मैं हूं जान तेरी, मुझे क्युं बिसराइ जान मेरी"....

आगे चल कर उन्हें लगता है, मेरी भक्ति फलित हुई है तो कैसे झूम उठे हैं!-

"अब करम कटा और भरम फटा, तूं और नहीं मैं और नहीं।"[८७]

यहाँ कवीश्वरने द्वैत भावमें अद्वैतके भावकी कल्पना कैसे सुंदर अभिनिवेशमें की है?- जो जैन दर्शनकी निजि विशिष्टता मानी गई है।

दोनों कविवर्योंकी रचनामें स्थान स्थान पर हमें दासता या दैन्यता छलकती नज़र आती है- जो किसीभी भक्तके कल्पना साम्राज्यकी स्वकीयाके रूपमें प्राप्त होती है। स्वामी-सेवक भावकी अनुपस्थितिमें सर्वस्व समर्पणका अभाव होता है, इसकी शून्यतामें सिद्धिकी साधना अपूर्ण ही रहेगी। लक्ष्य प्राप्ति हेतु स्वको सर्वके साथ, आत्माको परमात्माके साथ क्षीरनीरवत् करना आवश्यक है।

"हम चाकर रघुबीरके, पटौ लिखौ दरबार, तुलसी अब मनसबदार...."

"तहै न फूटी कौडिहू, को चाहे केहि काज सो तुलसी महंगो कियो, राम गरिबनेवाज।।"

श्रीआत्मानंदजी म.भी उस जगतारक-जगदीश्वरको विनती करते हैं–

"जगतारक, जगदीश, काज अब कीजो मेरो, अवर न शरण आधार नाथ हुं चेरो तेरो।

दीन-हीन अब देख करो प्रभु वेग सहाइ, चातक ज्यूं घनघोर सोर निज आतम लाइ।"[८८]

दोनों कविराज द्वारा परमपिता परमात्माके अनेकविध स्वरूपों और भावोंका सजीव चित्रण अनुपम-प्रभावक-संप्रेषणीयताके साथ हुआ है। वात्सल्यरस छलकती इन पंक्तियोंकी आस्वाद्यता उर्मिल भावोंको उछालती है-

"छोटी छोटी गोडियाँ, छबिली छोटी नख ज्योति, मोती मानो कमल दलनि पर।

ललित अंगन खेलैं ठुमूक ठुमूक चलैं, झुंझनुं झुंझनुं पांय पैंजनी मृदु मुखर।

किंकणि कलित कटि, हाटक जटित मनि, मंजु कर कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।

पियरि झीनी झंगुलि, सांवरे सरीर खुली, बालक, दामिनी ओढै मानो बारे बारि घर।।"(गीतावली)

श्री आत्मानंदजीके श्री पार्श्वनाथ पलनेमें क्या क्या हरकतें करते हैं–

"पालनेमें जिन पोढइया.....

तूं मेरा लाला सब जगबाला, फिर फिर मुख मटकइया....."

और बाल भगवान महावीर कैसे चलते हैं–

"आमेरवाला त्रिभुवनलाला, ठुमक ठुमक चल आवे छे....."[९९]

दोनों साहित्यकारोंके तुलनात्मक अनुशीलन करने पर हमें अनुभव होता है कि तुलसी साहित्यमें जन साधारणके लोचनसे ग्रहित विलक्षण लोकानुभव एवं लोकमंगलको सर्वमान्य सुक्तियाँ, कीर्तन-पद, उपाख्यान-चरित्र दृष्टान्त, प्रबन्ध काव्यादिमें अलंकार-प्रतीक-रसादि योजनाओंको विविध छंदोबद्ध एवं राग-रागिणी द्वारा भगवद् भक्तिकी विभिन्न विधाओंके माध्यमसे आदर्श और यथार्थ, विश्वास और संदेह, ग्रामीण समाजकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूढि परंपरा और शहरी जिंदगीके सामाजिक तनाव-खिंचाव एवं स्वयंके व्यक्तिगत अनुभवों (अभागीपना एवं अनाथता)को संचित किया गया है। जैन दार्शनिक और अद्‌भूत कवि श्रीआत्मानंदजी म.ने अपनी रचनाओमें विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों-जीवन व्यवहार-आगमिक प्ररूपणाओंको सहज और सरल फिर भी विशिष्ट शैलीमें, लोकभोग्य रूपमें विश्लेषित किया, जिसके स्पष्टीकरण और बोधगम्यीकरणके लिए दृष्टान्तों, कथा या चरित्र चित्रणोंका उपयोग हुआ है। पद्यमें विशेष रूपसे संगितज्ञ कविराजने विभिन्न राग-रागिणीमें अपने अंतर भावोंको केवल जिनेश्वर पाद-पद्‌मोंकी परम भक्ति रूप समर्पित किया है तो उपदेश-बावनी आदि कृतियोंमें सामान्य जन हितकारक-पथ्यकारी उपदेश समाविष्ट है। उन्हें केवल सर्व कर्म क्षय और मुक्ति महलकी ही आश है। चाहे उसके लिए उन्हें कैसेभी भयंकर-कठोर-कष्ट क्यों न उठाने पड़े, वे हर मुश्किलको श्री जिनेश्वरकी शरण ग्रहण कर निर्भीकता और निष्कंटकतासे पार कर जानेका मेरु सदृश निश्चल-स्थिर विश्वास रखते हैं। इस प्रकार उनके साहित्यमें कदम कदम पर पांडित्यकी मथुर मुस्कान और परमात्म भक्ति विलास उनकी उत्तमताको बिखेरते हैं।

निष्कर्ष रूपसे हम कह सकते हैं कि उभयके दिलमें जनकल्याण-परमार्थके साथ आत्मकल्याणके लिए प्रार्थनायें-याचनायें-मनुहार प्राप्त होते हैं। दोनोंको विश्व कल्याणके मनोरथ सिद्ध करने थे जिनमें श्रीआत्मानंदजी म.शतप्रतिशत सफल रहें हैं जबकि तुलसीदासजी उस निसेनीके सोपान चढ़ते चढ़ते थक गये-हार गये और वहीं ठप्प हो गए। जो तहलका जैन जगतमें श्रीआत्मानंदजी म.के साहित्यने मचाया वह अनूठी रंग भरी जागृति लाया है तो श्रीगोस्वामीजीके काव्य तत्कालीन प्रचलित काव्य धाराओंके सफल प्रयोगसे जन-जनकी हृदयतंत्रीको मुखरित करते हैं-ये उनकी कमपात्रता नहीं।

<u>आर्यसमाज संस्थापक महर्षि दयानंद और जैन संविज्ञ आद्याचार्य श्रीआत्मानंदजी म.सा.</u>:- यहाँ ऐसी दो विरल विभूतियाँ-महान आदर्श महात्माओंकी तुल्यातुल्यता पर विचार विमर्श किया जा रहा है-जिन्होंने स्वयंके संपूर्ण जीवन, पर्यंत सत्यके अन्वेषण-आचरण और सत्यके ही प्रचार-प्रसारमें; सद्धर्मकी सुरक्षामें; समाज कल्याण-समाज नवनिर्माण और समाजोत्थानमें युगप्रधानकी भूमिकायें निभायी हैं।

यह वह समय था, जब एक ओर पश्चात्य सभ्यता और धार्मिक विचार धाराकी मंद-मंद-खुशबोदार लेकिन पाश्चात्यताके विषसे विषाक्त बयार बह रही थी, जो भारतीय संस्कृतिकी आत्मघातक सिद्ध हुई। दूसरी ओर भारतीय समाज, सभ्यता और कुछ रूढिगत विकृतियोंके कारण अंदर ही अंदर खोखला होता जा रहा था। यंत्रके इन दो दलोंके मध्य कुचले जानेवाले भारतीय साधारण जनमानस-विविध सुविधाओंके प्रलोभनोंसे और स्वयंकी विभिन्न अपेक्षा-अभिलाषाओंकी पूर्त्यार्थ-स्वधर्म शत्रु बनकर मुंहमोड़ रहा था, तो परधर्मको गले लगा रहा था और उसीमें ही मानो उसे आरामकी सांस या स्वयंके गौरवका अनुभव हो रहा था । इन परिस्थितियोंका निर्माता महा अज्ञानांधकार था, जो जनजीवनको पतनकी गर्तमें गिराता रहा था। इससे भी अधिक सोचनीय था, धार्मिक अज्ञान! माना जाता है कि सर्व अज्ञानको धर्म ज्ञान-प्रकाशसे आलोकित किया जा सकता है लेकिन धर्म सिद्धान्तके अज्ञान रूप महाअजगरने जिन्हें निगल लिया हो उसको कोई भी शक्ति नहीं बचा सकती। ऐसे ही माहौल बीच अधमता-क्रूरता-जोहुकमी-अज्ञानता-चूस्त रूढिवादितादि विविध प्रकारकी चक्कियोंमें पीसा जाता समाज अपने उद्धारककी प्रतीक्षा कर रहा था।

उस अंधाधूंध-निबिड़ अंधकारमें ज्ञान ज्योतिसे भारतीय प्रजाको रोशन करनेवाले सत्यके मशालची-महारथी-निर्भीक-साहसिक-अथक-अनवरत-अप्रतीम कार्यशील-प्रमुख दो युग प्रणेताओंका आविर्भाव हुआ।(१) एकका उद्‌गम स्थान था गुजरात और दूसरेका अवतरण हुआ था वीर प्रसूता पंजाबमें।(२) एक थे ब्राह्मण कुलोत्पन्न शिवपूजक-कर्मकांडी पिताके पुत्र और दूसरे थे-राजा रणजीतसिंहजीके वीर सुभट-क्षत्रिय कुलीनके लाडले बेटे।(३) बाह्य व्यक्तित्वकी तुलनासे प्रतीत होता है कि दोनोंकी देहगठन और चेहरा-मोहरादिकी साम्यता, उनमें सहोदर बंधु युगलकी भ्रान्ति पैदा करती थी। एकने व्यायाम-प्राणायामादिसे और दूसरेने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं-नैसर्गिक रूपसे शारीरिक सुदृढ़ गठन और बलिष्ठ देह सामर्थ्य प्राप्त की थी।(४) दोनों आजीवन भीष्म ब्रह्मचर्यधारी थे, फलतःदोनोंके मुखारविंद पर त्रिविध-त्रिविध ब्रह्मचर्यका देदीप्यमान तेज चमकता था।(५) दोनोंने बाल्यकालमें ही सांसारिक मोह बंधनोसे मुक्त होकर स्व-पर आत्म कल्याणकारी साधुत्वको प्रश्रय दिया था। यह बात अवश्य है कि श्री दयानंदजीने माता-पिता-परिवारादिके खिलाफ-सभीके भयंकर विरोधमें भी घरसे भागकर संन्यास लिया। यहाँ तक कि, तलाश करके, उन्हें ढूंढ निकालनेमें सफल पिता द्वारा चौकी-पहरे लगाकर उनको घर वापस ले जानेके प्रयासको चकमा देकर-निष्फल बनाकर-उस फंदेको तोड़कर दुबारा भाग गये; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने दीक्षाका विरोध करनेवाले परिवार-ममतामयी माता और पालक पिता जोधाशाहजीको अपने उत्कट वैराग्य भावसे अवगत करवाके, युक्ति-प्रयुक्तियोंसे उन्हें समझाकर आश्वस्त किया और उनकी हार्दिक सर्व-सम्मति पूर्वक-अंतराशिषोंके साथ जैन साधुत्व अंगीकार किया। प्रायः यही कारण हो सकता है कि सभीको दुःखित करके संन्यास धरनेवाले श्री दयानंदजीको आजीवन अनेक भयंकर कष्टोंका, जीवलेवा विकट परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा; घोर वनों-जंगलोंमें भटकना पड़ा और हिमाद्रिकी बर्फिली पहाड़ियोंमें शरीरको गालना पड़ा; भूख-प्यास, सर्दी-गरमी सब कुछ सहा, इतने पर भी सत्यमार्गके तलाशनेवाले ये महर्षि मानव जीवनके साफल्यरूप चरम सत्य–आत्मा–परमात्मा और संसार-मुक्ति एवं कर्म-धर्मके विषदोहन और अमृत आस्वादनका लाभ प्राप्त न कर सकें। जबकि श्रीआत्मानंदजी म.को स्वजन-परिजनोंके स्नेहासिक्त हार्दिक आशीर्वादोंके संगीन पीठबलने उनके जीवनराहकी प्रत्येक डगरको अति उज्ज्वल बनाया। जीवनोद्यानके (स्थानकवासी मत स्वीकार रूप) शूल भी फूल (संविज्ञ मार्ग प्राप्ति रूप) बने; प्रत्येक अवरोधके निरोधमें निष्कंटक-सदैव सफल होकर सर्वोत्कृष्ट जीवनके अधिकारी बन सकें।(६) दोनोंको ज्ञानगंगाकी निर्मलधाराके अमृतपानकी अनमिट प्यास सदा बनी रही थी, जिसके लिए दोनोंने हिन्दुस्तानके कोनोंकी खाक छान ली थी। जीवंत सत्यकी प्राप्तिकी तलप सर्वदा बनी रहती थी। इन पुरुषार्थोंके परिणाम स्वरूप श्रीदयानंदजीको प्रज्ञाचक्षु श्रीविरचंदजी गुरुमुखसे वेद ज्ञान-नीरके प्रवाहमें स्नान करनेका अवसर प्राप्त हुआ जबकि श्रीआत्मानंदजीको भी प्राज्ञ- प्रातिभ श्रीरत्नचंद्रजी म.से आगमामृतमें निमज्जन करके अमरश्रुतकी विरासतकी उज्ज्वल आभासे आलोकित बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।(७) दोनोंने ज्ञान प्राप्तिमें आनेवाले अनेकविध कष्ट-संकट-तकलीफोंका मर्दानावार मुकाबला करके अपने लक्ष्य-प्राप्तिकी ओर आगेकूच बनाये रखी।(८) दोनोंकी विलक्षण याददास्तके कारण उनके गुरुओने भी उन्हें दिल खोलकर ज्ञान-दान दिया। श्रीदयानंदजीको उनके गुरु द्वारा एक बार पाठको देनेके पश्चात् उन्हें दुबारा समझानेकी आवश्यकता नहीं हुई। उसी प्रकार श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने भी प्रतिदिन ३५० श्लोक याद करके अत्यल्प समयमें समस्त ढूंढक आगम साहित्यको कंठस्थ कर लिया था।(९) दोनोंमें अनूठी प्रतिभा, अनुपम प्रताप और अतुल प्रभावके होते हुए भी दोनों स्वयंके गुरुके प्रति परिपूर्ण रूपसे समर्पित भक्तिभाव युक्त, विनम्र शिष्य थे।(१०) इसीसे प्रभावित होकर दोनोंके गुरुवर्योंने अंतिम आशीर्वचन रूप कुछ आदर्श फर्माये थे। यथा-स्वामी श्रीवीरजानंदजीके शब्द थे-**"बेटा आज हिन्दु जाति वेदोंके वास्तविक ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मेरी यही गुरुदक्षिणा है कि तू संसारमें वेदोंके सत्यज्ञानका प्रचार कर, हिन्दु समाजकी बुराइयोंको दूर कर दे और अपने जीवनको जातिकी सेवामें अर्पित कर दें।"**[९]– वैसे ही नवयुवान संयमी श्रीआत्मानंदजीको मुनि श्रीरत्नचंद्रजीने उपदेश दियाकि, **"वत्स, आज साधु आगमोंका सच्चा अर्थ जनताको नहीं बताते। आगमोंमें मूर्ति-पूजाका निषेध नहीं, विधान है।..... परंतु लोग आगमके उलटे-सीधे अर्थ करके सत्यताका लोप कर रहे हैं। तू स्वयं आगमों पर निष्पक्ष होकर विचार कर तथा जैन जातिको सच्चे धर्मसे आनाह करते हुए अपने कर्तव्यका पालन कर।"**[१०] इनसे स्पष्ट है कि दोनों महारथी-सत्यके मशालची-सत्यकी नींव पर ही सुंदर प्रासाद निर्माणके लिए निर्भीक उल्लासके साथ कार्यान्वित हुए।(११) दोनोंका प्रचार क्षेत्र पंजाब ही रहा है। आज पंजाबमें आर्यसमाजकी अनेक शाखायें, स्कूल-शिक्षा,आदि तथा अनेक नभचुंबी जिनमंदिरोंका निर्माण, सभाभवनों या आराधना भवनों आदिका निर्माण उन्हींकी देन है।(१२) बाहय व्यक्तित्व सदृश उभयके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंतरवैभवमें भी दोंनोंकी साम्यता दृष्टव्य है । परोपकार-दया-करुणादि सद्भावनाओंके कारण दयानंदजीने मानवकल्याण, मानवसहानुभूति और मानवसेवाको प्रदर्शित भी की और प्रसारित भी । जिनके कारण समाजकें दीन-हीन और पीडितोंको विशेष रूपसे देवसमान उद्धारककी प्राप्ति हुई। जबकि 'अहिंसा परमोधर्म'जो हार्दको समेटे हुए श्री जैनधर्मके सच्चे प्रचारककी तो प्रत्येक सांसमें इन्हीं भावोंके सूर बजते रहते थे।(१३) दोनोंने समाजके अज्ञानांधकारको दूर किया और विशिष्ट लोकक्रान्तिकी ज्वाला प्रज्वलित करके समाजमें नव जागृतिका शंख फूंका, जिससे परापूर्वकी रूढि परंपरा और अंध विश्वासादिको भगानेमें प्रवृत्त उनको आजीवन कष्टप्रदायि अनेक प्रतिकारोंसे टक्कर लेनी पड़ी।(१४) दोनोंने जन साधारणकी भाषा हिन्दीमें ही अपनी प्रतिबोधात्मक उपदेशधाराको सभा और साहित्यके माध्यमसे भाविक जिज्ञासु भक्तों तक पहुँचायी। संस्कृत-प्राकृतके उत्तम विद्वद्वर्यों द्वारा सुविधाजनक लोककल्याणका ध्येय रखकर ही बोल-चालकी भाषाका प्रयोग किया गया।(१५) आजीवन अत्यन्त कड़े पुरुषार्थानन्तर भी, अनुपयुक्त-उलटे संस्कार बीज वपनके फलस्वरूप-श्री दयानंदजीको मानवभव साफल्यरूप चरम सत्यकी प्राप्ति न हो सकी, न दार्शनिक और सैद्धान्तिक विचारधाराओंके प्रवाहको निश्चित दिशा प्राप्त हो सकी। ईश्वरके जगत्कर्तुत्व या सृष्टि सर्जनकी प्रक्रियामें विभिन्न सहयोगी कारणों (उपादान-निमित्त-साधारण) अथवा मोक्ष विषयक धारणायें भी स्थिरत्व धारण न कर सकीं-यथा–**"सत्यार्थ प्रकाशके प्रथम संस्करणके लिखे जाने तक स्वामीजीको जीवकी उत्पत्ति तथा उसका अत्यन्त प्रलयमें विनाश मान्य था। कालान्तरमें वे ईश्वर, जीव तथा सृष्टिकी उपादानभूत प्रकृतिको अनादि और अनश्वर मानने लगे। यह तो स्पष्ट ही है कि मुक्तिसे पुनरावृत्तिकी धारणा स्वामीजी द्वारा बहुत बादमें स्वीकार की गई थी"**[११] इससे हम यह कह सकते हैं कि स्वामीजीके मंतव्य परिवर्तनशील थे। अतः न तो वे स्वयं सर्वज्ञ थे, न सर्वज्ञके पथके पथिक ही थे; जिसका उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था–**"इतना लक्षमें रखना कि मेरा कोई स्वतंत्र मत नहीं है, और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ। यदि मेरी कोई गलती पायी जाय तो युक्तिपूर्वक परीक्षा करके उसको सुधार लेना"**।[१२] जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा. जबसे सत्य संविज्ञ मार्गी-सर्वज्ञके पथके पथिक-हुए है उनके वाणी विलास या वाड्.मयमें कहीं परभी असंवादिता अथवा पूर्वापर विरोध दृष्टिगोचर नहीं होता। न उन्हें अपने सैद्धान्तिक खयालोंमें किसी प्रकारके परिवर्तनकी आवश्यकता ही हुई है।(१६) उनकी मोक्षविषयक प्ररूपणा-जो नवम समुल्लासमें की गयी है- वह सोचनीय है। इसकी विस्तृत विश्लेषणात्मक समीक्षा करते हुए श्रीआत्मानंदजी म.सा.अपने 'अज्ञान-तिमिर-भास्कर'-प्रथम खंड़में उनके परस्पर विरोधी-असमंजसकारी प्रलापों और मुहुर्मुहुर्परिवर्तनशील विचारधाराओंका स्पष्टीकरण किया है–**"दयानंदजी वेदोंकी संहिता और ईशावास्योपनिषदके अतिरिक्त वेदोंके ब्राह्मण, आरण्यक आदि वैदिक ग्रन्थोंको प्रमाणिक नहीं मानते हैं। लेकिन 'सत्यार्थप्रकाश' और वेद भाष्य भूमिकादिमें शतपथ-ऐतरेय-तैतरेयादि ब्राह्मण-आरण्यक-निघंटु-निरुक्तादिके प्रमाण लिखते हैं और मुक्ति विषयक भी परस्पर विरोधी विभिन्न प्ररूपणाओंके प्रमाण लिखकर अपने बावलेपन या उन्मादको ही प्रकट किया है।"**[१३] महर्षि दयानंदजीमें अन्यको नीचा दिखानेवाले हुंकार युक्त अक्खड़पन और रूखापन उनके वाणी-विचार (प्रवचन एवं साहित्य)से झलकता है। जबकि श्री आत्मानंदजी म.सा.निरभिमानी, सरल, अन्यके प्रति सराहनीय गुणानुरागितादि गुणोपेत थे। फलतः श्रीदयानंदजीने अपनी उच्छृंखलताकी परिचायक वृत्ति **धर्मशास्त्रके मूलरूपमें वेदको निर्धारित करके वेदके मनभावन अर्थघटन करके वेदभाष्य रचकर** प्रदर्शित की; जबकि श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने अपनी प्रत्येक कृतिमें पूर्वाचार्योंके संदर्भोंको निरंतर अपने नयनपथ पर रखा है, और उसकी परिपुष्टिकी ओर ही पुरुषार्थ किया, तदपि बारबार उन पूर्वाचार्योंके आशय विरुद्ध-अज्ञानतावश हुई किंचित् अशुद्धि या त्रुटिके लिए 'मिथ्या दुष्कृत' याचनापूर्वक नम्रतासे क्षमा-प्रार्थना की है।(१८)दोनोंके वेश विन्यास जैसे भिन्न थे, वैसे ही वैचारिक विभिन्नता भी स्पष्ट दर्शित होती है। वैदिक धर्मके ध्वजधारीको प्रतिमा-पूजन-प्रतिरोध करके वेद और एक ईश्वर द्वारा हिंदु संगठन और सामर्थ्यशाली जोश प्रकट करवानेकी ख्वाहिश थी तो श्वे.मू.पू.भेखधारीको जैनजातीके परापूर्वाधारित, प्राचीन और शास्त्रोक्त प्रतिमापूजनके गौरवको प्रतिष्ठित कर के उसे प्रचारित करनेकी उम्मीद थी।(१९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनोंने स्वमत स्थापनाके लिए अनेक वाद-चर्चा-सभायें भी की थीं, लेकिन ईश्वरकी सृष्टि सर्जना-उसके उपादान, निमित्त, साधारण कारण, ईश्वरकी सर्वशक्तिमानतादि विषयक उलझी गुत्थियोंको जब वे विभिन्न तर्कों द्वारा सुलझानेका प्रयत्न करते थे अनायास ही उसमें ऐसे उलझते जाते थे कि मक्कडी सदृश स्वयंके उस जालसे बाहर निकलनेका उन्हें कोई मार्ग नहीं मिलता था।**"इस सारे विवेचनको पढ़कर लेखकके तर्कोंकी दुर्बलताकी ओर अनायास ही ध्यान जा सकता है।"**(२०)-"अज्ञान ही पाप है, इसके बिना पाप हो ही नहीं सकता। अतः पापका मूल (अज्ञान) महापाप है और ईश्वरीय कानूनका अज्ञान सर्वाधिक महापाप है। "बाबावाक्यंको प्रमाण न मानकर सत्यासत्यकी स्वयं परीक्षा करके सत्यका स्वीकार और असत्यका परिहार करना ही महापुरुषोंका यथोचित जीवनोद्देश्य होता है।" श्रीदयानंदजीके ये विचार आवकार्य और स्वीकार्य भी है; लेकिन वर्तनमें उस राहको अपनानेके पुरुषार्थमें उनके कदम लड़खड़ाये हैं और वे स्वयंके सत्यादर्शसे च्यूत हुए हैं। तर्ककी कैंची चलाकर (खंडनात्मक व्यूह आजमाकर) उन्होंने अन्य दर्शनोंकी धज्जियाँ उड़ायी हैं। **जिनमें स्वस्थ खंडन-मंडनकी खुश्बूके प्रत्युत एकांगी (मेरा सो सत्य)**–विभिन्न दर्शनोंकी प्ररूपणाकी उचितानुचितताके, मध्यस्थ भावकी तुलापर प्रमाणित करनेकी परवाह किये बिना, स्वयंके दिलदर्पणमें तद्तद् दर्शनकी जो प्रतिच्छबी प्रतिबिम्बित हुई उसीके आधार पर किये **प्रलापोंकी बदबू** फैली हुई है। असत्यका प्रतिकार उचित अवश्य है, लेकिन जिसे असत्य माना, वह वास्तविक असत्य है–प्रतिकार योग्य है कि नहीं, उसकी न्याय संगतताकी कसौटी भी उतनी ही अनिवार्य है।

द्वादश समुल्लासमें जैन दर्शनके षड्द्रव्यके लिए प्रस्तुत विचार मूर्खके प्रलाप सदृश दृष्टिगोचर होता है।'प्रकरण रत्नाकर' अनुसार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके लक्षणादिसे ज्ञात होनेके पश्चात् उन्होंने अपना अभिप्राय दिया कि,"जैनियोंका मानना ठीक नहीं, क्योंकि धर्माधर्म स्वतंत्र द्रव्य नहीं आत्माके गुण है अतः दोनोंका जीवास्तिकायके गुणरूप समन्वय हो सकता है। अतः उन्हें 'छ' नहीं 'चार' द्रव्य मानने चाहिए"। यहाँ धर्मास्तिकाय गतिसहायक और अधर्मास्तिकाय स्थिरता सहयोगीके गुणधारी स्वतंत्र द्रव्यके विषयमें उन शब्दों-'धर्म' और 'अधर्म'-का रूढ़ अर्थग्रहण और विशिष्ट पारिभाषिक अर्थका त्याग करके जो एकांगी अभिप्राय पेश किया है, यही उनकी स्वमत कदाग्रहताको उद्घाटित करता है (इस धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकायके समान लक्षण, गुण संयुत पदार्थ-द्रव्य-'इथर'का अन्वीक्षण आधुनिक भौतिक विज्ञानने भी प्रस्तुत किया है–जो जैन दर्शनके षट्द्रव्य सिद्धान्तकी प्रमाणिकताकी पुष्टि करता है) इसी प्रकार जैन दर्शनके 'स्याद्वाद', 'सप्तभंगी' आदि दार्शनिक सिद्धान्त और आयु-अवगाहनादि जीव-विज्ञान संबंधी अत्यन्त प्रमाणभूत सूक्ष्मातिसूक्ष्म कथ्योंको हांसीपात्र बनाना यह भी दयानंदजीकी जड़-कदाग्रह और हठाग्रह युक्त स्वमतराग दृष्टिकी निर्बलता ही मानी जा सकती है। अगर ऐसा न होता तो वे चार्वाक, जैन और बौद्ध-तीन विभिन्न दर्शन(धर्म)में एकत्व स्थापित करनेका उपहासजनक उपक्रम न करते। जबकि श्रीआत्मानंदजी म.ने जिस किसी दर्शनके विपरित या एकांगीपनेका खंडन किया भी है, तो उसकी प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्त कणिकाओंका विश्लेषणात्मक अनुशीलन करके किया है। यथा–'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थान्तर्गत प्ररूपित ईश्वर जगत्कर्तृत्व, या जीवोंकी कर्ममुक्ति, सृष्टि रचनाके कारणादिके नित्यानित्यत्व या अनादि-अनंतता आदिकी जो व्याख्या की है और अयुक्तका खंडन किया है–उससे पूर्व ही उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश'का परिशीलन करके उनमें उद्धृत संदर्भ शास्त्रोंका–समूचे वैदिक साहित्यको भी अध्ययन किया, तदनन्तर सत्यासत्यके निर्णायक-तटस्थ चिंतन-मननके परिपाक रूप जो कहना था वह कह दिया।

श्री दयानंदजी बेतहाशा आक्षेपबाजीके अंधे तूफानमें, अन्योंकी योग्यायोग्यताका खयाल भी नहीं कर सकें हैं–जैसे षष्ठम समुल्लासमें अनेक स्थानों पर जैनों पर बेअदबीसे किये गये झूठे आक्षेप। तदनुसार **"जैन और मुसलमानोंने आर्यजातिके पुरातन गौरवको व्यक्त करनेवाले नाना इतिहास ग्रन्थोंको नष्ट कर दिया है, फलतः हम उस युगकी अनेक बातोंसे अनभिज्ञ रह गये हैं।"**– यह आक्षेप उनकी स्वयंकी जैन वाङ्मय विषयक-विशेषतःइतिहासादिकी अनभिज्ञता प्रमाणित करता है। सांप्रत कालमें तो यह बात विश्व विख्यात हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूकी है कि इतर दर्शनके कइँ अमूल्य एवं अलभ्य या दुर्लभ्य ग्रन्थ-जो अन्य दर्शनियोंके संग्रहमें प्राप्त नहीं होते-जैन पुस्तकालय या ज्ञान भंडारोमें अथवा ग्रन्थ संग्रहोमें अद्यावधि समुचित रक्षा प्रबन्धके साथ सकुशल रूपमें विद्यमान हैं। दूसरा, जैन धर्मी छोटेसे छोटा बालक भी एक-एक कागजादि ज्ञानोपगरण या एकएक अक्षरमात्रकी हिफ़ाजतमें धर्म और नाशमें अधर्म मानता है;अतः उनको नाश होनेसे बचाते हैं। इस तरह "जैनों द्वारा ऐसे नाश"की बात कोई उपजाउ, कोरी गप्प ही मानी जायेगी। ऐसे अनेक करुणा जनक गपोडोंके लिए श्रीआत्मानंदजी म.सा.को उन पर तरस आता है क्योंकि उन्होंने कभी भी, कहीं पर, किसी प्रसंगवश ऐसी 'सत्यके मशालची' सदृश आकाश कुसुमोंका उपहार समाजको भेंट नहीं चढाया। यहाँ तक कि उन्होंने स्वयं किसीपर किचड़ नहीं डाला। हाँ, अन्यके द्वारा फेंके गये किचड़को आक्रोशपूर्ण तेजाब प्रवाह बहाकर उसकी ठीक सफाई अवश्य की है।

अतः हम यह अनुभव कर सकते हैं कि दोनों युगवीरोंकी नस-नसमें, रोम-रोममें धर्म और समाजके उत्थानकी प्रबल ईच्छा थी। दोनोंकी कर्म-भूमि पंजाब देश थी दोनों प्रखर तत्कालीन समाजके जाने-माने वादि थे फिर भी उन दोनोंकी मुलाकात कभी न हुई। एक बार जोधपूरमें उनकी मुलाकात-चर्चासभाका आयोजन हुआ लेकिन वह आकार न पा सका। जिस दिन श्री आत्मानंदजी म. चर्चा हेतु जोधपुर पहुँचे उसी दिन स्वामीजीकी अज़मेरमें किसीने विषप्रयोगसे हत्या की। यह बडी दुर्भाग्यवान दुर्घटना हो चूकी। अगर वे दोनों सत्य-गवेषक और फिर भी एकदम विपरित मतवादियोंकी भेंट हो पाती तो अवश्य कुछ अनहोनी होनी थी। एक नवीन इतिहासका सर्जन, उनके मंथन-चिंतन–जो चर्चामें पेश होता, उससे बन पाता और धार्मिक इतिहासमें अभूतपूर्व क्रान्तिका आविर्भाव होता। फिर भी उनकी जो देन है उसे कोई भी समाज़ कभी भी नहीं भूला सकता। श्री पृथ्वीराजजी जैनके शब्दोमें–**"उन महापुरुषोंका अगर जन्म न होता तो हिन्दु और जैन संस्कृतिकी कैसी दुर्दशा होती यह कल्पना भी असह्य है। शायद हमारे लिए यह जानना भी असंभव हो जाता कि किसी समय भारत विश्वका अध्यात्म गुरु रहा है। उन्हींके प्रभावसे चिकागोकी सर्वधर्म परिषदमें भारतीय संस्कृतिका बोलबाला रहा।"**[९३A]

<u>साहित्यिक युगप्रवर्तक श्रीभारतेन्दु हरिश्चंद्रजी और सामाजिक युगनिर्माता श्रीआत्मानंदजी म.सा.</u>:- यहाँ आधुनिक युगके-विशेषतः गद्य साहित्यके प्रवर्तक श्रीहरिश्चंद्रजी और हिन्दी भाषामें जैन वाङ्मयके प्रथम प्रयोजक श्रीआत्मानंदजी म.सा.की साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय विषयक हुई रचनाओंकी विशिष्टताओंकी तुल्यातुल्यताका परामर्श दिया जाता है, क्योंकि दोनों समकालीन और साहित्य क्षेत्रान्तर्गत समकार्यिक भी थे। चाहें उन दोनोंके साहित्य निर्माणके उद्देश्यमें हमें पूर्व-पश्चिमका भास हों-क्योंकि एकको अभीष्ट था हिन्दी भाषाके गौरवकी वृद्धि–उत्थान और उत्कर्ष, जबकि एकको अभिप्रेत था संस्कृत-प्राकृतके वाङ्मय-वारिधिके तलगृहमें विधविध एवं अपरंपार ज्ञान-विज्ञानरूप रत्नराशि अंतर्निहित थी, उन्हें जन साधारणकी व्यवहार भाषा हिन्दीमें प्रकट करना और जैनधर्म विषयक इतर दर्शनियोंमें प्रचलित भ्रामक मान्यताओंके उलझे हुए जालको सुलझाकर विश्वके जैन वाङ्मय विषयक अज्ञानांधकारको विनष्ट करना–फिरभी दोनोंके अंतर्वेगों और उभयकी अभिव्यक्तियोंसे हमें ऐसे आसार मिलते हैं जो हमें उनकी तुल्यातुल्यताके अन्वेषणकी ओर आकर्षित करते हैं।

उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्धके पुनर्जागरणकालमें औधोगिकरण और प्रविधिकरणके सहारे संजोये गये 'परि-देश'के सपने साकार रूप धारण न कर सके। अतःव्यवस्थाका या प्रविधियोंका पूर्जा बननेवाले व्यक्ति, स्वतंत्र व्यक्तित्वके संधानमें गैर-रोमैंटिक और अमिथकिय साक्षात्कार रूप नूतन आकांक्षाओंके सहारे देश-राष्ट्र-धर्म-ईश्वर आदिको आधुनिक परिवेशमें सजानेकी कोशिश करते हुए नयनपथ पर दृश्यमान होने लगे थे। उनकी अंतःचेतनाकी अभिव्यक्तिमें अधिकांशतः 'स्वयंसे अभिज्ञ होकर पाश्चात्य बंधनोंसे मुक्तिकी भावना' मुखरित हुई। इस प्राचीन और अर्वाचीन युगके संधिकालको जिनके नामसे पहचाना जाता है, वे-साहित्यिक युग प्रवर्तक श्रीहरिश्चंद्रजी (इ.स.१८५० से १८८५), इतिहास प्रसिद्ध शेठ अमीचंदजीकी वंशपरंपरामें अवतरित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्कालीन प्रसिद्ध कवि बाबू गोपालचंद्र 'गिरिधरलालजी'के पुत्र थे; जिन्होंने पितृव्य संस्कारोंमें झीलते हुए बाल्यकालसे ही काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी और अल्पायुमें ही अपनी कवित्व प्रतिभा और सर्वतोमुखी रचना कौशलका ऐसा सक्षम परिचय प्रदान किया कि समसामायिक पत्रकारों और साहित्यकारों द्वारा उन्हें 'भारतेन्दु'की उपाधिसे सम्मानित किया गया जैसे श्रीआत्मानंदजी म.को भी उनके द्वारा किये गये अनेकविध समाजोत्थानके-धार्मिकोत्कर्षके और जनजीवनोन्नतिके कार्योंसे प्रभावित होते हुए, अखिल भारत जैन समाजने मिलकर संविज्ञ शास्त्रीय आद्याचार्य पद पर विभूषित किया और राजस्थानके जोधपुरादि शहरोंके जैन समाज द्वारा 'न्यायांभोनिधि'की पदवी प्रदान हुई।

श्री भारन्तेदुजीकी सर्वतोमुखी प्रतिभाके लिए आ.श्री रामचंद्रजी शुक्लके प्रतिभाव पठनीय है—**"अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके बलसे एक ओर तो वे पद्माकर-द्विजदेवकी परंपरामें दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेशके माइकेल और हेमचंद्रकी श्रेणिमें; एक ओर राधा-कृष्णकी मूर्तिमें झूमते और नई भक्तमाल गूंथते दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर मंदिरके अधिकारी-टीकाधारी भक्तोंकी हाँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, आदि पर व्याख्यान देते। प्राचीन और नवीनका यही सुंदर सामंजस्य भारतेंदुकी कलाका विशेष माधुर्य है।"**[१४] ठीक उसी प्रकार श्री आत्मानंदजी म.सा.के विषयमें श्री पृथ्वीराजजी जैनने अपने उद्‌गार अभिव्यक्त किये हैं—**"उनका जीवन प्रयोगात्मक कहा जा सकता है। उन्होंने सत्यधर्मका अन्वेषण किया, सत्यधर्मके प्रचारके लिए सर्वस्वकी बाजी लगाई और जैन समाजमें आधुनिक नवीन युगका श्री गणेश किया। वे क्रान्तिके अग्रदूत थे और हमारे सामाजिक जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उन्होंने समयानुकूल परिवर्तनका संदेश दिया, जिसकी नींव थीं भ.महावीरका संदेश-अहिंसा और विश्वमैत्री।..... आपका त्याग, संयम और तप उच्च कोटिके और शास्त्रानुसार थे। महान कवि और लेखक होनेके साथसाथ वे संगीतज्ञ भी थे..... वादमें आप अजेय और दृढ़ प्रतिपक्षी थे..... समाजमें नयाजीवन, नयीभावना, और नूतन विचारधारा प्रवाहित करनेके लिए कष्ट-कठिनाइयोंके बावजूद भी वाङ्मय रचना, वक्तृत्वकला और उग्र विहारको प्रचार माध्यम बनाकर शुद्ध अध्यवसाय, ठोस ज्ञान-प्रचार, और सत्य मार्ग पर कदम बढ़ाते गये। ऐसे साहसिक और शूर थे-न हारना जानते थे न डरना।"**[१५]

साहित्य— श्री हरिश्चंद्रजीने 'जातीय संगीत' अर्थात् लोकगीत, पद, कवित्त-सवैये आदि अनेक प्रकारके प्रगीत रूप सामाजिक काव्य रचनाओं पर बल दिया; फिरभी उनके पद्य साहित्यकी वैविध्यता हैरतयुक्त हैं, जिनमें शृंगारपरक-मार्मिक-भक्तिके गीत, पर्वगीत, सामाजिक परिवेश-व्यंग्यात्मकता-प्रकृति चित्रण-पैरोड़ी-देशप्रेम आदि विभिन्न आयामोंका परिचय मिलता है। भारतेन्दुजीके काव्यमें प्रमुख रूपसे देशभक्तिकी छलछलाती धारा देखें, 'भारत दुर्दशा'में —

"तुममें जल नहीं जमुना गंगा, बढ़ु वेग करि तरल तरंगा,
धोवहु यह कलंककी रासी, बोरहु किन झट मथुरा कासी।
बोरहु भारत भूमि सबेरे, मिटे करक जियकी तब मेरे।
बढ़ु न वेगि धाई क्यों भाई, देहु भारत भुव तुरत डुबाई;
धोवहु भारत अपजस पंका, मेटहु भारत भूमि कलंका।"

कविकी व्यथा अपनी सीमाको लांघकर वहाँ पहुँचती है जहाँ 'न रहे बांस, न बजे बांसुरि' अर्थात् इतनी कलंकित मातृभूमिसे तो अच्छा है उसका अस्तित्व ही नामशेष हो जाय। क्योंकि यह वह भूमि है जहाँ-

"कोटि कोटि ऋषि पुण्य तन, कोटि कोटि अति शूर
कोटि कोटि बुध मधुर कवि मिले यहाँकी धूर"... अतः उसके लिए क्या किया जाय यही सूझत नहीं— **"सोइ भारतकी आज यह भइ दुरदसा हाय,**
कहा करें कित जायें, नहिं सूझत कछु उपाय।"

देशभक्त श्रीभारतेंदुजी सदृश प्रभुभक्त श्रीआत्मानंदजीके साहित्यमें संपूर्ण समर्पित स्वकीया भक्तिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फूटकल पद-गीत-प्रगीत, नीति विषयक मुक्तक-सवैया, योग-ध्यान-साधनादिके विविध धार्मिक अनुष्ठानादिके पद एवं गीत (स्तवन-सज्झाय आदि प्रकारान्तर्गत) लोकगीत-ढाल-देशियाँ और विविध राग रागिणीमें प्रस्तुत किये गये हैं; तो विभिन्न पूजा प्रबन्धोंका और तात्त्विक मुक्तकोंका आकलन किया गया है। अध्यात्म जगतकी दुर्दशा देखकर श्रीआत्मानंदजी म.सा.की जो आत्मपुकार उठी है, वह भी श्रोतव्य है,—

"प्रथम विरह प्रभु तुम तणो, दूजो हो पूरवधर छेद–देखो गति करमनी।
पंचमकाल कुगुरु बहु, पार्यो हो जिनमत बहु भेद–बातको तरनकी।
राग द्वेष बिहु मन वसे, लरे हो जिस सोकण रांड–भूले अति भरममें।
अमृत छोर जहर पिए, लिए हो दुःख जिन मत छांड–बांधे अति करममें।"[१६]

प्राचीन-अर्वाचीनके स्वस्थ सामंजस्यकी चेतनाको उभारनेवाली काव्य-कृतियोंके आस्वादन करते हुए हमें उनके दास्य और माधुर्य भाव, नायक-नायिकाके सौंदर्य वर्णनके साथसाथ कर्तव्य-निर्देशन, इतिवृत्तात्मकता और हास्य-व्यंग्यका पैनापन–आदिका अनुभव होता है। उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्तिके फलस्वरूप ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली प्रवृत्तियोंकी झलक मिलती है, जैसे-काव्यके उपयुक्त 'ब्रजभाषा'को ही मानने पर भी 'फूलोंका गुच्छ' आदि कृतियोंकी रचना खड़ीबोलीमें की हैं, तो उर्दू रचनायें भी प्राप्त होती हैं। डॉ.सुरेशचंद्र गुप्तके अभिप्रायसे–**"संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि कविताके क्षेत्रमें वे नवयुगके अग्रदूत थे। अपनी ओजस्वीता, सरलता, भावमर्मज्ञता और प्रभविष्णुतामें उनका काव्य इतना प्राणवान है कि उस युगका शायद ही कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।"**[१७] उनके गद्य विधाके 'नाटक' प्रकारकी कृतियोंमें भी कई पद्य रचनायें प्राप्त होती हैं। श्रीभारतेन्दुजीके साहित्यकी दो विधायें (पद्य और गद्य)में दो शैलियाँ-(भावावेश युक्त और केवल तथ्य निरूपण) प्रयुक्त हुईं हैं। प्रथममें छोटी-छोटी और सरल पदावलि और व्यवहार भाषाका स्वरूप दर्शित होता है तो कभी चिंतवनावस्थाकी भाषा गंभीर और लम्बे लम्बे वाक्य विन्यास युक्त है, जिसमें संस्कृत शब्दोंका मेल अधिक मात्रामें किया गया है। भावावेश शैलीका उदा—

"प्रिय प्राणनाथ मन मोहन सुंदर प्यारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे.....
घनश्याम गोप-गोपी-पति गोकुलराई, निज प्रेमीजन हित नित नित नव सुखदायी।
बृन्दावन रक्षक, ब्रज-सरबस, बलभाई, प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई।
श्री राधानायक जसुदानंदन दुलारे, छिनहुँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।"[१८]

एक एक शब्दमें कितने कितने भाव भरे हैं मानो सबकी अलग कथायें बन सकती हैं । तो दार्शनिक चिंतनधारामें बहता भाषा प्रयोग देखें–**"कहो किमि छूटे नाथ सुभाव ।**

काम क्रोध अभिमान मोह संग तनको बन्यौ बनाव,
ताहू मैं तुव माया सिर पैं और हु करन कुदाँव,
'हरिचंद' बिनु नाथ कृपाके नाहिंन और उपाव ।"[१९]

अनादि स्वभावके छोडनेका एक मात्र उपाय 'नाथ कृपा'के चिंतनमें पद पूर्णता प्राप्त करता है । इस शैलीके गद्यके दृष्टान्त भी दृष्टव्य हैं–जैसे **'चन्द्रावलि' नाटकमें चन्द्रावलिके विरहोन्मादमें किये गये प्रलाप-अत्यन्त भावावेशमें हुआ है-उसका निरूपण छोटी छोटी शब्दावलिसे अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है तो 'प्रेमजोगिनी' नाटकमें सुधाकरके वचनोंमें काशीका और गुणी-दातार काशीवासियोंका वर्णन दो-चार पृष्ठों तक चलता रहता है।**

श्रीआत्मानंदजी म.द्वारा भी गद्य-पद्य दोनों विधाओंका विभिन्न शैलियोंमें सर्जन हुआ है । प्रायः उनका गद्य सरल भाषा, सुबोध उदाहरण और आकर्षक वर्णनोंसे गूढ विषयोंको भी बोधगम्य बनानेवाला सिद्ध हुआ है । इन विभिन्न दार्शनिक-तात्त्विक-धार्मिक-शैक्षणिक विषयोंका प्रतिपादन मंड़नात्मक शैलीमें किया गया है, और इतर दार्शनिकों द्वारा किये गये सैद्धान्तिक विषयक भ्रामक आक्रमणोंके प्रत्युत्तरमें प्रतिकारात्मक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आक्रोशपूर्ण-खंड़नात्मक शैलीका प्रयोग किया गया है । यथा–**"तीर्थंकर भगवंतकी भक्ति करनेमें तीर्थंकर भगवंत निमित्त कारण है । बिना निमित्त आत्माके उपादान कारण कदेइ फल नहीं देता । तीर्थंकर निमित्तभूत होवें, तब भक्ति उपादान कारण प्रकट होता है । तिससे ही आत्माके सर्वगुण प्रकट होते हैं, तिनसें मोक्ष होता है । जैसे घट होनेमें मिट्टी उपादान कारण है, परंतु बिना कुलाल, चक्र, दंड़, चीवरादि निमित्तके कदापि घट नहीं होता, तैसे ही तीर्थंकर रूप निमित्त कारण बिना आत्माका मोक्ष नहीं हो सकता । इस वास्ते तीर्थंकरकी भक्ति करनी चाहिए ।"[१००] 'जैन तत्त्वादर्श', 'तत्त्व निर्णय प्रासाद', 'अज्ञान तिमिर भास्कर' आदि ग्रन्थोंमें खंड़नात्मक शैलीके प्रयोगोंकी प्रचुरता प्राप्त होती है ।**

श्रीआत्मानंदजीके पद्यमें भी ब्रजभाषाकी मधुरता युक्त परमात्माके प्रति दास्यभाव और सख्यभाव प्ररूपित हुआ है । इनके पद्यकी शैली विशेषतः भावात्मक और उपदेशात्मक रही है, साथ ही कहींकहीं वर्णनात्मक शैलीका भी प्रयोग हुआ है । परमात्मा भक्तिके भाव प्रवाहमें बहते कवीश्वरकी आरतको सुनें-

"तेरे हि चरण कमल को मधुकर, वीरवीर मुख रटित नाम
तुम विरहो, दुःखम पुन आरो, मनबल दुर्बल तनुं कताम.....
मेरे सैयां तू नज़र कर वर्धमान.....
तुम बिन कौन करे मुझ करुणाधाम, करुणा दृगभरी तनुकज निरखो
पामुं पद जिम आतमराम..... मेरे सैयां तू नजर कर वर्धमान....."[१०१]

जिसके जीवनमें संयम और ब्रह्मचर्यके गुणकी प्राप्ति हो जाती है उसे शाश्वत् सुखकी प्राप्ति पलक झपकते होती है–इसे उपदिष्ट करते हैं–निज चेतन (आत्मा) के प्रति–

"धर्मनी बातां दाखाजी म्हारा राज रे चेतनजी थाने.....
धर्म जिणंद बतायाजी म्हारा राज रे.....जेहने आलंबिहे, भवोदधिमें न डुबाया जी म्हारा.....
संयम सत्त्व सुहायाजी म्हारा राज रे.....कांइ ब्रह्म अकिंचन तप शुचि सरल गिनायाजी.....म्हारा....."[१०२]

हिन्दी भाषा सेवा:–तत्कालीन साहित्यके समान ही भाषाकी प्रेषणीयता प्रभावकता और परिमार्जन भी उल्लेख्य है । भाषाका निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेंदुकी कलाके साथ ही प्रगट हुआ । उनके समयमें हिन्दी भाषाका प्रस्तावकाल समाप्त हुआ और स्वरूप स्थिर हुआ । उन्होंने साफ, सुथरी और व्यवस्थित शब्दोंसे ग्रथित सुसंबद्ध वाक्य रचनामें वाङ्मय निर्माण और मार्मिक प्रवचनों द्वारा हिन्दी भाषाका प्रचार किया । मानो उन्होंने मंत्र रट लिया था –

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल । बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटत न हियको शूल ।।"
"निज भाषा, निज धरम, निज मान करम व्यौहार; सबै बढ़ावहु वेगि मिलि कहत पुकार पुकार।"[१०३]

इस प्रकार हिंदी भाषाकी संरचनामें एवं स्वरूप स्थायित्वमें श्रीआत्मानंदजी म.का योगदान भी उल्लेख्य है । श्रीजसवंतराय जैनके मनोभावोंकी अभिव्यक्ति अनुसार –**"उस समय तक धार्मिक ग्रंथ संस्कृत-प्राकृतमें थे, और जो भाषामें अनुवादित थे वे भी पद्यबद्ध-छंदबद्ध थे, क्योंकि गद्य रचनाका प्रचार न था, न कोई स्थिर शैली । महती समस्या थी संस्कृत ग्रन्थोंके स्वाध्यायकी परिपाटी बनाये रखनेकी। इसी कारण पू.श्री आत्मारामजी म.ने संस्कृत-मूल शब्दोंको महत्ता दी और संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंके लिए ऐसे शब्दोंकी भाषामें व्याख्या करनेका क्रम ग्रहण किया । इससे संस्कृत परिपाटीको सम्मान मिला । दैनिक प्रयोगयुक्त तत्त्वचर्चामें संस्कृत शब्द विदित रहें और संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंको उनकी भाषामें ज्ञान-दान मिला । यह सब होते हुए भी उनकी भाषाशैली क्रमबद्ध, साहित्यिक और प्रभावशाली, विषयानुरूप उचित प्रयोग और गद्य होते हुए भी पद्य समान मनोहर और स्वाभाविक प्रवाह लिए हुए है । यथा–'जब सर्व कुछ जगत्स्वरूप परमात्मा रूप है तब तो न कोई पापी है न कोई धर्मी, न कोई ज्ञानी है न कोई अज्ञानी, न तो नर्क है न स्वर्ग, साधु भी नहीं चोर भी नहीं, सत् शास्त्र भी नहीं, मिथ्याशास्त्र भी नहीं; जैसा गौमांसभक्षी तैसा अन्नभक्षी, जैसा स्वभार्यासे कामभोग वैसा ही माता-बहिन-बेटीसे, जैसा चांडाल तैसा ब्राह्मण, जैसा गधा तैसा संन्यासी-सर्व वस्तुका**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण ईश्वर-परमात्मा ही ठहरा तब तो सर्व जगत एक-सम, एक स्वरूप है, दूसरा तो कोई है नहीं।"[१०४]

निष्कर्ष रूपमें हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा और साहित्यको जिस तरह भारतेन्दुजीने उठाया और संवारा तथा प्रचलित किया वैसे ही जैनाचार्य श्रीआत्मानंदजी म.सा.ने भी अपने अंतर्भावोंको प्रकाशित करनेके लिए हिंदीका आंचल पकड़ा, उसे जगाया-सजाया-विभूषित करके प्रसारित किया ।

परिसमाप्ति–दिग्गज विद्वद्वर्य और अनुपम फनकार श्रीआत्मानंदजी म.सा.के व्यक्तित्वके संगीतमें श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.का सत्याभियान, महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.सदृश दार्शनिकता एवं अनवरत पुरुषार्थ, श्री आनंदघनजी म.का अवधुत्व एवं परमात्म भक्तिकी मस्ती और श्री चिदानंदजी म.की आत्मरमणता, संत तुलसीदासजीका संपूर्ण समर्पणभाव, श्री दयानंदजीकी खुमारी युक्त धर्मरक्षाका पुरुषार्थ तो श्री भारतेन्दुजीकी तरह ध्येयके प्रति एकनिष्ठ लगनके सप्त सुरोंका संधान अनुभूत होता है; तो उनकी कृतियोंके चित्रफलक पर श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.सदृश तात्त्विक सैद्धान्तिकता, महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.समान अकाट्य तार्किकता, श्री आनंदघनजी म.की परमात्म प्रीतिकी अजस्रता, श्री चिदानंदजी म.तुल्य भावसभर भक्ति वत्सल हृदय, श्री तुलसीदासकी भाँति लोकमंगलकी भावना, श्री दयानंदजीकी समाजोत्थान और रूढिवाद विरुद्ध मुकाबला एवं श्री भारतेंदुजीकी साहित्यिक सेवाके सप्तरंगी इन्द्रधनुषी आभासे सुशोभित हो रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं ॐ नमः

पर्व पंचम्

उपसंहार

"कीर्ति सितांशु सुभगा भुवि पोस्फुरित;
यस्यानघं चरीकरिति मनो जनानम् ।
आनन्दापूर्वविजयान्तग सूरिभर्तु;
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।" [१].

अवनि-से अनादिकालीन, अम्बर-से अनंत, और अम्बुधि-से अगाध, इस असार संसारमें प्रतिसमय जन्म-मरणका अरहट्ट अविरत चल रहा है । कालचक्रकी चक्कीसे बचना नामुमकीन है, अतः नवागंतुककी बिदाई (जन्म पश्चात् मृत्यु)भी आगमन तुल्य ही निश्चित ही है; लेकिन बिदा होते होते अपनी जो लकीर महापुरुषों द्वारा अंकित होती है, उन चरण चिह्नोंको संसार आदर-सम्मानयुक्त निगाहोंसे निहारता रहता है । आदित्यका उदय हों या दीपककी रोशनी; बादलोंकी बरखा हों या गिरिकंदराके निर्झरोंका कलनाद; वृक्षोंका छाया प्रदान हों या फल प्रदान-निरन्तर परोपकारार्थलीन निःसर्गके ये साथी मानव जगत समक्ष निजानंदकी मस्तीकी फुहारोंको संप्रेषित करते रहते हैं । ठीक उसी प्रकार पूर्वांकित सीमाचिह्नोंकी प्रतिमूर्ति सदृश, वे **"अलंकार भुवः"**-युगोत्तम महापुरुष भी **"परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।"**-की उदात्त भावनाको संजोये हुए कालजयी या मृत्युंजयीकी खुमारीके साथ जीते तो है जिंदादिली से, मृत्युको भी महोत्सव बनाकर मरने पर भी अमरत्व प्राप्त कर जाते हैं और अमर जीवनकी सार्थक कहानीसे संसारको सदैव प्रेरणा करते रहते हैं । ऐसे मानव-महामानव-परममानवोंकी प्रसूता बहुरत्ना वसुंधरा समय समय पर ऐसे नरपुंगवोंकी भेंट द्वारा संसारको समृद्ध एवं समलंकृत करती रहती है ।

विश्व विश्रुत विरल विभूती :- विश्ववंद्य, सूरिपुरंदर, लब्ध प्रतिष्ठ कर्मयोगी, तपागच्छ गगनमणि श्री **आत्मानंदजीम.सा.का जिनशासनमें आगमन** अर्थात् अमासकी कज्जलमयी कालरात्रिके अनंतर सर्वतोमुखी प्रतिभाके आदित्यकी उज्जवल रश्मियोंसे **जिनशासनोन्नतिके यशस्वी प्रभातका प्रारम्भ और उनका जिनशासनसे गमन या उनके** तेजस्वी जीवन-कवनकी जिनशासनसे कटौती अर्थात **आधुनिक इतिहासमें महत्तम न्यूनताका अहसास; उनका साहित्य सृजन** अर्थात् कुमतवादी और उनकी कुमान्यताओंके विरुद्ध **अकाट्य, युक्तियुक्त तर्क प्रमाणोंका लहराता समुद्र-साथही** साथ बहुश्रुतताकी सर्वांगिण लोकमंगलके लिए **धार्मिक एवं सामाजिक गंगा यमुनाकी धारायें; तथा उनकी न्यौच्छावरी** अर्थात् जैनधर्मका **ध्रुवाधार स्तंभ** एवं जिनमंदिर-जिनप्रतिमा और उनके पूजनकी जीवंत प्ररूपणाका **ज्वलंत इतिहास; उनका जीवन** अर्थात् सत्यकी गवेषणा-संशोधन-प्ररूपणा, सत्यका प्रकाश और विकास; सत्यके विचार-आचार-प्रचारके संवाहक पूजारीका जीवन, सत्यके संगी-साथी-राही, सत्यके विजेता-प्रणेताका जीवन । *इस प्रकार सत्यनिष्ठ श्री आत्मानंदजीम.सा.की अंतरंग आत्मा सत्यसे लबालब भरी थी, तो बहिरंग आत्माकी चारों ओर सत्यके सूर प्रवाहित थे; सत्यकी ही स्वरलहरी एवं लय और ताल पर केवल सत्यका ही नर्तन था ।*

सहज जन्मजात गुणोंके समीकरण रूप सरलता, सहजता, उदारता, स्वाभिमान, साहसिकता, नीड़रता, निश्छलता, वीरता, कार्यक्षम श्रमशीलताने **उनके उच्च चारित्रिक गठनको;** धैर्य, गांभीर्य, चातुर्य, तीक्ष्णमेधा, तीव्रस्मरण शक्ति, विशद एवं गहन अध्ययन, निःस्पृहता, निरभिमान, विनय, वात्सल्य, तपशीलता, अलौकिक प्रभावयुक्त-भीष्म ब्रह्मचारी तुल्य नैष्ठिक ब्रह्मचार्यादि गुणोंने **उनके श्रामण्यको,** दृढ़ संकल्पबल, दीर्घदर्शिता, अनुशासन प्रियता, समर्थ क्रान्तिकारी पौरुषत्व, ओजस्वी वक्तृत्व, बेजोड़ तार्किकता, सर्व दर्शनोंकी विशद एवं गहन शास्त्राज्ञता, समयज्ञता, प्रगल्भ असाधारण ज्ञान प्रतिभा आदि गुणोंने **उनकी प्रखर समाज सुधारकता**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं मंझे हुए अनुभवी धर्म नेतृत्वको; मेघ-सी गंभीर-गर्जीत-सुरीली वाणी, देव सदृश अनुपम काया, सिद्धहस्त लेखन, उत्कृष्ट-कुशाग्र कवित्व, संगीतज्ञता, चित्रकलात्मकता, विद्यामंत्रधारक सिद्धियाँ, श्री जिनेश्वर देव एवं जिनशासनके प्रति संपूर्ण समर्पण भावादि गुणोंने **उनके समग्र जीवनको** अप्रतीम एवं अनूठे साजोंकी सज़ावट प्रदान करके सुशोभित किया है । श्री आत्मानंदजीम.सा.आचार्यत्वकी अष्ट संपदके स्वामी, षष्ठ-त्रिंशति गुणधामी; समाजमें व्याप्त अज्ञानयुक्त संकीर्णताके कारण प्रचलित कुरूढ़ियाँ, कुरिवाज, कुरीतियोंका बिछौना गोल करनेवाले और शिक्षा प्रचार द्वारा सामाजिक नवचेतनाको संचारितकर्ता एक जनरेटर तुल्य, अनेक भव्यजीवोंके प्रेरणा स्रोतके रूपमें अपनी अमर कहानी छोड़ गये हैं । *आपके कर-कमलोंसे वपन किया और समस्त जीवनामृतसे अभिसिंचित संविज्ञ शाखीय जैनधर्मका उपवन लहलहाते द्रुमदलोंसे सुशोभित रहेगा, जिसके तरोताज़ा-मिष्ट फल जैन समाजको दीर्घकाल पर्यंत सदैव प्राप्त होते रहेंगें ।*

जीवनाकाशका विहंगावलोकन :— ऐसे परमोपकारी, शेर-ए-पंजाब, पंजाब देशोद्धारक श्री आत्मानंदजीम.के जीवनाकाशके तारक मंडल-से वैविध्यपूर्ण प्रसंगोंके विहंगावलोकनके समय हमारे नयनपथको प्रकाशित करता है अनेक गुण-रश्मियोंका आलोक, जिनमेंसे यत्किंचित्का आह्लाद अनुभूत करें । प्रतिदिन तीनसौ श्लोक हृदयस्थकर्त्री **तीव्रयाददास्त;** यथावसर-यथोचित प्रत्युत्तर द्वारा आगंतुक जिज्ञासुओंको परिपूर्ण संतुष्ट करनेवाली **प्रत्युत्पन्नमतियुक्त तीक्ष्ण मेधा;** शंकरके तृतीय नेत्र-सा व्यवहार करनेवाले पूज्यजी अमरसिंहजीकी रास्तेमें भेंट होने पर प्रेमपूर्वक विधिवत् वंदना करनेवाले और एक श्वासोच्छ्वासकी क्रियाके अतिरिक्त प्रत्येक कार्योंमें गुर्वाज्ञाको ही प्रमाण वा आधार—के प्रतिपादकके रूपमें प्रकाशित है **उनका विनय-गुरु-भक्ति आदि;** बचपनमें धाड़पाडुओंसे घरकी रक्षा करनेवाले 'दित्ता' द्वारा आजीवन केवल सत्यके सहारे ही समस्त स्थानकवासी समाजसे विरोध मोलकर और मूर्तिपूजा विरोधी-धर्मलूटेरोंसे एक-अकेले द्वारा जिनशासनकी रक्षा करनेमें **उनकी साहसिकता-वीरता-नीड़रताका विज्ञापन** दृग्गोचर होता है । आराधना-साधना, ज्ञान-ध्यान, समाजकल्याण या शासनकी आन और शान, गुरुभक्ति या शिष्योंके आत्मिक सुधार-शिक्षणादि जीवनके प्रत्येक मोड़-प्रत्येक कदम-प्रत्येक पलको अनुशासन बद्ध बनाने हेतु सविशेष सतर्कता बरतनेवाले **अनुशासन प्रिय** श्री आत्मानंदजीम.द्वारा भारतवर्षके समस्त जैनसंघों द्वारा यतियोंके वर्चस्व भंग और जिनशासनकी प्रभावनाके प्रयोजनसे प्रदान किये गये **'आचार्यपद'काभी** केवल श्री संघके आदार-सम्मान और स्वकर्तव्यके भाव रूपमें स्वीकार-**आचार्य प्रवरश्रीकी निस्पृहता, निरभिमान और कर्तव्यनिष्ठाका परिचायक है।** साहित्य सेवार्थ ज्ञानभंड़ारोंके जीर्णोद्धार, ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करवानेकी और व्यवस्था करवानेकी प्रेरणा देनेवाले **दीर्घदर्शी, युगप्रधान आचार्य** प्रवरश्री द्वारा चिरकाल पर्यंत स्थायी प्रभाव छोड़ जानेवाले विशाल साहित्य सृजनमें-कथिरसे कंचन-जैसे परमार्थोंकी उद्घाटक **नवोन्मेषशालीनी बुद्धि प्रतिभाके** दर्शन होते हैं; तो 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' या 'जैन तत्त्वादर्श' जैसी रचनाओमें हमें **उनकी बहुश्रुतता-सर्वदर्शन शास्त्रज्ञताकी** अभिज्ञता प्राप्त होती है। तटस्थ विचारक पं.श्री सुखलालजीके शब्दोमें **"महोपाध्यायजी श्री यशोविजयजीम.के पश्चात् प्रथम बहुश्रुतज्ञानी विद्वान श्री आत्मानंदजीम.सा.थे ।"** तत्कालीन साधु संस्थामें **सामाजिक सुधारकके** रूपमें अनेक सामाजिक समस्याओं पर ध्यान परिलक्षित करके समाजोन्नतिके अनेक कार्य सम्पन्न करवानेवाले **समर्थक्रान्तिकारी पौरुषत्वधारी** आचार्य प्रवरश्रीने श्रीजिनशासनकी उन्नति और जैनधर्म प्रचार-प्रसारके महदुद्देश्यसे श्री वीरचंदजी गांधीको चिकागो-अमरिका भेजकर विश्व धर्ममंच पर जैनधर्मकी बोलबाला करवानेवाले **समयज्ञ संतपुरुषका** नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे अंकित है । अंबालाके श्री जिनमंदिर प्रतिष्ठावसरकी चिंताजन्य (घनेबादल घिरनेवाली) परिस्थितिमें **मुस्लिम युवानोंकी इबादत-"या खुदा महरे कर, यह काम बाबा आत्मारामका है-जिसने हिंदु-मुस्लिम सबको एक निगाहसे देखा है"- उनकी अनूठी लोकप्रियताकी निशानी है ।** अहमदाबादसे विहारके समय विलंबसे आनेवाले नगरशेठ या बड़ौदासे विहार करनेके निर्णय पश्चात् कलकत्ताके रईस बाबू बद्रीदासकी विनतीकी परवाह न करके अपने ही निर्धारमें निश्चल रहनेकी प्रवृत्ति उनकी **समयकी पाबंदी और स्वतंत्र-अड़ग निश्चय शक्तिको** प्रस्तुत करती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मलग्न कुंडलीकी प्रामाणिकता :— ये और ऐसे ही धैर्य-गांभीर्य-चातुर्य-नम्रता-दृढ़संकल्पबल-प्रगल्भ असाधारण ज्ञानादि अनेकानेक गुणालंकृत आचार्य भगवंतकी जन्म कुंडली पर, ज्योतिष्चक्रके परिवेशमें दृष्टिक्षेप करनेसे हमें अभिज्ञात होता है-उनके समस्त-दृश्यादृश्य-जीवन-दृश्योंका चित्रांकन; अथवा जैन सिद्धान्तानुसार पूर्वोपार्जित कर्मसंचयोंके विपाकोदयकालीन विविधरंगी, विस्मयकारी आलेखनके रूपमें उनकी जीवन शोभाका प्रदर्शन! सामान्यतः ग्रहशून्य केन्द्रवाली-अत्यन्त सर्व साधारण दृश्यमान उस जन्म लग्न कुंडलीको उत्कृष्ट असाधारणत्व प्रदान करनेवाला लग्न है—कुंभ; राशि है—मेष; ग्रह है—योगकारक उच्चका शुक्र, बलवान सूर्य, उच्चका गुरु; सम्बन्ध हैं—शनि-चंद्रकी प्रतियुति, शुक्र-सूर्य एवं मंगल-गुरुकी युति, ग्रहोंका परस्पर या एकतर दृष्टिसंबंधोंका प्रभाव; कुंडली स्थित विशिष्ट योग-रचना हैं-शंखयोग, नीचभंग राजयोग, गज-केसरीयोग, परिवर्तन योग, पारिजात योग, केदार योग, उपचय योग, नव-पंचम योग आदि । इनके अतिरिक्त भाग्यभुवनमें केतुकी शनिके साथ युति संबंध पितृसुखसे वंचित करता है, तो भाग्येश योगकारक शुक्र उच्चका बनकर सूर्य-बुधकी युतिसंबंधसे युक्त धनभुवनमें बिराजित होनेसे भाग्यदेवी विजयमालारोपणके लिए सदैव तत्पर रही हैं । इस प्रकार आपके जीवनके कार्य-कलापोंका प्रकाश, ज्योतिष शास्त्रके परिवेशमें उनकी जन्म-लग्न-कुंडलीके अध्ययनसे उस प्राप्त कुंडलीकी सत्यताको प्रमाणित करता है ।

जैनाचार्योंका परिचय-पत्र :— जिनपद तुल्य, साम्प्रतकालमें जैनधर्मका सर्वश्रेष्ठ-सम्माननीय-श्रद्धा, भक्ति, आदरका अनन्य स्थान-पंच परमेष्ठिमें मध्य स्थान स्थित; जिम्मेदारी युक्त जिनशासनके वफादार सेवक; पंचमहाव्रतधारी-त्रिकरण योगसे (इन्द्रिय दमन पूर्वक) सर्व सावद्य प्रवृत्तिके परिहारी; सकल विश्ववात्सल्य वारिधि-विश्वशांतिके अग्रदूत-करुणासिंधु-जीवमात्रके-जगज्जनोंके तारक-तरणि; सदाचारी, समभाव समुपासक, कलुषित कषायके त्यागी, विशिष्ट सद्गुणोंसे विभूषित, विविध देशाचार विज्ञ, विभिन्न धर्मके-भिन्नभिन्न भाषाकीय, वैविध्यपूर्ण वाङ्मयके अभिज्ञाता, स्व-पर सिद्धान्तयुक्त जिनवाणीके तात्त्विक बोधमयी प्रवचन पीयूषधाराके प्रवाहक-प्रवचन **प्रभावक श्री वज्रस्वामी सदृश;** संवेग-निर्वेदजनक प्रशस्त धार्मिक कहानियोंसे ओतप्रोत धर्मकथा द्वारा शासन प्रभावना करनेवाले-**धर्मकथा प्रभावक- श्री सर्वज्ञ सूरि, श्री नंदिषेण सूरी आदि** सरिखे; सर्वज्ञ-सर्वदा विजय प्रदायिनी, अद्वितीय वादशक्ति द्वारा सर्वत्र-सर्वसे विजय प्रापक-**वादि प्रभावक-श्री मल्लवादीदेव सूरी, वृद्धवादि सूरि आदिके** समान; सुनिश्चित-अद्भूत निमित्तज्ञान द्वारा, प्रसंगानुसार उस ज्ञान प्रकाशसे शासन प्रभावना **कर्ता-निमित्त प्रभावक श्री भद्रबाहु स्वामी तुल्य;** प्रशंसापात्र, आशंसारहित, अप्रमत्त-तपःशील-**तपप्रभावक-श्री काष्ठमुनि, धन्ना अणगारादि** जैसे; विविध और वैचित्र्यता सम्पन्न विद्याधारी-**विद्या प्रभावक श्री हेमचंद्राचार्य आदिके** समकक्ष; अनेक सामान्य तथा असामान्य लब्धि-शक्ति सम्पन्न, अनेक **सिद्धिधारी-सिद्धि प्रभावक-श्री पादलिप्तसूरिजीकी** तरह; उत्तमोत्तम साहित्य सर्जन प्रतिभा द्वारा काव्यादि अनेकविध वाङ्मय रचयिता **कवि प्रभावक-श्री सिद्धसेन दिवाकरजी, श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीके** मानिंद अनेक प्रभावक जैनाचार्यों द्वारा जिनशासनके नभांचलने दीप्र-ज्योति-सा देदीप्यमान तेज़ प्राप्त किया है जिनमें प्रमुखरूपसे प्रायः साहित्यिक प्रभावकोंकी अग्रीमता एवं बहुलता रही हैं ।

युग प्रभावक श्री आत्मानंदजीम.सा.के जीवन-कवनसे भी इन **सर्वतोमुखी अष्ट प्रभावक गुण सम्पन्नता** झलकती है। उनके प्रभावशाली-आकर्षण प्रवचनों द्वारा तो अनेकानेक जैन-जैनेतर श्रोताओंके जीवन उन्नतिको प्राप्त हुए हैं । सरल एवं यथायोग्य धार्मिक सिद्धान्तानुरूप अनेक कथाओंको, रसमय शैलीमें अपनी मधुर वाणीसे प्रेषित करके आबाल-वृद्ध, साक्षर-निरक्षर सर्वके योग्य उपदेशधारा बहानेवाले धर्मकथा प्रभावक श्री आत्मानंदजीम.सा.को अद्यावधि लोग याद करते हैं । षट्दर्शनके-सर्व जैन-जैनेतर वादियोंको अकाट्य एवं बेजोड़ तर्कशक्ति द्वारा, प्रमाण-नयकी स्याद्वाद-अनेकान्तवाद शैलीके सहयोगसे निरुत्तर करके जैनधर्मकी विजय-वैजयन्ती लहरानेवाले उन वादी-प्रभावकके सकल वाङ्मयमें भी उसी प्रतिभाके दर्शन होते हैं । विशद विद्याधारी, उन तपोबली महात्माके प्रकर्ष पुण्य और मंत्रादि सिद्धियोंके सामर्थ्यसे अंबाला शहरके श्री जिनमंदिरकी प्रतिष्ठा या बिकानेरके नवयुवककी दीक्षादि अनेक असंभवितताओंको संभाव्य-सत्यमें पलटनेवाले शासन प्रभावनाके अनेक कार्य सम्पन्न हुए; जिनके द्वारा उन्होंने लोकप्रियताके शिखर पर स्थापित कलश सदृश सम्मान अर्जित किया था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसालंकार, प्रतीक-बिम्ब-छंद, राग-रागिणीके वैविध्यसाजकी सजावटसे युक्त दार्शनिक-सैद्धान्तिक एवं क्रियानुष्ठानादिके अनुरूप, साथही परमात्माकी परम भक्ति भरपूर, भावात्मक-मार्मिक और हृदय स्पर्शी, सुंदर और रसीले काव्य-पद्य साहित्य तथा प्रभावोत्पादक-नवोन्मेषशालीनी बुद्धि प्रतिभाके परिपाकको संप्रेषणीय रूपमें, प्रतिपादनात्मक अथवा खंड़न-मंड़न शैलीमें, तो कभी-कहीं प्रश्नोत्तर रूपमें षड्दर्शन और विशिष्ट रूपसे जैन दर्शनकी अनेकान्तिक धार्मिक-तार्किक-तात्त्विक, ऐतिहासिक या वैज्ञानिक प्ररूपणा करके जिनशासनकी उत्तमता, अनन्यता, अद्वितीयतादि सिद्ध करनेवाले सरल-मौलिक गद्य साहित्यकी रचना करके कवि प्रभावककी मानिंद अपना स्थान अष्ट प्रभावकके रूपमें स्थिर करनेवाले आचार्य भगवंतके अनुपम साहित्य द्वारा सम्पन्न हिन्दी जैन साहित्यका यहाँ सिंहावलोकन करवायेंगें ।

श्री आत्मानंदजीम.सा.का हिन्दी जैन साहित्यमें महत्त्वपूर्ण योगदान :--- पूर्वाचार्यों द्वारा रचित और संगृहित वाङ्मयकी विपुलताका जो चित्रांकन पं.श्री लालचंद्र गांधी(प्राच्य विद्यामंदिर-बड़ौदा) द्वारा किया गया है-दृष्टव्य है; **"प्रभावक ज्योतिर्धर जैनाचार्यों द्वारा संगृहित पाटन, जैसलमेर, खंभात, बड़ौदादिके प्राचीन पुस्तक भंड़ारके निरीक्षणसे ज्ञात होता है, कि उनमें अनेक विध विषयोंके, विविध भाषाओंमें अप्रसिद्ध ग्रन्थ समूह इतने परिमाणमें हैं-जिनमें कितने ही ग्रन्थ अत्युपयोगी, अलभ्य या दुर्लभ, जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें हैं-उनका यथा योग्य और श्लाघनीय प्रकाशन करने हेतु शतावधि विद्वान एक शतब्दी पर्यंत कार्यरत रहें और श्रीमान लक्ष्मीपतियों द्वारा क्रोड़ों-अरबों परिमाण द्रव्य व्यय हों, फिर भी संपूर्ण संग्रहका प्रकाशन होना शायद ही संभव बनें ।"**[२]- जैन साहित्यके इस विशाल अगाध महासागरमें प्राचीन भाषायें–मागधी, अर्धमागधी, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि; राष्ट्रभाषा–हिन्दी(खड़ीबोली); प्रादेशिक भाषायें-ब्रज, अवधि, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, पंजाबी, उर्दू आदि; विदेशी भाषा–अंग्रेजी आदि भाषाओंमें प्रवाहित आध्यात्मिक क्षेत्रीय दार्शनिक-सैद्धान्तिक (तत्त्वत्रयी, आत्मिक विकासावस्थाके गुणस्थानक क्रमारोहणादि)-परमात्म भक्ति-परमात्माके विशिष्ट, अचिंत्य आत्मिक स्वरूपालेखनादि; जीवन व्यवहार क्षेत्रके नीति विषयक, राजनीति विषयक, इतिहास विषयकादि; संसार(विश्व) स्वरूप विषयक भूगोल-खगोल-गणीत, षट्द्रव्यान्तर्गत विविध विज्ञान, विशिष्ट कर्म-विज्ञानादि प्रायःसर्व विषयोंको समाहित कर्ता; साथही आधि-व्याधि-उपाधि रूप कर्म व्यवस्थाके निष्कर्ष रूप-सर्व कर्म क्षयावस्था अर्थात् मोक्षकी स्थिति-स्थान-लक्षण-स्वरूपादिको लक्ष्यकर्ता साहित्यिक प्रवाहोंका-षड्रस भोजन तुल्य शुद्ध-सुंदर-स्वादु, स्वस्थ और शिवंकर आस्वाद अथवा विविधरंगी, मनभावन, लुभावने आकर्षक साहित्यांकनोंका आह्लाद स्वयंकी ज्ञेय-हेय-उपादेयताको निर्घोषित करते हुए जगज्जनोंके लिए पथप्रदर्शन कर रहे हैं ।

साहित्यका धर्मसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, अतःधार्मिक साहित्यके अध्ययन हेतु अध्येताका तद्विषयक ज्ञाता होना आवश्यक है । जैन हिन्दी साहित्य क्रीड़ांगणमें आचार्य भगवंतके वाणी विलासका अवलोकन करनेसे हमें अनुभव होता है कि साहित्य सृजनके समय आपकी निगाह समक्ष रचना-उद्देश्यके निम्नांकित चित्रांकन प्रेरणा स्रोत बने होंगें-जो उनकी रचनाओंसे भी स्पष्ट होते हैं-*संस्कृत-प्राकृतके अनभिज्ञ जैनधर्म जिज्ञासुओंके लिए स्वधर्मका सत्य स्वरूप प्रकट करके तात्त्विक बोध प्रदान करते हुए प्रचलित भ्रान्तियोंके निवारण; निश्चय और व्यवहार मार्गका संतुलन करते हुए उनका प्रचार; पाश्चात्य सांस्कृतिक प्रभावके प्रतिरोध और भारतीय संस्कृतिमें आस्था व अनुरागका उद्भव; जैनधर्म पर होनेवाले आक्षेपोंका परिहार करके जैन सिद्धान्तोंकी एवं मूर्तिपूजादि अनेक अनुष्ठानोंकी आगमिक प्रमाण-युक्ति द्वारा सिद्धि; सम्यक् दृष्टिसे सर्वधर्मोंका निष्पक्षतासे तुलनात्मक अध्ययन द्वारा-देश विदेशमें उत्तमोत्तम-उपादेय धर्मके संदेशको प्रसारना ।*

इन इष्ट हेतु सिद्धिके लिए आपने अपने साहित्यमें सर्वधर्म एवं दर्शनके सिद्धान्तोंका परीक्षण करके सर्वधर्मके शास्त्राधारोंको उल्लिखित करते हुए आत्माका अस्तित्व, पुनर्जन्म, आत्माका स्वकर्मानुसार स्वतः सुखदुःखके भोक्ता बनना याने कर्मका कर्ता(सर्जक) और भोक्ता(विसर्जक) बनना, कर्मके सृजन-विसर्जनकी प्रक्रियायें अर्थात् कर्मविज्ञान; आत्माकी मोक्ष पर्यंत विकासावस्थायें मोक्षकी स्थिति-स्वरूपादिकी प्ररूपणा करते हुए 'मोक्ष' विषयक निर्णय; देव-गुरु-धर्म (साधु धर्म-श्रावकधर्म)का स्वरूप, श्रावकके (गृहस्थके) सोलह संस्कार; सृष्टिकी स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धता अर्थात् जगतका अनादि-अनंत स्वरूप, एकेश्वरवाद-अद्वैतवाद, ईश्वरका अवतारवाद, ईश्वरकी सर्वशक्तिमानता-जगत्कर्तुत्वादि ईश्वर विषयक विवेचन; जैनोंका अनीश्वरवाद एवं जैनोंकी मूर्तिपूजाका विधि-विधान-स्वरूपादिका वर्णन; जैन एवं जैनेतर धर्मोंका स्वरूप-सिद्धान्त-देव-गुरुविषयक मान्यतायें; वेद रचनाओंकी पौरुषेयता-आर्यवेद-अनार्यवेद; विश्वके सर्व धर्मोंसे जैनधर्मकी तुलना; धर्माध्ययनका उद्देश्य और प्रविधि एवं निष्कर्षादि अनेकानेक विषयोंका विस्तृत-विश्लेषित विवेचन और विवरण किया है ।

मूल जैनागम साहित्यकी नींव प्राकृत भाषा है, तो उसपर निर्मित भव्य भुवन है संस्कृत साहित्य । जैसे नींवसे महालय सर्वांगिण स्वरूपमें श्रेष्ठ-विशद-आकर्षक-नयनाभिराम होता है, वैसे ही मूल जैनागमोंके प्राकृत साहित्याधारित, संस्कृत साहित्यका विशाल जैन वाङ्मय प्रत्येक विभिन्न विषयोंको विशिष्ट रूपमें व्याख्यायित करके मधुर पेशलताके साथ मनमोहक रूपमें लोकप्रिय बनकर जनताके हृदय सिहांसन पर आसीन हुआ है। उसे ही नयी सजावट देनेवाले प्रादेशिक भाषा साहित्यकी अहमियत भी कम प्रशंसनीय नहीं है । नूतन सज्जाके इस अभियानमें हिन्दी खड़ीबोलीके जैन साहित्यका विशिष्ट परिचय अत्र दृष्टव्य है ।

मध्यकालमें हिन्दी-गुजराती-मारवाड़ी-ब्रजादि भाषायें जब अपने अपने स्वरूपको संवारते हुए स्वस्थ हो रहीं थीं, तब उनमें प्राप्त सामीप्य, सादृश्य और साधर्म्य आश्चर्यकारी था, जिसका असर तत्कालीन महोपाध्याय श्री यशोविजयजीम.सा., श्री वीर विजयजीम., श्री चिदानंदजीम., श्री आनंदघनजीम. आदि जैन साहित्यकारोंमें भी दृश्यमान होता है । तदनन्तर श्री आत्मानंदजीम.के समय तक आते आते उसमें कुछ सम्मार्जित साहित्यिक रूप प्राप्त होता है, जो भारतेन्दुयुगाभिधानसे प्रसिद्ध हैं । यहाँ तक साहित्यकारोंका लक्ष्य केवल धार्मिक सिद्धान्तोंकी प्ररूपणा-अथवा व्याख्यायें करना, योगाभ्यासादिका विधान, न्याय-तर्कादि साहित्य-पर नव्यन्यायादिके परिवेशमें नूतन साहित्य गठन, परमात्माकी विविध प्रकारसे भक्ति आदिकी रचनाओंके प्रति था । सामाजिक-जन सामान्यके प्रश्नों, समस्याओं और उलझनोंका संकेत भी नहीं मिलता है । बेशक महोपाध्यायजी श्री यशोविजयजीम.ने अपने साहित्यमें तत्कालीन अव्यवस्था और अंधेरके लिए चिंता प्रदर्शित की है, लेकिन उनमें भी प्राधान्य तो धार्मिक रूपमें जैन समाजके उपेक्षा भावको ही मिला है । भारतेन्दु युगीन देनके प्रभावसे और स्वयंकी परोपकारार्थ, तीक्ष्ण मेधासे स्वतंत्र विचारधाराके फलस्वरूप श्री आत्मानंदजीम.सा.के साहित्यमें जन-जीवनके स्पर्शका अनुभव होता है । युगका परिवेश उन्हें उस ओर आकर्षित कर गया जिसने उनके साहित्यमें धर्मादि विषय निरूपणके साथ सामाजिकता, ऐतिहासिकता, भौगोलिक या वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यको उजागर करवाया । श्री सिद्धसेन दिवाकरजीम.सा.ने जैसे युगानुरूप संस्कृत भाषामें न्याय एवं तर्कके शास्त्रीय अध्ययनको अग्रीमता देते हुए बहुधा उसी भाषामें उन नूतन विषयक साहित्य रचना करके एक नया अभिगम स्थापित किया था, उसी तरह उनके अनुगामी श्री आत्मानंदजीम.सा.ने भी अपने युगानुरूप हिन्दी भाषामें धार्मिकादिके साथ ऐतिहासिक या सामाजिकादि विषयोंसे संलग्न जैन वाङ्मय रच कर, विशेष रूपसे हिन्दी गद्य साहित्यको समृद्ध करते हुए हिन्दीभाषी जिज्ञासुओंके लिए नया पथप्रदर्शन करके परमोपकार किया है। श्री सुशीलजीके अभिमतसे-**"सच्चे आत्मारामजीके दर्शन आप उनके ग्रन्थोंमें ही कर सकते हैं, जिनसे उनके अभ्यास, परिश्रम, प्रतिभाका देदीप्यमान आलोक प्रसारित होता है । उस आत्मिक तेजको अक्षर रूपमें प्रकाशमान करनेवाले उनके ये ग्रन्थ मौन रहते हुए भी सदैव अमर रहनेवाली उनकी मुखरित-जीवंत प्रतिमायें हैं ।"**[3]

उत्तर मध्यकालीन, उस अज्ञानांधकारके युगमें-प्रायःसंपूर्ण जैन जगतमें, महोपाध्याय श्री यशोविजयजीम.के परवर्तियोंमें, श्रुताभ्यास प्रायःठप-,सा हो गया था, तब केवल एक तेजस्वी तारक-श्री आत्मानंदजीम.-ही टिमटिमाते हुए नयनपथमें आते हैं; जिन्होंने अड़ोल आस्था और तीव्र जिनशासन अनुरागसे, बुद्धि और विचारशीलताके विशिष्ट उपयोगसे सर्वांगिण-संपूर्ण-ज्ञान प्राप्तिका अथक पुरुषार्थ किया । जब जैन साहित्य परंपरामें ऐतिहासिक और वैज्ञानिक परीक्षण प्रविधियोंका किसीको अंदाज़ भी न था, ऐसे समयमें आचार्य प्रवरश्रीने आश्चर्यकारी स्मरण शक्तिसे जैन-जैनेतर वाङ्मयके विशाल-गहन-गंभीर वाचन; पदार्थके हार्द पर्यंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुंचनेमें दक्ष, तीक्ष्ण, विश्लेषणात्मक, चिन्तन-मनन शक्ति युक्त पैनी दृष्टिसे अध्ययन; शिलालेख, ताम्रपत्रादिके सूक्ष्म निरीक्षण; मनोरम प्रत्युत्पन्न मतिसे प्रश्नकर्ताको संतोषजन्य प्रसन्नतापूर्वक प्रत्युत्तर प्रदान करनेवाली प्रतिभा; सत्यनिष्ठ क्षत्रियोचित क्रान्तिकारी व्यक्तित्वका प्रताप; देशकालोचित विद्यासमृद्धि अर्थात् भूगोल-भूस्तर शास्त्रीय-वैज्ञानिक आदि तथ्योंको प्रामाणित रूपमें उद्घाटित करनेवाले, नूतन संशोधन एवं नूतन दृष्टियोंके उद्धरण-उदाहरणादिके परिप्रेक्ष्यमें उभारकर अनागत युगमें जैनशासनके स्थिरत्व और वर्द्धमानत्व हेतु जिम्मेदारियोंकी परख करते हुए जैनधर्म और दर्शन-सिद्धान्त और साहित्यका महत्त्व, प्रचीनता(शाश्वतता), और एकवाक्यता स्थापित की है । खंड़न-मंड़नके उस युगमें सर्व दार्शनिक आक्रमणोंका मुकाबला करनेके लिए मृत और जीवंत, जैन और जैनेतर, आगमिक साहित्यिक प्रमाण-शास्त्र संदर्भोंके समूहोंके प्रचंड़ संग्रह और लाजवाब तार्किकताका प्रयोग उनके धार्मिकादि पूर्ववर्ती एवं समसामयिक ज्ञानाध्ययनके परिचयका द्योतक है, जो उनकी प्रशस्त साहित्यसेवा और समर्थ साहित्यिक प्रभ-विष्णुताको स्पष्ट करता है । लाला बाबूरामके शब्दोमें-**"उनकी रचनायें जितनी विशाल, विद्वत्तापूर्ण और दार्शनिक हैं, उतनी ही सीधी-सादी-सरल और मनोरंजक भी है ।"** [४].

गद्य साहित्य और उसका महत्व :--- श्री आत्मानंदजीम.सा.के विशद वाङ्मयके बृहदंशको आवृत्त किया है उनके गद्य साहित्यने; जिसमें प्रतिपादित विषय पूर्णतः धार्मिक और दार्शनिक होने पर भी दार्शनिकताकी क्लिष्टता-नीरसता-गहन गंभीरतादि कलंकोंसे मुक्त, सरल और स्वच्छ शैलीमें, सुबोध उदाहरण, आकर्षण एवं मनोरंजक वर्णन द्वारा लोकभोग्य और लोकप्रिय बन चूके हैं; ऐसे ही उसमें धार्मिक जड़ता एवं एकांगी कट्टरताको छोड़कर उत्तमोत्तम-बौद्धिक परीक्षणमें अव्वल श्रेणि प्राप्त, लचीला तथा प्रशिक्षुको आत्मिक या जैविक उद्धारमें उपयुक्त हो सके वैसा दिलकश और आकर्षक है । पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाके मुहावरें-लोकोक्तियाँ आदिके यथेष्ट उपयोगने उनकी रचनाओंको साहित्यिक प्रांजलता बक्ष दी हैं । **"उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें जैन मान्यताओंका युक्तिपूर्वक, वैज्ञानिक पद्धतिसे समर्थन किया है..... (ठीक उसी प्रकार) धार्मिक-पौराणिक-आगमिक-ऐतिहासिक-भौगोलिक-भूस्तरीय आदि विषयक प्ररूपणायेंभी की गई हैं ।"** [५]. उनका साहित्य एक जौहरीकी अदासे परीक्षक दृष्टिसे परीक्षित करने पर उनके नैतिक उपदेशक, समाज सुधारक, मानवतावादी एवं सहनशील, करुणार्द्र-उपकारी, सच्चे महात्मन्—स्वरूपका दर्शन अनायास ही होता है; जो अध्येताको बाह्यात्मासे अंतरात्माकी ओर, भौतिकतासे आध्यात्मिकताकी ओर, इहलौकिकतासे पारलौकिकताकी ओर, एवं एकान्तवादसे अनेकान्तवादकी ओर पुरुषार्थी बनानेमें प्रेरक बन गया है । उनकी रचनाओमें छाया हुआ अंतर्चेतनाका प्रकाश अज्ञान एवं असत्यादिके लौकिक अंधकारको विदारण करके अलौकिक-उज्ज्वल-विकासशील-उन्नत समाजकी संरचनामें महता योगदान प्रदान करता है ।

यथा-आगमज्ञानसे अनभिज्ञ ज्ञानेप्सुको 'नवतत्त्व'से सम्बद्ध मूलागम-संदर्भोंके सिंधु स्वरूप **'बृहत नवतत्त्व संग्रह'**की भेंट दी; तो जैन दर्शनकी तत्त्वत्रयीका स्पष्ट-सुरेख-सत्य स्वरूप एवं इतर दर्शनके तत्सम्बन्धी विपरित स्वरूपके तुलनात्मक निरीक्षण हेतु **"जैन तत्त्वादर्श"** प्रस्तुत किया । 'सत्यार्थ प्रकाश'की जैनधर्म और जैनधर्मी विषयक सरासर असत्य-प्रकाशाभास-अंधकारके निवारण कर्ता **"अज्ञान तिमिर भास्कर"**को प्रकट किया; तो भव्यजीवोंके सम्यक्त्वमें शल्यरूप श्री जेठमलजीकी रचना 'समकितसार'से मुमुक्षु आत्माओंका मार्गदर्शक-राहबर **'सम्यक्त्व शल्योद्धार'**को प्रेषित किया । जैनेतरोंकी अपेक्षा जैनाचार्योंके बुद्धि वैभवको प्रदर्शितकर्ता एवं जैन दर्शन व साहित्यकी परीपूर्णताका यथार्थ एवं तुलनात्मक निर्णय करवाने हेतु श्रेष्ठ आधार रूप छत्तीस दृढ़स्तम्भोंसे सुशोभित **'तत्त्व निर्णय प्रासाद'**का निर्माण किया । चिकागोमें आयोजित विश्वधर्म परिषद'में जैनधर्मके प्रमुख सिद्धान्तोंको विश्व समक्ष प्रस्फुटित करके उनका परिचय करवाने हेतु एवं जैनधर्मकी अन्यधर्मोंके समकक्ष सक्षमताको प्रमाणित करनेके लिए **'चिकागो प्रश्नोत्तर'**का प्रणयन हुआ।**'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२'** द्वारा त्रिस्तुतिक मत प्रणेता श्री राजेन्द्र सूरिजीको चतुर्थ स्तुतिकी सार्थकता, प्रमाणिकता और प्राचीनता या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परापूर्वताका निर्णय करवाया, तो ईसाइयोंकी धर्मपुस्तकोंके समीक्षात्मक अवलोकनको प्रस्तुत करके *मानवधर्मके सामने अहिंसा परमोधर्म-जनसेवाके प्रत्युत जीवमात्रकी सेवाके अभिगमको* प्रदर्शित करके जैनधर्मकी श्रेष्ठता एवं उपयोगिताको सिद्ध किया है । सहज अज्ञानी, बालजीवों एवं नूतन शिक्षा प्राप्त धार्मिक गुमराहोंके रहनुमा समकक्ष रचनायें-**"जैनधर्म स्वरूप", "जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर"** आदिके साथसाथ अपूर्व-अनन्य एवं विस्मयकारी; अनूठी ऐतिहासिक कलाकृतिके आदर्शरूप **"जैन-मत-वृक्ष"(वृक्षाकार)के** आलेखनसे अनेक कलाविदों, साहित्यिकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों एवं धार्मिक जिज्ञासुओं-सर्वको आश्चर्यके उदधिमें गोते लगवाये हैं । इस प्रकार उनकी प्रत्येक रचनाओंका अपना स्वतंत्र, अजीबो-गरीब-अनूठा महत्त्व स्वयं ही निखरता है ।

पद्य साहित्य और उसका प्रभाव :--- काव्य सरिताके छंदोबद्ध ताल-लययुक्त वेगवान प्रवाहमें मस्त, अलंकरण और भाव लालित्यसे सुशोभित नैसर्गिक रस माधुर्यसे छलकते हृदयकी उर्मियोंकी अनिर्वाच्य सुखानुभूति प्राप्त, सहज काव्यकृतिकी रचना जन्मजात काव्य प्रसादीसे लब्ध कविकी देन होती है; जिनके गायक और श्रोताका अवगाहन उनकी अंतरात्माको विकस्वर कर देता है-उनका रोमरोम पुलकित होकर डोलने लगता है । श्री आत्मानंदजीम.की मर्मस्पर्शी, गेय काव्य रचनाओमें हमें ऐसे ही नैसर्गिक, रससिद्ध एवं अंतरोर्मियोंकी तरोंगोंको बहानेवाले कविके, दुन्यवी भावोंको भूलाकर अध्यात्मके रस समुद्रमें निमज्जन करवानेमें समर्थ, कवनोंका मंत्रमुग्ध स्वरूप प्राप्त होता है । उन्हें एकबार सुन लेनेके पश्चात् बारबार सुननेको जी ललचाता है, या उनकी पुनरावृत्तिमें ही निजानंदकी उदात्त मस्तीके पूर बहते हैं; जैसे, राग-पीलूकी मनमोहक और आत्मिक केफ चढ़ानेवाली रचना जितनी बार पढें, एक नयी सुवास प्रदान करती है-मानों यथार्थ रूपसे हमारी कलूषितता समाप्त हो रही हों और हमें पावनताका स्पर्श प्राप्त हो रहा हों-

"जिनवर मंदिरमें महमहती, दश दिग् सुगंध पूरे रे,
आतम धूप पूजन भविजनके, करम दुर्गंधने चूरे रे...
भाविका, धूप पूजा अध चूरे....." ७.

सहजानंदके असाधारण शांतरस-पूंजसे व्याप्त पद्योंका अनुभव भावकके अंतरको स्वयं प्रकाशसे प्रकाशित करनेवाला उनका पद्य साहित्य, **प्रबन्ध काव्य स्वरूप-खंडकाव्य श्रेणीके पूजाकाव्योंके रूपमें और मुक्तक काव्यरूप-'उपदेशबावनी', 'ध्यान शतक'का पद्यानुवाद 'बारह भावना स्वरूप'** आदि रचनाओमें विविध मुक्तक-छंदबद्ध काव्य एवं भाव प्रगीत काव्यरूपोंके अंतर्गत स्तवन, सज्झाय, पदादिके संग्रहरूप **'आत्म विलास स्तवनावली' 'चौबीस जिन स्तवनावली'**आदि प्राप्त होते हैं । जिनमें उनके जनकल्याणकारी, मानव हितेच्छुक, उपदेशक व्यक्तित्वके दर्शन होते हैं तो पूजा काव्योमें एवं प्रगीत काव्यरूपोंमें उनका काव्यत्व संगीतके सान्निध्यसे अनूठे भक्त हृदयके रंगकी इन्द्रधनुषी आभाको प्रदर्शित करता है ।

शृंगाररसके काव्योंकी लौकिक मस्ती या खुमारी कुछ भिन्न स्तर और भिन्न स्वाद युक्त होती है, लेकिन, सांसारिक मोहजालको समाप्त करवानेकी सहजशक्ति, साम्प्रदायिकतादि अनेक गरल प्रभावोंसे मुक्त केवल सत्यानुसंधान दृष्टिसे आत्म रमणताकी अनुभूतिसे प्राप्त होती है । जिसका आनंदानुभव श्री आत्मानंदजीम.के, अपूर्व शांतिपूर्ण भावोंका आत्मसम्मुख मोडनेवाले, काव्योमें प्रचुरमात्रामें सम्मिलित है; क्योंकि, अंतरकी गहराईसे बहनेवाले आत्मिक रहस्यमय उनके काव्योंसे निष्पन्न स्वर लहरी केवल **"मनमर्कटकुं शिखो, निजघर आवेजी...." अथवा "एक प्रभुजीके चरण शरणां, भ्रान्ति भांजी कल्पुं....", "आप चलत हो मोक्ष नगरे, मुझको राह बता जा रे.....", ".....कर करुणा अर्हन् जगइंद", "किरपा करो जो मुझ भणी, थाये पूरण ब्रह्म प्रकाशजी....."**[9] आदिका ही गुंजन करती रहती है । इसे आप अकेले गायें या समूहमें उसका हृदयस्पर्शी गुंजारव कर्णयुग्मोंको सदैव आत्मरमणतामें निमज्जन करवाता है । उनके काव्योमें प्रयुक्त सरल-सहज-सामान्य शब्दों द्वारा, स्वयंकी लघुलाघवी काव्यकलाके प्रभावसे असाधारण मधुरता और साहित्यिक श्रेष्ठता सम्पन्न आंतर्वेदना और साध्य निकटताकी प्रतीति होती है । कहीं पर भी रसक्षति या लघु पार्थिवताका प्रवेश तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने नहीं पाया है । शायद यह संभव है, कि उनकी तमन्ना ऐसे विविध राग-रागिणियोंमें ढले हुए कवनोंके प्रचारसे निम्नकोटिके या फूटकलिया संगीतकवनोंसे सहृदय भाविक भव्य जीवोंको आंतर्दृष्टिकी ओर मोड़नेकी हों । इसके साथ समाजकी जागृत श्रद्धाको स्थिरत्व प्रदानके कारण अन्य लक्ष्य बिंदु यह भी हो सकता है कि, उनके विचरण क्षेत्र पंजाब-राजस्थानादिमें उन दिनों प्रतिमा पूजनका विरोध अपनी चरमावस्थामें था, अतः समाजको उस विपरित दशासे उद्धारने हेतु **स्नात्रपूजा, अष्टप्रकारीपूजा, सत्रहभेदीपूजा** आदि पूजा साहित्य समन्वित है ।

उनके काव्योंके अभिव्यंजनात्मक दृष्टिसे परिशीलनसे प्रकट है कि उनकी रचनायें विविध देशी, शास्त्रीय राग-रागिणि और कुछ छंदोंके त्रिवेणी संगम स्वरूप है । मधुर लालित्ययुक्त, चित्रात्मक बिम्ब विधान या प्रतीक विधान, विभिन्न सजीव अलंकारादि द्वारा भगवद्भक्ति, मुक्ति और शक्ति सामर्थ्यका प्रवाह अभिभावकको प्रभावित किये बिना नहीं रहता । **'बीसस्थानकपूजा' या 'नवपदपूजा'**में तात्त्विक-दुरूह पदार्थों और प्ररूपणाओंको भी लोक हृदयमें स्थापित करनेके लिए पूजा साहित्यमें ढाला गया-लोकप्रिय बनाया गया । जिनके **'दर्शन पद मनमें बस्यो, तब सब रंगरोला....' या 'सूरिजन अर्चन सुरतरुकंद'** आदिका गुंजन निशदिन कानोंमें गुंजता रहता है। इस तरह जैन समाजकी ज्ञान-भक्ति और क्रियाके समन्वय संगम स्थान रूप उनका पद्य साहित्य गद्यके परिमाणमें अल्प होने पर भी उतना ही असरकारक प्रभावोत्पादक एवं प्रतिभावान्-भक्त हृदयके मस्ती भरे अनुभवोंके आलेखनका रसास्वाद वाकयी कल्याणमयी है ।

निष्कर्ष :— बीसवीं शतीके शासनप्रभावक, प्रवचनप्रभावक, युगप्रभावक, समर्पित शासन सेवक एवं सत्यनिष्ठ आध्यात्मिक वड़वीर-समाजनेता, धर्मनेता, युगप्रणेता, प्रकर्ष पुण्य प्रकाशसे उज्ज्वल यशधारी, विश्ववंद्य विरल विभूतिको समर्पित श्री आशिष जैनकी श्रद्धांजलिका अंश अत्र उद्धृत है-**"यदि स्वयं वीणावादिनी मां शारदा आपकी अनूठी शासनसेवाकी श्लाघा हेतु प्रशंसाओंके पर्वत रच दें या उपमाओंके सागर सुखा दें तो भी अपने भक्ति पूरित मनको तृप्त नहीं कर पायेगी । हंसते हंसते कष्टोंका आलिंगन करनेवाले अगाध आत्म शक्ति सम्पन्न आचार्यदेवके जीवन वैभवकी यह झलक सिंधुमें बिंदुसे भी न्यून है।"**[८]

इससे अधिक कोई अन्य व्यक्ति क्या कह सकता है ! मैंभी इन्हीं मनोवृत्तियुक्त अनुभूत भावनाओंको प्रस्तुत करते हुए इस शोध प्रबन्धको सम्पन्न करुंगी-यथा-

"स्याद्वाद भंगिभरभासुरमस्य बोधं,
भव्यांमिमान समरालसहस्त्र पत्रम् ।
शक्तो भवामि ननु वर्णयितुं कथं यत्,
को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम्" ।।[९]

"जय श्रीवीतराग, जय श्रीगुरुदेव"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१

-: आधार ग्रन्थ (आचार्य प्रवरश्रीके ग्रन्थ)की सूची :-

क्रम	पुस्तकका नाम	संपादक / अनुवादक	रचनास्थान	रचना वर्ष	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशक	संस्करण
१.	अज्ञान तिमिर भास्कर	श्री आत्मानंद जैन सभा-भावनगर	अम्बाला-खंभात	१९३९-१९४२	१९६२	श्री आत्मानंद जैन सभा भावनगर	द्वितीय
२.	ईसाई मत समीक्षा	-	पंजाब	-	१९५६	जैन ज्ञान प्रसारक मंडल, बम्बई	प्रथम
३.	चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१	भीमसिंह माणेकजी	राधनपुर	१९४४	१९४४	भीमसिंह माणेकजी	प्रथम
४.	चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-२	-	पट्टी	१९४८	१९५२	महेसाणा श्री संघ	प्रथम
५.	चिकागो प्रश्नोत्तर	जसवंतराय जैन	अमृतसर	१९४९	१९६२	जसवंतराव जैन, लाहौर	प्रथम
६.	जैन तत्त्वादर्श	भीमसिंह माणेकजी	गुजरांवाला-होशियारपुर	१९३७-१९३८	-	भीमसिंहजी माणेकजी	द्वितीय
	जैन तत्त्वादर्श (गुजराती)	अनु. वकील मूलचंदजी ना.	-	-	१९५६	श्री आत्मानंद ज्ञान प्रचारक मंडल	प्रथम
	जैन तत्त्वादर्श भाग-१ (पूर्वार्ध)	संपा.श्री आत्मानंद जैन सभा, बम्बई	-	-	२०११	श्री आत्मानंद जैन सभा-भावनगर	पंचम्
	जैन तत्त्वादर्श (खड़ीबोली)	संपा.श्री पुण्यपाल सूरिजी म.	-	-	२०४९	श्री पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन	सप्तम्
७.	जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर रत्नावली	गिरधरलाल हीराभाई शेठ	पालनपुर	१९४५	१९६३	श्री आत्मानंद जैन सभा, भावनगर	द्वितीय
८.	जैन धर्मका स्वरूप		-	-	-	-	-
९.	जैन मत वृक्ष (पुस्तकाकार)	संपा. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.	जंडियालागुरु	१९४९	१९५६	श्री आत्मानंद जैन सभा, पंजाब	द्वितीय
	जैन मत वृक्ष (वृक्षाकार)	चित्रण-श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.	सुरत	१९४२	१९४८	श्री आत्मानंद जैन सभा, पंजाब	प्रथम
१०.	तत्त्व निर्णय प्रासाद	संशो. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.	जीरा-गुजरांवाला	१९५१-१९५३	१९५८	अमरचंद पी. परमार	प्रथम
११.	नतत्त्व (संक्षिप्त)						
१२.	प्रश्नोत्तर संग्रह	संक. मुनिश्री भक्तिविजयजी म.सा.	महेसाणा	१९४५	१९७२	श्री आत्म वीर सभा. भावनगर	प्रथम
१३.	बृहत् नवतत्त्व संग्रह	हीरालाल रसिकलाल कापड़िया	बिनौली बड़ौत	१९२४-१९२५	१९८८	हीरालाल र. कापड़िया	प्रथम
१४.	सम्यक्त्व शल्योद्धार	-	अहमदाबाद	१९४१	१९६०	श्री आत्मानंद जैन सभा, लाहौर	तृतीय
१५.	आत्म बावनी (उपदेश बावनी)	श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.	बिनौली	१९२७	१९८८	हीरालाल-२ कापड़िया	द्वितीय
१६.	आत्मानंद चौबीसी (जिन चौबीसी)	-	अंबाला	१९३०	२००८	श्री आत्मानंद जैन सभा, भावनगर	द्वितीय
१७.	आत्म विलास स्तवनावली	(विविध स्तवन-पद-सज्झाय संग्रह)	-	-	१९९३	श्री सुमेमलजी सुराणा	द्वितीय
१८.	आत्म विलास स्तवनावली	(विविध स्तवन-पद-सज्झाय संग्रह)	-	-	१९४५	खीमचंद हीराचंद दलाल	प्रथम
१९.	ध्यान स्वरूप	('बृहत् नवतत्त्व संग्रह' अंतर्गत श्रीजिनभद्र गणि क्षमाश्रमण विरचित 'ध्यान शतक' ग्रन्थाधारित रचना - पृ. १७५ से १८२					
२०.	बारह भावना स्वरुप	('बृहत् नवतत्त्व संग्रह' अंतर्गत रचना - पृ. १६१ से १६४					
२१.	विधि विधान सह पूजा संग्रह	अष्ट प्रकारी पूजा–सं.१९४३–पालीताना; नवपद पूजा–सं.१९४८–पट्टी; बीस स्थानकपूजा सं.१९४०–बीकानेर; सत्रहभेदी पूजा–सं.१९३९–अंबाला; स्नात्रपूजा–सं.१९५० जंड़ियाला			१९५६	श्री हंसविजयजी जैन लाइब्रेरी	प्रथम
२२.	श्री आत्म वल्लभ पूजा संग्रह	गुरु-इन पांच पूजाओंका संग्रह)					

परिशिष्ट-२
सहायक (संदर्भ) ग्रन्थ एवं लेख सूचि

संस्कृत ग्रन्थ :-

१. अभिधान चिंतामणी–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.–संपा. विजय कस्तूर सूरिजी म.
२. अमर कोश–प्रका. धर्मचंद केवलचंद खंडोल
३. आत्मानंद द्वा सप्तति–स्वामी योगजीवानंद सरस्वती–टीका.पं.बैजनाथ शर्मा
४. आत्माराम पंचरंगम् काव्यम्–श्री नित्यानंद शास्त्री
५. काव्य प्रकाश–मम्मट–डॉ.सत्यव्रतसिंह
६. काव्यादर्श–आचार्य दंडी–अनु.व्रजरत्नदास
७. काव्यालंकार–आचर्य भामह–भाष्यकार–देवेन्द्रनाथ शर्मा
८. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र–श्री उमास्वातिजी म.सा.
९. त्रिषष्ठी शलाका पुरुष–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.
१०. द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका–श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा.
११. ध्वन्यालोक लोचन–श्री आनन्दवर्धनाचार्यजी.
१२. नृतत्त्व निगम (लोकतत्त्व निर्णय) श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.
१३. पंचवस्तु–श्री हरिभद्र सुरि म.सा.–विवे. श्री सागरानंद सूरि म.सा.
१४. पंचसूत्र–श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–विवे. श्रीमद्विजय भुवनभानु सूरि म.
१५. परिशिष्ट पर्व–पूर्वाचार्य (अज्ञात)
१६. प्रभावक चरित्र–श्री प्रभाचंद्र सूरिजी म.सा.
१७. बृहत् शान्ति स्तोत्र–शिवादेवी (श्री नेमिनाथ भ.की माता)
१८. श्री भक्तामर स्तोत्र–श्रीमानतुंगसूरिजीम.
१९. महादेव वीतराग स्तोत्र–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.
२०. योग विंशिका–उपा.श्री यशोविजयजी म.सा. अनु. धीरजलाल महेता
२१. लघुजातक–(ज्योतिष कल्पतरु)
२२. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम्–पं.हीरालाल वि.हंसराज
२३. श्री विजयानंद सुरीश्वर स्वतनम्–श्री चतुर विजयजी म.सा.
२४. वेदान्त कल्पद्रुम–महात्मा शीवव्रतलालजी वर्मन्
२५. शब्द चिंतामणी–संपा. सवाइलाल वि. छोटालाल वोरा
२६. शब्दादर्श (महानकोष)–भाग-१ शास्त्री गिरिजाशंकर मयाशंकर महेता.
२७. शब्दादर्श (महानकोष)–भाग-२ शास्त्री गिरिजाशंकर मयाशंकर महेता.
२८. शास्त्र वार्तासमुच्चय–उपा. श्री यशोविजयजी म.सा.
२९. षड्दर्शन समुच्चय–भाग-१ आ. हरिभद्र सुरीश्वरजी म.–भारतीय ज्ञानपीठ
३०. षोड़शक प्रकरण (व्याख्यान संग्रह)–प्रस्तावना–हीरालाल कापड़िया
३१. सकलार्हत् स्तोत्र–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.
३२. सन्मति तर्क–श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म. (तत्त्वबोध विधायिनी–श्री अभयदेव सूरिजी प्रणीत)
३३. सर्वार्थ चिंतामणी–(ज्योतिष कल्पतरु)
३४. सिद्धान्त सार (ज्योतिष कल्पतरु)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. स्थविरावली–(कल्पसूत्र) श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामीजी.
३६. हरिभद्र सूरि अष्टकानि–श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.–अनु. पं. हीरालाल वी. हंसराज
३७. हरिभद्र सूरि चरियम्–पं. हरगोविंददास शेठ.
३८. मानसागरी ग्रन्थ (ज्योतिष कल्पतरु)

प्राकृत ग्रन्थ :-

१. कुवलयमाला–श्री उद्योतन सूरिजी म.सा.
२. दो प्रतिक्रमण सूत्र–गणधर (पूर्वाचार्य) रचित
३. धनंजय नाममाला–संपा.मुनि श्री हित विजयजी म.सा.
४. नवतत्त्व प्रकरण (आगमिक संग्रह) पूर्वाचार्य विरचित
५. पाइय–लच्छी–नाममाला–महाकवि धनपाल
६. प्राकृत–हिन्दी कोष–संपा. के. आर. चन्द्र
७. लघु क्षेत्र समास–श्री रत्नशेखर सूरि म.सा.–अनु. श्रीमद्विजय धर्म सूरि म.
८. 'वंदित्तु सूत्र'–प्रतिक्रमण सूत्र–गणधर विरचित
९. 'श्रुत स्तव'–दो प्रतिक्रमण सूत्र–गणधर (पूर्वाचार्य) विरचित
१०. संबोध सित्तरी प्रकरण–श्री जयशेखर सूरिजी म.सा.
११. श्री सुपार्श्व नाथ चरित–श्री लक्ष्मणजी गणि.

गुजराती ग्रन्थ एवं लेख :-

१. श्री आत्मारामजीनुं जीवन : सत्यना प्रयोगो–नागकुमार मकाती
२. आत्मारामजी म.नो अमरकाव्यदेह–मोतीचंदजी गी. कापड़िया
३. आनंदघन एक अध्ययन–डॉ. कुमारपाल देसाई
४. आनंदघनजी कृत चौबीसी (सार्थ)–वि. शांतिलाल केशवलाल
५. आनंदघनजी चौबीसी–विवे. मोतीचंद गी. कापड़िया
६. आनंदघनजीनां पदो–विवे. मोतीचंद गी. कापड़िया
७. आनंदघन पद संग्रह–विवे. आ. श्री बुद्धिसागर सूरिजी म.सा.
८. चतुर्विंशति जिन स्तवनावली–उपा.यशोविजयजी म.सा.
९. चिदानंद बहोत्तरी–(सज्जन सन्मित्र)–संपा.दोशी पोपटलाल के.
१०. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०४६ संपा.
११. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०४८ संपा.
१२. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०५० संपा.
१३. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०५१ संपा.
१४. जिन गुण भंजरी–संपा.
१५. जिन स्तवन चौबीसी–उपा. यशोविजयजी म.सा.–विवे. दुर्लभदास कालीदास शाह
१६. जैन तत्त्वज्ञान चित्रसंपूट–प्रका. सुसंस्कार निधि प्रकाशन
१७. जैन दर्शननुं पदार्थ विज्ञान–खुबचंदजी केशवलाल पारेख
१८. जैनधर्मनी रूपरेखा–श्रीमद्विजय राजयश सूरि म.सा.
१९. जैनधर्मनो संक्षिप्त इतिहास–मोहनलाल दलीचंद देसाई
२०. जैनाचार्य श्री आत्मानंदजी जन्म शताबदी स्मारक ग्रन्थ–संपा. मोहनलाल दलीचंद देसाई
२१. ज्योतिष कल्पतरु–जोषी सोमेश्वर द्वारकादासजी
२२. तत्त्वज्ञान प्रदीपिका–पं. श्री चंद्रशेखर विजयजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. तत्त्वज्ञान पीठिका–श्रीमद्विजय भुवनभानु सुरीश्वरजी म.
२४. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र–अभिनव टीका–ले.मुनि दीप सागरजी म.
२५. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र–विवे. पं. सुखलालजी संघवी.
२६. तपागच्छ पट्टावली–ले. श्री धर्मसागर जी म.सा.–संपा. श्री कल्याण विजयजी म.
२७. त्रिकालिक आत्मविज्ञान–पनालाल गांधी
२८. त्रिषष्ठी शलाका पुरुष–अनु. जैनधर्म प्रचारक सभा.
२९. दोढसो अने सवासो गाथानां स्तवन–उपा. श्री यशोविजयजी म.
३०. द्रव्य-गुण-पर्यायनो रास–उपा. श्री यशोविजयजी म. विवे. श्री धर्मधुरंधर वि. म.सा.
३१. नय मार्गदर्शन (सात नय स्वरूप)–प्रका. श्री आत्मानंद जैन सभा भावनगर
३२. नवयुग निर्माता–श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरीजी म.सा.
३३. न्यायाम्भोनिधि श्री विजयानंद सूरि–श्री सुशील
३४. परमतेज–भा-१-२–(ललित विस्तरा–ले. श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–ग्रन्थ का विवेचन) विवे. श्रीमद्विजय भुवनभानु सुरीश्वरजी म.सा.
३५. पर्युषण पर्व सज्झाय–मुनि माणेक विजय जी म.सा.
३६. प्रश्नोत्तर शतविंशिका–श्रीमद्विजय जंबूसूरि म.
३७. भरतेश्वर बाहुबलि भाग-१-२ संपा. मुनि चिदानंद विजयजी म.
३८. मंत्रवादी श्री विजयानंद सूरि–यति श्री बालचंद्राचार्यजी म.सा.
३९. महावीर जैन विद्यालय रजत जयंति महोत्सव स्मारक ग्रन्थ–संपा. मोतीचंद गी. कापड़िया
४०. महावीर स्वामी पंचकल्याणक स्तवन–आ. हीर सुरीश्वरजी म.सा.
४१. महावीर स्वामी पंचकल्याणक स्तवन–कवि श्री रामविजयजी म.
४२. यशोदोहन–प्रस्तावना–श्री यशोदेव सूरि म.सा.
४३. युगवीर आचार्य भा.३ संपा. फूलचंद हरिचंद जोशी.
४४. योगदृष्टि समुच्चय भाग-१–ले.श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–विवे. श्री भुवन भानु सूरि म.सा.
४५. योगदृष्टि समुच्चय भाग-२–ले.श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–विवे. श्री भुवन भानु सूरि म.सा.
४६. योगनिष्ठ आ. श्रीमद् बुद्धिसागरजी म.–ले जयभिक्खु
४७. रत्न संचय–संग्राहक, संपादक–मुनि श्री रत्नत्रय विजयजी म.
४८. श्री विजयानंद सूरि और महर्षि दयानंदजी–पृथ्वीराजजी जैन
४९. श्री विजयानंद सूरि स्वर्गारोहण शताब्दी ग्रन्थ–संपा. श्री रमणलाल ची. शाह
५०. वीश विहरमान जिन संक्षिप्त परिचय–श्री हेमचंद्र सूरि म.
५१. शासन प्रभावक श्रमण भगवंतो–संपा. नंदलालजी देवलुकजी
५२. सज्जन सन्मित्र–(स्तवन-सज्झायादि संग्रह)–संपा. दोशी पोपटलाल के.
५३. सज्जन सन्मित्र–(स्तवन-सज्झायादि सर्व संग्रह)–संपा. झवेरी पोपटलाल मास्तर
५४. सत्तावीश भवनां ढालियाँ–मुनि श्री शुभवीर विजयजी म.सा.
५५. समयज्ञ संत–श्री मोहनलाल दीपचंद चोकसी
५६. सम्मेत शीखरजी तीर्थ ढालियाँ–संपादक–श्री पद्मसूरिजी म.सा.
५७. साड़ात्रणसो गाथानुं स्तवन–उपा. श्री यशोविजयजी म.सा.
५८. सिमंधर स्वामी विनती–उपा. श्री यशोविजयजी म.सा.
५९. सुधारस जिन स्तवनावली–(स्तवनादि संग्रह)–संपा.–
६०. सूरि पुरंदर–श्रीमद्विजय भुवनभानु सूरि म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. सो वर्षनो सिद्धि योग–श्री देवचंद दामजी कुंडलाकरजी
६२. हस्त लिखित डायरी–श्री गौतमकुमार शाह

हिन्दी ग्रन्थ एवं लेख :-

१. अर्हन् मतोद्धारक श्री आत्मारामजी–लक्ष्मण रघुनाथ भीड़े
२. अहिंसा और विश्वशांति–दरबारीलाल जैन 'कोठिया'
३. आत्मबोध–श्रीमद्विजयानंद सूरि वचनामृत–संपा.मुनि श्री नविनचंद्र विजयजीम.
४. आगम युगका जैनदर्शन–पं. दलसुखभाई मालवणिया
५. आत्मारामजी और हिन्दी भाषा–श्री जसवंतराय जैन
६. आनंदघनजी ग्रन्थावली–संपा. महताबचंद खारैड
७. आनंदघनजीका रहस्यवाद–सा. श्री सुदर्शनाश्रीजी म.सा.
८. ऋषि दयानंदजीके पत्र और विज्ञापन संग्रह
९. कवितावली–श्री तुलसीदासजी
१०. कलिकाल कल्पतरु–जवाहरचंद्र पटनी
११. काव्यांग कौमुदी–(कला-२) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
१२. काव्याग कौमुदी (कला-३) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
१३. काव्यमनीषा-डॉ. भगीरथ मिश्र
१४. काव्यशास्त्र–डॉ. भगीरथ मिश्र
१५. काव्यशास्त्र सहायिका–श्री अभिताभ
१६. गीतावली–श्री तुलसीदासजी
१७. चिदानंद कृत संग्रह (चिदानंद ग्रन्थावली)–संपा. केसरीचंदजी धूपिया
१८. चिदानंद पदावली (सज्जन सन्मित्र)
१९. चिंतामणी-भाग-१–आचार्य श्रीरामचंद्र शुक्ल
२०. चिंतामणी-भाग-२–आचार्य श्रीरामचंद्र शुक्ल
२१. जैनधर्म और अनेकान्तवाद–पं. दरबारीलालजी 'कोठिया'
२२. जैनधर्मके प्रभावक आचार्य–संपा. श्री संघ मित्राश्रीजी म.सा.
२३. जैनधर्मका महत्त्व और उसकी उन्नतिके साधन–ले. मधुरदासजी जैन.
२४. जैन समाजमें शिक्षा और दीक्षाका स्थान–अचलदासजी लक्ष्मीचंदजी
२५. जैनाचार्य श्री आत्मानंदजी जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ–संपा. मोहनलाल दलीचद देसाई
२६. तुलसी : आधुनिक वातायनसे–डॉ. रमेश कुंतल मेघ
२७. तुलसी ग्रन्थावली–
२८. त्रिस्तुस्तिक मत मीमांसा–मुनि श्री कल्याण विजयजी म.
२९. दया छत्तीसी–श्री चिदानंदजी म.सा.
३०. दयानंद कुतर्क तिमिर तरणी–श्री विजय लब्धि सूरिजी म.सा.
३१. धर्मवीर श्री बूटेरायजी महाराज–श्री न्याय विजयजी म.सा.
३२. पंजाबके महान ज्योतिर्धर जैनाचार्य श्री विजयानंद सूरि–पृथ्वीराजजी जैन
३३. परमात्म छत्तीसी–श्री चिदानंदजी म.सा.
३४. पुद्गलगीता–श्री चिदानंदजी म.सा.
३५. भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग-१-प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा–काशी
३६. भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग-२-प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा–काशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग-३-प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा–काशी
३८. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषाकी विकास परम्परा–श्री रामविलास शर्मा
३९. भाषा और समाज–रामविलास शर्मा
४०. मुंहपत्ती विषे चर्चा और श्री बूटेरायजीका जीवन चरित्र–प्रका. कालीदास सांकलचंद
४१. रस मीमांसा–आचार्य रामचंद्र शुक्ल
४२. रामचरितत मानस–श्री तुलसीदासजी
४३. लब्धि प्रश्न–संपा. श्री वारिषेण सुरीश्वरजी म.
४४. श्रीमद्विजयानंद सूरि : जीवन और कार्य–मुनि. श्री नविनचंद् विजयजी म.
४५. श्रीमद्विजयानंद सूरि की स्तुति–प्रका. श्री आत्मानंद जैन सभा–अंबाला
४६. श्री विजयानंद सूरि स्वर्गारोहण शताब्दी ग्रन्थ–सं. मुनि श्री नविनचंद्र वि.म.
४७. सत्यार्थ प्रकाश–महर्षि दयानंद सरस्वती
४८. सत्यार्थ भास्कर–स्वामी विद्यानंद सरस्वती
४९. सद्धर्म संरक्षक–(मुनि श्री बूटेरायजी म.का जीवन चरित्र) पं. हीरालालजी दुग्गड़
५०. सवैया इकतीसा–श्री चिदानंदजी म.सा.
५१. 'सहस्त्रकूट नामावली'–प्रका.–श्री चंपकश्रीजी म., श्री चंद्राननाश्रीजी म.
५२. साहित्यालोचन–श्यामसुंदरदासजी.
५३. स्याद्वाद पर कुछ आक्षेप और उनका परिहार–श्री मोहनलालजी मेहता
५४. स्वरोदय ज्ञान–श्री चिदानंदजी म.सा.
५५. स्वामी नारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य–डॉ. अरुणा शुक्ल
५६. हनुमान बाहुक–तुलसीदासजी
५७. आत्मचरित्र (उर्दू)–लाला बाबूरामजी जैन
५८. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंश भाषाका योगदान–डॉ.नामवरसिंहजी
५९. हिन्दी पर्यायवाची कोश–डॉ.भोलानाथ तिवारी
६०. हिन्दी साहित्यका इतिहास–डॉ. नगेन्द्र
६१. हिन्दी साहित्यका इतिहास–आ. रामचन्द्रजी शुक्ल
६२. हिन्दी साहित्यका उद्भव और विकास–

English Books:-

1. An Appreciation-Chandra Gupta Jain
2. Jainism-a Universal Religion-B. M. Javeria
3. My acquaintance with Swami Atmaram---Jwala Sahai Mishra.
4. Shree Atmaramji and his many sided activities by Amarnath Audich
5. Shree Atmaramji and his mission-by Chaitandas
6. Suman Sanchaya---Gyandas Jain
7. The Indian empire---Mr. Huntar-Huntar
8. The man and his message---Baburam Jain
9. The world's Parliament of Religious---Chicago-U.S.A.

आगम वाङ्मय :-

१. श्री आचारांग सूत्र (प्रथम अंग)–गणधर श्री सुधर्मा स्वामीजी
२. श्री आचारांग सूत्र (संक्षिप्त)–संपा.आ.श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. श्री आवश्यक निर्युक्ति–श्रीमद् मलयगिरिजी सूरिजी म.
४. श्री उपासक दशांग सूत्र–सप्तम अंग–संपा.डॉ. ए. एफ. रूडॉल्फ हॉर्नल
५. श्री कल्पसूत्र–श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीजी
६. श्री कल्पसूत्र–(बालावबोध) पं. श्री क्षमाविजयजी गणि
७. श्री कल्पसूत्र–श्रीमद्विनय विजयजी म.कृत 'सुबोधिका टीका'
८. श्री कल्पसूत्र–सुबोधिका टीकाका अनुवाद अनु. शाह भीमसिंह माणेकजी
९. श्री कल्पसूत्र–सुबोधिका वृत्ति–संपा. शोभाचंद्रजी भारिल्ल
१०. श्री दस वैकालिक सूत्र–रचयिता–श्री शय्यंभव सूरिजी म.
११. श्री नंदी सूत्र-
१२. श्री प्रज्ञापना सूत्र–आर्य श्यामाचार्य–टीका–टीकाकारःश्रीमद् मलयगिरि सूरिजी म.
१३. श्री भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)–पंचम अंग–गणधर भ. श्री सुधर्मास्वामीजी
१४. श्री भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)–टीका-टीकाकार–श्रीमद् अभयदेव सूरिजी म.
१५. श्री भगवती सूत्र सार संग्रह-भाग-१ ले.श्री विद्या विजयजी म.सा.–विवे.पूर्णानंद सूरिजी म. (कुमारश्रमण)
१६. श्री भगवती सूत्र सार संग्रह-भाग-२ ले.श्री विद्या विजयजी म.सा.–विवे.पूर्णानंद सूरिजी म. (कुमारश्रमण)
१७. श्री समवायांग सूत्र–(चतुर्थअंग)–गणधर भ. श्री सुधर्मा स्वामीजी

पत्रिकायें :-

१. अनुसंधान (वार्षिक) संपा. श्रीमद्विजय शीलचंद्र सूरिजी म., हरिवल्लभ भायाणी
२. पंजाबमें हिन्दीकी प्रगति–काशी नागरी प्रचारिणी सभा–सं.१९४४
३. 'बुद्धिस्टर रिव्यू'–एफ. ओ. शाहरादेर
४. श्री महावीर शासन–(श्री आत्मानंदजी विशेषांक) वर्ष–४४–अंक-५-६
५. श्री महावीर शासन–(श्री आत्मानंदजी विशेषांक) वर्ष–४४–अंक-८-९

परिशिष्ट–३

पर्व प्रथम श्री आत्मानंदजी म.का गद्य साहित्य-

१. श्री विजयानंद सुरीश्वर स्तवनम् - मुनिराज श्री चतुरविजयजी म.सा.श्लोक-३०
२. हिन्दी साहित्यका इतिहास - डो. नगेन्द्र पृ. ४५७
३. अज्ञान तिमिर भास्कर (प्रवेशिका) - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.-पृ.३
४,५ हिन्दी साहित्यका उद्भव और विकास (खंड़-२)-पृ.१४९
६,७ हिन्दी साहित्यका इतिहास - डॉ. नगेन्द्र पृ.४७७–पृ.४९५
८. जै. श्री आत्मानंजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - हिन्दी विभाग-पृ.१७२
९. चिकागो प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.९२-९३
१०. जैन तत्त्वादर्श - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.५४
११. श्री आत्म वल्लभ पूजा संग्रह - प्रका. माणेकलाल नानजी - स्नात्रपूजा-ढाल-४-५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजीम.सा. - पृ.१२५
१३. महान ज्योतिर्धर - अनु. रंजन परमार - पृ.४६
१४. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजीम.सा.-पृ.१२६
१५. न्या.श्री विजयानंद सूरि-श्री सुशील - पृ. ३२-३३
१६. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - पृथ्वीराजजी जैन–पृ.१४१
१७. लोक तत्त्व निर्णय - श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा. श्लोक-३८
१८. ईसाई मत समीक्षा-श्री विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.–पृ.२३
१९. अज्ञान तिमिर भास्कर - (प्रथम खंड) श्री विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.११८
२०. जैन तत्त्वादर्श-परिच्छेद-२ श्री विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.८०
२१. अज्ञान तिमिर भास्कर श्री विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.१८६
२२. चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१ श्री विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.१२१-१४०
२३. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी.म.सा. पृ. १३६
२४,२५ अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा. पृ.१५७-१५८;पृ.२६२से२६९
२६. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा. पृ.९
२७. लोक तत्त्व निर्णय - श्री हरिभद्र सूरिजी म.सा. श्लोक-३७
२८. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा.पृ.५२४-५२५-५२९
२९. अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा.पृ.१९५
३०. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा.पृ.२०६-२०७
३१. चिकागो प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा.पृ.९३
३२. अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी.म.सा.पृ.२०७
३३. जै. श्री आत्मानंद ज.श.स्मा.ग्रन्थ - गुजराती विभाग - पृ.१०३
३४. महान ज्योतिर्धर - अनु. रंजन परमार - पृ.८०
३५. जै.श्री आत्मानंद ज.श.स्मा.ग्रन्थ - हिन्दी विभाग - पृ.६१
३६. प्रतिक्रमण सूत्र - गणधर प्रणीत - श्लोक - ३२
३७. न्या.श्री विजयानंद सूरि-ले.सुशील - पृ.७८
३८. भाषा और समाज - ले. रामविलास शर्मा–पृ.४२३
३९. भारतेंदु-युग और हिन्दी भाषाकी विकास परंपरा - श्रीरामविलास शर्मा-पृ.१३७-१३८
४०. हिन्दी साहित्यका इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल पृ.४२९
४१. भारतेंदु युग और हिन्दी भाषाकी विकास परंपरा-श्री रामविलास शर्मा-पृ.१८०-१८१
४२,४३,४४,४५ जैन तत्त्वादर्श - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.-पृ.४१०;४४०;२८९;२९२
४६. अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.सा. पृ.९६
४७. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.सा. पृ.९०
४८. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि-पृथ्वीराजजी जैन पृ.१३८
४९,५० अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.१५२;पृ.२०६
५१. जैन तत्त्वादर्श - प्रासंगिक वक्तव्य - ले. श्री बनारसीदास जैन
५२. श्री आत्मारामजी म. और हिन्दी भाषा - जसवंतराय जैन - पृ.४
५३,५४ जैन तत्त्वादर्श - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.१२५;पृ.-२-४-७
५५. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.११९
५६. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ.५३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि-श्री पृथ्वीराजजी जैन - पृ.१४०
५८. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. अंतिम मंगल श्लोक
५९. पंजाबमें हिन्दीकी प्रगति - काशी नागरी प्रचारिणी सभा-पत्रिका-(१९४४)
६०. ज्ञान भंडारों पर एक दृष्टिपात - श्री पुण्य विजयजी म.सा. पृ.६३

पर्व द्वितीय - श्री आत्मानंदजी महाराजजीका पद्य साहित्य

१. काव्यमनीषा	भगीरथ मिश्र	पृ.२०
२. साहित्यालोचन	श्याम सुंदरदासजी	पृ.३४
३. काव्यांग कौमुदी कला-३-	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	पृ.११
४. काव्यमनीषा	भगीरथ मिश्र	पृ.६१
५/६ काव्यमनीषा	भगीरथ मिश्र	पृ.६५
७. साहित्यालोचन	श्यामसुंदरदासजी	पृ.२४९

८/९ चतुर्विंशति जिन स्तवन श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.—स्त.-१/५
१०/११ आत्मविलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - श्री सिद्धाचलजी तीर्थ स्तवन श्री शीतलनाथ जिन स्तवन
१२. उपदेश बावनी श्रीमद्विजानंद सुरीश्वरजी म.-श्लोक-९.
१३/१४ नवतत्त्व संग्रह ध्यानस्वरूप (लेश्या द्वार) श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम. पृ.१८१/पृ.१७९
१५. स्नात्र पूजा श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-ढाल-६
१६. नवपद पूजा श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.-पूजा-२
१७. उपदेश बावनी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-श्लोक-३८
१८/१९ हिन्दी साहित्यका इतिहास श्री नगेन्द्र—पृ.१२७/पृ.१४१
२०/२१ स्तवन संग्रह (हस्तलिखित) श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-६७/स्तवन ७४
२२. उपदेश बावनी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-श्लोक-३३
२३. चतुर्विंशति जिन स्तवनावलि श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - स्तवन-७
२४/२५ आत्मविलास स्तवनावलि श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - पृ.५८,८४
२६. सत्रहभेदी पूजा श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - सप्तम पूजा
२७,२८,२९ आत्मविलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - पृ.५२/पृ.१३/पृ.२४
३०. अष्ट प्रकारी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - सप्तम पूजा
३१. आत्म विलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.७९
३२. अष्ट प्रकारी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. प्रथम पूजा
३३,३४,३५ श्री नवपदपूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. षष्ठम पूजा/नवम पूजा-२-४
३६. अष्टप्रकारी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा - ६-७
३७,३८,३९ आत्म विलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.७७/पृ.७५/पृ.६२
४०. चतुर्विंशति जिन स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-११
४१,४२ आत्म विलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.५९/पृ.६८
४३. जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - हिन्दी विभाग-श्रीदेवकुमार जैन पृ.१७४
४४,४५,४६,४७ श्री बीस स्थानक पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा - ३/६/१/२
४८ से ५२ श्री नवपद पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - पूजा - ६/१/६/७/८
५३. बीस स्थानक पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पूजा-१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४/५५ उपदेश बावनी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. श्लोक-४०/४१
५६. बीसस्थानक पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा - १७.
५७/५८ अष्ट प्रकारी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. कलश/पूजा-४
५९. द्वादश भावना सज्झाय - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. एकत्व भावना सज्झाय
६०/६१/६२ आत्मविलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पद-५/१०/११
६३. अष्ट प्रकारी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा-१
६४से६७ सत्रहभेदी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा७/९/१०/१७
६८. स्तवन संग्रह (हस्त लिखित) - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-२१
६९/७०/७१ सत्रह भेदी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा-१६/१२/५
७२. आत्म विलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. सिद्धाचल मंडन श्री ऋषभदेव भ.स्तवन
७३से७६ बीसस्थानक पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा-१२/१०/१८/१५
७७. स्तवन संग्रह (हस्त लिखित) - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन ३५
७८से८१ उपदेश बावनी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. श्लोक १/२/५/६
८२. चतुर्विंशति जिन स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-२०
८३. बारह भावना सज्झाय - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. आश्रव भावना सज्झाय
८४. बृहत् नवतत्त्व संग्रह (बारह भावना स्वरूप) - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. आश्रव भावना
८५. बृहत नवतत्त्व संग्रह (ध्यान स्वरूप) - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. लेश्या द्वार
८६. चतुर्विंशति जिन स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-१८
८७. आत्म विलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.९७
८८से९१ उपदेश बावनी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. श्लोक २१/३३/३६/६०
९२. द्वादश भावना सज्झाय - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. लोक स्वरूप भावना
९३. रस मीमांसा–आ. रामचंद्र शुक्ल–पृ.३३
९४. स्वामी नारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी म.का साहित्य - ले.डो. अरुणा शुक्ल-पृ.२२७
९५. काव्यांग कौमुदी (तृतीयकला) - श्रीविश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पृ.८९
९६. काव्यमनीषा - श्री भगीरथ मिश्र-
९७. काव्य शास्त्र - श्रीभगीरथ मिश्र म. पृ.२५७
९८,९९ काव्यमनीषा - श्रीभगीरथ मिश्र म. पृ.२९६/पृ.२८५
१०० ध्वन्यालोक लोचन–आनंदवर्धनाचार्य
१०१. काव्यशास्त्र–डॉ. भगीरथ मिश्र पृ.२२६
१०२. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंश भाषाका योगदान - डॉ. नामवरसिंह
१०३. काव्य शास्त्र सहायिका–श्री अभिताभ - पृ.८९
१०४,१०५ जै. श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - गुजराती विभाग - पृ.१४१/पृ.८९
१०६. श्रीमद् विजयानंद सुरीश्वरनो अमर काव्यदेह - श्री मोतीचंद कापड़िया - पृ.१८

पर्व तृतिय - श्री आत्मानंजीके साहित्यका विश्वस्तरीय प्रभाव---

१. श्री विजयानंद सुरीश्वर स्तवनम् - श्री चतुरविजयजी म. श्लोक-९
२. Jainism a Universal Religion - B. M. Javeria - P.60-61
३. The Man and his messege - Baburam Jain P.78
४. श्री आचार्यदेवका स्मरण शशिभूषण शास्त्री पृ.२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. चिकागो प्रश्नोत्तर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.८६
६. Suman Sanchaya Gyandas Jain P.129
७. अज्ञान तिमिर भास्कर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.२०७
८. An Appreciation Chandra Gupta Jain P.69-70
९. कलिकाल कल्पतरु डॉ. जवाहरचंद्र पटनी पृ.१७
१०. तत्त्व निर्णय प्रासाद श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम. पृ.३८६
११,१२ आत्मचरित्र (उर्दू) श्री बाबूरामजी जैन पृ.२२४/२३९
१३. जैन समाजमें शिक्षा और दीक्षाका स्थान - अचलदास लक्ष्मीचंदजी पृ.७२
१४. आत्मचरित्र (उर्दू) लाला बाबूरामजी जैन पृ.२०७
१५,१६,१७ अहिंसा और विश्वशांति–श्री दरबारीलाल जैन 'कोठिया'-पृ.१३२-१३३/पृ.१३९/पृ.१३६
१८,१९,२० अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीविजयानंद सुरीश्वरजी म.-पृ.१२२/पृ.२९२/पृ.३२९
२१. जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ (गुजराती विभाग) - पृ.८३
२२. सूरिजीना केटलाक जीवन प्रसंगो - मुनि चारित्र विजयजी म. पृ.३५
२३. समयज्ञ संत श्री मोहनलाल दीपचंद चोकसी - पृ.४५
२४. सो वर्षनो सिद्धियोग श्री देवचंद दामजी कुंडलाकर पृ.९२
२५. Shree Atmaramji & his many sided activities by Amarnath Audich P=.97
२६,२७ जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर- श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.१२२/पृ.१५१
२८. श्रद्धांजलि (जै. श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ) मुनि श्री ज्ञानसुंदरजी म.-पृ.१८१
२९. अर्हन्मतोद्धारक आ.आत्मारामजी–श्रीलक्ष्मण रघुनाथ भीड़े - पृ.१०
३०. Shree Atmaramji and his mission - Chaitandas - P.55
३१. श्री आत्मारामजी म.ना जीवननी विशिष्टता - श्री फतेहचंद झवेरभाई शाह पृ.८८
३२. Shree Atmaramji and his mission - Chaitandas - P.58
३३. जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर- श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.६८
३४. श्री आत्मारामजी म.ना ग्रन्थोनुं दिग्दर्शन - श्री नानचंदजी शाह–पृ.९८-१००
३५. समयज्ञ संत श्री मोहनलाल चोकसी पृ-.४८
३७. अर्हन् मतोद्धारक आ.श्री आत्मारामजी - श्री लक्ष्मण भीड़े पृ.१२
३८,३९ Shree Atmaramji and his mission - Chaitandas - P.58/P.57
४०. श्री आत्मारामजी म. अने तेमना आदर्श गुणो - श्री चरण विजयजी म. - पृ.१४१
४१. जैनधर्मका महत्त्व और उसकी उन्नतिके साधन - मथुरदास जैन - पृ.१२९
४२. The man and his messege - Bauram Jain P.81
४३. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. - प्रश्न -१६;१८;१९;२०
४४. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - पृथ्वीराजजी जैन–पृ.१०८,१११
४५. आत्म चरित्र (उर्दू) लाला बाबूराम जैन पृ.२१२,–२१४
४६. न्या. श्री विजयानंद सूरि - श्री सुशील–परिशिष्ट पृ.७
४७. श्री आत्मानंदजी म. अने तेमना आदर्श गुणो - मुनि श्री चरण विजयजी म. पृ१४२
४८. न्या. श्री विजयानंद सूरि–श्री सुशील–पृ.८२,८४
५०,५१ जैन तत्त्वादर्श श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.४४०/पृ.४४४
५२. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. प्र.१५१
५३,५४ आत्मचरित्र (उर्दू) लाला बाबूरामजी जैन पृ.२०९/पृ.१११-११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. The Indian empire by Mr. Huntar---Huntar - P.472
५६. न्या. जै. श्री विजयानंद सूरि–श्री पृथ्वीराज जैन - पृ.१२९
५७. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.४
५८. जै.श्री विजयानंद ज. श. स्मा. ग्रन्थ (मेकोलेका पत्र पिताके नाम) हिन्दी विभाग - पृ.१०२
५९. जैन तत्त्वादर्श - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.४८१
६०. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.-पृ.४०९ से ४११
६१. सुरीश्वरजीके पुनितनाम पर - श्री ईश्वरलाल जैन - पृ.९८
६२. जैनधर्मका महत्त्व और उसकी उन्नतिके साधन - श्री मथुरदास जैन - पृ.१२८, १२९
६३. स्व. गुरु म. का अपूर्ण रहा हुआ अंतिम ध्येय - श्री बनारसीदास -पृ.५२
६४. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास - मोहनलाल देसाई - पेरा १०७२, १०८२
६५. 'अनुसंधान' - पत्रिका (संपादकीय वक्तव्य) संपा.- वि.शीलचंद्र सूरि, हरिवल्लभ भायाणी
६६,६७ Shree Atmaramji and his many sided activities by Dr. Amarnath Audich-P.98/99
६८. विश्व महाविभूति श्री विजयानंद सूरिश्वरनो अक्षर देह - श्री पुण्य विजयजी म. - पृ.३
६९. महान ज्योतिर्धर - अनु. रंजन परमार - पृ.६४
७०. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - श्री पृथ्वीराजजी जैन - पृ. १४५
७१,७२ अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.१६७/पृ.१७४
७३. श्री नयविजय उपाध्यायजी रचित 'कल्प सुबोधिका वृत्ति' संपा. श्री शोभाचंद्रजी भारिल्ल-पृ.३१-३२
७४. Shree Atmaramji from a young mans' view point by Shah Vinaychand
७५. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि श्री पृथ्वीराजजी जैन - पृ.१४१-१५०

पर्व चतुर्थ - श्री आत्मानंदजी म.की अन्य विभूतियोंसे तुलना ---

१. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम् - पं.हीरालाल वि. हंसराज - सर्ग-११/२९
२. हिन्दी साहित्यका इतिहास - डॉ. नगेन्द्र पृ.७२
३. पत्रिका-श्री महावीर शासन-वर्ष-४४-अंक-८-९-जैन रामकथाका स्वरूप व विकास-डॉ.शांतिलाल शाह पृ.८६
६. प्रभावक चरित्र श्री प्रभाचंद्र सूरिम.
७. कुवलय माला श्री उद्योतन सूरिम.
८. 'षोड़शक प्रकरण'-व्याख्यान संग्रह–प्रस्तावना–ले. हीरालाल कापड़िया-पृ.११ और १५
९. आवश्यक निर्युक्ति गाथा ४२१
१०. श्री सुपार्श्वनाथ चरित श्री लक्ष्मणजी गणि
११. शास्त्रवार्ता समुच्चय-वृत्ति–उपा. श्री यशोविजयजी म.
१२. श्री आत्मारामजी म. अने तेमना आदर्श गुणो - मुनि श्री चरण विजयजी म.-पृ.१३८
१३. 'सूरि पुरंदर' - श्रीमद्विजय भुवनभानु सूरिम. पृ.१-२
१३A. आ. श्री आत्मारामजीनुं व्यक्तित्व दर्शन–शाह पोपटलाल–पृ.१२
१४. श्री आत्मारामजी म.नो अमर काव्य देह - मोतीचंद कापड़िया - पृ.२२
१५. 'अज्ञान तिमिर भास्कर' - प्रथम खंड - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.-पृ.१२१
१६. 'कलिलाल कल्पतरु' - जवाहरचंद्र पटनी-पृ.–२७३
१७. 'यशोदोहन'–प्रस्तावना–श्री यशोदेव सूरि म.
१८. 'नृतत्त्व निगम (लोकतत्त्व निर्णय) - श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म. - श्लोक-३८
१९. सम्यक्त्व शल्योद्धार-उपोद्घात-श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पृ.६-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०से२३ आत्मविलास स्तवनावलि– श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.–पृ.६७/पृ.१९/पृ.७१/पृ.६१
२४. श्री यशोविजयजी कृत जिन स्तवन चौबीसी - श्री चंद्रप्रभ स्वामी जिन स्तवन
२५. आत्म विलास स्तवनावलि - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.–पृ.७६
२६. आनंदघनका रहस्यवाद - सा.श्री सुदर्शनाश्रीजीम.–पृ.५९
२७. श्री सम्मेत शिखरजी तीर्थनां ढालियाँ-१९–संपा-श्री पद्मसूरिजीम.–पृ.१४७से१६६
२८. शासन प्रभावक श्रमण भगवंतो - संपा-श्री नंदलाल देवलुकजी
२९. जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - हिन्दी विभाग-पृ.२२
३०. श्री आनंदघन ग्रन्थावली - पद - ७२
३१. श्री आनंदघन जिन चौबीसी-स्तवन-१३
३२,३३ आत्मविलास स्तवनावली–पृ.६५/पृ.८७
३४. चतुर्विंशति जिन स्तवन–श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.–स्त.१८
३५से३८ श्री आनंदघन पदावली (सज्जन सन्मित्र)-संपा- पद पोपटलाल केशवलाल-३३/१४/७०/८७
३९,४० श्री आत्मविलास स्तवनावली-श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.९७/पृ.९९
४१. श्री आनंदघन ग्रन्थावली - पद-१२.
४२. श्रीनवपदजी पूजा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पूजा-४
४३. श्री बीस स्थानक पूजा- श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पूजा-१०
४४. श्री आनंदघन जिन चौबीसी - श्री आनंदघनजी म.सा–स्तवन-१७
४५. आत्मविलास स्तवनावली - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.–पृ.१०१
४६. श्री आनंदघन पद बहोत्तरी - पद-८२
४७. आत्म विलास स्तवनावली - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पृ.१०४
४८. श्री आनंदघन जिन चौबीसी - स्तवन-२१
४९. चतुर्विंशति जिन स्तवनावली–श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.स्त.९
५०से५३ चिदानंद ग्रन्थावली - भूमिका–श्री भंवरलालजी नाहटा–पृ.१४/१५/२०/१६
५४. चिदानंद कृत स्वरोदयज्ञान–पृ.२१७-१०
५५. जैन तत्त्वादर्श - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.–संपा-श्रीपुण्यपालसूरि–परि-९-पृ.३६०-३६१
५६. चिदानंद कृत संग्रह-भाग-२ संपा.केशरीचंद धूपिया–पृ.१४१
५७. उपदेश बावनी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. श्लोक-१
५८. चतुर्विंशती जिन स्तवनावली - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-३
५९. दया छत्तीसी ले. चिदानंदजी म.सा. श्लोक-३४
६०. परमात्म छत्तीसी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. श्लोक-९,१०
६१. उपदेश बावनी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. श्लोक-९,१८,२५
६२. चिदानंद बहोत्तरी - श्री चिदानंदजी म.सा. पद-३
६३. बृहत् नवतत्त्व संग्रह - अन्यत्व भावना पृ.१६२
६४. पुद्गल गीता श्री चिदानंदजी म.सा. श्लोक-१७
६५. सवैया इकतीसा श्री चिदानंदजी म.सा. श्लोक-५
६६. उपदेश बावनी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. श्लोक-१५
६७-६९ चिदानंद बहोत्तरी - श्री चिदानंदजी म.सा.-पद-१५-६५
६८. चतुर्विंशति जिन स्तवन - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-स्त.१३
७०. चतुर्विंशति जिन स्तवन - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-स्त.१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. चिदानंद पदावली (श्री नेमिनाथ स्तवन) श्री चिदानंदजी म.सा.-पद-६२
७२,७४ आत्मविलास स्तवनावली - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.८०-८१/पृ.८६
७३. चिदानंद पदावली - श्री चिदानंदजी म.सा. पद-१
७५. श्री चिदानंद बहोत्तरी - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. पद-७१
७६. श्री आत्म विलास स्तवनावली श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पृ.१०३
७७. हिन्दी साहित्यका इतिहास-आ.श्री रामचंद्र शुक्ल-पृ.१२२ से १२४
७८. कलिकाल कल्पतरु - श्री जवाहरचंद्र पटनी - पृ.२५४
७९. हिन्दी साहित्यका इतिहास - डॉ.नगेन्द्र
८०. कवितावली - उत्तरकांड–५७–श्री तुलसीदासजी
८१. तुलसी : आधुनिक वातायनसे - डॉ.रमेश कुंतल मेघ-पृ.१२२
८२. हिन्दी साहित्यका इतिहास - डॉ.नगेन्द्र पृ.२०४
८३,८४ तुलसी : आधुनिक वातायनसे-डॉ.रमेश कुंतल मेघ-पृ.१२५/पृ.१२७
८५. कवितावली - उत्तरकांड-२६–श्री तुलसीदासजी
८६,८७ आत्मविलास स्तवनावली-श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.-पृ.९०-९१/पृ.७४
८८. चतुर्विंशति जिन स्तवन श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. स्तवन-१३
८९,९० जै.श्री आत्मानंद ज.श.स्मा.ग्रन्थ(श्रीविजयानंद सूरि और म.दयानंद) पृथ्वीराजजी जैन-पृ.४६/पृ.४७
९१,९३ सत्यार्थ भास्कर भाग-२ ले. स्वामी विद्यानंदजी सरस्वती–पृ.८२९/पृ.८२८
९२. ऋषि दयानंदके पत्र और विज्ञापन सं-३ भाग—२-पृ.८
९३A श्री विजयानंद सूरि और म.दयानंद - पृथ्वीराज जैन-पृ.८९
९४. हिन्दी साहित्यका इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल - पृ.४४०
९५. न्या.जै.विजयानंद सूरि-पृथ्वीराजजी जैन - पृ.८९से१००
९६. चतुर्विंशति जिन स्तवन - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.—स्तवन-३
९७. हिन्दी साहित्यका इतिहास-डॉ.नगेन्द्र पृ.४७२
९८. भारतेन्दु ग्रन्थावली-(प्रेम तरंग) भाग-२-भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी-पृ.२०६
९९. भारतेन्दु ग्रन्थावली-(प्रेम प्रलाप) भाग-२-भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी-पृ.२७६
१००. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर - श्रीमद्वियानंद सुरीश्वरजी म.सा. प्र.नं.१११
१०१. आत्मविलास स्तवनावली - श्रीमद्वियानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.७७
१०२. द्वादश भावना सज्झाय संग्रह - श्रीमद्वियानंद सुरीश्वरजी म.सा. धर्मभावना-१-२
१०३. भारतेन्दु ग्रन्थावली (हिन्दीकी उन्नति)-भाग-२-भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी-पृ.७३१
१०४. श्री आत्मानंद ज.श.स्मा.ग्रन्थ-हिन्दी विभाग-पृ.४-५.

पर्व पंचम् - उपसंहार

१. श्री विजयानंद सुरीश्वरजी स्तवनम् - मुनि श्री चतुरविजयजी म.सा. - श्लोक-२
२. प्रभावक ज्योतिर्धर जैनाचार्यो- पं.लालचंद्र गांधी-पृ.९८
३. न्या. श्री विजयानंद सूरि–श्रीसुशील - पृ.३२
४. आत्मचरित्र (उर्दू) लाला बाबूरामजी जैन - पृ.२७६
६. अष्ट प्रकारी पूजा श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पूजा-४.
७. आत्मविलास स्तवनावलि श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.
८. समर्पित शासन सेवक–श्री आशिष कुमार जैन - पृ.३५१
९. श्री भक्तामर स्तोत्र (पादपूर्ति) पं हीरालालजी श्लोक-४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

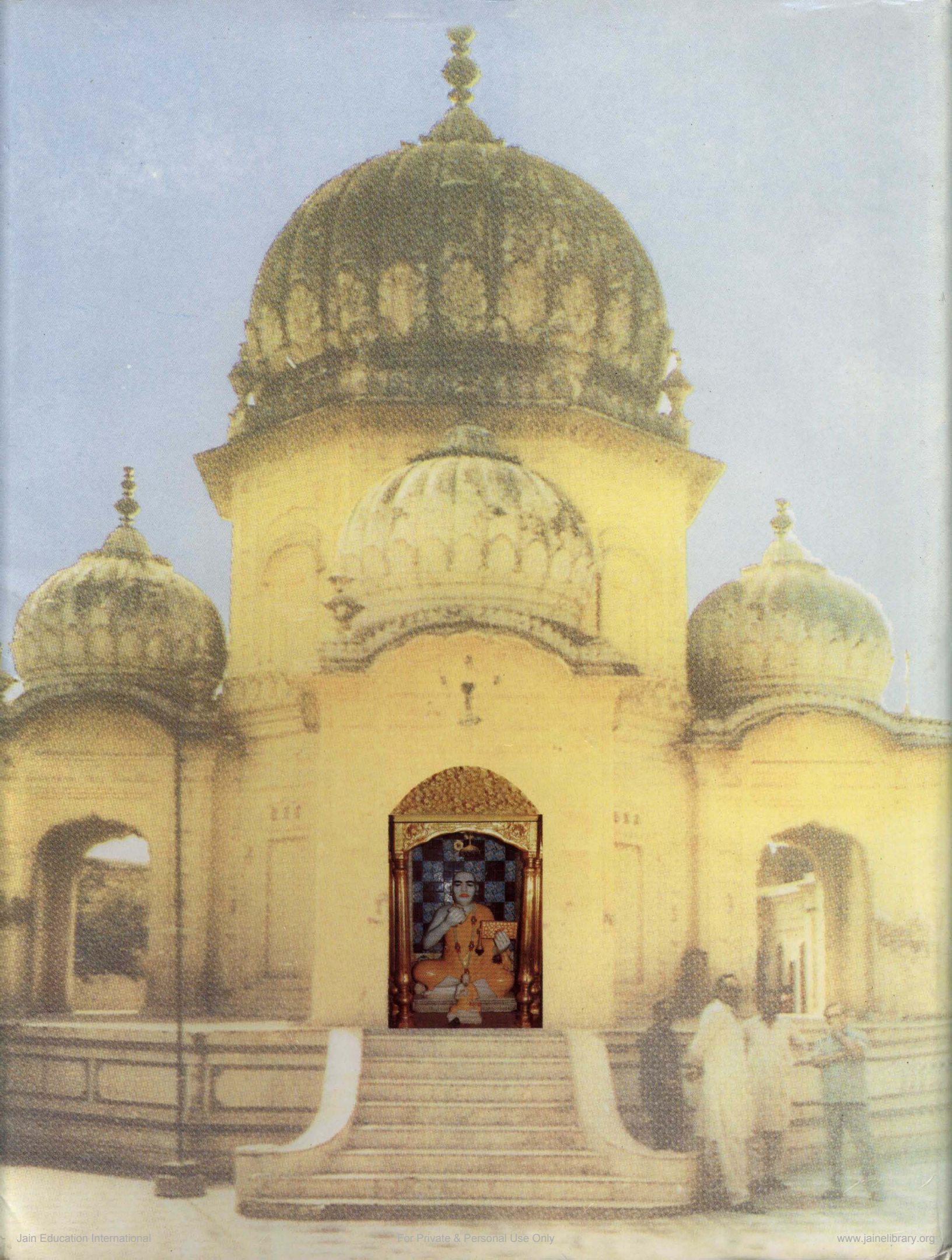

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org